कनिङ्घम लिखित

प्राचीन भारतका ऐतिहासिक भूगोल

★

HISTORY OF THE ANCIENT GEOGRAPHY OF INDIA

A CUNNINGHAM

★

अनुवादक

जगदीश चन्द्र

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४९२ मालवीय नगर

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] अगस्त १९७१ [मूल्य १५)

समर्पण

मेजर जेनरल सर एच० सी० रालिन्सन K. C. B.

को

जिन्होंने मेरी इस पुस्तक के निर्माण में,
अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है,
उनको यह पुस्तक सादर समर्पित
करता हूँ ।

एलेक्ज़ेण्डर कनिङ्घम

लेखक

मूल संस्करण की भूमिका

भारत के भूगोल को सुविधा पूर्वक कुछ विशिष्ट भागो में विभाजित किया जा सकता है जिसके प्रत्येक भाग का नामांकरण उस समय मे प्रचलित धार्मिक तथा राजनैतिक स्वरूप के आधार पर किया जा सकता है कि ब्रह्म कालीन, बौद्ध कालीन तथा मुस्लिम कालीन।

ब्रह्म कालीन भूगोल में आर्य जाति द्वारा पंजाब पर सर्वप्रथम अधिकार से लेकर बौद्ध धर्म के उत्थान के समय तक उत्तरी भारत पर आर्य जाति के विस्तार का विवरण मिलता है और इस काल में सम्पूर्ण ऐतिहासिक अथवा आर्यों के प्राचीनतम भाग का समय सम्मिलित है जिस समय देश मे वैदिक धर्म ही प्रचलित था।

बौद्ध काल अथवा भारत का प्राचीन भूगोल मे बुद्ध के समय से महमूद गजनवी की विजयो के समय तक बौद्ध धर्म के उत्थान, विस्तार एवं पतन की कहानी निहित है जिसके अधिकांश समय मे बौद्ध धर्म ही देश का मुख्य धर्म था।

मुस्लिम काल अथवा भारत का आधुनिक भूगोल महमूद गजनवी के समय से लेकर प्लासी के युद्ध के समय तक अथवा ७५० वर्षों के काल मे मुस्लिम शक्ति के उत्थान तथा विस्तार का समय था जिसमे मुसलमान ही भारत के सर्वोपरि शासक थे। एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने एक अन्य पुस्तक मे वैदिक कालीन समीक्षा को अपनी पुस्तक का विषय बनाया है। भारतीय भूगोल के इस प्राचीन भाग पर एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन के मूल्यवान विवरण से इस बात का आभास मिलता है कि एक योग्य एव चतुर समीक्षक द्वारा वैदिक कालीन गाथाओ से कितनी रुचि पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है।

द्वितीय अथवा प्राचीन खण्ड का आंशिक विवरण एच-एच विल्सन द्वारा अपनी पुस्तक एरियाना एन्टिका (Ariana Antiqua) तथा प्रो० लासेन द्वारा पेन्ट पोटामिया इंडिका मे किया गया है परन्तु ये पुस्तकें उत्तर पश्चिमी भारत से सबंधित हैं। प्रो० लासेन ने प्राचीन भारत पर अपनी एक अन्य बडी पुस्तक में योग्यता पूर्वक सम्पूर्ण भूगोल का चित्रण किया है। एम० डी सेन्ट मार्टिन ने अपने दो विशेष लेखो मे देश के भूगोल का विस्तृत विवरण दिया है। इनमे एक लेख यूनानी तथा लैटिन स्रोतो से प्राप्त सूचनाओ के आधार पर भारत के भूगोल पर लिखा गया है जबकि दूसरा लेख एम० जुलीन द्वारा चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग की जीवनी तथा यात्राओ के अनु-

इस पुस्तक के लेखक

एलेक्ज़ेन्डर कनिंघम
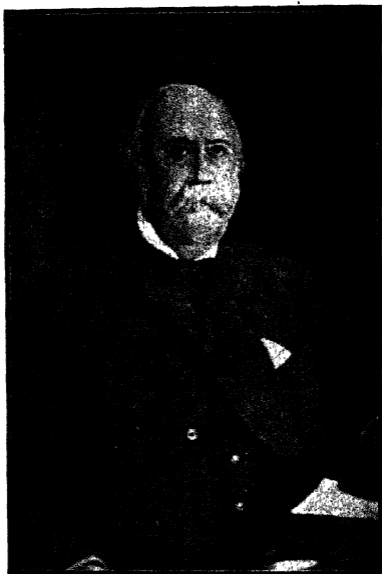
बाद परिशिष्ट के रूप में लिखा गया है। उसका अनुसंधान इतनी सावधानी एवं सफलता से किया गया है कि बहुत कम स्थान अपने असली स्वरूप में स्पष्ट रूप से सामने आने से रह गये हैं परन्तु उसकी आलोचनात्मक सूक्ष्मता इतनी प्रखर है कि कुछ स्थानों पर जहाँ हमारे मानचित्रों की अशुद्धता के कारण स्थानों की ठीक-ठीक पहचान प्रायः असम्भव हो गई थी, उन्होंने इन स्थानों को इनकी वास्तविक स्थिति के कुछ ही मीलों के भीतर इंगित किया है।

तृतीय अथवा आधुनिक काल की व्याख्या के लिये भारत के मुस्लिम राज्यों की अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों में प्रचुर सामग्री प्राप्त है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है उन अनेक स्वतन्त्र राज्यों के सीमांकन हेतु अभी तक कोई प्रयत्न नहीं हुआ जिनकी स्थापना पन्द्रहवीं शताब्दी मे तैमूर के आक्रमणोपरान्त फैली अव्यवस्था के समय हुई थी। इसी काल मे स्वतन्त्र हुए, दिल्ली, जौनपुर, बङ्गाल, मालवा, गुजरात सिन्ध, मुल्तान तथा गुलबर्गा के मुस्लिम राज्यो एवम् ग्वालियर आदि विभिन्न हिन्दू राज्यों की विशिष्ट सीमाओं को प्रदर्शित करने वाले विशेष मान चित्र के अभाव के कारण इस काल का इतिहास स्पष्ट है।

मैंने बौद्ध काल अथवा भारत के प्राचीन भूगोल को अपनी वर्तमान खोज का विषय चुना है क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारत मे अपने लम्बे निवास के समय स्थानीय अनुसन्धान हेतु प्राप्त विशिष्ट अनुकूल साधन मुझे भारत के अनेक महत्वपूर्ण स्थानो की स्थिति पूर्ण निश्चय के साथ निर्धारित करने के योग्य बनायेंगे।

मैंने जिस काल की व्याख्या करने का बीड़ा उठाया है उसमें मेरे मुख्य मार्ग दर्शक हैं। ईसवी पूर्व की चौथी शताब्दी मे सिकन्दर के आक्रमण एवम् ईसा के पश्चात सातवीं शताब्दी में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग की यात्राओं का विवरण भारत के प्राचीन इतिहास तथा भूगोल में इस चीनी तीर्थ यात्री की तीर्थ यात्राओं का विवरण उतना ही रुचिपूर्ण एवम् महत्वपूर्ण स्थान रखता है जितना कि सिकन्दर महान की साहसिक यात्रायें। मेसिडोनिया के विजेता का वास्तविक आक्रमण सिन्धु एवम् इसकी सहायक नदियों की घाटी तक सीमित था परन्तु स्वयं सिकन्दर महान एवम् उसके सहयोगियों द्वारा एकत्रित सूचनाओं तथा तत्पश्चात सीरियाई बादशाहों के दूतों एवम् आक्रमणों द्वारा प्राप्त सूचनाओं मे, उत्तर मे गङ्गा नदी की सम्पूर्ण घाटी, दक्षिणी पठार के पूर्वी एवम् पश्चिमी घाट का सम्पूर्ण विवरण एवम् देश के आन्तरिक भागों का आंशिक विवरण निहित है। टालमी ने इन सूचनाओं को अपनी क्रमानुसार खोजों द्वारा विस्तृत स्वरूप प्रदान किया है और टालमी का विवरण अधिक मूल्यवान है क्योंकि यह विवरण सिकन्दर महान एवम् ह्वेनसांग के समय के प्रायः मध्य काल (१) से सम्ब-

(१) सिकन्दर का आक्रमण ३३० ई० पू, टालमी का भूगोल सन् १५० अथवा सिकन्दर के आक्रमण के ४८० वर्ष पश्चात, भारत में ह्वेनसांग की यात्राओं का आरम्भ सन ६३० अथवा टालमी से प्रायः ४८० वर्ष पश्चात।

न्धित है जिस समय भारत का अधिकांश भाग इण्डो सीथियन लोगों के अधीन था।

टालमी के साथ ही हमने उच्च कोटि के अनेक विद्वानों को खो दिया है और तत्पश्चात काफी समय तक हम प्राचीन शिला लेखों एवम् पुराणों के स्पष्ट अन्धकार में छिपे विभिन्न भौगोलिक अंशों को सम्बन्धित एवम् क्रमानुसार करने में प्रायः पूर्ण रूपेण अपने निर्णय पर निर्भर करते थे परन्तु ईसवी काल की पाँचवी, छठी, एवं सातवीं शताब्दी मे अनेक चीनी तीर्थ यात्रियों की यात्राओ के विवरण की भाग्यपूर्ण खोज ने अभी तक अन्धकार में छिपे इस काल के इतिहास पर इतना प्रकाश डाला है कि अब हम भारत के प्राचीन भूगोल के छितरे हुए अशो को सामान्य क्रमानुसार देखने योग्य हो गये हैं।

चीनी तीर्थ यात्री फाहियान एक बौद्ध पुजारी था जिसने ३९९ तथा ४१३ ई० के समय मे अपर सिन्ध के तट से लेकर गङ्गा नदी के मुहाने तक भारतवर्ष की यात्रा की थी। दुर्भाग्यवश उसका विवरण बहुत ही सक्षिप्त है और मुख्य रूप से इसे बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानो एवम् वस्तुओ के उल्लेख हेतु लिखा गया है परन्तु चूँकि उसके मार्ग मे पड़ने वाले मुख्य स्थानो के दिकाश एवम् दूरियो का उल्लेख किया है अतः उसका सक्षिप्त विवरण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। द्वितीय चीनी तीर्थ यात्री सुङ्ग युन की यात्राये ५०२ ई० मे हुई थी परन्तु चूँकि यह यात्राये काबुल की घाटी एवं उत्तर-पश्चिमी पञ्जाब तक सीमित थी, यह कम महत्वपूर्ण हैं विशेषतयः जबकि उसका विवरण भौगोलिक उल्लेखो मे मुख्य रूप से अपूर्ण है।

तृतीय चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग भी एक बौद्ध पुजारी था जिसने अपने जीवन काल के प्रायः पन्द्रह वर्ष भारत मे बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानो की यात्रा एव अपने धर्म की प्रसिद्ध पुस्तको के अध्ययन मे व्यतीत किये थे। उसकी यात्राओ के अनुवाद के लिये हम एम० जुलीन के आभारी है जिन्होंने अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सस्कृत एवं चीनी भाषाओ का ज्ञान प्राप्त करने मे बीस वर्षों का अथक प्रयास किया था। ह्वेनसांग की यात्राओ का समय ६२९ ई० से ६४५ ई० तक था। इस काल मे उसने काबुल तथा काश्मीर से गङ्गा एव सिन्धु नदियो के मुहाने तक तथा नेपाल से मद्रास के समीप काँचीपुर तक सम्पूर्ण देश के बडे-बडे नगरो की यात्रा की थी। तीर्थ यात्री ने ६३० ई० के मई माह के अन्तिम दिनो में बामियान के मार्ग से काबुल मे प्रवेश किया था और अनेक परिभ्रमणो एव लम्बे विश्राम के पश्चात् आगामी वर्ष के अप्रैल मे ओहिन्द के स्थान पर सिन्धु नदी को पार किया था। उसने बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों की यात्रा के उद्देश्य से कई मास का समय तक्षशिला मे व्यतीत किया और तत्पश्चात् काश्मीर की ओर प्रस्थान किया जहाँ उसने अपने धर्म की अधिक महत्वपूर्ण पुस्तको के अध्ययन हेतु दो वर्ष व्यतीत किये। पूर्व दिशा में अपनी यात्रा मे उसने सांगला के खण्डहरो की यात्रा की जो सिकन्दर के इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और चिनापट्टी मे चौदह मास

और जलन्धर में चार मास धार्मिक अध्ययन हेतु व्यतीत करने के पश्चात् उसने ६३५ ईसवी में सतलज नदी को पार किया। तत्पश्चात उसने टेढ़े-मेढ़े मार्ग का अनुसरण किया क्योंकि अनेक अवसर पर उसे उन स्थानों की यात्रा करने के लिये पीछे मुड़ना पड़ा था जो पूर्व दिशा की ओर उसके सीधे मार्ग से छूट गये थे। इस प्रकार मथुरा पहुँचने के पश्चात वह उत्तर-पश्चिम मे २०० मील की दूरी पर थानेश्वर की ओर वापस मुड़ा जहाँ से यमुना नदी पर स्थित श्रुगना तथा गङ्गा नदी पर स्थित गङ्गा द्वार के मार्ग से पूर्व दिशा की ओर उत्तरी पञ्चाब अथवा रुहेल खण्ड की राजधानी अहिछत्र की यात्रा की। तत्पश्चात द्वाब मे सङ्किशा, कन्नौज तथा कौशाम्बी के प्रसिद्ध नगरों की यात्रा के उद्देश्य से उसने गङ्गा नदी को पुनः पार किया और उसके पश्चात अवध में अयोध्या तथा श्रावस्ती के पवित्र स्थानों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिये उत्तर की ओर मुड़ गया। वहाँ से उसने कपिलवस्तु तथा कुशी नगर के स्थानो पर बुद्ध के जन्म एव निर्वाण के स्थानो की यात्रा हेतु पुनः पूर्व दिशा का अनुकरण किया और वहाँ से एक बार फिर पश्चिम दिशा मे बनारस के पवित्र नगर की ओर मुडा जहाँ बुद्ध ने अपने धर्म की प्रथम शिक्षा दी थी। तत्पश्चात पुनः पूर्व दिशा का अनुकरण करते हुए उसने तिर्हुत मे वैशालो के प्रसिद्ध नगर की यात्रा की जहाँ से उसने नेपाल की साहसिक यात्रा की और पुनः वैशाली की ओर मुडते हुये उसने गङ्गा नदी को पार कर पाटलीपुत्र अथवा पालीबोथरा की यात्रा की। वहाँ से वह गया के आस-पास बौद्ध गया के स्थान पर गूलर के पवित्र वृक्ष, जहाँ बुद्ध ने पाँच वर्ष तपस्या की थी, से लेकर गिरियेक की ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जहाँ बुद्ध ने इन्द्र देवता को अपने धार्मिक विचारो से अवगत कराया था, तक गया के आस-पास अनेक पवित्र स्थानो पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के उद्देश्य से यात्रा की थी। तत्पश्चात वह मगध की प्राचीन राजधानियो कुसागरपुर तथा राजगृह के प्राचीन नगरो तथा सम्पूर्ण भारत मे बौद्ध धर्म के सर्वोपरि प्रसिद्ध स्थान नालन्दा के महान् मठ मे गया जहाँ उसने सस्कृत भाषा के अध्ययन हेतु १५ मास व्यतीत किया। ६३८ ई० के अन्त मे उसने गङ्गा नदी का मार्ग अपनाते हुए मोघगिरि तथा चम्पा तक पूर्व दिशा का पुनः अनुसरण किया और तदोपरान्त नदी को पार कर उत्तर की ओर पौण्ड्रवर्धन अथवा पुनबा तथा कामरूप अथवा आसाम की यात्रा की।

इस प्रकार भारत के सदूर पूर्व जिले मे पहुँचने के पश्चात उसने दक्षिण की ओर रुख किया और समतत अथवा जैसोर तथा ताम्रलिप्ति अथवा तामलुक होते हुए वह ६३९ ई० मे ओदरा अथवा उड़ीसा पहुँचा। दक्षिण दिशा में अपनी यात्रा जारी रखते हुए उसने गञ्जाम तथा कलिङ्ग की यात्रा की तथा तदोपरान्त उत्तर की ओर मुड़ते हुये वह प्रायद्वीप के मध्य कौशल अथवा बरार में पहुँचा। तत्पश्चात दक्षिण दिशा का अनुसरण कर आन्ध्र अथवा तेलङ्गाना प्रदेश से होते हुए कृष्णा नदी पर धनकाकटा अथवा अमरावती पहुँचा तथा उसने बौद्ध धर्म के साहित्य के अध्ययन में

कई मास व्यतीत किये। ६४० ई० के प्रारम्भ मे इस स्थान से चलकर वह दक्षिण दिशा में द्रविड की राजधानी काँचीपुर अथवा कञ्जीवरम पहुँचा जहाँ उसे इस सूचना के मिलने पर अपनी दक्षिण यात्रा स्थगित कर देनी पडी कि लङ्का में राजा की मृत्यु के पश्चात सङ्कटकालीन स्थिति उत्पन्न हो गई है। यह कथन विभिन्न स्थानों पर तीर्थ यात्री के पहुँचने की तिथियों की प्रामाणिकता के उद्देश्य से अधिक महत्वपूर्ण है। इन्हीं तिथियो को मैंने उसकी यात्राओ की वास्तविक दूरी तथा विभिन्न स्थानों पर उल्लिखित विश्राम काल के आधार पर निश्चित है। अब लङ्का में संकटकालीन स्थिति राजा बुन मुगलान की मृत्योपरान्त उत्पन्न हुई थी, जिसे ६३९ ई० मे पराजित कर मार डाला गया था और इस बात का अनुमान करना प्रायः उचित है कि काँची-पुर में तीर्थ यात्री को मिलने वाले लङ्का के पुजारियों ने तुरन्त देश छोड दिया होगा और वह ६४० ईसवी के प्रारम्भ में काँचीपुर पहुँचे होंगे। यह तिथि तीर्थ यात्री की गतिविधियों के सम्बन्ध में मेरे अनुमान से ठीक-ठीक मिलती है।

द्रविड से ह्वेनसांग ने पुनः उत्तर दिशा की ओर रुख किया तथा कोंकण एवम् महाराष्ट्र से होते हुए नर्बदा नदी पर स्थित भडौच नगर पहुँचा जहाँ से वह उज्जैन, बलभी तथा अन्य छोटे-छोटे राज्यो से होता हुआ ६४१ ई० के अन्त में सिन्ध तथा मुलतान पहुँचा। तदोपरान्त अचानक ही वह मगध की ओर नालन्दा तथा तिलधक के महान मठो तक गया जहाँ उसने प्रजनभद्र नामक प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षक की कुछ कुछ धार्मिक शंकाओं के समाधान हेतु दो मास का समय व्यतीत किया। उस बाद उसने पुनः कामरूप अथवा आसाम की यात्रा की, जहाँ वह एक मास तक रुका। ६४३ ई० के प्रारम्भिक भाग में वह पुनः पाटिलपुत्र मे था जहाँ उसने उत्तरी भारत के सर्वोच्च शासक महान सम्राट हर्षवर्धन अथवा शिलादित्य के दरबार मे प्रवेश किया। उस समय इस सम्राट के दरबार में अठारह सहायक शासक पंचवर्षीय ससद के पवित्र कार्य को गौरव प्रदान करने के उद्देश्य से आए हुए थे। तीर्थ यात्री ने इस महान शासक के जलूस में पाटलीपुत्र से प्रयाग एवम् कोशाम्बी होते हुए कन्नोज की यात्रा की थी। उसने इन स्थानों पर हुए धार्मिक उत्सवों का सूक्ष्म विवरण दिया है जो तत्कालीन बौद्ध धर्म के सार्वजनिक रीतियो पर प्रकाश डालने मे विशेष रुचि-कर है। कन्नोज मे उसने सम्राट हर्ष वर्धन से आज्ञा ली तथा जालन्धर के राजा उदित्य के साथ उत्तर पश्चिम दिशा मे यात्रा की। जालन्धर मे उसने एक मास का विश्राम किया था। उसकी यात्रा का यह भाग आवश्यक रूप से धीमा था क्योकि उसने अनेक मूर्तियाँ एवम् अपार संख्या में धार्मिक पुस्तकें एकत्रित कर रखी थी जिन्हे वह भारवाहक हाथियो पर ले जा रहा था। इनमें पचास हस्त लिपियाँ उत्खण्ड अथवा ओहिन्द के स्थान पर नदी पार करते समय नष्ट हो गई थीं। तीर्थ यात्री ने स्वयं हाथी की पीठ पर बैठ कर नदी को पार किया था और यह कार्य बर्फ के पिघलने के कारण

नदियो में बाढ़ से पूर्व दिसम्बर जनवरी तथा फरवरी के महीनो में किया जा सकता है। मेरी गणना के अनुसार उसने ६४३ ई० के अन्त में सिन्ध नदी को पार किया था। उत्खण्ड में उसे सिन्धु नदी मे गुम होने वाली हस्तलिपियो की नवीनतम प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने के लिए पचास दिन तक रुकना पड़ा। तत्पश्चात् कपिसा के राजा के साथ वह लम्गान की ओर चला गया। चूंकि इस यात्रा मे एक मास का समय लग गया था, वह ६४४ ई० के मार्च महीने के मध्य मे अथवा सामान्य समय से तीन मास पूर्व लम्गान पहुँच गया होगा। यह तथ्य दक्षिण दिशा में फलना अथवा बन्नू जिले तक पन्द्रह दिन की उसकी अचानक यात्रा पर प्रकाश डालने के लिये पर्याप्त है। जहाँ से वह काबुल तथा गजनी होता हुआ जुलाई के प्रारम्भ मे कपिसा पहुँचा। यहाँ एक धार्मिक संसद मे भाग लेने के लिए वह पुनः रुका था। अतः ६४४ ई० की जुलाई के मध्य तक अथवा बमियान के मार्ग से भारत मे प्रथम प्रवेश के प्रायः १० वर्ष पश्चात् कपिसा से प्रस्थान नही कर सका होगा। कपिसा से पंजशीर घाटी तथा खावक दर्रे से होते हुए अन्देराब पहुँचा जहाँ वह जुलाई के अन्त तक पहुँचा होगा। बर्फीले दर्रों को सरलता पूर्वक पार करने का अभी समय नहीं था और यही कारण है कि पर्वतीय मार्ग से जाते समय तीर्थ यात्री ने बर्फ से रुको नदियों एवम् बर्फीले मैदानों का उल्लेख किया है। वर्ष के अन्त तक उसने काशगर, यारकन्द तथा कोटाग को पार किया और अन्त मे ६४५ ई० की बसंत ऋतु में वह चीन की पश्चिमी राजधानी मे सकुशल पहुँचा।

ह्वेनसांग के मार्ग का सर्वेक्षण उसको भारतीय यात्राओं के मुहाने विस्तार एवं पूर्णतः को सिद्ध करने में पर्याप्त है और जहाँ तक मुझे ज्ञात है उसकी इन यात्राओ को कोई पार नही कर सका। बुचनान हेमिलटन ने कुछ देश का जो सर्वेक्षण किया था वह अति सूक्ष्म था। परन्तु यह उत्तरी भारत में गङ्गा नदी के निचले प्रान्तों तथा दक्षिण भारत में मैसूर के जिले तक सीमित था।

जेकमान्ट ने सीमित यात्राएँ की थी। परन्तु इस फ्रासिसी विद्वान ने मुख्य रूप से वनस्पति शास्त्र एवम् भूगर्भ शास्त्र एवम् अन्य वैज्ञानिक विषयो पर विचार किया है अतः उसकी भारत यात्रा मे भारत के भूगोल सम्बन्धी हमारी जानकारी ने अधिक सहायता नहीं दी। मेरी अपनी यात्राएँ उत्तर भारत में सिन्धु नदी के समीप पेशावर तथा मुलतान से एरावदी नदी पर रंगून तथा प्रोम तक तथा काश्मीर एवम् लद्दाख से सिन्धु नदी के मुहाने तथा नर्बदा के तट तक देश के सम्पूर्ण भाग तक विस्तृत रही हैं। परन्तु दक्षिण भारत से मैं अनभिज्ञ रहा हूँ तथा पश्चिमी भारत में एलीफेन्टा तथा कन्हारी की प्रसिद्ध कन्दराओं सहित केवल बम्बई से परिचित हूँ परन्तु भारत मे तीस वर्ष मे अधिक काल की अपनी लम्बी सेवा में इसका प्राचीन इतिहास एवम् भूगोल मेरे निजी समय में अध्ययन के मुख्य विषय रहे हैं जबकि अपने निवास के अन्तिम चार

वर्षों में मैंने अपना सम्पूर्ण समय इन्ही विषयों पर व्यतीत किया था क्योंकि मैं इस समय भारत सरकार द्वारा देश की प्राचीन अवशेषों के परीक्षण एवम् उन पर रिपोर्ट लिखने के लिए पुरातत्व विभाग का सर्वेक्षक नियुक्त किया गया था। इस प्रकार देश के भूगोल के अध्ययन हेतु प्राप्त अनुकूल अवसर का मैंने यथासम्भव लाभ उठाया और यद्यपि अभी भी अनेक स्थानो की खोज शेष रह गई है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मै प्राचीन भारत के अनेक सर्वोधिक प्रसिद्ध नगरो की स्थिति को निर्धारित करने में सफल हुआ हूँ। चूँकि अगले पृष्ठों मे इन सभी नगरो का उल्लेख किया जाएगा, यहाँ मैं केवल उन अधिक प्रमुख स्थानो का उल्लेख करूँगा जिनसे स्पष्ट हो सके कि मैंने पूर्ण तैयारी के बिना इस कार्य मे हाथ नही लगाया है।

(१) एओरनास, सिकन्दर महान द्वारा अधिकृत चट्टानो का बना प्रसिद्ध दुर्ग।

(२) तक्षिला, उत्तर पश्चिमी पञ्जाब की राजधानी ।

(३) सांगला, सिकन्दर द्वारा अधिकृत मध्य पञ्जाब का पर्वतीय दुर्ग।

(४) श्रुघना, यमुना नदी पर एक प्रसिद्ध नगर।

(५) अहिछत्र, उत्तरा पांचाल की राजधानी।

(६) बैराट, दिल्ली के दक्षिण मत्स्य की राजधानी।

(७) संकिसा, कन्नौज के समीप, जो स्वर्ग मे बुद्ध के उतरने के स्थान के रूप मे प्रसिद्ध था।

(८) राप्ती नदी पर श्रावस्ती, जो बुद्ध की शिक्षाओ के लिए प्रसिद्ध था।

(९) कौशाम्बी, इलाहाबाद के समीप यमुना तट पर अवस्थित है।

(१०) कवि भवभूति की पद्मावती।

(११) पटना के उत्तर मे वैशाली।

(१२) नालन्दा, सम्पूर्ण भारत का सर्वोधिक प्रसिद्ध बौद्ध मठ।

ए० कनिङ्घम

विषय-सूची

—:o:—

प्राचीन भारतका ऐतिहासिक भूगोल

—:०:—

भारत की सीमाएँ और राज्य

यूनानियो के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल के भारतीयो को अपने देश की वास्तविक आकृति एवं आकार का सही-सही ज्ञान था। स्ट्रैबो के अनुसार सिकन्दर ने "देश की अच्छी जानकारी रखने वाले व्यक्तियो से सम्पूर्ण देश का विवरण लिखवाया था।" और यही विवरण आगे चलकर सीरियाई शासकों के कोषाध्यक्ष जैनोक्लीज ने पैट्रोक्लीज को दे दिया था। स्वयं पैट्रोक्लीज सिल्यूकस-निकेटर तथा एन्तीयोकस सोटर के आधिपत्य मे सीरियाई साम्राज्य के उत्तर पूर्वी क्षत्रपी (प्रान्त) का शासक था और भारत एव पूर्वी प्रान्तो के विषय मे जो सूचना उसने एकत्रित की थी उसे अपनी सत्यता के लिए एराटोस्थनीज एवं स्ट्रैबो की स्वीकृति प्राप्त है। भारत का एक अन्य विवरण अथवा स्थान-स्थान की 'सैनिक यात्राओ' की उस विवरण पुस्तिका से प्राप्त किया गया है जो मेसीडोनिया के अमिन्तास द्वारा तैयार की गई थी। मैगस्थनीज ने जो सिल्यूकस निकेटर के राजदूत के रूप मे वस्तुतः पालीबोथरा (पाटलिपुत्र) गया था, अपनी साक्षी से उस विवरण की पुष्टि की है। इन लेखो के आधार पर एराटोस्थनीज एव अन्य लेखको ने भारत को आकृति मे "आयताकार विषय कोण समभुज क्षेत्र" अथवा असमान चतुर्भुज बताया है जिसके पश्चिम मे सिन्धु नदी, उत्तर मे पर्वत तथा पूर्व एव दक्षिण में समुद्र है। सबसे छोटा भाग पश्चिम था जिसे पैट्रोक्लीज ने ११००० स्टेडिया और एराटोस्थनीज ने १३००० स्टेडिया आँका था। सभी विवरण इस बात पर सहमत है कि सिकन्दर द्वारा बनाए गये पुल (सिन्धु नदी पर) से समुद्र तक सिन्धु नदी का जल मार्ग १०००० स्टेडिया अर्थात् ११४६ मील था और उनमे मतभेद केवल पुल के ऊपरी भाग मे काकेशस अथवा पारोपामिसस के हिमाच्छादित पर्वतों की अनुमानित दूरी के विषय मे है। देश की लम्बाई पश्चिम से पूर्व की ओर आँकी गई थी जिससे सिन्धु नदी से पालीबोथरा (पटना) के क्षेत्र की दूरी राजकीय मार्ग के साथ-साथ शोनी द्वारा आंकी गई थी तथा यह दूरी १०००० स्टेडिया तथा ११४६ मील थी। पालीबोथरा (पटना) से समुद्र तक की दूरी ६००० स्टेडिया अथवा ६८६ मील का अनुमान लगाया गया था। इस प्रकार सिन्धु नदी से गङ्गा के

मुहाने तक की कुल दूरी १६००० स्टेडिया अथवा १८३८ मील बताई गई थी। प्लिनी के अनुसार गङ्गा के मुहाने से पालीबोथरा की दूरी केवल ६३७·५ रोमन मील थी। परन्तु उनके आँकड़े इतने अशुद्ध हैं कि उन पर बहुत कम विश्वास किया जा सकता है अतः मैं इस दूरी को बढ़ाकर ७३७·५ रोमन मील करवाना चाहूँगा। जो ३७८ ब्रिटिश मील के बराबर है। गङ्गा के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक पूर्वी तट की लम्बाई १६००० स्टेडिया अथवा १८३८ मील आँकी गई थी और कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक दक्षिणी (अथवा दक्षिण पश्चिमी) तट की लम्बाई उत्तरी भाग से ३००० स्टेडिया आँकी गई थी।

सिकन्दर के निवेदकों द्वारा दिये गये इन परिभाषों की देश के वास्तविक आकार से सामीप्य समानता विचारणीय है। इससे पता चलता है कि भारतीयों को अपने इतिहास के उस प्रारम्भिक काल मे भी अपनी मातृभूमि के आकार एव विस्तार का यथार्थ ज्ञान था।

पश्चिम मे अटक से ऊपर ओहिन्द से लेकर समुद्र तक सिन्धु नदी का जल मार्ग स्थल से ६५० मील तथा जल मार्ग से १२०० मील है। उत्तर मे सिन्धु नदी के तट से पटना तक की दूरी हमारे सैन्य अभियान ग्रन्थों के अनुसार ११८३ मील है। यह दूरी मेगस्थनीज़ के विवरण पर आधारित स्ट्रैबो द्वारा दी गई सिन्धु से पालीबोथरा (पटना) के राजकीय मार्ग की दूरी से केवल छः मील कम है। इस स्थान से आगे की दूरी गगा नदी मे नावों की यात्रा द्वारा ६००० स्टेडिया अथवा ६८९ ब्रिटिश मील आँकी गई थी जो नदी मार्ग की वास्तविक दूरी से केवल ९ मील अधिक है। गङ्गा के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक मानचित्र पर आँकी गई दूरी १६०० मील है। परन्तु तट के अनेक कटाओ के कारण यह दूरी स्थल मार्ग की दूरी के समान बनाने के लिए १/६ के अनुपात से बढ़ा दी जानी चाहिए। इस प्रकार वास्तविक लम्बाई १८६६ मील हो जाएगी। कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक बताई गई दूरी तथा मानचित्र पर आङ्कत वास्तविक दूरी से लगभग ३००० स्टेडिया अथवा ३५० मील का अन्तर है। सम्भव है यह अन्तर खम्भात तथा कच्छ की दो विशाल खाडियों के गहरे कटाव को अपने अनुमान मे सम्मिलित कर लेने से उत्पन्न हो गया था और यही तथ्य इस विभिन्नता के सम्पूर्ण अथवा अधिकांश भाग को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

यह व्याख्या मैगस्थनीज की गणना से प्रभावित होती प्रतीत होती है जिसने दक्षिणी समुद्र से काकेशस तक की दूरी का अनुमान २०००० स्टेडिया अथवा २२९८ मील लगाया था। मानचित्र पर सीधे माप से कुमारी अन्तरीप से हिन्दूकुश की दूरी लगभग १९५० मील है जो १/६ भाग बढ़ाकर स्थल मार्ग की दूरी में परिवर्तित करने पर २२६५ मील के बराबर अथवा मेगस्थनीज़ की गणना के कुछ ही मीलों के अन्तर

मे पड़ती है। चूँकि यह दूरी स्ट्रैबो द्वारा बताई गई कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक समुद्र तट की दूरी से केवल १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील अधिक है अतः यह निश्चित प्रतीत होता है दक्षिणी (अथवा दक्षिण पश्चिमी) तट की उल्लिखित दूरी मे कोई त्रुटि अवश्य हुई है और चूँकि गङ्गा एवं सिन्धु के मुहाने कुमारी अन्तरीप से समान दूरी पर स्थित है अतः दोनो तटों को समान लम्बाई का बनाकर यह त्रुटि पूरी तरह सुधारी जा सकती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सम्पूर्ण भारत का व्यास ६१००० स्टेडिया होगा और यही सम्भवतः बियोडोरस का तात्पर्य भी था जिसका कथन है कि "भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र पूर्व से पश्चिम २८००० स्टेडिया तथा उत्तर से दक्षिण ३२००० स्टेडिया है। अथवा कुल मिलाकर ६०००० स्टेडिया अर्थात् ६८८४ मील है।

इससे कुछ समय पश्चात् महाभारत में भारत के स्वरूप को समबाहु त्रिकोण बताया गया है जिसे चार समान त्रिकोणों मे विभाजित किया गया था। त्रिकोण का बिन्दु कुमारी अन्तरीप है और इसका आधार हिमालय पर्वत माला से बनता है। इसका परिमान नही दिया गया है और न किसी स्थान का उल्लेख किया गया है परन्तु साथ दिये गये भारत के छोटे मानचित्र के चित्र दो मे गुजरात मे द्वारका एवं पूर्वी तट पर गंजाम की रेखा पर मैंने एक समबाहु त्रिकोण खींचा है। इसी छोटे त्रिकोण को इसके उत्तर पश्चिम, उत्तर पूर्व एव दक्षिण में दोहराने पर हमें एक बड़े समबाहु त्रिकोण म भारत के चारो भाग प्राप्त हो जाते हैं। यदि हम उत्तर पश्चिम मे भारत की सीमा गजनी तक बढ़ा दे और त्रिकोण के दूसरे दो बिन्दु कुमारी अन्तरीप, एवं आसाम मे सदिया नामक स्थान पर रखे तो त्रिकोण का यह स्वरूप देश के सामान्य स्वरूप से बहुत कुछ मिल जाता है। ईसा की प्रथम शताब्दी मे महाभारत लिखे जाने के अनुमानित समय मे सिन्धु नदी के पश्चिम के प्रदेश इन्डोसीथियन जाति के पास थे। अतः इन्हे उचित रूप से भारत की वास्तविक सीमा मे सम्मिलित किया जा सकता है।

भारत का एक अन्य विवरण "नव खण्ड" मे मिलता है जिसका सर्व प्रथम वर्णन ज्योतिष शास्त्र के विद्वान पराशर तथा बाराह मिहिर द्वारा किया गया है। यह विवरण सम्भवतः उनके समय से पूर्व का था जिसे बाद मे अनेकानेक पुराणों के लेखकों ने अपना लिया था। इस प्रबन्ध के अनुसार पांचाल मध्य खण्ड का मुख्य जिला था। मगध पूर्वी खण्ड का, कलिङ्ग दक्षिण पूर्व का, अवन्त दक्षिण का, अनंत दक्षिण पश्चिम का, सिन्धु सौवीर पश्चिम का, हरहौरा उत्तर पश्चिम का, माद्र उत्तर का तथा कौनिन्द उत्तर पूर्व का प्रमुख जिला था। परन्तु बाराह के संक्षेप एव उसके विस्तृत विवरण मे अन्तर है, क्योंकि उसमें अनंत के साथ-साथ सिन्धु सौवीर को भी दक्षिण पश्चिम में दिखाया गया है। यह त्रुटि अवश्य ही इतनी पुरानी है जितनी की ग्यारहवीं शताब्दी।

क्योंकि अबु रिहान ने वाराह के सारांश में दिए गये उसी क्रम को जीवित रखा है जो बृहत संहिता में दिया गया है। इस विस्तृत विवरण की मारकण्डेय पुराण में पुष्टि की गई है जिसमे सिन्धु सौवीर एवं अनंत दोनो को ही पश्चिम मे दिखाया गया है।

मैंने वृहत साहित्य की विस्तृत सूची का ब्रह्माण्ड, मारकण्डेय, विष्णु, वायु तथा मत्स्य पुराण की सूचियो से तुलना की है और मै देखता हूँ कि यद्यपि उसमें विविध दुहराव तथा नामो की हेर-फेर के साथ-साथ अनेकानेक व्याख्या दी गई है फिर भी सभी सूचियाँ वस्तुतः एक समान हैं। उनमें से कुछ भिन्न-भिन्न क्रम मे लिखी गई हैं। उदाहरणार्थ सभी पुराणो मे 'नव खण्डो' का उल्लेख किया गया है और उनके नाम भी दिये गये हैं परन्तु केवल ब्रह्माण्ड और मारकण्डेय पुराणों मे प्रत्येक खण्ड के जिलों के नाम दिये गये है। विष्णु, वायु और मत्स्य पुराण केवल पाँच खण्डो अर्थात् मध्य प्रान्त एव चार मौलिक खण्डा के विस्तृत वर्णन मे महाभारत से सहमत हैं।

महाभारत एव पुराणो मे दिये गये नव खण्डो के नाम वाराह मिहिर के नामो से पूर्णतयः भिन्न हैं परन्तु वह प्रसिद्ध ज्योतिषि भाष्कराचार्य द्वारा दिये गये नामो से मिलते हैं। वह सभी मे एक ही क्रम का अनुमरण करते हैं अर्थातः इन्द्र, कसेरूमत, ताम्रपर्ण, गयास्तिमत, कुमारिका, नागा, सौम्य, वरुण तथा गन्धर्व। इन नामो की पहचान का कोई संकेत नही दिया गया है। परन्तु वह वाराह नव खण्डो मे पूर्णतयः भिन्न क्रम मे दिये गये है जैसे कि इन्द्र पूर्व मे वरुण पश्चिम मे, कुमारिका मध्य मे, जबकि कसेरू अवश्य उत्तर मे होगा क्योकि यह नाम वायु एव ब्रह्माण्ड पुराणो की विस्तृत सूचियों मे मिलता है।

ऐसा प्रतीत हाता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो मे भारत का पाँच बडे प्रान्तो मे विभाजन अत्यधिक सर्व प्रिय था क्योकि यह चीनी तीर्थ यात्रियो द्वारा अपनाया गया था और उनके अन्य सभी चीनी लेखकों ने अपनाया था। विष्णु पुराण के अनुसार मध्य खण्ड पर कुरु एव पाचालो का अधिकार था। पूर्व मे कामरूप अथवा आसाम था, दक्षिण मे पुण्डरा, कलिङ्ग एव मगध थे। पश्चिम मे सौराष्ट्र मुरास, अभिरास, अर्बुद करुश, मालवा, सौवीर तथा सैन्धव थे तथा उत्तर मे हूण, मालवा, साकल, राम, अम्बशता एव पारस्तक थे। टॉलमी के भूगोल मे भारत का वास्तविक आकार पूर्ण रूप से तोड-मोड दिया गया है और कुमारो अन्तरीप पर दोनो तटो के मिलने से जो कोण बनता है भारत को आकृति के इस सर्वाधिक अद्भुत लक्षण को बदल कर एक ही तट बनाया गया है जो सिन्धु के मुहाने को लगभग सीधे गङ्गा के मुहाने तक बनता है। इस त्रुटि का कारण आशिक रूप से ६०० ओलम्पिक स्टेडिया के स्थान पर ५०० स्टेडिया का दोष पूर्ण मूल्याकन था जिसे टालमी ने भूमध्य रेखा सम्बन्धी अश के कारण किया था। आंशिक रूप से यह भी कारण था कि उसने

स्थल मार्ग को मानचित्र के माप मे परिवर्तित करते समय गलती की थी परन्तु त्रुटि का मुख्य कारण जल मार्ग की तुलना में स्थल मार्ग की दूरी असयमित रूप से बढ़ा देना था।

यदि समुद्र से दूरी का माप दण्ड उसी अनुपात मे बढ़ा दिया जाता अथवा उसी मूल्य पर आँका जाता जिस अनुपात अथवा मूल्य पर स्थल मार्ग की दूरी का माप दण्ड बढ़ाया जाता है, उस दशा मे सभी स्थान अपने-अपने अपेक्षित स्थान पर बने रहते। टॉलमी द्वारा स्थल एव जल मार्ग की दूरी के असमान मूल्यांकन के परिणाम स्वरूप सभी स्थान माप दण्ड के अनुसार निश्चित स्थानो से अत्यधिक पूर्व में दिखा दिये गये। जैसे-जैसे यह त्रुटि बढती गई वह उतनी ही दूर होता चला गया। उसका पूर्वी भूगोल इसी कारण दूषित है। इस प्रकार तक्षशिला को जो बारी गाजा के लगभग उत्तर मे है इसके अश पूर्व मे दिखाया गया है और गङ्गा का मुहाना जिसे स्थल माप दण्ड से तक्षशिला तथा पालीबोथरा (पटना) से निश्चित किया गया था उसे सिन्धु नदी के मुहाने मे ३८ अश पूर्व मे दिखाया गया है जबकि वास्तविक अन्तर केवल २० अश है। छोटे मानचित्र के चौथे चित्र मे मैंने टॉलमी के भूगोल की रूप-रेखा दी है। इस चित्र को देखने से हमे तुरन्त पता चलेगा कि यदि गङ्गा एव सिन्धु नदियों के मुहाने की दूरी का अन्तर ३८ अश मे घटाकर २० अश कर दिया जाए तो कुमारी अन्तरीप सुदूर दक्षिण मे चला जाएगा और अपने वास्तविक स्वरूप के समान ही तीव्र कोण बना लेगा। टॉलमी की स्थल दूरी के मूल्यांकन मे त्रुटि की मात्रा के तक्षशिला एव पाली-बोथरा (पटना) के बीच रेखाश दूरी के अन्तर न अच्छी प्रकार दिखाया गया है। प्रथम को उसने १२५ अश और दूसरे को १४३ अश पर दिखाया है। अन्तर केवल १८ अश का है जो कि एक तिहाई अधिक है क्योंकि शाहढेरी ७२°'५२' तथा पटना ८५°१७' मे अन्तर केवल १२°२४' का है। ३/१० के सुधार नियम से जैसा कि सर हेनरी रालिनसन ने प्रस्तावित किया था। टालमी के १८ अश घट कर १२ अश ३६' रह जायगी जो कि रेखांश के सही अन्तर के १२' के अन्दर है।

द्वितीय शताब्दी मे से हूेन राजघराने के सम्राट वूटी (Wuti) के समय मे चीनियो को भारत का ज्ञान था। उस समय इसे यू-आन-तू अथवा यिन-तू अर्थात हिन्दु, शिन्तु अथवा सिन्धु कहा जाता था। कुछ समय पश्चात् इसे थ्यान-तू का नाम दिया गया था। इतिहासकार मतवानलिन ने इसी नाम को अपनाया है। सातवीं शताब्दी मे थाँग राजघराने के राजकीय पत्रों में भारत को पाँच खण्डों-पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण एवं मध्य-खण्ड का देश बताया गया है। इन पाँचो खण्डो को प्रायः पाँच भारतो (Five Inbies) कहा जाता था। मै इस बात का पता नही लगा सका कि पाँच खण्डों की यह प्रथा कब प्रचलित हुई। इसका सर्व प्रथम उल्लेख जो मैं प्राप्त कर

सका वह सन् ४७७ ई० में मिलता है जब पश्चिमी भारत के राजा ने अपना दूत चीन भेजा था और पुनः कुछ ही वर्ष पश्चात् ५०३ ई० मे तथा ५०४ ई० में जबकि उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के राजाओ को उसका अनुसरण करते बताया गया है। भारत पर पूर्ववर्ती चीनी व्याख्याओ मे इन खण्डों का संकेत नही मिलता है। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्तो का वर्णन उनके नाम से किया गया है न कि उनके स्थान से। इस प्रकार हमें ४०८ ई० में कपिल्य के राजा यूई-गई एवं ४५५ ई० में गान्धार के राजा का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय से पूर्व भारत को उसके सर्वोधिक ज्ञात एवं धनी प्रान्त के नाम पर मगध कहा जाता था और कभी-कभी अपने मुख्य निवासियो के नाम के कारण इसे "ब्राह्मणो का राज्य" भी कहा जाता था। प्रथम नाम के लिये मैं ईसा की दूसरी एवं तीसरी शताब्दियो का उल्लेख करूँगा जबकि मगध के शक्तिशाली गुप्त भारत के अधिकाश भाग पर शासन करते थे।

चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने भी सातवी शताब्दी मे उन्ही पाँच महान प्रान्तों के विभाजन को अपनाया था। उसने इन्हे उसी क्रम मे उनके निश्चित स्थानानुसार उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम एवं मध्य का नाम दिया था। उसने देश के स्वरूप की तुलना अर्ध चन्द्र से की है, जिसका व्यास अथवा चौड़ा भाग उत्तर की ओर संकीर्ण भाग दक्षिण की ओर हो। यह स्वरूप टालमी के भूगोल मे दिये गये भारत के आकार के असमान नहीं है परन्तु फा-काई-लिह० तो० के चीनी लेखक ने इससे कही अधिक यथार्थ वर्णन किया है। जिसका कथन है कि "इस देश का आकार दक्षिण की ओर सकुचित और उत्तर की ओर चौड़ा है।" विनोद स्वरूप इसके साथ ही उसने लिखा है "यहाँ के निवासियों के चेहरे भी वैसे हैं जैसा देश का आकार है।

ह्वेनसांग भारत को वृताकार मे ६०,००० 'ली' बताया है जो सत्य के दुगने से भी अधिक है। परन्तु चीनी राजकीय पत्रो में भारत के वृत को केवल ३०,००० ली बताया गया है। यदि चीनी तीर्थ यात्रियो द्वारा प्रायः अपनाई गई मार्ग की दूरी ६ ली बराबर १ मील स्वीकार कर ले तो उपरोक्त ३०,००० ली बहुत ही कम है। यदि, जैसा कि सम्भवतः उस समय प्रचलित था यही माप मानचित्र पर किया जाये तो आठवी शताब्दी मे प्रचलित दर के अनुसार एक ली १०७६ १२ फुट के बराबर होगा, तो ३०,००० ली ६१३० ब्रिटिश मील के बराबर होगे। यह आकडे सिकन्दर के राजकीय पत्रो पर आधारित स्टैबो के परिणामों एव मेगस्थनीज तथा पेट्रोक्लीज की छपी पुस्तको मे दिये आंकडो से केवल ७६४ मील कम है।

भारत के पाँच खण्ड अथवा पाँच इडीज जैसा कि प्रायः चीनी इन्हे पुकारते थे निम्न प्रकार है।

(१) उत्तरी भारत मे काश्मीर एवं आस पास की पहाडियों सहित पञ्जाब,

सिन्ध पार सम्पूर्ण अफगानिस्तान तथा सरस्वती नदी के पश्चिम वर्तमान सिस सतलज प्रान्त सम्मिलित थे।

(२) पश्चिमी भारत में यह भाग थे। सिन्ध, पश्चिमी राजस्थान कच्छ एवं गुजरात तथा माप के समुद्र तट जो नर्वदा नदी के निचले मार्ग पर था।

(३) मध्य प्रान्त में सम्मिलित थे, थानेसर से डेल्टा तक तथा हिमालय से नर्वदा के किनारे तक के प्रान्त।

(४) पूर्वी भारत मे आसाम बङ्गाल गङ्गा का मुहाना सम्बलपुर के साथ-साथ उडीसा एवं गञ्जाम सम्मिलित थे।

(५) दक्षिणी भारत में पश्चिम मे नासिक तथा पूर्व मे गञ्जाम से लेकर, दक्षिण मे कुमारी अन्तरीप तक का सम्पूर्ण पठार था। उसमे बरार तथा तैलङ्गाना के आधुनिक जिले महाराष्ट्र एवं कोकन के साथ-साथ हैदराबाद, मैसूर तथा ट्रांबकोर के अलग प्रान्त भी सम्मिलित थे या यूँ कह सकते है कि इसमे नर्वदा एवं महानदी नदियो के दक्षिण का करीब-करीब सम्पूर्ण पठार था।

यद्यपि भारत को पाँच विशाल प्रान्तो मे विभाजित करने का चीनी प्रबन्ध वाराह मिहिर द्वारा बताये गये एवं पुराणों मे निहित नव खण्डों के प्रसिद्ध स्वदेशी प्रबन्ध की अपेक्षा सरल है तथापि इसमे तनिक संदेह नही कि अपनी व्यवस्था में उन्होंने हिन्दुओं का ही अनुकरण किया था। हिन्दुओं ने अपने देश की तुलना कमल के फूल से की थी जिसका मध्य भाग भारत था तथा उसके चारों ओर की आठो पङ्खुड़ियो उसके अन्य खण्ड थे जिन्हे दिक्सूचक (Compas) के आठ मुख्य बिन्दुओ के नाम पर नाम दिये गये थे। चीनी व्यवस्था मे केवल, मध्य एव प्राथमिक चार खण्डो को लिया गया है और क्योंकि यह विभाजन अधिक सरल है तथा सरलता से याद भी रक्खा जा सकता है अतः मैं अपनी व्याख्या मे इसे अपनाऊँगा।

सातवी शताब्दी मे ह्वेनसांग की यात्रा के समय भारत ८० राज्यो मे विभाजित था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन प्रत्येक राज्यो मे अलग-अलग शासक थे। यद्यपि उनमे अधिकांश शासक कुछ बडे राज्यो के सहायक थे। इस प्रकार उत्तर भारत मे काबुल, जलालाबाद पेशावर, गजनी तथा बन्नू के जिले कपिसा के शासक के आधीन थे जिसकी राजधानी सम्भवतः चारीकार अथवा सिकन्दरिया थी। पञ्जाब में तक्षशिला सिहपुरा, उरस, पूँच तथा राजौरी के पहाडी जिले काश्मीर के राजा के अधीन थे। जब मुलतान तथा शोरकोट सहित सम्पूर्ण समतल भूभाग लाहौर के निकट ताकी अथवा सागला के शासक के अधीन थे। पश्चिमी भारत मे सभी प्रान्त सिन्ध बाल्लभी तथा गुज्जर के राजाओं में बटे हुये थे। मध्य एवं पूर्वी भारत के सभी प्रान्त थानेश्वर के प्रसिद्ध नगर से लेकर गङ्गा के मुहाने तक, हिमालय पर्वत से लेकर नर्मदा तथा महानदी

नदियो के किनारे तक कन्नौज के महान शासक हर्षवर्धन के आधीन था और ये भी अत्यधिक सम्भव है कि ताकी अथवा पञ्जाब के समतल भू भाग का शासक भी इसी प्रकार कन्नौज का आश्रित था जैसा कि हमे चीनी तीर्थ यात्री के इस विवरण से ज्ञात होता है कि हर्षवर्धन अपने राज्य से होकर काशमीर की पहाडियो तक उस देश के राजा को दबाव डालकर बुद्ध का अत्यधिक सम्मानित दाँत देने पर बाध्य करने के उद्देश्य से गया था एव अपने आधीन करने के लिये बढ़ा था जिससे वह (हर्षवर्धन) उसको समर्पित कर दे। दक्षिण भारत मे महाराष्ट्र का राजपूत शासक ही एक मात्र शासक था जिसने सफलता पूर्वक कन्नौज की सेनाओ का सामना किया था। चीनी तीर्थ यात्री के इस कथन की पुष्टि महाराष्ट्र के चालुक्य राजकुमारो के अनेक शिला लेखों से होती है। चालुक्य शासक अपने पूर्वजो द्वारा महान शासक हर्षवर्धन की पराजय का मान करते थे। ये शक्तिशाली शासक (हर्षवर्धन) ३६ अलग-अलग प्रान्तो का सर्वोच्च शासक था। जो विस्तार मे आधे भारत के करीब थे और जिनमे सर्वाधिक धनी एव उपजाऊ प्रान्त भी सम्मिलित थे। उसकी शक्ति की वास्तविकता इस तथ्य मे देखी जा सकती है कि ६४३ ई० मे कम से कम १८ आधीनस्त शासकों मे आधे शासक अपने सत्तारूढ सर्वोच्च शासक उसके पाटलीपुत्र से कन्नौज तक की धार्मिक यात्रा के समय उपस्थित थे। उसके राज्य के विस्तार का स्पष्ट सकेत उन देशा के नामो से मिलता है जिनके विरुद्ध उसने अपनी अन्तिम लडाइयाँ लडी थी अर्थात् उत्तर पश्चिम मे काश्मोर, दक्षिण पश्चिम मे महाराष्ट्र तथा दक्षिण पूर्व मे गञ्जाम। इन सीमाओ के अन्दर ईसवी की सातवी शताब्दी के प्रथम आधे भाग मे वह भारत उपमहाद्वीप का सर्वोच्च शासक था।

दक्षिणी भारत का राज्य निम्न प्रान्तो के ९ शासको मे लगभग समानता से विभाजित था—उत्तर मे महाराष्ट्र तथा कोशल, मध्य मे कलिग आन्ध्र, कोकण तथा धनकाकता तथा दक्षिण में जोरिया, द्रविड तथा मालकूट। इस प्रकार उन ८० राज्यो की सख्या पूरी होती है जिसमे हमारे समय की सातवी शताब्दो मे भारत बटा हुआ था।

———

उत्तरी भारत

प्राकृतिक सीमाएँ

भारत की प्राकृतिक सीमायें हिमालय पर्वत, सिन्धु नदी तथा समुद्र हैं परन्तु पश्चिम में शक्तिशाली राजाओ द्वारा इन सीमाओ का इतनी बार उल्लंघन किया गया है कि सिकन्दर के समय से लेकर निकट भूतकाल के अधिकाश लेखको ने पूर्वी (१) एरियाना (हेरात) अथवा अफगानिस्तान के अधिकांश भाग को भारतीय उप महाद्वीप का एक भाग बताया है। इस प्रकार प्लिनी का कथन है कि "अधिकांश लेखक सिन्धु नदी को पश्चिमी सीमा निर्धारित नही करते। परन्तु गिडरोसी अराकोटी, अरा तथा पारोपामीसाडे के चार क्षत्रपोन (प्रान्त) को भारत की सीमाओ मे जोड दिया इस प्रकार कोफीज (काबुल) नदी को इसकी (भारत) दूरस्त सीमा बताया है।" स्ट्रेबो का कथन है कि "भारतीयो ने सिन्धु तट पर अवस्थित कुछ देशो (कुछ भागो पर) पर अधिकार कर लिया जो पहले इरानियो के आधीन थे। सिकन्दर ने उनसे अरियानों (हेरात) छीन लिया तथा वहां अपना राज्य स्थापित किया परन्तु सेल्यूकस निकेटर ने वैवाहिक सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप यह राज्य सेन्ड्रोकोटस को दे दिया था। उपलक्ष मे उसे ५०० हाथी प्राप्त हुये। उपरोक्त राजकुमार (सेन्ड्रोकोटस) प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य था जिसके पौत्र अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अपने साम्राज्य के दूरस्त भागो मे धर्म प्रचारक भेजे थे। यूनान अथवा यवन देश की राजधानी अलासद्दा अथवा सिकन्दरिया काकाशम ऐसा ही एक दूरस्त स्थान बताया गया था जहां चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग के कथनानुसार अनेक स्तूप पाये गये थे। ये स्तूप सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गये थे। हमे तीसरी तथा चौथी शताब्दी ई० पूर्व में काबुल की घाटी पर भारतीय अधिकार के सर्वाधिक सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त है। इस अधिकार की सम्पूर्णता १०० ई० तक अथवा इससे भी १ वर्ष बाद तक यूनानियो तथा इन्डोसिथियन द्वारा अपनी मुद्राओं पर भारतीय भाषा के प्रयोग से भली-भांति प्रकट होती है। अगली दो या तीन शताब्दियो मे ये भाषा प्राय: लुप्त हो गई थी परन्तु छठीं शताब्दी में श्वेत हूणों की मुद्राओ पर ये पुनः दिखाई देती है। अगली शताब्दी मे (सातवी) चीनी तीर्थ यात्रा

(१) स्ट्रेबो ने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि सिन्धु नदी भारत तथा एरियाना (हेरात) की सीमा थी। एरियाना भारत के पश्चिम में है और उस समय वह ईरानियो के अधिकार में था बाद मे इसके अधिकांश भाग को भारतीयों ने यूनानियों से प्राप्त कर लिया था।

द्वारा प्राप्त सूचनानुसार कपिसा का शासक एक क्षत्रिय अथवा शुद्ध हिन्दू था। सम्पूर्ण दसवीं शताब्दी में काबुल की घाटी पर एक ब्राह्मण राज्य घराने का अधिकार था। जिसकी शक्ति महमूद गजनवी के शासन के अन्त तक पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक सम्पूर्ण काबुल की घाटी सहित पूर्वी अफगानिस्तान की जनसंख्या का अधिकांश भाग भारतीयो का वशज था और वह शुद्ध बौद्ध धर्मावलम्बी थे। गजनवी द्वारा इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेने से स्थानीय क्रूरता के साथ हठ धर्मी को बल मिला तथा उसके शासनकाल मे मूर्तिपूजक बौद्ध धर्मावलम्बियो की हत्या को कर्त्तव्य समझा जाता था। शीघ्र ही मूर्ति पूजको को देश से निष्कासित कर दिया गया और इसके साथ ही कई शताब्दियो तक हठ रहने वाले भारतीय तत्व लुप्त हो गये।

काओफू अथवा अफगानिस्तान

ई० से पूर्व एवं पश्चात् कई शताब्दियो तक सिन्धु के पार उत्तरी भारत (१) के प्रान्तो में जिनमें भारतीय भाषा तथा धर्म सर्वोपरि थे, पश्चिम मे बामियान तथा कन्धार से लेकर दक्षिण मे बोलन दर्रे तक का सम्पूर्ण अफगानिस्तान प्रान्तो मे सम्मिलित यह विशाल राज्य उस समय १० विभिन्न राज्यो अथवा जिलो मे विभाजित था। इन जिलो मे कपिसा मुख्य जिला था। राज्यों मे काबुल तथा गजनी पश्चिम मे लमगान तथा जलालाबाद उत्तर मे स्वात तथा पेशावर पूर्व मे, बोलोर उत्तर पूर्व में तथा बन्नू एव ओपोकिन दक्षिण मे थे। प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण भाग का सामान्य नाम काओफू था जिसे द्वितीय शताब्दी ई० पू० मे इरानियो, भारतीयो तथा किपिन की सू जाति मे विभाजित बताया गया है। इस व्याख्यानुसार कन्धार का दक्षिणी पूर्वी जिला इरानियो के पास था स्वात, पेशावर तथा बन्नू के पूर्वी जिले भारतीयो के आधीन थे तथा उत्तर पश्चिम मे काबुल गजनी, लमघान तथा जलालाबाद के सभी जिले सूं जाति के अधिकार मे थे। काओफू को अपने नाम एवं स्थान की अनुरूपता के कारण काबुल कहा गया है परन्तु इसे केवल राजनैतिक रूप मे स्वीकार किया जा सकता है क्योकि ऐसा करने से काबुल की सीमाओ को पश्चिम मे ईरान तथा पूर्व मे भारत की सीमाओ के भीतर दिखाना पड़ेगा। अतः वह देश जिसे चीनियो ने काओफू कहा है सम्भवतः

---

(१) उत्तर भारत—सस्कृत नाम उत्तरापथः है। वैदिक आर्यों का प्रथम निवास स्थान था। ऋगवेद मे सिन्धु नदी की पश्चमी सहायक नदियो मे गान्धार, सुवस्तु (स्वात) कुभा (यूनानी कोफान, आधुनिक काबुल नदी) गोमती (गोमाक) तथा कुरुम (कुरंम) का उल्लेख किया गया है। इसका उत्तर पश्चिमी भाग इरानी साम्राज्य मे सम्मिलित था (५००-३३१ ई० पू०) सिकन्दर ने इसके अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था और चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसे यूनानियो से छीन लिया था। —अनुवादक

सम्पूर्ण आधुनिक अफगानिस्तान सम्मिलित था। शब्द व्युत्पत्ति विषय के अनुसार यह सम्भव प्रतीत होता है कि दोनों नाम एक ही हैं क्योंकि काओफू, यू ची अथवा तोखारी के पाँच कबीलों में एक कबीले का विशिष्ट नाम था। इस कबीले के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ई० पूर्व की द्वितीय शताब्दी के अंत में उन्होंने उन सभी नगरों को अपने नाम दिये थे जहाँ उन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित किया था। सिकन्दर के इतिहासकारों ने चीनी लेखकों के इस कथन की पुष्टि की है। उन्होंने काबुल का उल्लेख किये बिना आरटो स्थाना नामक नगर का उल्लेख किया है। काबुल नाम का सर्वप्रथम उल्लेख टालमी ने किया है जिसने काबुल अथवा अरटोस्पना को पारोपामीसादे की राजधानी बताया है अतः मेरा निष्कर्ष है कि अरटोस्पना देश की सम्भवतः मूल राजधानी थी। यूनानी शासक के समय सिकन्दर ने राजधानी बदल दी थी। परन्तु इन्डोसोथियन ने इसे पुनः राजधानी बना लिया था। ऐसा लगता है कि सातवीं शताब्दी के पूर्व ही इसे पुनः त्याग दिया गया था क्योंकि उस समय कपिसीन (कापेशी) की राजधानी ओपियान थी।

केपिसीन अथवा औपियान

चीनी तीर्थ यात्री के अनुसार केपिशी अथवा केपिसीन व्यास में ४००० ली अथवा ६६६ मील था। यदि यह आंकड़े किसी अंश तक सही हैं तो केपिशीन में संपूर्ण कफीरीस्तान एवं घोर बन्द तथा पंचशोर की दो विशाल घाटियाँ सम्मिलित रही होगी क्योंकि ये दोनों घाटियाँ व्यास में कुल ३०० मील से अधिक नहीं हैं। पुनः केपिसी को पर्वतों से चारों ओर से घिरा हुआ स्थान बताया गया है जिसके उत्तर में पो, ला, सि, ना नामक हिमाच्छादित पर्वत था तथा अन्य तीनों ओर काली पहाड़ियाँ थीं। पोलोसिना, पारेश पर्वत अथवा "जेन्द एवेस्ता" के ऊपारीसन तथा यूनानियों के पारोपामीसस के अनुरूप है। हिन्दुकुश भी इसी में सम्मिलित था। ह्वेनसांग आगे लिखता है कि राजधानी के उत्तर पश्चिम में केवल २०० ली अथवा लगभग ३३ मील की दूरी पर एक विशाल बर्फीला पर्वत था। जिसके शिखर पर एक झील थी परन्तु अफगानिस्तान के इस भाग से सम्बन्धित प्राप्त कुछ अशुद्ध लेखों में मैं इस झील का उल्लेख प्राप्त नहीं कर सका।

केपिसीन के जिले का वर्णन सर्वप्रथम प्लिनी ने किया है जिसका कथन है कि केपिसा नामक उस प्रदेश की राजधानी को साइरस ने नष्ट कर दिया था। प्लिनी के अनुकर्ता सोलिनस ने भी इस कथन का उल्लेख किया है परन्तु उसने नगर को कफुसा कहा है जिसे डेलफाईन सम्पादकों ने बदल कर केपिसा कर दिया। कुछ समय पश्चात टालमी नगर को पारो, पामी, सादे के अन्तर्गत काबुर अथवा काबुल २३$\frac{१}{२}$° उत्तर में बताया है जो वस्तुतः २° अधिक है। ६३० ई० में बामियान से प्रस्थान के समय चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने पूर्व दिशा में हिमाच्छादित पर्वतों तथा काली पहाड़ियों से होते

हुये केपिशो अथवा कॉपिसीन की राजधानी तक ६०० ली अथवा लगभग १०० मील की यात्रा की थी । १४ वर्ष पश्चात भारत से लौटते समय वह गजनी तथा काबुल लौटता हुआ केपिशी पहुँचा था और उत्तर पूर्व की दिशा में पंजशील घाटी से होता हुआ अन्देराव की ओर चला गया था । इन गाथाओं मे राजधानी को ओपियान अथवा इसके समीप बताया गया है जो हाजिक दर्रे तथा घोरबन्द घाटी के मार्ग से बोमियान से लगभग १०० मील पूर्व में है तथा गजनी एवं काबुल से अन्देराव सीधे मार्ग पर पड़ता है । इसी क्षेत्र का अधिक निश्चित ढंग से सकेत इस तथ्य से मिलता है कि केपिसीन की राजधानी को अन्तिम बार छोड़ते समय चीनी तीर्थ यात्री के साथ वहाँ का शासक क्यू, लूसा, पाग नगर तक गया था । यह नगर उस स्थान से एक योजन अथवा ७ मील उत्तर पूर्व में है जहाँ से सड़क उत्तर की ओर मुड़ जाती है । ये विवरण ओपियान से बेगग्राम के समतल भूमि के उत्तरी छोर तक मार्ग दिशा से ठीक-ठीक मिलता है बेगग्राम चारीकार तथा ओपियान के लगभग ६ या ७ मील पूर्व, उत्तर पूर्व में है । मेरे विचार में बेगराम चीनी तीर्थ यात्री का क्यू, लूसा, पाग अथवा करसावना टालमो का करसाना और प्लिनी का करतना है । यदि राजधानी बेग्राम में थी तो उत्तर पूर्व में ७ मील की यात्रा के बाद राजा का पंजशीर तथा घोरबन्द की संयुक्त नदी के पार चला जाना चाहिये था परन्तु गहराई एवं तीव्रगति के कारण इस नदी को पार करना कठिन है अतः इस बात की सम्भावना नहीं है कि राजा ने केवल विदाई के उद्देश्य से ऐसी यात्रा की होगी । परन्तु ओपियान को राजधानी स्वीकार करने एवं बेग्राम को चीनी तीर्थ यात्री का क्यू-लू-सा-पाग स्वीकार कर लेने से सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायगी । राजा अपने सम्मानित अतिथि के साथ पंचशीर नदी के किनारे तक गया था और वहाँ से वापस लौट गया था । तीर्थयात्री की जीवनी के अनुसार वह स्वयं नदी पार कर उत्तर की ओर यात्रा पर चला गया था ।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सातवी शताब्दी में कोपिशी अथवा कपिसीन की राजधानी अवश्य ही ओपियान अथवा उस के समीप रही होगी । मसोन ने इस स्थान की यात्रा की थी और उसने इसका वर्णन इस प्रकार किया है, विशाल बनावटी टीलों के कारण प्रसिद्ध नगर जहाँ समय-समय पर प्रचुर मात्रा में प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं । एक अन्य स्थान पर टिप्पणी करते हुए उसने लिखा है कि "इस स्थान पर अनेक प्राचीन अवशेष हैं परन्तु वह केवल धार्मिक अवशेष है अतः यह अवशेष जिस नगर का संकेत देते हैं उसे चारीकार के समीप निचली भूमि पर हुपियान नामक स्थान पर देखा जाना चाहिये ।" मसोन ने सम्राट बाबर का अनुसरण करते हुए इस नगर का नाम हुपियान लिखा है । लेफ्टीनेन्ट लीच एवं वाकर के विशाल मानचित्रों में इसका नाम ओपियान है तथा लेफ्टीनेन्ट स्टूअर्ट ने भी लगभग इसी नाम का अनुसरण किया है । इन दोनों (सैनिक अधिकारियों) ने कोहदामन का

निरन्तर निरीक्षण किया है अतः मैं उन्हीं का अनुसरण करूँगा। यह नाम (ओपियान) हिक्काटाईयस एवं स्टीफन्स के ओपियाई तथा ओपियान के यूनानी स्वरूप से और प्लिनी के लेटिन नाम ओपियानम से अच्छी तरह मिलता जुलता है। यह नाम परोपा-मिसस मे सिकन्दरिया के नाम से अत्यन्त घनिष्ठता रखते हैं अतः इस प्रसिद्ध नगर के सर्वाधिक सम्भावित स्थान का निश्चय लेने से इसके भावी अनुसन्धान का मार्ग स्पष्ट हो जायेगा।

सिकन्दर द्वारा हिन्दुकुश के अधोभाग पर स्थापित नगर का वास्तविक स्थान क्या था यह विषय बहुत समय तक विद्वानो के विचार का विषय रहा है। परन्तु काबुल घाटी के अच्छे मानचित्र का अभाव उनकी सफलता में एक गम्भीर बाधा रही है और काकेशस मे स्थापित सिकन्दरिया नगर के प्रसिद्ध नाम को सुरक्षित रखने वाली प्राचीन पुस्तको मे अविवेकी परिवर्तन करने के कारण यह बाधा अलंघनीय बन गई है। इस प्रकार स्टीफन्स ने इसे "भारत के समीप ओपियान मे" बताया है। प्लिनी ने इसे सिकन्दरिया ओपियामोज कहा है जिसे लिपसिक एवं अन्य ग्रन्थो मे बदलकर सिकन्दरिया ओगीडम कर दिया गया है। इस देश के अधिकाश भाग के सम्बन्ध में प्लिनी के अशुद्ध विवरण को यही विशिष्ट नाम दिया जाना चाहिये। प्लिनी ने पिछले अध्याय में इसका अच्छी तरह वर्णन किया है। उसने काकेशान अथवा पारोपामिसस के अधोभाग पर अवस्थित देश किया है तथा वैक्ट्रिया निवासियो को उसने "Owersa montis Paropanisi" कहा है। मेरा विचार है कि वैकट्रियानोरम के अन्तिम आधे भाग मे परिवर्तन करने मे वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगा। 'तत्पश्चात ओपी जिसके नगर सिकन्दरिया का नाम इसको स्थापना करने वाले व्यक्ति के नाम पर रखा गया था।" चाहे यह सशोधन स्वीकार किया जाये अथवा नहीं उपरोक्त लिखे अन्य दो वाक्यो से यह स्पष्ट है कि हिन्दुकुश के अधोभाग पर सिकन्दर द्वारा स्थापित किये गये नगर का नाम भी ओपियान था। इस तथ्य के निश्चित हो जाने पर अब मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूंगा कि सिकन्दर का ओपियान चारीकार के समीप वर्तमान ओपियान अत्यधिक अनुरूप था।

प्लिनी के अनुसार ओपियान मे सिकन्दरिया नाम का नगर आरटस्पना से ५० रोमन मील अथवा ४५.६६ ब्रिटिश मील तथा पेशावर के कुछ मील उत्तर में प्यूकोले-टिस अथवा पुक्कोलायोटीज (पुण्कलावती) से २३७ रोमन मील अथवा २१७.८ ब्रिटिश मील की दूरी पर स्थापित था। मैं अगले प्रान्त के अपने विवरण मे आरटस्पना के स्थान के विषय पर विचार करूंगा यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि मै इसे बालहिसार दुर्ग सहित काबुल के प्राचीन के अनुरूप समझता हूँ। चारीकार काबुल से २७ मील उत्तर में है। प्लिनी द्वारा अंकित माप से एवं उपरोक्त माप मे १६ मील का अन्तर है परन्तु प्लिनी ने स्वयं ही लिखा है कि "कुछ प्रतिलिपियों में भिन्न संख्यायें

दी गई है।" इस प्रकार इससे कुल दूरी घटकर २७½ मील रह जायेगी यह दूरी काबुल तथा ओपियान के बीच की दूरी से सही-सही मिलती है। चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने इन स्थानों के बीच की दूरी का उल्लेख नहीं किया। परन्तु केपिसी की राजधानी हू-लू-शा-हू-ला अथवा पुरुषपुर अर्थात् आधुनिक पेशावर के बीच की दूरी ६००+१००+५००=१२०० ली अथवा ६ और १ के अनुपात से २०० मील है। नगरहारा (जलालाबाद) पुरुषावर के बीच ५०० ली की दूरी अवश्य ही बहुत कम है क्योंकि पूर्ववर्ती तीर्थ यात्री फाहियान ने पाँचवी शताब्दी के आरम्भ में इसे १६ योजन अथवा १ और ४० के अनुपात से ६४० ली से कम नहीं माना था। इससे कुल दूरी १३४० ली अथवा २२१ मील बढ़ जायेगी जो रोमन लेखकों के आकड़ों से केवल ५ मील कम है। चारीकार तथा जलालाबाद के बीच की वास्तविक दूरी निश्चित नहीं की गई है। वाकर के मानचित्र में सीधी रेखा पर इसकी दूरी काबुल तथा जलालाबाद के बीच की दूरी अर्थात् ११५ मील से लगभग १० मील अधिक है अतः इस दूरी का अनुमान १२५ मील लगाया जा सकता है। इस संख्या में यदि पेशावर तथा जलालाबाद के बीच सड़क की लम्बाई १०३ मील की संख्या और जोड़ दी जाये तो चारीकार तथा पेशावर के बीच की कुल दूरी २२८ मील से कम नहीं बनेगी। ये संख्या रोमन तथा चीनी लेखकों द्वारा दिये आकड़ों के बहुत ही निकट है। प्लिनी ने आगे चलकर सिकन्दरिया को काकेशस के एक दम नीचे अवस्थित बताया है। यह स्थान कोहदामन के अधोभाग के उत्तरी छोर पर स्थित ओपियान के स्थान से बिलकुल मिलता-जुलता है। कर्टियस ने भी उसी स्थान का उल्लेख किया है उस सिकन्दरिया को पर्वत के बिलकुल निचले भाग पर अवस्थित बताया है। सिकन्दर ने उस स्थान को बैक्ट्रिया की ओर जाने वाली तीन सड़कों के अलगाव पर अनुकूल स्थान होने के कारण चुना था। यह सड़कें अभी भी अपरिवर्तित है तथा बगराम के समीप "ओपियान नामक स्थान पर अलग हो जाती है।

(१) पञ्जशीर घाटी तथा खावक दर्रे से अन्देराव की ओर जाने वाला उत्तर पूर्वी मार्ग।

(२) कुशान घाटी तथा हिन्दुकुश से होते हुये घोरी की ओर जाने वाला पश्चिमी मार्ग।

(३) घोरबन्द घाटी तथा हाजियाक के दर्रे से बामियान की ओर जाने वाला दक्षिणी पश्चिमी मार्ग।

सिकन्दर ने पहला मार्ग पैमिलडा की सीमा से बैक्ट्रिया में प्रवेश करते समय अपनाया था। भारत पर आक्रमण के समय तिमूर भी इसी मार्ग से आया था तथा आमू नदी के उद्गम स्थान से वापसी के समय लेफ्टीनेन्ट वुड इसी स्थान से होकर आया था। दूसरे मार्ग का अनुसरण सिकन्दर ने बैक्ट्रिया से वापसी पर किया होगा

क्योंकि स्ट्रैबो ने विशेष रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि उसने (सिकन्दर ने) उस मार्ग की अपेक्षा जिस पर वह आगे बढ़ा था—"उन्ही पहाड़ों के ऊपर एक अन्य तथा छोटे मार्ग को अपनाया था। यह निश्चित है कि उसकी वापसी बामियान मार्ग मे नहीं हुई थी क्योकि यह सबसे लम्बा मार्ग है साथ ही साथ यह हिन्दूकुश को पार करने के स्थान पर उसके साथ हो घूम जाता है। सिकन्दर ने हिन्दूकुश को पार किया था। इस मार्ग पर डाक्टर लार्ड तथा ले० वुड ने वर्ष के अन्तिम भाग में प्रयत्न किया था परन्तु बर्फ के कारण वह असफल रहे। तीसरा मार्ग सबसे सरल है तथा उस पर प्रायः गमनागमन रहता है। बामियान पर अधिकार करने के पश्चात चगेज खाँ ने इस मार्ग का अनुसरण किया था। बलख एव बुखारा की साहसिक यात्रा के समय मि० यूर क्राफ्ट तथा मि० बर्न्स ने भी इसी मार्ग को अपनाया था तथा कुशल दर्रे पर अपनी असफलता के पश्चात लार्ड एवं वुड ने उसे आडे तिरछे पार किया था। घुड़सवार तोपखाने ने इस मार्ग को सफलता पूवर्क पार किया था तत्पश्चात १८४० ई० मे स्टुअर्ट ने इस मार्ग का निरीक्षण किया था।

पैरोपैमिसडा के नगरों की टालमी की सूची मे सिकन्दरिया का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु कपिसा के समीप उसके निफन्द को आंशिक परिवर्तन से ओफिन्द पढ़ा जा सकता है। मेरा विचार है कि हम यूनानी राजधानी को उसके इस परिवर्तित स्वरूप मे सम्भवतः पहचान सकते हैं। ओपियान का नाम निश्चित ही इतना पुराना है जितना कि ई० पूर्व की पाचवी शताब्दी। क्योंकि मि० हिकाटायस ने लिखा है कि सिन्धु नदी के ऊपरी जल मार्ग के पश्चिम मे ओपियाई नामक जाति का निवास था। डेरियस के लेखो मे इस नाम का कोई चिन्ह नही है परन्तु इनके स्थान पर हमें थाटागुश नामक जाति का उल्लेख मिलता है। थाटागुश जाति ही हिरोडोतस की सत्ता गुदाय जाति थी और सम्भवतः इन्हे हो चीनी यात्री ह्वेनसाग ने सी-पी-तो-फा-ला-सी कहा है। ये स्थान केपिशी की राजधानी से केवल ४० ली अथवा लगभग ७ मील की दूरी पर था परन्तु दुर्भाग्य से उसकी दिशा नहीं बताई गई है। हमे ज्ञात है कि इससे स्थान के दक्षिण मे ५ मील की दूरी पर अरुण नाम का एक पर्वत था यह लगभग निश्चित है कि ये नगर बेगराम के प्रसिद्ध स्थान पर रहा होगा जहाँ से स्याहकोह का उत्तरा छोर लगभग पूर्व दक्षिण मे ५ अथवा ६ मील की दूरी पर पडता है। स्याहकोह को काला पर्वत तथा चहलदुखतरान अर्थात ४० पुत्रिया भी कहा जाता है। मसोन ने लिखा है कि बेग्राम के जर्जर नगर के दक्षिणी पश्चिमी छोर पर तारङ्ग जार नामक स्थान था। सम्भव है यह तारङ्गजार नाम प्राचीन थाटागुश अथवा सत्तागुदाय का परिवर्तित स्वरूप हो। उपरोक्त कथन सही हो अथवा नही यह निश्चित है कि काबुल नदी की ऊपरी शाखाओ के किनारे बसे लोग दारोयस के थाटागुश तथा हीरोदोतस के सत्तागुदाय लोग थे क्योंकि इन दोनों लेखको ने आस-पास की सभी जातियो का उल्लेख किया है।

करसना, करतना अथवा टीट्रागोनिस

सिकन्दरिया की स्थिति का उल्लेख करते समय प्लिनी ने उसकी भूमिका मे इस नगर को जहाँ काकेशस के अधोभाग पर समान स्थिति मे अवस्थित बताया है, वहाँ इस बात का भी उल्लेख है कि यह नगर सिकन्दरिया के समीप था, अतः पूर्व प्रस्तावित शुद्धियो सहित प्लिनी के लेख का अर्थ इस प्रकार होगा : "हिन्दूकुश के अधोभाग मे करतना नगर खड़ा है जिसे बाद मे टीट्रोगोनिस (वर्गाकार) नाम से पुकारा गया था। यह जिला बैक्ट्रिया के सामने है। तत्पश्चात ओ पी (O P) था जिसके नगर सिकन्दरिया का नाम उसके स्थापित करने वाले व्यक्ति के नाम पर रक्खा गया था।" सोलीनेस ने करतना का कोई उल्लेख नही किया, परन्तु टालमी ने करसना अथवा करनासा नामक एक नगर का उल्लेख किया है जो उसके अनुसार एक बेनाम नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित था। यह नदी कपिसा तथा निफन्दा (ओपियान) की ओर से आती है और नागरा के लगभग विपरीत लोहगढ़ अथवा लोचरना नदी मे मिलती है। मेरे विचार मे ये पञ्जशीर तथा घोरबन्द नदियो की सयुक्त नदी है जो काबुल तथा जलालाबाद के लगभग आधे भाग पर लोहगढ नदी मे मिलती है। मेरे इस कथन की पुष्टि लम्बताय जाति अथवा लम्पक अर्थात लमगान के निवासियो के कथित निवास स्थान से होती है जिन्हे बेनाम नदी के पूर्व मे दिखाया गया है। यह बेनाम नदी कुनार नदी नही हो सकती जैसा कि सम्भवत. भगरा के सामने लोहगढ़ एव कुनार नदियो के सङ्गम से इसका अनुमान लगाया जा सकता था।

ऐसा होने से टालमी के करसना को प्लिनी के करतान के अनुरूप बताया जा सकता है और दोनो लेखको द्वारा दिये गये कुछ तथ्यो को जोडने से हमे इसके वास्तविक स्थान को ढूढने मे सहायता मिल सकती है। प्लिनी के अनुसार यह काकेशस के अधोभाग पर अवस्थित था तथा सिकन्दरिया मे अधिक दूर नही था जबकि टालमी के अनुसार यह नगर पञ्जशीर नदी के दाहिने किनारे पर था। यह तथ्य बेग्राम की ओर सकेत करते है जो कोहिस्तान पहाडियो के ठीक नीचे पजशीर तथा घोरबन्द नदियो की संयुक्त नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित था तथा ओपियान अथवा सिकन्दरिया ओपियाने के छः मील के अन्दर था। मै अन्य ऐसे किसी स्थान को नही जानता जो इन सभी आवश्यक बातो का समुचित उत्तर दे सके अतः यह अत्यधिक सम्भव प्रतीत होता है क बेग्राम ही इस नगर का वास्तविक क्षेत्र था। ओपियान के पडोस मे परवान तथा कुशान महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान है परन्तु वह दोनो घोरबन्द नदी के किनारे पर है। परवान टालमी का बाबरेना है तथा कुशान उसका कपिशा (कैपिशा) है। बेग्राम उस व्याख्या का उत्तर भी देता है जो प्लिनी ने टेट्रागोनस अथवा एक वर्ग के रूप मे करतना के सम्बन्ध मे दो है। क्योकि मसोन ने इन अवशेषो की अपनी व्याख्या

मे विशेषतया "बडे आकार के कुछ टीलो पर ध्यान दिया है तथा बहुत बडे आकार के एक वर्ग का सही-सही उल्लेख किया है।"

यदि मैं बैगरान को चीनी तीर्थ यात्री के क्यू-लू-स-पांग मानने मे ठीक हूँ तो उस स्थान का वास्तविक नाम करसना रहा होगा जैसा कि टालमी ने लिखा है न कि प्लिनी द्वारा उद्धृत करतना। इस नाम का यही स्वरूप यूक्रेटीडेस को अल्प मुद्राओ में मिलता है, जिस पर करीसी नगर अथवा कीसी नगर का उपाक्षन है। इस नगर को मैं राजा मिलिन्द का जन्म स्थान तथा बौद्ध इतिहास का कलसी समझता हूँ। उसी इतिहास के एक अन्य स्थान पर मिलिन्द को यूनानी देश की राजधानी अलासंदा अथवा सिकदरिया मे उत्पन्न हुआ बताया गया है। इसलिये कलसी अवश्य ही या तो सिकन्दरिया का दूसरा नाम होगा अथवा इसी के समीप किसी अन्य स्थान का। अतिम निष्कर्ष बैगराम की स्थिति से मेल खाता है जो कि ओपियान से केवल कुछ ही मील पूर्व मे है। मेरे विचार मे दिल्ली तथा शाहजहाँबाद अथवा लदन तथा वैस्ट मिनिस्टर के दो विभिन्न स्थानो की तरह शुरु मे ओपियान तथा करसना अलग-अलग स्थान रहे होंगे जो धीरे-धीरे बढते हुये एक दूसरे के समीप होते गये, यहाँ तक कि वह लगभग एक ही नगर के रूप में बदल गये। एरियाना (हेरात) के प्रारम्भिक यूनानी शासक इवुदिम, डेमीटियस तथा यूक्रेटोडेस की मुद्राओं पर हमे दोनो नगरों का संयुक्त अक्षर मिलता है परन्तु यूक्रेटोडेस के समय के पश्चात ओपियान का चिन्ह एकदम लुप्त हो गया जबकि करसना का चिन्ह बाद के अधिकाश शासको के साथ बना रहा। इन दोनो नगरो के टकसाल चिन्हो के एक ही युग मे साथ-साथ प्रचलन से यह सिद्ध होता है कि दोनो नगर एक ही समय पर रहे होंगे। जबकि ओपियान के नाम के अचानक लुप्त हो जाने से यह ज्ञात होता है कि यूनानी शासन के अतिम समय मे करसना नगर ने सिकन्दरिया का स्थान ले लिया था।

मेरे विचार में बैगराम के विशिष्ट नाम का अर्थ "नगर" से अधिक नही था। क्योकि यही अर्थ तीन बडी राजधानियो काबुल, जलालाबाद तथा पेशावर के समीपस्थ प्राचीन स्थानो को दिया गया था। मसोन ने तुर्की भाषा के बा (मुख्य) शब्द तथा हिन्दी भाषा के ग्राम अथवा नगर शब्द को जोडने से यह विशिष्ट नाम प्राप्त किया है। इसका अर्थ है मुख्य नगर अथवा राजधानी। परन्तु इस शब्द को सस्कृत के विजय शब्द मे निहित 'वि' अक्षर से प्राप्त करने मे सफलता होगी। विजय शब्द 'वि' परिशिष्ट सहित जय शब्द का दृढ़ स्वरूप है इस प्रकार विग्राम का अर्थ होगा "नगर" अर्थात राजधानी। हिन्दी मे विग्राम से बिग्राम ठीक उसी प्रकार बन गया होगा जैसे विजय शब्द का प्रचलित स्वरूप बिजय।

बेग्राम का समतल उत्तर तथा दक्षिण मे पजशीर एव कोहदामन नदियों से पश्चिम में माहीगीर नहर से और पूर्व मे जलन्धर की भूमि से दो नदियो के बीच घिरा हुआ है। इसकी लम्बाई माहीगीर नहर पर अवस्थित "बयान" नगर से कुलधा तक लगभग ८ मील है तथा इसकी चौड़ाई किला बुलन्द से युनबाशी तक ४ मील है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र से अनेक अवशेष प्राप्त हुये है जिनमे छोटी छोटी मूर्तियाँ मुद्रायें, मुहरे, मालायें, अगूठियां, तीर की नोकें तथा चीनी के बर्तनो के टुकडे सम्मिलित हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि यह समतल किसी समय एक बडे नगर का स्थान था। वहाँ के निवासियो की परम्परा के अनुसार बेग्राम एक यूनानी नगर था जो एक प्राकृतिक आपत्ति मे नष्ट हो गया था। मसोन को इस परम्परा की सत्यता पर सदेह है। वहां मिले अनेकानेक मुद्राओ के कारण उसका अनुमान है कि यह नगर मुसलमानी आक्रमण के कुछ शताब्दियो बाद तक जीवित था। मेरे विचार मे मसोन का कथन सही है तथा देश पर मुसलमानों की विजय के पश्चात नगर के पतन का कारण राजधानी को गजनी ले जाने के परिणाम स्वरूप इस नगर के निवासियो का धीरे-धीरे नगर त्याग ही था। काबुल के अतिम हिन्दू शासक की मुद्राये प्रचुर मात्रा मे प्राप्त है परन्तु अतिम गजनवी शासकों की मुद्राये कम प्रचुर है जबकि उत्तराधिकारी गोरी राज्य घराने के प्रारम्भिक शासको के केवल कुछ नमूने अभी तक प्राप्त किये जा सके है। इन स्पष्ट तथ्यों के आधार पर मेरा अनुमान है कि दसवी शताब्दी के अन्त मे सबुक्तदीन द्वारा काबुल पर मुसलमानी अधिकार था। नगर धीरे-धीरे नष्ट होने लगा था और १३ वी शताब्दी के आरम्भ मे इसे अतिम रूप से त्याग दिया गया था। यह वही समय है जब चगेज खां ने इन प्रान्तो पर आक्रमण किया था और इस बात की अत्यधिक सम्भावना है (मसोन ने ऐसा ही विचार प्रकट किया है) कि उसी क्रूर एव बर्बर व्यक्ति ने बग्राम को अतिम रूप से नष्ट कर दिया था।

केपिसीन के अन्य नगर

मे केपिसीन के उस विवरण को प्राचीन लेखको द्वारा इसी जिले के कुछ अन्य नगरो की व्याख्या पर टिप्पणी के साथ समाप्त करूँगा। प्लिनी ने एक नगर को कदरुसी कहा है और सोलनस न लेश मात्र परिवर्तन से इसे कदरुसिया कहा है। दोनों लेखको ने नगर का कारणम के ममोस बताया है। इस व्याख्या के साथ सोलिनस ने यह और जोड़ दिया है कि यह नगर सिकन्दरिया के समीप था। इन दो भिन्न-भिन्न इशारों पर चलते हुये मैं कदरुसी नगर को कोरातास के प्राचीन स्थान के अनुरूप सकमता हूँ जिसे मसोन ने कोहिस्तान की पहाडियो के नीचे बेग्राम से एक मील उत्तर पूर्व तथा पजशीर नदी के उत्तरी किनारे पर बताया है। इस स्थान पर प्राचीन नगर के अवशेष के रूप मे चीनी के बतनो के टुकडो मे ढके टीले है। इन टीलो मे प्रायः प्राचीन मुद्राये प्राप्त हुआ करती है। पहाडी के समीप कुछ इमारतो के अवशेष भी हैं जिन्हे लोग काफिर कोट कहा

करते हैं। टीकाकारों ने साल्निनास पर प्लिनी को गलत समझने का आरोप लगाया है। उनका कथन है कि प्लिनी का कदरुसी वस्तुतः एक जाति का नाम था तथा नगर का नाम सिकन्दरिया था परन्तु फिलिमन हालैण्ड ने इस विवरण का भिन्न अर्थ लगाया है जिसके अनुसार "काकेशस की पहाड़ियों के ऊपर कदरुसी नामक नगर खड़ा था जिसका निर्माण ठीक उसी प्रकार सिकन्दर ने करवाया था। सामान्य रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानियों ने अपने सम्पर्क में आने वाली विभिन्न जातियों को उनके मुख्य नगर के नाम से पुकारा था। इस प्रकार हमे काबुर तथा काबलोटाय, द्रेपसा तथा देपसिय तक्षशिला तथा तक्षशिलो, कसपीरा तथा कसपीराये का उल्लेख मिलता है। अतः मेरा अनुमान है कि सम्भवतः कदरुसिया नाम का एक नगर रहा होगा जिसके निवासियों को कदरुसी कहा जाता था। कोरातास के ध्वस्त टीलो के स्थान एवं प्लिनी के कदरुसी मे एकरूपता होने से यह अनुमान विश्वास मे बदल जाता है। टालमी ने अन्य लोगों एवं नगरो के नामों का उल्लेख किया है परन्तु उनमे से बहुत कम अब पहचाने जा सकते है क्योंकि हमारे पास उनके नामो के अतिरिक्त सहायतार्थ अन्य कुछ भी नहीं है। परसिया अथवा परसियाना नगरो एवं वहा की पारसी जाति मेरे विचार मे पञ्चीर अथवा पजशीर घाटी की पाशाई जाति है। वास्तविक नाम पंचीर है क्योंकि अरब सदा भारतीय च के स्थान पर ज लिखा करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि चार्ल्स लीच तथा अन्य लेखको द्वारा अपनाया पजशीर नाम च शब्द को अफगान उच्चारण मे त एव स का संयुक्त अक्षर पढने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार पजशीर अफगान उच्चारण मे पतसीर बन जायेगा। प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियो ने पञ्चीर नामक नगर का उल्लेख किया है तथा कुदुस से परवान जाते समय इब्नबतूता ने पाशाई नामक एक पर्वत पार किया था।

अन्य जातियो ने एरिस्टोफिली जो कि शुद्ध यूनानी नाम है तथा एम्बातोय नामक जातियाँ थी जिनके सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही है। वह नगर जिनका उल्लेख नही किया गया है इस प्रकार है—उत्तर मे अर्तों आर्ता तथा बरजाउरा तथा दक्षिण मे दरस्तोका एवं नाऊलिबिस थे। हो सकता है बरजाउरा नाम का नगर पंजशीर घाटी का एक बडा नगर बजारक रहा हो इसी प्रकार अंतिम नगर घोरबन्द का नीलाब तथा तृतीय नगर सम्भवतः कोहदामन की घाटी का एक नगर था।

कोफीन अथवा काबुल

काबुल जिले का उल्लेख सर्व प्रथम टालमी ने किया है जिससे वहाँ के निवासियो को काबोलिटाय तथा उनकी राजधानी को काबुर नाम दिया गया है। काबुर को आरटोस्पना भी कहा गया है। दूसरा नाम केवल स्ट्रैबो तथा प्लिनी के लेखो में मिलता है। इन लेखों में सिकन्दर के भूमि निरीक्षकों डायोगनटीज तथा बैटन द्वारा अंकित अराकोसिया की राजधानी से इसकी दूरी का उल्लेख है। प्लिनी की कुछ पुस्तकों में

इसका नाम अर्थासपनम लिखा गया है जो एच० एच० विलसन द्वारा प्रस्तावित उल्लेख के थोडे परिवर्तन के बाद आर्थस्तान बन जाता और सम्भवतः यह संस्कृत का उर्ध-स्थान अर्थात उच्च स्थान अथवा उन्नत नगर है। चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसांग द्वारा काबुल जिले का भी यही नाम दिया गया है परन्तु मुझे सन्देह है कि प्रान्तों एवं राजधानी के नामों में दुर्घटनावश आवश्यक अदला-बदली हुई है। (१) गजनी छोड़ने पर तीर्थयात्री ने उत्तर की ओर फो-ली-शी-सा ताग-ना तक जिसकी राजधानी हू-फि-ना थी, तीन मील की यात्रा की थी। दो भिन्न रास्तों मे काबुल तथा गजनी के बीच की दूरी ८१ तथा ८८½ मील आंकी गई थी। इस कारण इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि काबुल ही वह स्थान था जहां तीर्थ यात्री गया था। एक अन्य स्थान पर राजधानी को बामियान से ७०० ली अथवा ११६ मील बताया गया है। यह अनुमान सबसे छोटे रास्ते में काबुल एवं बामियान की वास्तविक दूरी १०० मील से बहुत कुछ मिलता है।

चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये राजधानी के नाम को एम० विवीन डो सेन्ट मार्टिन ने बदलकर वर्दस्थान कर दिया है तथा उस वर्दक जाति के जिले के अनुरूप बताया है जबकि प्रान्त का नाम हुपियान अथवा ओपियान के अनुरूप माना गया है। परन्तु वर्दक घाटी जिसे वर्दक जाति से अपना नाम मिला है काबुल के दक्षिण में कुछ ही दूरी पर गजनी के उत्तर में ४० मील की दूरी पर लाहगढ नदी के ऊपरी जल मार्ग पर स्थित है जब कि हूपियान अथवा ओपियान काबुल से २७ मील उत्तर में तथा वर्दक में ७० मील में भी अधिक दूरी पर है। मेरा निजी अनुसंधान मुझे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि यह दोनों नाम हूपियान अथवा ओपियान काबुल के आस-पास के भू-भाग का संकेत देते है।

प्रोफेसर लासेन ने लिखा है कि ह्वेनसांग ने एक बार भी किपिन का उल्लेख नहीं किया जबकि अन्य चीनी लेखकों ने बारम्बार उसका उल्लेख किया है। रेमूसत ने सर्व प्रथम यह प्रस्ताव किया था कि किपिन काफाज अथवा काबुल नदी पर स्थित एक प्रदेश था और इस प्रस्ताव को उसी समय से प्राचीन भारत के इतिहास के सभी लेखकों ने सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया गया है। इन्हीं लेखकों द्वारा अब यह जिला कोफान के नाम से पुकारा जाता है। किपिन नाम के इसी स्वरूप को मैं ह्वेनसांग का हू-फि-ना मानने का प्रस्ताव करता हूँ क्योंकि इस बात की बहुत क्षीण सम्भावना प्रतीत होती है कि अपने समय का यह प्रसिद्ध प्रान्त उसकी जानकारी के बाहर रह

(१) सर कनिंघम का सन्देह उचित नहीं है क्योंकि चीनियों ने किपिन का काओ-फू अथवा काबुल से भिन्न बतलाया है। सातवीं शताब्दी में किपिन का अर्थ कापिसा था हन तथा वी (wei) राजघरानों के समय प्रायः काश्मीर को किपिन कहा जाता था। फो-ली-सा-ताग-न संस्कृत का प्रतिष्ठान प्रतीत होता है। —अनुवादक

गया हो जबकि हम जानते हैं कि वह अवश्य ही यहाँ से होकर गया होगा और यह नाम उसके समय से एक शताब्दी बाद तक प्रयोग मे लाया जाता था। मैं पहले ही यह सन्देह व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रान्तो एव इनकी राजधानियो के नामो मे कुछ अदला-बदली हुई होगी। यह सन्देह उस समय और भी पक्का हो जाता है जब सभी कठिनाइयां दूर हो जाती है एव दो नामो की साधारण अदला-बदली से सर्वोधिक अनुरूपता प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार हू-फि-ना काबुल नदी पर स्थित कोफीन अथवा किपिन का प्रतिनिधित्व करेगा तथा फो-ली-शी-सा-तांग-न-अथवा उर्धस्थान ओरबस्तान को प्रदर्शित करेगा, जैसा कि हम अनेक विश्वस्त लेखको की कृतियों से जानते है कि यह प्रान्त की वास्तविक राजधानी थी। मै यह भी कहना चाहूँगा कि हू० फो० ना० चोनो शब्द कोफीन की शुद्ध नकल है जबकि हूपियान शब्द की यह बहुत ही अशुद्ध नकल होगी क्योंकि इसमे एक अक्षर पूर्णतयः छूट जायेगा तथा साधारण 'प' के स्थान पर एक श्वास का उच्चारण मात्र रह जायेगा। हूपियान की शुद्ध नकल हू-पि-यान-ना होगी। मिस्टर विवीन डी० सैन्ट मार्टिन को उर्ध स्थान नाम पर आपत्ति है। उसके कथनानुसार यह बिना उद्देश्य के अनुमान योग शब्द व्युत्पत्ति है। परन्तु मैं इस बात पर पूर्ण सन्तुष्ट हूँ कि यह विवरण निम्न कारणो से सही है। एक आरटोस्पना नाम दारोपमासाडे तक ही सीमित नही है परन्तु इसका उल्लेख करमानिया तथा परसिस मे भी मिलता है। अतः वर्दक जाति से इसका सम्बन्ध नही बताया जा सकता। अवश्य ही यह अपनी स्थिति को दर्शाने वाला एक सामान्य नाम होगा और इसकी यह आवश्यकता उर्ध स्थान मे सतोषजनक ढङ्ग से पूरी हो जाती है जिसका अर्थ है उच्च स्थान और या सभवतः यह नाम किसी पहाडी दुर्ग को दर्शाने के लिये चुना गया था। दूसरे आरटोस्पना को बदलकर पोरटोस्पना कर दिया गया था। यह तथ्य उस निर्देशक अर्थ की पुष्टि करता है। मैंने इस शब्द को दिया है क्योकि पश्तो मे पोश्टा का अर्थ ऊँचा होता है और इसमे सन्देह नही कि जन साधारण ने सस्कृत के 'उर्ध' शब्द की अपेक्षा प्राय इस शब्द को अपनाया था।

आरटोस्पना की स्थिति को मैं "उच्च दुर्ग अथवा बालाहिसार सहित काबुल के अनुरूप बताऊँगा। मैं बालाहिसार को आरटोस्पना अथवा उध स्थान का फारसी अनुवाद मात्र समझता हूँ। मेसीडोनिया की सेनाओ के अधिकार से पूर्व यह देश की पुरानी राजधानी थी तथा दसवी शताब्दी तक यह विश्वास किया जाता था कि कोई भी शासक उस समय तक शासन करने का सुयोग्य अधिकारी नही बनता जब तक उसका अभिषेक काबुल मे न हो। हेकाटाइयस ने भी ओपियाई मे एक राजकीय नगर का उल्लेख किया है परन्तु हमारे पास इसके नाम अथवा स्थान निश्चित करने के लिये आकडे उपलब्ध नही हैं। यह सर्वोधिक सम्भावित प्रतीत होता है कि अन्य किसी स्थान की जानकारी के अभाव मे काबुल ही यह स्थान राजधानी का राजकीय नगर रहा

होगा परन्तु इस स्थिति मे काबुल को ओपियाई की सीमाओ मे सम्मिलित होना चाहिए था।

आश्चर्य है कि सिकन्दर के इतिहास मे काबुल का उल्लेख नही मिलता, क्योकि अराकोसिया से सिकन्द्रिया के स्थान पर जाते समय वह अवश्य ही इस नगर से होकर गया होगा। फिर भी मेरे विचार मे सम्भवतः यह निकाइया (१) नगर का जो बैक्ट्रिया के वापसी पर नये नगर के सिकन्दर का प्रथम पड़ाव था। नोनस ने निकाइया को एक झील के किनारे स्थित एक पाषाण नगर कहा है। झील एक महत्वपूर्ण स्थान कहा जाता है जो उत्तरी भाग मे काबुल तथा काश्मीर तक विशिष्ठ स्थान रखती है। इसी स्थान पर भारतीयो पर विजय के कारण नगर को इडोफोन अथवा "भारतीयो का हत्यारा" भी कहा जाता था। मेरा अनुमान है कि इस नाम के कारण ही नोनस ने सम्भवतः इस प्रचलित अर्थ को सुना था जो हिन्दूकुश अथवा "हिन्दुओ का हत्यारा" के नाम से सम्बन्धित बताया जाता था और उसने तुरन्त ही इसे डायोनीसियस द्वारा भारतीय विजयो की पुष्टि के रूप में स्वीकार कर लिया था।

इस प्रान्त को पूर्व से पश्चिम लम्बाई मे ३३३ मील तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई मे १६६ मील बताया गया है। यह सम्भव है कि इस कथन मे प्रान्त के प्रारम्भिक विस्तार का संकेत मिले, जबकि इसका शासक गजनी एव कन्धार सहित पश्चिमी अफगानिस्तान का सर्वोच्च शासक था। इसकी दूरस्थ लम्बाई, हेलमन्द नदी के मुहाने से लेकर जगदालक दर्रे तक लगभग १५० मील है तथा दूरस्थ चौडाई इस्तालिफ से लेकर लोहगढ़ के मुहाने तक ७० मील से अधिक नही थी।

कोफीज का नाम उतना पुराना है जितना कि वैदिक काल जिसमे कुभा नदी को सिन्धु की सहायक नदी बताया गया है। यह आर्य शब्द नही है अतः मेरा अनुमान है कि आर्यों के अधिकार मे पूर्व अथवा कम से कम २४०० ई० पू० मे यह नाम काबुल नदी को दिया गया था। उच्चकोटि के लेखको ने सिन्धु के पश्चिम मे खोइज, कोफाज, खोअसपीज नदियो का उल्लेख किया है तथा वर्तमान समय मे हम पश्चिम मे कुनार कुरम तथा गोमाल नदियो का तथा सिन्ध के पूर्व मे कुनीहार नदी का उल्लेख मिलता है। यह सभी नाम सीथियन शब्द 'कू' अर्थात पानी से लिय गये है। यह असरीयाई भाषा के 'हू' तुर्की के 'सू' तथा तिब्बती भाषा के 'चू' जिन सभी का अर्थ जल है का

(१) निकाइया—सर थामस होलडिच ने सर कनिंघम का समर्थन किया है। डा० वी० स्मिथ के अनुसार यह नगर जलालाबाद के स्थान पर अवस्थित था। यदि हम एरियान का अनुसरण करे तो इन लेखको का तर्क असङ्गत प्रतीत होता है क्योकि निकाइया नगर काबुल नदी पर नही था। सिकन्दर इस नगर से काबुल की ओर गया था।

—अनुवादक

कण्ठस्त वर्ण स्वरूप है। अतः कोफीन के जिले का नाम अवश्य ही इसमें बहने वाली नदी के नाम पर पड़ा होगा जैसे सिन्धु से सिन्ध, मारगस से मारगियाना, अरियस से अरिया, अरकोटस से अरकोसिया तथा इसी प्रकार अनेकानेक नाम मिलते हैं। सिकदर के इतिहासकारो ने कोफीन नगर का उल्लेख नही किया यद्यपि उन सभी ने कोफीज नदी का उल्लेख किया है।

टालमी के 'भूगाल' मे अरगुड अथवा अरगण्डी तथा लोचरन अथवा लोहगढ़ नगरो के साथ काबुर तथा काबोलिनी सभी नगरों को पारोपामासाडे की सीमाओं मे काबुल नदी के साथ-साथ दिखाया गया है। नदी के ऊपरी जल मार्ग पर उसने बगरद नामक नगर दिखाया है जो अपने स्थान तथा नाम की अति समीपता के कारण वर्दक घाटी से मिलता जुलता है। दोनो नामो के सभी अक्षर समान है और यदि यूनानी नाम बगरद के अन्तिम भाग को उच्चारण मे थोड़ा परिवर्तन कर दिया जाये तो यह आधुनिक नाम भी मिल जायेगा। बगरद को बरदग पढने के ठोस प्रमाण उपलब्ध है। एलफिन्स्टन के अनुसार अफगानिस्तान की लोहगढ घाटी के अधिकाश भाग पर वर्दक जाति का अधिकार था। मसोन ने इसकी पुष्टि की है जो वर्दक घाटी मे दो बार गया था। विज जिसने गजनी से काबुल जाते समय इस घाटी का पार किया था, इसी बात की पुष्टि करता है। नामो की इस अनुरूपता पर एक मात्र आपत्ति जिसका मुझे आभास होता है वह यह सम्भावना है कि बगरद वइकरीत का यूनानी स्वरूप था।" जैन्द अवस्ता मे इसे सातवा देश कहा गया है। जिसे आर्य जाति ने सफलता पूर्वक अपने अधिकार मे ले लिया था। एक ओर बैक्ट्रिया पसरिया तथा अराकोसिया तथा दूसरी ओर भारत के बीच स्थान के कारण वइकरीत को प्रायः काबुल नदी के अनुरूप बताया गया है। पारसियों का अपना भी यही मत है साथ ही साथ वइकरीत को दाजाक का घर अथवा स्थान बताया गया है। काबुल(१) जोहाक का देश स्वीकार किया जाता है अतः तथ्य से वइक्रीत एव काबुल की समानता की पुष्टि होती है। यदि वर्दक जाति किसी भी समय शासक जाति थी तो मैं यह स्वीकार कर सकता था कि वाईक्रीत नाम सम्भवतः उन्ही से लिया गया था परन्तु उनके इतिहास से पूर्ण अनभिज्ञ होने के कारण मेरे विचार मे दोनो नामो की एकरूपता पर विचार करना ही प्रर्याप्त होगा।

---

(१) काबुल जिले मे प्राप्त प्राचीन काल के अवशेषो मे बामियान को चट्टानो मे खोदी गई उच्चकोटि की कला मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इनमे सबसे बडी मूर्ति १८० फुट ऊँची है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बौद्ध काल मे बनाई गई थी। आस-पास गुफाओं से किसी बौद्ध मठ का संकेत मिलता था। चट्टान के समोप ही बौद्ध स्तूप के समान एक टीला है। —अनुवादक

सातवी शताब्दी मे कोफीन का शासक एक तुर्क था तथा देश की भाषा गजनी निवासियो की भाषा से भिन्न थी। ह्वेनसाग लिखता है कि कापीसीन के अक्षर तुर्की के अनुरूप थे परन्तु भाषा तुर्की नही थी। चूंकि वहां का शासक एक भारतीय था अतः यह अनुमान उचित होगा कि वहाँ का भाषा भारतीय भाषा थी। समान कारणो मे ही यह अटकल लगाई जा सकती है कि कोफीन की भाषा तुर्की की ही प्रकृत भाषा थी क्योकि वहाँ का शासक एक तुर्की था।

अराकोसिया अथवा गजनी

चीनी तार्थ यात्री ने साऊ-कू-ता प्रदेश के सम्बन्ध मे यह लिखा है कि यह प्रदेश हूफीना अथवा कोफीन मे ८३ मील दक्षिण मे और फलना अथवा बन्नू के उत्तर पश्चिम मे है। लो मो-इन-तू नदी की घाटी को हेलमन्द के चीनी अनुवाद मे 'हो' अक्षर जोड देने मे हेलमन्द के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। इस राज्य को व्यास मे १५६८ मील बताया गया है और यह अनुमान सत्य से दूर नहीं है। क्योकि सम्भव है कि इसमे कन्धार का छोड अफगानिस्तान का सम्पूर्ण दक्षिण पश्चिम भाग सम्मिलित था। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध के भिक्षा पात्र की कथा मे कन्धार उस समय ईरान के अधिकार मे था।

इस जिले की दो राजधानियाँ थी जिन्हे हो-सी-ना तथा हो-सा-लो कहा जाता था। प्रथम नाम को मिस्टर एम० डा० सन्ट मार्टिन ने गजनी के अनुरूप बताया है और यह काफी सन्तोष जनक है परन्तु दूसरा प्रस्ताव कि दूसरे नाम का हजारा से सम्बन्धित किया जाये मेरे विचार मे अत्यधिक सन्देहास्पद है। हजारा एक जिले का नाम है न कि एक नगर का और यह भी कहा जाता है देश के इस भाग का यह नाम चगेज खाँ के समय से पुराना नही है। अतः मै इसे गुजार अथवा गुजारिस्तान के अनुरूप समझूँगा। जो आधुनिक हेलमन्द का प्रमुख नगर है। मै इसे टालमी के आल्जो के अनुरूप भी मानता हूँ जिसे उसने अराकासिया के उत्तर पश्चिम मे बताया है अथवा जो उसी स्थान पर है जहाँ गुजारिस्तान।

साऊकुता नाम की व्याख्या अभी शेष है। उपरोक्त अनुरूपताओ से पता चलता है कि यह प्राचीन लेखको के अराकोसिया और अरब भूगाल शास्त्रियो के आराखज अथवा राखज से मिलता जुलता है। एरियान ने अपनी पुस्तक 'पेरिप्लस आफ दि एरीथियन' मे इस नाम के इसी स्वरूप का उल्लेख किया है। अत. यह असगत नही लगता कि ह्वेनसाग के समय से पूर्व एव बाद मे इस नाम का प्रथम अक्षर त्याग दिया गया था। इसका मूलस्वरुप सस्कृत का सरस्वती था जो जेन्द मे हरक्वेती बन गया। इन दोनो नामो मे एव इनके यूनानी स्वरूप मे अन्तिम दो अक्षर चीनी शब्द साऊकुता मे मिलते हैं इसलिये प्रथम चीनी अक्षर साऊ 'ह' के दूसरे स्वरूपो मे मिलता

बुलाजा होगा। यह परिवर्तन सम्भवतः तुर्की भाषा की उस विशेषता से स्पष्ट किया जा सकता है, जिसमे द शब्द को कोमल ज अथवा श मे प्रायः बदल दिया जाता है (जैसे तुर्की शब्द देगिज "सी" तथा ओकुज "ओकस" हगरी के तेजर एव ओकुर शब्दो के समान है)। इडोसीथियन पर भी हम कनिष्क नाम को हयूविष्क तथा कुशन नाम को कनीरकी, होवरकी तथा यूनानी मे कोरना मे परिवर्तित देखते हैं। अत. यह सम्भव प्रतीत होता है कि चीनी नकल का प्रथम अक्षर साऊ ही भारतीय र का विशिष्ट तुर्की उच्चारण रहा हो जो ई० काल के प्रारम्भ मे तुर्की के तोचारी कबीले द्वारा देश पर अधिकार हो जाने पर स्वभावत प्रयोग मे लाया जाने लगा था।

सातवी शताब्दी मे गजनी का शासक एक बौद्ध था जो पूर्वजो को एक लम्बी सूची मे वशक्रम से था। लागो की लिपि एव भाषा दोनो ही अन्य देशों की लिपि एव भाषाओ म भिन्न बताई जाती थी। और चूंकि ह्वेनसांग भारतीय एव तुर्की दोनो भाषाओं मे परिचित था अतः मेरा अनुमान है कि गजनी निवासियों की बोल चाल की भाषा सम्भवतः पश्तो थी। यदि ऐसा है तो यह निवासी अफगान रहे होगे। परन्तु दुर्भाग्य वश इस रोचक विषय का निश्चित करने के लिये अन्य कोई साधन नही है, हाँ गजनी के दक्षिण पूर्व ओ-पो-कीन नामक स्थान को अफगानो मे सम्बन्धित किया जा सकता है। इस विषय पर हम बाद मे विचार करेगे।

हेलमन्द पर गुजारिस्तान के बारे मे मैं अधिक सूचना नही दे सकता क्योकि अभी तक वहा कोई यूरोपीय नहो गया है। गजनी इतना प्रसिद्ध है कि उसे किसी प्रकार के उल्लेख की आवश्यकता नही है परन्तु मै इतना अवश्य कहूँगा कि सातवी शताब्दी मे यह अवश्य ही अत्यधिक सम्पन्न स्थिति मे रहा होगा क्योकि ह्वेनसांग ने इसके व्यास का अनुमान ५ माल लगाया है। आजकल के दिनो मे छीवार म घिरे नगर का व्यास एक मील और एक चौथाई से अधिक नहीं होता। बिग्नी ने इसे असमान पचभुज बताया है जिसके किनारे लम्बाई मे २०० से ४०० गज थे जो अनेकानेक बुर्जो से शक्तिशाली बना दिये गये थे। वह आगे लिखता है कि "अफगान गजनी को दीवारो एव दुर्ग बन्दी की शक्ति का घमण्ड किया करते थे। पूर्व मे गजनी सदैव शक्ति एव सुरक्षा का स्थान माना जाता था। और इसी कारण इसे गाजा नाम भी मिला था जो "कोष" का एक पुराना फारसी नाम है। इसका उल्लेख नोवस (जो लगभग ५०० ई० मे जीवित था) के डायोनिसियाक की कुछ गूढ पक्तियो मे तथा डायोगोनिस (जो ३०० ई० के बाद तक जिन्दा नही था) की बसारिका' म भी प्राप्त होता है। दोनो ने उसके दुर्जय होने का विशेष रूप से उल्लेख किया है। डायोनिसियस ने इसे "युद्ध मे इतना कठोर जैसे कि वह पोतल का बना हो" कहा है तथा नोनस का कथन है कि "उन्होने 'गाजोस' अर्थात अरिज के अचल दुर्गीकरण के गूंथन कार्य द्वारा जाल समान घेरो से सुरक्षित बना दिया था और कोई भी शस्त्र युक्त शत्रु इसकी

ठोस नींव में दरार नही डाल सका था।" इस प्रसिद्ध स्थान के इस प्राचीन विवरण से प्रतीत होता है कि टालमी का गजाका पारोपामीसाडे मे दक्षिण की ओर दिखाये जाने के स्थान पर उत्तर मे दिखाया गया था परन्तु बजनतियम जिसने डायोनिमियस की 'नासरिका' को इस भारतीय नगर के लिये अपना आधार स्वरूप स्वीकार किया है वह अपने उस स्टेफनस मे भारतीय गजाका का उल्लेख नही करता। मैं यह लिखकर इस विवरण को समाप्त करता हूँ कि उसने इस नगर को एक अन्य स्थान के रूप मे देखा होगा।

लमगान

लान-पो अथवा लमगान जिले का उल्लेख करते हुए ह्वेनसाग ने लिखा है कि यह जिला कपर्सान क पूर्व म १०० मील की दूरी पर है। सडक को उसने पहाडियो एव घाटियो का अनुक्रम बताया है जिनमे कुछ एक पहाडियाँ काफी ऊँची है। यह व्याख्या आधियान से लमगान तक नदी के उत्तरी किनारे के साथ-साथ बने मार्ग की तत्कालिक व्याख्या से मिलती है। लमगान के स्थान से इसकी दूरी एव दिक स्थिति इतनी समान है कि इन दोनो जिलो की अनुरूपता मे कोई सन्देह नही हो सकता। टालमी ने भी लम्बताय नामक निवासियो को इसी स्थान पर दिखाया है। इस शब्द की लमगान वर्तमान उच्चारण से तुलना करने से यह सम्भव प्रतीत होता है कि इस इस नाम का मूल स्वरूप सस्कृत (१) का लम्पाक था। अतः मैं 'ट' के स्थान पर 'ग' के थोडे परिवर्तन से टालमी के लम्बताय को लम्बागाय कर दूंगा। आधुनिक नाम लम्पाक शब्द का सक्षिप्त स्वरूप मात्र है जो ओठ सम्बन्धी स्वर लोप से बना था। मध्य क व्यंजनो को साधारण अदला-बदलो मे इस लमगान भी कहा जाता है। पूर्व मे यह एक सामान्य प्रथा है। (सहज मे विश्वास करने वाले) मुसलमान इस नाम की उत्पत्ति पादरी लगीव क नाम से मानते है। जिनके विश्वासानुसार उसकी कब्र अभी भी लमगान मे है। बाबर तथा अब्बुल फजल ने भी इसका उल्लेख किया है।

ह्वेनसाग ने इस जिले को व्यास मे १६६ मील बताया है जिसके उत्तर मे हिमाच्छादित पर्वत तथा अन्य तीनो ओर काली पहाडियाँ हैं। इस व्याख्या से यह स्पष्ट है कि लान-पो वर्तमान लमगान के अनुरूप है जो काबुल नदी के उत्तर तट के साथ-साथ देश का एक छोटा प्रदेश है जो पश्चिम तथा पूर्व मे अलिङ्गर तथा कुनार नदियो म और उत्तर मे हिमाच्छादित पर्वतो मे घिरा हुआ है। यह छोटा प्रदेश प्रत्येक ओर

(१) सस्कृत का लम्पाक है। हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणी में वहाँ के निवासियो को कुरुण्डा कहा गया 'लम्पाकास्तु मुरुण्डा स्युः।" गकटर स्टेन ने बताया है कि मुरुण्डा शक भाषा का स्वरूप है जिसका अर्थ है स्वामी। इस प्रकार लम्पाक शकों की राजधानी थी।

४० मील का वर्ग है अथवा व्यास मे १६० मील है । पहले यह एक अलग राज्य था । परन्तु सातवी शताब्दी मे राजघराने के लुप्त हो जाने पर यह जिला कपीसीन का आश्रित बन गया ।

नगरहारा (१) अथवा जलालाबाद

लमगान मे चीनी तीर्थ यात्री ७ मील दक्षिण पूर्व में गया था और एक बड़ी नदी को पार करने के बाद नगरहारा के जिले मे पहुँचा था । इसकी स्थिति एव दूरी से टालमी के नागरा का सकेत मिलता है जो काबुल नदी के दक्षिण मे एव जलालाबाद के भीतरी भाग मे था । ह्वेनसाग ने इसका नाम ना-को-लो-हो लिखा है परन्तु मिस्टर एम० जूलीन ने साग राजघराने के इतिहास मे सस्कृत नाम का पूरा प्रतिलेख ढूंढ लिया है जिसमे इसे नांग-गो लो हो-लो लिखा गया है । सस्कृत नाम बिहार जिले के घोसरावा के ध्वस्त टीले से मेजर कितोई द्वारा प्राप्त एक शिलालेख मे मिलता है । नगरहारा को पूर्व से पश्चिम लम्बाई मे १०० मील तथा उत्तर से दक्षिण चौडाई मे ४२ मील से अधिक कहा जाता है । जिले की प्राकृतिक सामाये पश्चिम मे जगदालक दर्रा तथा पूव मे खैबर दर्रा उत्तर मे काबुल नदी तथा दक्षिण मे हिमच्छादित पर्वत है अथवा 'सफेद कोट' है । इन सीमाओ के मानचित्र पर सीधे माप से इसका विस्तार ७५ × ३० मील है जो कि वास्तविक मार्ग दूरी मे ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आकडो के समीप है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि राजधानी का स्थान जलालाबाद से लगभग दो मील पश्चिम तथा हिद्दा से ५ या ६ मील पश्चिम उत्तर पश्चिम मे बेग्राम में था । हिद्दा को प्रत्येक अन्वेषक की सामान्य स्वीकृति से चीनी तीर्थ यात्री के हि-लो का समरूप माना गया है । हि-लो का नगर लगभग तीन चौथाई मील है । परन्तु वहाँ बुद्ध के कपाल के होने के कारण इसे अधिक अधिक ख्याति प्राप्त थी । इस कपाल को एक स्तूप मे रखा गया था यहाँ तीर्थ यात्रियो का एक सोने का सिक्का देने पर ही दिखाया जाता था । हिद्दा जलालाबाद से पाँच मील दक्षिण मे एक छोटा गांव है परन्तु यह बौद्ध स्तूपो के अपने विशाल सग्रह, तुमूलो एव गुफाओ के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है । मसोन ने इस स्थान का सफलता पूर्वक सामना किया था । चीनी तीर्थ यात्री द्वारा इंगित किये गये स्थान पर ही इन महत्वपूर्ण बौद्ध अवशेषो की उपस्थिति से हमे हिद्दा एव हि-लो के अनुरूप होने का सन्तोष जनक प्रमाण मिलता है । नामो की सम्पूर्ण सहमति से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है क्योंकि मूल शब्द हीरा अथवा हीड़ा का चीनी अनुवाद मे

---

(१) फाहियान ने नागरा मे बौद्ध धर्म की अनेक वस्तुओ का उल्लेख किया है । वार्टस ने इसे नगर कोट कहा है और संस्कृत भाषा के नगर हारा शब्द का उल्लेख पाराष्र तन्त्र मे मिलता है । बाबर ने इसे नुङ्गनिहार कहा है ।

हि-लो ही समीपस्थ अक्षर हो सकता है। अतः राजधानी बेग्राम को समतल पर स्थापित रही होगी। मशोन ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है "गट्ठों एवं टीलों से अक्षरशः ढाकी हुई।" वह आगे लिखता है कि "यह वस्तुतः शमशान के स्मारक चिन्ह है परन्तु बौद्ध स्तूप साथ होने के कारण इस अनुमान का अनुमोदन होता है कि यहां पर एक विशाल नगर का अस्तित्व था तथा पवित्रता के लिये प्रसिद्ध स्थान था। हो सकता है कि दोनों ही बाते सही हो। मेरे विचार मे यह सम्भव है कि हिड्डा शब्द हड्डी का केवल परिवर्तित स्वरूप हो क्योकि एक लेखांश मे बुद्ध की कपाल की हड्डी के स्तूप को हि-लो नगर मे बताया गया है जबकि दूसरे स्थान पर फो-तिंग-को-चिंग नगर मे स्थापित बताया गया है जो "बुद्ध की कपाल की हड्डी के नगर" का केवल चीनी अनुवाद है। इस बात पर विचार करते समय मुझे उन स्थानों के छोटे-छोटे निर्देशक नामो की निरन्तर घटनाओं का उल्लेख करना पडेगा जो बुद्ध के इतिहास मे प्रसिद्ध थे। अतः मै यह सोचने पर बाध्य हूँ कि वह स्थान जहा बुद्ध के कपाल की हड्डी थी सम्भवतः विद्वानो मे अस्थिपुर और सामान्य लोगो मे हड्डी पुर अथवा हड्डी नगर के प्रचलित नाम से ज्ञात होगा। इसी प्रकार शिव के कपाल की हड्डियों का हार भी साधारणतयः अस्थि माला अथवा हड्डियों का हार कहा जाता है।

काफी समय पूर्व प्रोफेसर लासेन ने नगरहारा को टालमी का नागरा अथवा डायनोसोपोलिस के अनुरूप माना है जो काबुर तथा सिन्धु के मध्य मे अवस्थित था। दूसरे नाम से यह सम्भावित प्रतीत होता है कि यह वही स्थान था जिसे एरियान तथा कर्टियस ने न्यासा नगर कहा है। सम्भवतः अब्बुरिहान दौनस अथवा डोनज मे भी इसी नाम का उल्लेख मिलता है क्योंकि अब्बुरिहान ने इस स्थान को काबुर तथा पराशावर के मध्य अवस्थित बताया है। जन साधारण की परम्परा के अनुसार नगर को अजूना भी कहा जाता था। मेरे विचार मे इस नाम के एवं इसके यूनानी स्वरूप के अनुरूप होने की सम्भावना है जैसे यमुना अथवा जमुना नदी को टालमी ने दयामुना बना दिया है तथा सस्कृत के यमारन अथवा नेमारन को प्लिनी ने दयामारन बना दिया है। फिर भी इस बात की अधिक सम्भावना है कि स्वरो के हेर फेर मे अजूना पाली के उज्जान तथा सस्कृत के उद्यान का केवल अशुद्ध रूप हो। एम विवीन डी सेंट मार्टिन का कथन है कि उद्यानपुर नगरहारा का एक पुराना नाम था। यदि यह अनुरूपता सही हो तो राजधानी का स्थान आवश्य मेव बेग्राम मे ही होगा जैसा कि मै पहले लिख चुका हूं। यूनानी शासन के सम्पूर्ण काल मे डायोनी सोपोलिस का नाम नि सन्देह सर्वोधिक सामान्य उपाधि थी। एरियाना के यूनानी शासको की मुद्राओ पर बने सामान्यतम चिन्ह डायोनोसोपोलिस को छोड प्राचीन लेखको द्वारा दिये गये अन्य किसी भारतीय नगरो के नाम के अनुरूप नही हैं। पाचवी शताब्दी के आरम्भ मे फाहियान ने इसे केवल ना-की अथवा नगर कहा था। उसने यह भी लिखा है कि यह नगर उस समय

अपने ही राजा के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य था। ६३० ई मे ह्वेनसाग की यात्रा के समय यह राज्य शासक विहीन था तथा कपीसीन के अधीन था। तत्पश्चात सम्भवतः यह प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य के भाग का अनुसरण करता रहा तथा क्रमश काबुल के ब्राह्मण राज्य तथा गजनी के मुस्लिम साम्राज्य का भाग था।

गान्धार अथवा परशावर

सिकन्दर के स्वीकृत इतिहासकारो द्वारा गाधार के जिले का उल्लेख नही किया गया है परन्तु स्ट्रैबो ने चोआस्पेस तथा सिन्धु के बीच कोफेस नदी के साथ-साथ अवस्थित गाधारटीस के नाम मे इसका सही उल्लेख किया है। टालमी ने इसे गडराय बताया है। इस प्रदेश मे सिन्धु एक कोफेज नदी के सगम स्थान से थोडा ऊपर को फेरन नदी के दोनो किनारे पर सम्मिलित थी। यह सभी चीनीतीर्थ यात्रियों का कवीनटा-लो अथवा गाधार है। सभी चीनी तीर्थ यात्री इसे सिन्धु नदी के पश्चिम मे स्थित दिखाने मे एक मत है। राजधानी को-जिसे उन्होंने पू लू-श-पूलो अथवा परशपुर कहा है (१) सिन्धु नदी से तीन अथवा चार दिन की यात्रा पर तथा एक बडी नदी के दक्षिणी तट पर बताया जाता है। यह पेशावर के स्थान का सही विवरण है जो अकबर के समय तक अपने पुराने नाम परशावर के नाम से प्रसिद्ध था। अबुल फजल तथा बाबर और उसस भी पूर्व अब्बु-रिहान तथा दसवी शताब्दी के अरब भूगोल शास्त्रियों ने इस नगर के इसी नाम का उल्लेख किया है। फाह्यान के अनुसार-जिसने इसे फो-लू श अथवा परशा कहा है यह राजधानी नगरहारा से ११२ मील दूर थी। ह्वेनसांग ने इस दूरी का ८३ मील बताया है जो अवश्य-ही एक त्रुटि थी क्योकि पर्यटकों द्वारा लिये गये माप के अनुसार पेशावर तथा जलालाबाद की दूरी १०३ मील है जिसमें बेग्राम को जलालाबाद के पश्चिम मे स्थिति के कारण २ मील और जोड देना चाहिये।

जिले की वास्तविक सीमाओ का उल्लेख नही किया गया है परन्तु इसका क्षेत्र पूर्व से पश्चिम १००० ली अथवा १६६ मील और उत्तर से दक्षिण ८०० ली अथवा १३३ मील बताया गया है। सम्भवतः यह सही है क्योकि दूरस्थ लम्बाई चाहे उसे बड (bara) नदी के मुहाने से लेकर तुरबला तक ले अथवा कुनार नदी से तुरबला तक लिया जाये मानचित्र पर १२० मील है तथा स्थल मार्ग द्वारा लगभग १५० मील है। इसी प्रकार दूरस्थ चौडाई बुनीर की पहाडियो के किनारे पर स्थित बाजार से कोहाट की दक्षिणी सीमा तक सीधे १०० मील अथवा सडक से लगभग १२५ मील है। इस माप दण्ड द्वारा गाधार की सीमायें पश्चिम मे लमगान तथा जलालाबाद, उत्तर मे स्वात तथा बुनीर की पहाडियाँ, पूर्व मे सिन्धु नदी तथा दक्षिण मे कालाबाग बताई जा

---

(१) गाधार की प्राचीनतम राजधानी पुष्कलावती थी। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर थी।

सकती है। (१) इन सीमाओ मे प्राचीन भारत के अधिकाश प्रसिद्ध स्थानो मे से अनेक स्थान थे। जिनमें कुछ सिकन्दर के पराक्रमो से सम्बन्धित रोमाचकारी इतिहास मे प्रसिद्ध हुये थे और अन्य बुद्ध के चमत्कारी इतिहास मे एवम् इण्डो-सीथियन सम्राट कनिष्क के बौद्ध धर्मावलम्बी होने के बाद के इतिहास मे प्रसिद्ध हुए थे।

गंडराय के नगरो मे टालमी ने जिन नगरो का उल्लेख किया है वह इस प्रकार है—नौलिबी, एम्बोलिया तथा राजधानी पारोकलायरिन। यह सभी नगर कोफीज के उत्तर में थे जिनका उल्लेख सिकन्दर के इतिहासकारो ने किया है। केवल परशावर कोफीन के दक्षिण में था। नौलिबी तथा ओरा के सम्बन्ध मे मैं कोई विवरण नही दे सकता क्योंकि उनकी पहचान नही हो सकी है। फिर भी यह सम्भव है कि नीलाब को ही नौलिबी कहा गया हो जो एक महत्वपूर्ण नगर था तथा जिसने सिन्धु नदी को भी अपना नाम दिया था। यदि ऐसा हो तो टालमी ने गलती से उसे अन्यत्र दिखाया है। क्योंकि निलाब कोफीज के दक्षिण में है। अब मैं अन्य नगरो के स्थान एवम् उनके साथ साथ चीनी तीर्थ यात्री द्वारा देखे गये कुछ अन्य स्थानों पर विचार करूंगा।

पुष्कलावती अथवा प्यूकिलाओटीस

गान्धार की प्राचीन राजधानी पुष्कलावती थी जिसके बारे में कहा जाता है कि इसकी स्थापना राम के भतीजे एव भरत के पुत्र पुष्कर द्वारा की गई थी। इसकी प्राचीनता निःसन्देह है क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय यह प्रान्त की राजधानी थी। प्यूकिलाओटीस अथवा प्यूकोलिटीज के नाम पुष्कलावती से लिया गया था जो पाली शब्द था अथवा सस्कृत के पुष्कलावती का बोलचाल का स्वरूप था। एरियान ने इसे प्यूकिलस कहा है तथा डायोनिसियान पेरिगिटीज ने यहाँ के निवासियो को प्यूकली कहा है। प्यूकली पाली के पुष्कल की लगभग सही नकल है। एरियान की "पेरोप्लस आफ दी इरोथियन सी" तथा टालमी के भूगोल मे दिया गया नाम प्रोक्लायस सम्भवतः संस्कृत पुष्कर के स्थान पर हिन्दी के पोखर शब्द का प्रतिनिधित्व करता है।

एरियान के अनुसार प्यूकिलस एक विस्तृत एवं बहुत ही जनपूर्ण नगर था तथा सिन्धु नदी से अधिक दूर नही था। यह सम्भवतः आस्टीज अथवा हस्ती नामक के शासक की राजधानी थी जो हीफायशन द्वारा ३० दिन के घेरे के बाद अपने एक गढ़ की रक्षा करते समय मारा गया था। आस्टीज की मृत्यु के पश्चात प्युकिलाओटीज नगर

(१) महाभारत एवम् सस्कृत के अन्य ग्रन्थो मे इस बात का उल्लेख मिलता है कि गान्धार देश की दो राजधानियाँ थी। तक्षशिला तथा पुष्कलावती। यह दोनो नगर क्रमशः सिन्धु नदी के पूर्व एवम् पश्चिम मे है। अतः ऐसा प्रतीत है कि प्राचीनकाल में गान्धार देश की सीमायें सिन्धु नदी के दोनो ओर थी परन्तु बाद में यह नदी के पश्चिमी तट तक ही सीमित रही।

सिकन्दर को उसकी सिन्ध की ओर यात्रा के समय समर्पित कर दिया गया था। एरियान तथा स्ट्रैबो ने इसकी स्थिति का "सिन्धु के समीप" बता कर स्पष्ट उल्लेख किया है परन्तु भूगोल शास्त्री टालमी ने इस सम्बन्ध मे अधिक सही विवरण दिया है क्योंकि उसने इसे स्वास्तीन अर्थात पजकोरा अथवा स्वात नदी के पूर्वी तट पर दिखाया है। ह्वेनसांग ने इसी स्थान की ओर सकेत किया है। परशावर छोड़ते समय चीनी तीर्थ यात्री ने उत्तर पूर्व में लगभग १७ मील की यात्रा की थी और एक विशाल नदी को पार कर वह पु-सी-किया-लो-फा-ती अथवा पुष्कलावती पहुँचा था। यहाँ जिस नदी का उल्लेख किया गया है वह नदी काफीज अथवा काबुल नदी है तथा पेशावर से दूरी एवं दिशा पारग तथा चारसदा के दो विशाल नगरो की ओर सकेत करती हैं। दोनों नगर प्रसिद्ध हस्तनगर अथवा ८ नगरों के भाग थे तथा दोनो ही स्वात नदी के निचले जल मार्ग पर पूर्वी किनारे पर साथ-साथ अवस्थित थे। यह हस्तनगर इस प्रकार थे— तङ्गी, शिरगाओ, उम्रजई, तुरङ्गजई, उस्मानजई, राजूर, चारसदा तथा पारङ्ग। ये नगर १५ मील के क्षेत्र मे फैले हुए हैं परन्तु अन्तिम दोनों नगर नदी के घुमाव मे पर साथ-साथ हैं और सम्भव है कि प्रारम्भ मे वे एक विशाल नगर के भाग रहे हो। हिसार का दुर्ग पुराने हस्तनगर के अवशेषों के पास एक टीले पर है। हस्तनगर को जनरल कोर्ट ने राजूर के सामने एक द्वीप में अवस्थित बताया है। उनका कथन है कि "नगर के सभी बाहरी भाग विस्तृत अवशेषों के रूप में फैले हुए हैं।"

मुझे यह असम्भावित प्रतीत नही होता कि आधुनिक हस्तगर नाम हस्तीनगर अथवा "हस्ती के नगर" के प्राचीन नाम का आंशिक परिवर्तित स्वरूप है। हस्तीनगर नाम सम्भवत. प्युकिलाओटीज के राजकुमार को राजधानी को दिया गया था। भारतीय शासको को उनके नगरो के नाम पर पुकारने की प्रथा युनानियो की सामान्य प्रथा थी जैसे तलीश, असरकानस इत्यादि। भारतीय शासको मे अपनी राजधानी के किसी भी परिवर्तन अथवा विस्तार को अपना नाम दे देने की प्रचलित प्रथा भी थी। इसी प्रथा का एक ज्वलन्त उदाहरण हमें दिल्ली के प्रसिद्ध नगर मे मिलता है जिसे इन्द्रप्रस्थ तथा दिल्ली के अपने प्राचीन विशिष्ट नामो के साथ-साथ अपना क्रमबन्ध विस्तार करने वालो के नाम पर कोर पिथोरा, किला अलाई, तुगलकाबाद, फिरोजाबाद तथा शाहजहानाबाद के नाम पर भी पुकारा जाता था। यह सत्य है कि लोग स्वयं हस्तनगर के नामको "आठ नगरो" से मिलाते जो उस समय स्वात नदी के निचले मार्ग के साथ-साथ एक दूसरे के पास-पास बसे हुए हैं। परन्तु यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इस मामले में इच्छा ही विचार की जन्मदात्री थी और हस्तीगर-अथवा जो कुछ की इच्छा नाम रहा हो का मूल नाम ही थोडी हेर फेर के बाद हस्तनगर बन गया था। जिससे फारसी के प्रभाव मे आई मुस्लिम जनता जिन्हें संस्कृत का ज्ञान न था में यह नाम लोकप्रिय हो सके। मेरे विचार में नगरहारा के नाम मे थोड़े परि-

वर्तन का भी यही कारण था जिसे अब वहाँ के निवासी नम निहार अर्थात् "नौ नहर" कहते हैं।

उत्तर काल मे पुष्कलावती एक विशाल स्तूप के कारण प्रसिद्ध था जो उस स्थान पर बनाया गया था जहाँ कहा जाता है कि बुद्ध ने अपने नेत्र भिक्षा मे दे देने का प्रस्ताव किया था। ह्वेनसांग के समय मे यह कहा जाता था कि भिन्न-भिन्न समय एवम् जन्म मे नेत्र दान एक हजार बार किया गया था परन्तु पाचवी शताब्दी मे फाहियान तथा छठी शताब्दी मे सगयुन नामक दो तीर्थ यात्रियो ने ऐसे केवल एक नेत्र दान का उल्लेख किया है।

वरूष अथवा पलोढेरी

तत्पश्चात ह्वेनसांग पो-लू-शा-नामक स्थान पर गया था जिसे मेरे विचार मे पलोढेरी अथवा पाली ग्राम का समरूप माना जा सकता है। जो ढेरी अथवा अवशेषो के टीले पर बसा हुआ था। नगर के उत्तर पूर्व ३½ मील की दूरी एक कन्दरा सहित दन्तलोक पहाडी है। इस कन्दरा मे राजकुमार सुदान तथा उसकी पत्नी ने शरण ली थी। (१) ह्वेनसाग ने पो-लू-शा को पुष्कलावती से लगभग ४० मील की दूरी पर बताया है और इसी दूरी से पलोढेरी एवम् पो-लू शा की अनुरूपता का भास होता है। पलोढेरी से तीन अथवा चार मील के भीतर पूर्व उत्तर पूर्व एक पहाडी मे काशमीरी गार नामक एक कन्दरा की उपस्थिति मे इस समानता की पुष्टि होती है। दन्तलोक पर्वत को मैं जस्टिन 'मोनटीज डाइडाली' समझता हूँ क्योकि बोलचाल की भाषा मे दन्त शब्द अगले अक्षरो मे मिल जाता है। इस प्रकार यह दुगना हो जाता है जैसा कि दातुन शब्द से पता चलता है।

(२) उत्तखण्ड, ओहिन्द अथवा एम्बोलिमा

पो-लू शा से ह्वेनसाग ३३ मील की यात्रा कर दक्षिण पूर्व मे यू-तो-किया-हान-चा गया था जिसे मिस्टर एम, जुलीन ने उखण्ड बताया है तथा मि० एम० विवीन, डो-

(१) मि० कनिंघम का वर्णन अशुद्ध है। आजकल इसे शाहबाज गढही के अनुरूप समझा जाता है। यह नाम बाबर के समय म पुराना नहीं है। इसका निर्माण पथरो से बने प्राचीन नगर के स्थान पर किया गया था। इसके समीप ही दो कमरो वाली गुफा सुदान गुफा के विवरण से मिलती है।

एरियान ने बजारिया के सम्बन्ध मे जो विवरण दिया है वह पो-लू-शा एव राजकुमार सुदान के नगर म इतना मिलता है कि तीनो नाम एक रूप प्रतीत होते है।

—अनुवादक

(२) वास्तविक नाम उदक खण्ड है राजतरङ्गनी मे उदक खण्डपुर एवम् वहाँ के शासकों का उल्लेख मिलता है। अलबेरूनी ने महमूद गजनी के साथ-साथ इस राज्य

सेन्ट मार्टिन ने इसे सिन्धु नदी पर स्थित ओहिन्द स्वीकार किया है। तीर्थ यात्री ने इसका उल्लेख इसके दक्षिणी भाग को नदी पर आधारित मान कर किया है। यह विवरण अटक से लगभग १५ मील ऊपर सिन्धु नदी के उत्तरी तट पर ओहिन्द की स्थिति से ठोक-ठीक मिलता है। जनरल कोर्ट ने तथा बर्नेस ने इस स्थान को हुन्द कहा है और श्री लोईवेन्थल ने भी इसे इसी रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने ओहिन्द को एक अशुद्ध उच्चारण कहा है। परन्तु १०३० ई० में अल्बुरिहान ने इस नाम को वैहन्द अथवा ओएहन्द लिखा है तथा १७९० में मिर्जा मुगल बेग ने इसे ओहिन्द कहा है। मेरे कानों में यह नाम वहन्द के समान प्रतिध्वनित होता है और लगता है १३१० ई० मे रशीदुद्दीन ने इसी उच्चारण को अपनाया था। जबकि उसने इस स्थान का नाम वीहन्द बतलाया है। इन सभी लेखकों के अनुसार वैहन्द गान्धार की राजधानी थी और रशीदुद्दीन ने लिखा है कि मुगल इसे काराजङ्ग कहते थे। निजामुद्दीन ही एक मात्र स्थानीय लेखक है जिसने इसके संक्षिप्त नाम का प्रयोग किया है। उसने तबकात-ए-अकबरी मे कहा है कि महमूद ने १००२ ई० में हिन्द के दुर्ग में जयपाल पर घेरा डाला था। परन्तु फरिश्ता ने इस स्थान को भिन्न नाम दिया है। उसने इसे बिहण्डा का दुर्ग कहा है। इस नाम मे हमें ह्वेनसांग के द्वारा दिये गये उतखण्ड के पुराने स्वरूप का आभास होता है। इन सभी उदाहरणों से मेरा अनुमान है कि उतखण्ड के मूल नाम को सर्व प्रथम उथन्ड अथवा विथन्ड में बदला गया था तत्पश्चात इसे संक्षिप्त अहन्द अथवा ओहिन्द बना दिया गया। विहन्द के दूसरे स्वरूप को मैं उथण्ड के उच्चारण मे त्रुटि मात्र समझता हूँ क्योंकि दोनो शब्द केवल द्वितीय अक्षर की भाषा सम्बन्धी स्थिति मे भिन्न-भिन्न हैं। जनरल जेम्स एबाट ने अपनी पुस्तक "ग्रेडस-एड-औरनन" मे इस स्थान को ऊन्द कहा है। उनका कथन है कि यह पहले ऊरा कहलाता था और इस शब्द मे इस विद्वान लेखक को यह सम्भावना प्रतीत होती है कि यह स्थान ओरा अथवा सिकन्दर के इतिहासकारो के 'ओपा' के अनुरूप था।

स्वर्गीय इसीडोर लोईवेन्थल की विद्वता के कारण ही मुझे इस विस्तृत विवरण मे उलझना पडा है। ओहिन्द के नाम के बारे में उनका विचार अचेतन में ही सम्भवतः उनके इस विश्वास के कारण पक्षपातपूर्ण हो गया था कि उतखण्ड को आधुनिक अटक मे देखा जा सकता है परन्तु दुर्भाग्यवश यह स्थान सिन्धु के दूसरे तट पर है। साथ ही साथ जहाँ तक मुझे ज्ञान है अकबर के शासन काल से पूर्व किसी भी लेखक ने इसका उल्लेख नही किया है। अब्बुल फजल ने इस स्थान को अटक बनारस

के शासकों का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि इन राजाओं का मुख्य नगर वेहिन्द था।

अतः वू-तो-का-हान-चा, उदक भाण्ड, उदक भाण्डपुर, उहन्द, वेहन्द अथवा आधुनिक ओहिन्द सभी एक ही स्थान के नाम हैं।

कहा है और उसका कथन है इसका निर्माण सम्राट के शासन काल में किया गया था। बाबर ने इस स्थान का कभी उल्लेख नहीं किया, जबकि उसने नीलाब का बारम्बार उल्लेख किया है। रशीदुद्दीन का कथन है कि परशावर नदी टङ्कोर के समीप सिन्धु नदी में मिलती है और इससे सम्भवतः खैराबाद की सुदृढ स्थिति का उल्लेख मिलता है। मुझे सन्देह है अटक अर्थात् "निषिद्ध" का नाम अकबर ने अरबी भाषा में टङ्कोर शब्द के परिशिष्ट सहित अट-टङ्कोर पढ़ने की गलती के परिणामस्वरूप प्राप्त किया था। बनारस का नाम निस्सन्देह जिले के पुराने नाम बनार से लिया गया था जहाँ दुर्ग का निर्माण कराया गया है। बनार नाम से बनारस बनता है और चूँकि काशी बनारस एक ऐसा स्थान है जहाँ सभी हिन्दुओं को जाना चाहिये अतः हम अनुमान लगा सकते हैं कि अकबर के चपलमन में इसी तथ्य के कारण इसके बिलकुल विपरीत अटक बनारस-अर्थात निषिध बनारस जिससे प्रत्येक हिन्दू को दूर रहना चाहिये—का नाम देने का विचार उठा हो। यह भी हो सकता है कि साम्राज्य के सदूर पूर्वी सीमा पर उडीसा में कट्टक-बनारस (कट्टक) के विद्यमान होने के कारण सुदूर पश्चिम में विरुद्ध अलङ्कार के स्वरूप मात्र अटक तथा बनार के तत्कालीन नामों का परिवर्तित नाम अटक बनारस रखा गया हो।

वी-हन्द जिसे मैं उहन्द लिखना चाहूँगा—काबुल के ब्राह्मण राजा की राजधानी थी जिसके वंश को १०२६ ई० में महमूद गजनी ने नष्ट कर दिया था। मसूदी—जो ६१५ ई० में भारत आया था—का कथन है कि अल-कन्दा र (अथवा गान्धार) का राजा को 'जहाज' कहा जाता था और यह नाम उस देश के सभी सत्तारूढ़ शासकों के लिये सामान्य है। पच ओहिन्द के ठीक सामने सिन्धु नदी के पूर्व विशाल समतल का नाम है और चूँकि बनार की समतल भूमि का नाम राजा बनार के नाम पर बताया जाता है यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि चच की समतल भूमि का नाम ओहिन्द के ब्राह्मण राजघराने पर पड़ा हो। यह एक अनोखी बात है कि ६४१ ई० में एक चच द्वारा सिन्ध के ब्राह्मण राजघराने की नींव डाली गई थी। परन्तु यह बात इससे भी अधिक उल्लेखनीय है कि यह तिथि खजूरा के चन्देलो द्वारा ब्राह्मण राजघराने को चिचितो अथवा जलोतिया से निकाले जाने की तिथि से मिलती है यह भी उल्लेखनीय है कि खजूरा से निकाले गये जलोतिया ब्राह्मण सिन्धु की ओर चले गये हों जहाँ उन्हें सर्वप्रथम सिन्ध में तथा बाद में ओहिन्द तथा काबुल में पैर जमाने में सफलता प्राप्त हुई हो।

ह्वेनसाग के समय यह नगर व्यास में ३ मील से कुछ अधिक था और हम उचित रूप से यह अनुमान लगा सकते हैं कि ब्राह्मण राजघराने के शासनकाल में इस नगर का विस्तार हुआ होगा। चगेज खा के उत्तराधिकारियों के समय भी इस नगर का महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा क्योंकि मुगलो ने इसका नाम बदल कर कारजांग कर

दिया था। परन्तु अटक के निर्माण एवम् राष्ट्रीय मार्ग को स्थाई परिवर्तन से इसकी समृद्धि पर गम्भीर प्रभाव पड़ा होगा और उसी समय से इसके उत्तरोत्तर विनाश में सिन्धु नदी के निरन्तर अतिक्रमणों से तेजी आ गई है जिसमे पुराने नगर का लगभग आधा भाग बह गया है। चट्टान के अधोभाग पर रेत में ध्वस्त घरों के मलबे में सोना निकालने वालों ने मुद्रायें तथा कम मूल्य के आभूषण प्राप्त किये हैं जिनसे नगर की पूर्ववर्ती समृद्धि का समुचित संकेत मिलता है। कुछ ही समय की धुलाई के बाद मुझे कांचे की एक बाल्टी-जो विवाहोत्सव के समय की प्रतीत होती थी—स्त्री के गले का एक हार, आखो मे काजल डालने की अनेक चपटी सलाइयां तथा इण्डो-सीथियन एवम् काबुल के ब्राह्मण राजाओं की अनेक मुद्रायें प्राप्त हुई थीं। इण्डो-सीथियन मुद्रा की निरन्तर उपलब्धि इस बात का समुचित प्रमाण है कि यह नगर ईसवी काल के प्रारम्भ मे भी था। अतः हमे उस परम्परा में विश्वास करने का प्रलोभन मिलता है जिसका अबुल फिदा ने उल्लेख किया है कि विहन्द अथवा ओहिन्द सिकन्दर महान द्वारा स्थापित नगरो मे एक नगर था।

एरियान लिखता है कि प्युक्लिओटीज के आत्म समर्पण के बाद सिकन्दर ने कोफीज नदी पर स्थित अन्य छोटे-छोटे नगरों पर अधिकार कर लिया था और अन्त में एम्बोलिया पहुँचा था। यह स्थान एओरनास चट्टान से अधिक दूर नही था जहाँ घेरा बढा दिये जाने की आशङ्का से उसने क्राटेरस को रसद इकट्ठा करने के लिये छोड़ा था। बाजारिया छोड़ने से पूर्व सिकन्दर ने अपनी सामान्य दूरदर्शिता से हेफ़ाशियन तथा पेरडोकस को सीधे सिन्धु नदी तक इस आज्ञा के साथ भेज दिया था, कि नदी पर एक पुल के निर्माण हेतु सर्व प्रकार से तैयारी करो। दुर्भाग्यवश किसी भी इतिहासकार ने इस स्थान का उल्लेख नही किया जहाँ नदी पर पुल का निर्माण किया गया था। क्योंकि एम्बोलिया मे रसद तथा अन्य आवश्यकताओ का एक विशाल भण्डार बनाया गया था अत: मेरा विचार है कि पुल भी इसी स्थान पर रहा होगा। जनरल एबाट ने एम्बोलिमो को महाबन के ८ मील पूर्व मे सिन्धु नदी पर एम्बालिमा के स्थान पर दिखाया गया है और यदि महाबन को एओरनास के जनुरूप स्वीकार किया जाये तो निश्चय ही अन्य स्थानों की अनुरूपता निर्विवाद हो जायेगी। परन्तु महाबन की अनुरूपता पूर्णतयः अमान्य प्रतीत होती है अतः मैं यह प्रस्ताव करूँगा कि ओहिन्द अथवा अम्बर-ओहिन्द ही एम्बोलिया का सर्व सम्भावित स्थान था। (१)

अम्बर ओहिन्द के दो मील उत्तर में एक गांव है। झेलम नदी पर एक अन्य नगर का नाम भी ओहिन्द है अतः नामों की पहचान के उद्देश्य से दो पड़ोसी स्थानों के नामों को एक साथ जोड़ दिये जाने की प्रथा के अनुसार ही यह नाम रखा गया था।

---

(१) प्रो० बेवन ने कनिंघम के इस अनुमान की पुष्टि की है कि सिकन्दर ने इसी स्थान पर पुल बनाया था। —अनुवादक

जैसा कि अटक बनारस के नाम ने किया है। फिर भी यह याद रखना चाहिये कि एम्बोलिमा अथवा एक्बोलिमा केवल एक शुद्ध यूनानी नाम हो सकता था जो काबुल तथा सिन्धु के सङ्गम पर स्थित नगर की ओर संकेत करता है। टालमी ने इसे इसी स्थान पर बतलाया है। इस दिशा में ओहिन्द का दावा पहले से भी अधिक दृढ बन जाता है। कर्टियस के इस कथन से कि जब सिकन्दर ने एओरनास पर अधिकार के साथ सिन्धु के पश्चिम मे अपना अभियान समाप्त किया था "वह एम्बोलिमा की ओर गया था।" यह बात पूर्णतयः निश्चित प्रतीत होती है कि सिन्धु नदी पर पुल एम्बोलिया अथवा इसके समीप बनाया गया था। मेरे विचार मे एम्बोलिमा वही स्थान है जहाँ हिफाशियन तथा पेरडीकस ने पुल का निर्माण किया और कर्टियस ने रसद इकट्ठी की थी। मेरा अनुमान है कि रसद का भण्डार पुल के समीप ही रहा होगा क्योकि पुल तथा भण्डार दोनो की सुरक्षा के लिये एक ही रक्षक दल पर्याप्त होगा।

सलातुर अथवा लाहौर

तत्पश्चात ह्वेनसांग प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी के जन्म स्थान सो-लो-टु लो अथवा सलातुर गया था जो उसके अनुसार ओहिन्द से ३⅓ मील उत्तर पश्चिम मे था। जनवरी १८४८ ई० मे ओहिन्द के उत्तर पूर्व ४ मील की दूरी पर लाहौर गाँव मे रुकने के समय मैंने अनेक इण्डो सीथियन तथा यूनानी मुद्रायें प्राप्त की थी। जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह स्थान कम से कम स्वय पाणिनी के समय जितना पुराना है अथवा ३५० ई० पू० के लगभग का है। अत: शालातुर को लाहौर के अनुरूप स्वीकार करने मे मुझे कोई संकोच नही है। नाम के प्रथम अक्षर के लुप्त हो जाने का सन्तोषजनक कारण पश्चिमी भारत के निवासियो के प्रसिद्ध व्यवहार के अनुसार तालु सम्बन्धी उच्चारण को सांस खींच कर किये गये उच्चारण मे बदलने की आदत मे ढूंढा जा सकता है। इसी आदत के कारण सिन्धु को हिन्धु कहा जाता था और इसके किनारे पर बसे निवासियो को हिन्दु कहा जाता था। यह नाम सम्भवतः धीरे-धीरे हालातुर तथा अलातुर बन गया होगा जिसका अपभ्रंश होते-होते सरलता से लाहौर बन गया। जनरल कोर्ट ने इसे लावोर लिखा है।

एओरनास

सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग का वर्णन करते समय (१) एओरनास के स्थान के उद्विग्न प्रश्न पर कुछ शब्द लिखना चाहता हूँ। १८३६ मे जनरल कोर्ट ने इस प्रकार

(१) एओरनास आधुनिक अम्ब मे दूर नही था। डा० स्टेन ने १६०४ ईसवी मे महाबन पर्वत माला की छान-बीन की थी और इसे एओरनास के विपरीत सिद्ध किया था। अतः सिकन्दर के इतिहासकारो द्वारा बताई गई एओरनास एवम् महाबन की अनुरूपता को स्वीकार नही किया जा सकता। —अनुवादक

लिखा था—"जहाँ तक एओरनास का सम्बन्ध है सम्भवतः यह एक दुर्ग था जो अटक के सामने था तथा जिसके अवशेष हमें पर्वत शिखर पर मिलते हैं। कहा जाता है कि इसका निर्माण राजा होदी ने करवाया था।" १८४८ ई० में मैंने यह सुझाव दिया था कि "ओहिन्द के उत्तर से पश्चिम की ओर लगभग १६ मील की दूरी पर नोग्राम नाम के एक छोटे गाँव के ठीक ऊपर रानीघाट के विशाल पहाडी दुर्ग का उल्लेख ऊँचाई को छोड़ एरियान, स्ट्रैबो तथा डायोडोरस द्वारा एओरनास के सम्बन्ध में दिये गये विवरण से सभी प्रकार से मिलता है। रानीघाट की ऊँचाई १००० फुट से अधिक नहीं है फिर भी यह ऊँचाई इतने बड़े दुर्ग के लिये बहुत अधिक है। १८५४ मे जनरल जेम्स एबाट ने इस विषय पर एक बहुत बडा एवम् अच्छे ढङ्ग का लेख लिखा था जिसमे भिन्न-भिन्न लेखको पर बडे अच्छे ढङ्ग एवम् आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाबन पर्वत एओरनास का सर्वाधिक सम्भावित स्थान है। १८६३ ई० के प्रारम्भ मे श्री लोईवैन्थल ने आक्षेप किया था। उन्होने अटक के सामने राजा होदी के दुर्ग एवम् एओरनास को जनरल कोर्ट द्वारा प्रस्तावित अनुरूपता को पुन. स्वीकार किया। वर्ष के अन्त मे जनरल एबाट ने श्री लोईवैन्थल की आपत्तियो का उत्तर दिया था और अपना यह विश्वास पुनः दोहराया था कि "महाबन ही इतिहास का एओरनास है।" फिर भी उन्होने यह विचार प्रगट किया था कि "इस प्रश्न पर अभी भी विचार विमर्श किया जा सकता है।"

इस वाद-विवाद पर पुनः विचार करते हुए मेरा विश्वास है कि मैं इस विषय पर कुछ कठिनाइयो को दूर कर सकता हूँ जिनके कारण यह विषय सिकन्दर के इतिहासकारो द्वारा स्पष्ट एवम् विपरीत विवरण दिये जाने से कठिन बन गया है। परन्तु मैं शायद ही यह आशा करने का साहस कर सकता हूँ कि एओरनास को अनुरूपता के सम्बन्ध मे मेरा विचार सन्तोषजनक स्वीकार किया जायेगा। क्योकि मै इस बात को स्वीकार करने के लिए विवश हूँ कि मैं स्वयं अपने विचार मे पूर्णतयः सहमत नही हूँ। परन्तु यदि मुझे दूसरो को सन्तुष्ट करने मे सफलता नही मिलती तो मेरी असफलता मे जनरल जेम्स एबाट तथा आदरणीय धर्म प्रचारक श्री लोईवैन्थल जैसे योग्य लेखक भी भागी होगे।

मै सर्व प्रथम एओरनास के नाम पर विचार करूंगा। यद्यपि एओरनास एक यूनानी शब्द है फिर भी जैसा श्री लोईवैन्थल ने लिखा है यह यूनानियो की अन्वेषणा नही हो सकती। अतएव यह किसी स्थानीय नाम के परिवर्तन स्वरूप की नकल होगी। श्री लोईवैन्थल का विचार है कि इसे बनारस शब्द के सस्कृत स्वरूप वाराणसी से लिया गया है। सिकन्दर के समय का कोई भी यूनानी वाराणसी शब्द का उच्चारण स्वर परिशिष्ट के बिना नहीं कर सकता था और इस प्रकार के उच्चारण से उसे एवरनास अथवा एओरनास प्राप्त हुआ होगा परन्तु यह विचार अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि एओर-

नास का अन्तिम अक्षर वस्तुतः यूनानी है। अतः यह आवश्यक नहीं था कि यह मूल नाम का भाग रहा हो। यह भी सन्देहजनक है कि किसी स्थानीय नाम की अक्षरशः नकल मे एक शुद्ध यूनानी नाम बना होगा। यदि बनारस अथवा वाराणसी ही इस नाम का मूल स्वरूप था तब हमे हिन्दूकुश के उत्तर मे एक अन्य बनारस मिलना चाहिये क्योंकि एरिआन ने लिखा है कि द्रपसक अथवा अन्दराब को पार करने के बाद सिकन्दर "बेक्ट्रिया के दो प्रमुख नगरो एओरनास तथा बेक्ट्रा के विरुद्ध गया था जो तुरन्त ही उसे समर्पित कर दिये गये थे तथा उसने एओरनास के दुर्ग मे अपनी सेना रखी थी।" एरियान के मानचित्र की टालमी के मानचित्र से तुलना करने पर उसके बेक्ट्रा एवम् एओरनास टालमी के बेक्ट्रा-रगा एवं जरायस्प के समान प्रतीत होते हैं और चूँकि इस दूसरे नगर को वरनी देश मे बताया गया है मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि एओरनास 'वरनास' का स्वाभाविक एवं परिवर्तित स्वरूप है जिसे सिकन्दर के अनुयाइयों ने यूनानी भाषा मे एक महत्वपूर्ण नाम की प्राप्ति के उद्देश्य से बदल दिया था। इसी प्रकार मैं दूसरे एओरनास को राजा वर से सम्बन्धित करूँगा जिसका नाम अभी भी हस्तनगर तथा ओहिन्द के बीच के सभी ध्वस्त दुर्गों से सम्बन्धित किया जाता है परन्तु उसका नाम नोग्राम से ऊपर रानीघाट के महान् पर्वतीय दुर्ग से विशेष रूप से सम्बन्धित किया जाता है। रानीघाट अथवा रानी की चट्टान दुर्ग के उत्तरी छोर पर एक सीधी खड़ी विशाल चट्टान है। कहा जाता है कि राजा वर की रानी प्रतिदिन वहाँ बैठा करती थी। दुर्ग को राजा वर के नाम से सम्बन्धित बताया जाता है और पहाडी के नीचे बने अस्तबलों को राजावर के अस्तबल कहा जाता है। कुछ लोगों ने उसे राजा विराट कहा है और चूँकि वह उसे पाँच-पाण्डवो की कथा से सम्बन्धित बतलाते है मेरा विचार है नाम को कथा से मिलाने के लिये ही बदल दिया गया है। वास्तविक विराट नगर दिल्ली के दक्षिण में मत्स्य अथवा मछीरी में था। अन्य सभी स्थान काल्पनिक हैं अतः मेरा विचार है कि एओरनास के पहाड़ी दुर्ग का नाम राजा वर के नाम पर पड़ा था और रानीघाट का ध्वस्त दुर्ग को जनरल एबाट के महाबन अथवा जनरल कोर्ट तथा लोईवैन्थल द्वारा प्रस्तावित राजा होदी के दुर्ग के स्थान पर सिकन्दर का एओरनास स्वीकार करना अधिक सही होगा।

एओरनास के प्रतिनिधि के रूप मे महाबन को स्वीकार करने मे मेरी मुख्य आपत्तियाँ इस प्रकार हैं :—

(१) यह सरलता पूर्वक पार किया जा सकने वाला एक विशाल पर्वत है और इसका कोई भी उजड़ा भाग सिन्धु नदी की ओर से दुर्गम नहीं है।

(२) महाबन का व्यास ५० मील से कम नही है जबकि एओरनास, एरियान के अनुसार २२ मील और डायोडोरस के अनुसार ११ मील से अधिक नहीं था।

(३) ह्वेनसांग ६३० ई० मे महाबन पर्वत पर गया था और उसने इसे केवल

एक विशाल पर्वत लिखा है जिसका नाम महावन मठसे लिया गया था जहाँ पूर्ववर्ती जीवन में सरवद राजा के नाम से बुद्ध ने निवास किया था। यह तथ्य कि मठ पर्वत के शिखर पर था बाद के इस वक्तव्य से जाना जा सकता है कि वह पर्वत से उत्तर-पश्चिम की ओर से लगभग सात मील तक मासूरा मठ की ओर गये थे। मेरा विचार है कि यह स्थान चूमला घाटी के सूरा नामक एक बडे गाँव के अनुरूप था जो महाबन की सबसे ऊँची चोटी के उत्तर-पश्चिम मे केवल १० ली की दूरी पर है। यदि उस समय पर्वत पर कोई भी दुर्ग होता तो तीर्थ यात्री इसके विस्तार की व्याख्या तथा इसकी दुर्गमता आदि की भाँति किसी भी विचारणीय एव विशिष्ट बात के साथ-साथ इसके नाम का उल्लेख करता। उसके मौन को मैं महावन की चोटी पर बसे हुए अथवा ध्वस्त किसी प्रकार के दुर्ग की उपस्थिति के विरुद्ध समझता हूँ।

महाबन पर्वत का "किसी भी क्षेत्र पर नियन्त्रण नहीं है।" एक उच्च सैनिक अधिकारी के इस विचार पर आधारित श्री लोईवैन्थल को आपत्ति केवल यह दर्शाती है कि किस प्रकार एक बहुत ही विद्वान व्यक्ति एक सम्पूर्ण असत्य विचार को अपने पक्ष मे होने के कारण स्वीकार कर लेता है परन्तु उसका उत्तर छापने के कुछ मास पूर्व ही मैंने मिगो से बातचीत करते समय तथा श्री लोईवैन्थल को लिखकर इस आपत्ति का इसी प्रकार खण्डन किया था। मुझे इस बात पर आपत्ति है कि "महाबन पर्वत का किसी भी क्षेत्र पर नियन्त्रण नहीं है। मेरा उत्तर है कि यह उसी वस्तु का समादेश करता है जिसकी आकांक्षा आक्रान्त देश के निवासी करते हैं। यह उन लोगो को सुरक्षा प्रदान करता है जो इसकी शरण मे आते हैं। इसे "मार्ग से इतना बाहर" बताया गया है कि कोई भी शरण लेने के स्थान के रूप मे इसकी इच्छा न करता और सिकन्दर भी इसे नष्ट करने के लिए इतना समय नष्ट न करता क्योंकि यह सिन्धु की ओर जाते हुए उसके मार्ग मे बाधा नही डालता था। इस आपत्ति से यह सकेत मिलता है कि सिकन्दर का मुख्य ध्येय सिन्धु नदी को पार करना था परन्तु उसके जीवन के पूर्ववर्ती एव बाद की घटनाओं से यह स्पष्ट है कि उसकी योजना शत्रु को अपने पीछे न रहने देने की होती थी। इसी कारण उसने सीरिया, दरङ्गियाना तथा अरकोसिया पर विजय प्राप्त करने के लिये बीसस का पीछा छोड दिया था। इसी कारण उसने सोगदियाना तथा बेक्ट्रियाना में स्पितामेनीज़ की मृत्यु पर शेष शत्रुओं की समाप्ति तक दो वर्ष का समय व्यतीत कर दिया था। इसी कारण से ही वह अपने मार्ग से हट कर उन लोगों को दबाने के लिये गया था जिन्होंने एओरनास में शरण लेकर उसकी अधीनता स्वीकार करने से इन्कार किया था और इसी कारण से ही बाद मे उसने हाईड्राओटीज़ (रावी नदी) को पुनः पार कर सांगला पर आक्रमण किया था। यह एक अकेली पहाडी थी और चारों ओर जङ्गल को छोड़ अन्य किसी स्थान पर इसका नियंत्रण नहीं था।

श्री लोर्डवैन्चल ने राजा होदी के दुर्ग को सिकन्दर का एओरनास स्वीकार करने के पक्ष में अपने तर्क को मुख्यत: 'बनारस' नाम से अत्यधिक समानता पर तथा अधिकांश रूप से चेम्बरलेन के इस विचार पर आधारित किया है "कि खैराबाद से ऊपर की पहाड़ियाँ मित्र एवं शत्रु दोनो के लिये न केवल उत्कृष्ट स्थान है परन्तु एक ऐसा स्थान भी है जिसे किसी भी आक्रमणकारी द्वारा अटक के समीप सिन्धु नदी को पार करने के प्रयत्न से पूर्व अपने अधिकार में करना आवश्यक है।" प्रथम तर्क को मैं एओरनास के नाम पर विचार विमर्श करते समय समाप्त कर चुका हूँ। दूसरी दलील मे दो बाते निश्चित हैं। प्रथम यह कि सिकन्दर ने अटक के स्थान पर सिन्धु नदी को पार किया था और इसलिये उसने सिन्धु नदी को पार करने से पूर्व अवश्य ही राजा होदी के दुर्ग पर अधिकार किया होगा। दूसरे यह कि वहाँ के निवासियों ने उसके नदी पार करने मे बाधा डालने के लिये एओरनास मे शरण ली थी। निश्चित ही यह तथ्य सही नही है क्योंकि एरियान ने हमें बताया है कि बजारिया के निवासियो ने "अपनी शक्ति मे अविश्वास के कारण अपनी सुरक्षा हेतु नगर से रातो-रात भाग कर एओरनास नाम की एक पहाड़ी पर चले गये थे। यह स्पष्ट है कि बजारिया के निवासी सिकन्दर का सामना करने के स्थान पर उसे टालने के इच्छुक थे जिससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि एओरनास वह स्थान नही था जिसे सिन्धु नदी पार करने के लिये सिकन्दर ने पुल हेतु चुना था और चूँकि सभी विवरण सिन्धु नदी पार करने से पूर्व सिकन्दर की गतिविधियों के स्थान को कोफीज अथवा काबुल नदी के उत्तरी भाग मे बताने मे सहमत है यह निश्चित प्रतीत होता है कि न तो एओरनास और न ही नावों का पुल अटक के आस-पास में था इन्हीं कारणों से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि राजा होदी के ध्वस्त दुर्ग को सिकन्दर के एओरनास के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। इसका नाम ही इस अनुरूपता को निषिध करने के लिये पर्याप्त है क्योंकि वहाँ के निवासी इसे राजा-दी-होदी अथवा होदी गढ़ी पुकारने में एकमत हैं और इस विशिष्ट नाम का एक भी अक्षर एओरनास के अक्षरो के समान नही है।

उपरोक्त सभी बातो पर सावधानी से विचार करने के पश्चात् मैं इस बात पर सन्तुष्ट हूँ कि हमे एओरनास को यूसफ जई मैदान के उत्तर पूर्वी किनारे पहाड़ियों की दिशा में इसी स्थान पर देखना चाहिये। वही वह स्थान हो सकता है जहाँ वहाँ के निवासी किसी आक्रमणकारी के आगमन पर शरण लेते रहे हो। इसी स्थान पर ही एक हमे पहाड़ी दुर्ग के मिलने की आशा करनी चाहिये जो सिकन्दर के इतिहासकारो के अतिश्योक्ति पूर्ण विवरण से कुछ समीपता प्राप्त कर सके और इसी स्थान पर ही इस विषय का अध्ययन करने वाले सभी व्यक्तियो के लगभग एक मतानुसार एओरनास को ढूंढना चाहिये।

सिकन्दर के इतिहासकारो द्वारा दिया गया विवरण प्रायः स्पष्ट तथा यथाकथा

विपरीत होता है परन्तु हम उन्हें एक दूसरे की व्याख्या से तुलना द्वारा सही कर सकते हैं। जहाँ वह सहमत हैं वहाँ हम विश्वासपूर्वक उनका अनुसरण कर सकते हैं क्योंकि ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि मूल लेखको मे जिनका उन्होने अनुसरण किया था विचार भिन्नता नहीं थी। भाग्यवश एओरनास पहुँचने से पहले की सिकन्दर को गतिविधियां का विवरण देते समय वह एकमत थे। एरिआन के अनुसार गुरायस नदी को पार करने के तुरन्त बाद सिकन्दर ने अस्साकेनी (अश्यक) की राजधानी मस्साग मे प्रवेश किया और उस पर अधिकार करने के पश्चात् उसने कोईनोस को बजारिया के विरुद्ध भेजा। कर्टियस ने इस स्थान को कोईग नदी कहा है और कोइनेस को बजारिया और सिकन्दर को मज़गाय के विरुद्ध जाते हुए बताया है। एरियान लिखता है कि चूँकि बजारिया मे उस समय भी विरोध हो रहा था अतः सिकन्दर ने उस ओर जाने का निश्चय किया परन्तु यह सूचना मिलने पर कि अनेक भारतीय सैनिक ओरा मे एकत्रित हो गये है—उसने अपनी योजना में परिवर्तन किया और उस नगर के विरुद्ध प्रस्थान किया जिसे उसने एक ही आक्रमण मे अपने अधिकार मे कर लिया। कर्टियस के अनुसार ओरा का घेरा पोलिसपरकन को सौंप दिया गया था जबकि स्वयं सिकन्दर ने अनेक छोटे नगरो पर अधिकार किया था जिनके निवासियों ने एओरनास में शरण ली थी। एरियान ने बजारिया के निवासियों को सुरक्षित एओरनास भागते हुए बताया है परन्तु वह कर्टियस के इस कथन से सहमत हैं कि अनेक पडोसी गाँवो के निवासियों ने उनका अनुसरण किया था। इस विवरण मे यह स्पष्ट है कि एओरनास बजारिया के आगे था तथा एरियान एवं कर्टियस के आगामी वर्णन से इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि एम्बोलिमा एओरनास से दूर तथा सिन्धु नदी पर था जहाँ टालमी ने इसे दिखाया है। इन सभी बातो पर विचार करने से मेरा विश्वास है कि बाजारिया, एओरनास तथा एम्बोलिमा को क्रमशः बाज़ार, रानीघाट तथा ओहिन्द बताया जा सकता है।

बाजार कालपान अथवा काला पानी नदी पर अवस्थित एक बडा गाँव है और रुस्तम नगर के समीप है। रुस्तम नगर एक पुराने विस्तृत टीले पर निर्मित है और इसे काफिरों अथवा हिन्दुओ के समय का बताया जाता है। प्रथा के अनुसार पुराने बाजार नगर का यही स्थान था। यह स्थान महत्वपूर्ण है क्योकि स्वात एवं सिन्धु नदियो के मध्य मे है अतः प्रागैतिहासिक काल से यह नगर स्वात की समृद्ध घाटी तथा सिन्धु एवं काबुल नदियो पर अवस्थित विशाल नगरों के बीच व्यापार केन्द्र रहा है। वस्तुतः बाजार नाम ही यह सिद्ध करने के लिये यथेष्ट है कि यह स्थान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। अतः स्थान के महत्व भाग से देखते हुए मैं बाजार को बजारिया का सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि स्वीकार करने का साहस कर सकता हूँ। परन्तु नाम एवम् स्थान दोनों में ही सिकन्दर द्वारा घेरे गये नगर मे इसकी ठीक-ठीक समानता से यह सम्भावना लगभग निश्चितता में बदल जाती है। दन्त लोक पर्वत की समीपता से इस सम्भा-

नता की पुष्टि होती है। दन्तलोक सम्भवतः पहाड़ियों की वही शृङ्खला है जिसे यूनानियों ने मोनटीज डायडालो कहा है। वर्तमान बोलचाल की भाषा में और साथ ही साथ प्राचीन पाली में दन्त शब्द का अनुस्वर बाद के अक्षरों में मिल जाता है जिससे यह दुगना हो जाता है जैसे दातुन शब्द मे। इसलिये यूनानी भाषा में पाली के दन्तलोक को डेडोलस मान लेना अति न्याययुक्त है। जस्टिन ने डेडालियन पर्वतों को रानी क्लियोफिस अथवा क्लियोफीज के राज्य का पार्श्ववर्ती कहा है। कर्टियस के अनुसार रानी क्लियोफिम मस्सग के राजा अस्साकना की माता (पत्नी के स्थान पर गलती से) थी। दन्तलोक पवत मे राजा सुदर्न की कन्दरा को—जैसा कि ह्वेनसांग ने लिखा है—मैं काशमीरी गार नाम की कन्दरा के समरूप बता चुका हूँ। काशमीरी गार बाजार से केवल आठ मील उत्तर-पश्चिम मे है। इन सभी समान परिस्थितियों मे मेरा निष्कर्ष यह है कि बाजार निश्चित ही सिकन्दर का बाजारिया था और ओहिन्द, एम्बोलिमा था जैसा कि मैं इसे इस प्रकार दिखाने का पहले ही प्रयास कर चुका हूँ।

रानी घाट के ध्वस्त दुर्ग को प्रसिद्ध एओरनास का सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि प्रस्तावित करते समय मैं यह स्वीकार करूंगा कि यह अनुरूपता अपूर्ण है। १८४८ ई० मे मैंने रानी घाट की लम्बाकार ऊँचाई मैदान से १००० फुट का अनुमान लगाया था और श्री लोईवैन्थल ने मेरे अनुमान की पुष्टि कर दी है। परन्तु एरियान द्वारा दी गई ११ स्टेडिया अथवा ६६७४ फुट की ऊँचाई की तुलना में यह ऊँचाई इतनी निरर्थक है कि यदि मैं यह विश्वास न करता कि इस ऊंचाई का बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है तो मुझे इसकी अनुरूपता स्वीकार करने के प्रयत्न मे हिचकिचाहट होनी चाहिए थी। फिलोस्ट्रेटस ने इसे १५ स्टेडिया कहा है और डीयोडोरस ने इससे भी अधिक अथवा ९७०८ फुट के बराबर १६ स्टेडिया बताया है क्योकि उसने इसके अधोभाग का व्यास केवल १०० स्टेडिया अथवा एरियान द्वारा दिये गये व्यास से आधा बताया है। मेरे विचार मे यह सम्भव है कि यह ऊंचाई प्रारम्भ मे उसी अनुपात में रही होगी जो १६ के स्थान पर ६ स्टेडिया अथवा ९७०८ फुट के स्थान पर ३६४० फुट पढ़ने से हम प्राप्त कर सकते हैं। कम से कम यह निश्चित है कि डियोडोरस की संख्याओ में एक एक संख्या अशुद्ध है क्योकि १०० स्टेडिया अथवा ६०६७५ फुट के व्यास से अधोभाग का व्यास १९२०० फुट अथवा ९७०८ फुट की उल्लिखित ऊंचाई मे दुगना हो जायेगा और उसकी ढलान ठीक ४५° हो जाती और पहाड़ी एरियान द्वारा बताये गये कृषि योग्य विशाल समतल भूमि के स्थान पर एक बिन्दु मात्र पर समाप्त होती। दोनों विद्वानों मे इतनी अधिक भिन्नता है और अतिशयोक्ति इतनी स्पष्ट है कि कोई भी सम्भव परिवर्तन बताना कठिन है जो प्रतिकूल आँकड़ो को समरूप बना सके और साथ ही साथ इन्हे सम्भव सीमाओं में ला सके। फिर भी मेरा विश्वास है कि हम न केवल छोटी संख्या को स्वीकार करने में सुरक्षित हैं वरन् लम्बाकार ऊंचाई के स्थान पर तिरछी

ऊँचाई को स्वीकार करने में भी हमें लाभ है। परन्तु इस छोटे मापदण्ड के होने पर भी भारतीय एओरनास तब भी जिब्राल्टर की प्रसिद्ध चट्टान की ऊंचाई से दुगने से भी अधिक होगा। जिब्राल्टर अधोभाग के व्यास में ७ मील है और ऊंचाई में १६०० फुट है।

ग्वालियर के प्रसिद्ध दुर्ग की समान स्थिति में भी हम देखते हैं कि प्रायः ठीक-ठीक लिखने वाले अङ्गरेज यात्री विलियम फिच ने इसका उल्लेख एक ढालवा विषम चट्टान पर अवस्थित दुर्ग के रूप में किया है जो व्यास मे ६ कोस अथवा कुछ लोगों के अनुसार ११ कोस था। क्योकि विलियम फिन्च ने कोस को राजकीय माप १½ मील के बराबर स्वीकार किया है अतः ग्वालियर दुर्ग के व्यास के बारे मे उसका अनुमान ६ मील अथवा ५ मील के वास्तविक व्यास से लगभग दुगना होगा। साथ ही साथ प्रचलित अनुमान सत्य से लगभग ४ गुना अधिक होगा फिर भी यह मान लेने से भिन्न-भिन्न आंकडो को समान बनाना सम्भव है कि कोस की बडी दर राजकीय कोस से सम्बन्धित थी और छोटी दर अकबर के कोस से सम्बन्धित थी परन्तु इस दिशा मे ग्वालियर दुर्ग के व्यास का अनुमान १४ या १५ मील अथवा तीन गुना अधिक हो जायेगा। मि० फिन्च ने ग्वालियर की ऊंचाई का उल्लेख नही किया है परन्तु उसने इतना अवश्य लिखा है कि नारवार दुर्ग की खड़ी चढ़ाई लम्बाई में एक मील से अधिक थी जो सत्य से दुगना है। यहाँ यात्री ने दुर्ग की दुर्गम चढ़ाई के कारण मात्र से ऊंचाई को बढ़ा दिया है परन्तु एओरनास के सम्बन्ध मे यूनानियो के पास अतिशयोक्ति के लिये अपनी कीर्ति को बढा-चढ़ा कर दिखाने की स्वाभाविक इच्छा के साथ-साथ उद्देश्य भी था। मेरे विचार मे इसी कारण से दिवोडोरस के १६ स्टेडिया और एरियान के ११ स्टेडिया के अन्तर का सम्भव उत्तर ढूँढा जा सकता है। दिवोडोरस ने सम्भवतः इसे सही आंकडो से तिगुना अथवा चौगुना कर दिया था जबकि एरियान ने इसे केवल दुगना अथवा तिगुना किया था। इस व्याख्या से दोनो आंकडे या तो ४ तथा ३⅔ स्टेडिया अथवा ५ और ५½ स्टेडिया बन जायेंगे या २३०० फुट से ३४०० फुट हो जायेंगे जो तिरछी ऊंचाई का अति सम्भव माप स्वीकार किया जा सकता है। इसी प्रकार व्यास को ५० स्टेडिया तक कम किया जा सकता है जो ५¾ माल अथवा ३०३०० फुट के बराबर अथवा ग्वालियर दुर्ग के चारों ओर सड़क के व्यास से अधिक है। १६०० फुट के अधोभाग सहित २३०० फुट की तिरछी ऊंचाई से १२०० फुट की लम्बाकार ऊँचाई अथवा प्रत्येक ३ फुट के पीछे २ फुट की चढ़ाई प्राप्त होती है। इन आंकड़ों में भिन्नता के सम्भावित उत्तर के रूप मे घटाने के तरीके का प्रस्ताव नहीं करना चाहता परन्तु मैंने केवल दोनों विद्वानों के आंकडो मे स्पष्ट अतिशयोक्ति ढूँढने का सम्भव उपाय प्रस्तावित करने का साहस किया है।

एओरनास के सम्बन्ध मे सभी विवरण इसे अधिक ऊँचाई एक दुर्गम पहाड़ी के रूप में उल्लेख करने में सहमत हैं। मिस्टर जस्टिन ने इसे "एक अत्यधिक विषम तथा

उन्नत चट्टान" कहा है। डियोडोरस, स्ट्रैबो, एरियन, कर्टियस तथा फ़िलास्ट्रेटस सभी ने इसे "चट्टान दुर्ग" कहा है। अतः चट्टानी दुर्गमता एओरनास का एक विशेष लक्षण था। एरियन के अनुसार "इस पर केवल हाथ के बनाये गये कठिन मार्ग से चढ़ा जा सकता था और इसके शिखर पर शुद्ध जल का एक तालाब था और १००० व्यक्तियों के लिये कृषि योग्य भूमि थी। अन्तिम विचार भारत में अभी भी भूमि के 'कृषि भाग' के रूप मे प्रचलित है और इसका अर्थ केवल इतनी भूमि है जितना एक व्यक्ति एक दिन मे जोत सकता है। इसी प्रथा को यूनानियो एव रोमनो मे योक्त शब्द से व्यक्त किया जाता था। प्रतियोक्त केवल इतना ही स्थान था जिसे एक बैलो की जोडी एक दिन मे जोत सकती थी। इस प्रकार भूमि का सबसे छोटा भाग १०० फुट के वर्ग अथवा १०००० वर्ग फुट से कम नही रहा होगा जो हमे १०००००० वर्ग फुट अथवा १००० व्यक्तियो के कृषि भाग का संकेत देगा। इससे हमे लम्बाई मे ४००० फुट तथा चौडाई मे २५०० फुट अथवा मकानो आदि का स्थान छोडने पर लम्बाई मे १ मील और चौडाई मे ½ मील का स्थान प्राप्त होगा जो ठीक ग्वालियर के बराबर है और यदि ग्वालियर के समान विस्तृत दुर्ग किसी भी समय भारत की पश्चिमी सीमाओ मे रहा होता तो निश्चित ही प्रारम्भिक मुस्लिम आक्रमणकारियो के ध्यान से बाहर न रहता और जनरल कोर्ट तथा जनरल एबाट के सूक्ष्म अन्वेषणो से शायद ही बच सकता था। अतः भूमि के १००० कृषि भाग को सिकन्दर के अनुयायियो द्वारा अपने स्वामी के अभियान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से की गई एक अन्य अतिशयोक्ति समझता हूँ। मैं एक दुर्गम मार्ग एव शुद्ध जल के सोते को एक सुदृढ़ सैनिक दुर्गबन्दो की दो आवश्यकताओ की प्राप्ति के रूप मे स्वीकार करता हूँ परन्तु मैं कृषि योग्य भूमि के १०० कृषि भागो की उपस्थिति को निस्सकोच अस्वीकार करता हूँ। इस अस्वीकृति का कारण यह है कि इस ऊपर जिले की पहाडियो पर यदि किसी भी समय ½ मील का कृषि योग्य विस्तृत क्षेत्र होता तो मैं यह विश्वास नही कर सकता कि इतने महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान स्थान को कभी त्याग दिया जाता।

ऐसे स्थान का ढूंढने मे जो एओरनास के सामान्य विवरण का उत्तर दे सकता है दुर्भाग्यवश हमारा क्षेत्र कुछ हो स्थानों तक सीमित है जहाँ यूरोपीय जा चुके है। महाबन पर्वत के दावे पर हम विचार कर चुके है और अन्य सम्भव स्थान जिनका मुझे ज्ञान है वह निम्न प्रकार से हैं:—

(१) तख्त-ए-बाही का जजर नगर।
(२) करमार की अकेली उन्नत पहाड़ी।
(३) पंजपीर की पहाडी।
(४) रानीघाट का जर्जर दुर्ग।

इसमे पहला स्थान हस्तनगर तथा बाजार के बीच लगभग आधे मार्ग पर है।

मि० लोईवैन्थल ने इसे बहुत ही कम ऊँचाई की एक ऊसर पहाड़ी कहा है जो एक वर्ग के तीन भाग बनाती है जिस वर्ग का चौथा भाग उत्तर-पश्चिम की ओर खुला हुआ था। त्रिकोणमीति सम्बन्धि-सर्वेक्षण मानचित्रो से तख्त-ए-बाही समुद्र से केवल १८५६ फुट अथवा यूसफ जई मैदान से ६५० फुट ऊपर है। मि० लोईवैन्थल ने चढ़ाई को भी सरल बताया है और क्योंकि यह स्थान सिन्धु नदी के निकटतम बिन्दु से ३५ मील से कम नही है मेरे विचार मे उन्नत एव दुर्गम मार्ग के उल्लेख से सहमत न होने के कारण तथा एम्बोलिया के सम्भावित स्थान से एक दम दूर होने के कारण इसे तुरन्त अस्वीकार कर देना चाहिये।

करमार की अकेली एव उन्नत पहाड़ी का स्थान बाजार से ६ मील दक्षिण पूर्व मे था तथा ओहिन्द से केवल १८ मील उत्तर, उत्तर-पश्चिम समुद्र से ३४८० फुट अथवा यूसफ जई मैदान से २२८० फुट की ऊँचाई पर था। यदि इस स्थान पर मकानो आदि के कुछ भी अवशेष मिलते तो यह स्थान एओरनास का मुख्य दावेदार होता परंतु करमार पहाडी केवल एक उन्नत पर्वत पृष्ट है जहाँ न तो किसी भवन आदि के अवशेष प्राप्त हुए हैं और न जन-साधारण की प्रथाओ मे इस स्थान का नाम ही आता है। पजशीर की पहाडी भी इसी प्रकार परन्तु छोटा पर्वत पृष्ट है जो समुद्र से २१४० फुट अथवा यूसफ जई मैदान से ६४० फुट की ऊँचाई तक है। यह केवल नोकीला पर्वत पृष्ट है जिसके ऊपर एक अकेला भवन है जिसे पजपीर अथवा मुसलमानों के पाँच महान् सन्यासियो के नाम पर उत्सर्ग किया गया है। इन सन्तों मे प्राचीन सन्यासी, मुल्तान का बहाउद्दीन जकरिया भी सम्मिलित था जिसे साधारणतय: बहावल हक्क के नाम से पु ारा जाता था। परन्तु हिन्दुओ का विश्वास है कि मुख्यतः यह स्थान महाभारत के पच पाण्डव अथवा (पाँच पाण्डव) भ्राताओ से सम्बन्धित था।

अन्तिम सम्भावित स्थान जिसका मुझे ज्ञान है रानी घाट का जर्जर दुर्ग है। जनवरी १८४८ मे मैं इस स्थान पर गया तथा १८६३ के अ ाने दोरे में मैंने पुन: इस स्थान पर जाने का विचार किया था परन्तु बुनेर सीमा पर युद्ध के कारण दुर्भाग्यवश मैं अपना अभिप्राय पूरा न कर सका। अतः १८४८ मे एकत्रित की गई सूचना से और अधिक सूचना नही दे सकता और चूँकि उस विवरण को छापा नहीं गया था और न ही उस समय मे मि० लोईवैन्थल को छोड़ अन्य कोई भी व्यक्ति उस स्थान पर गया है अत: मेरे विवरण को अभी भी नवीनता का महत्व प्राप्त होगा।

रानीघाट नोग्राम गाँव से ऊपर एक उन्नत पहाड़ी पर अवस्थित है जो बाजार से १२ मील दक्षिण-पूर्व तथा ओहिन्द से १६ मील उत्तर में है। अतः इसकी स्थिति एओरनास के अनुरूप होने के पक्ष में है। यह पहाड़ी महाबन पर्वत माला के लम्बे उभरे भाग मे अन्तिम बिन्दु है। इसका अधोभाग उत्तर से दक्षिण लम्बाई में दो मील से अधिक है और चौड़ाई में यह लगभग आधे मील का चौड़ा क्षेत्र है। परन्तु पहाडी

का शिखर लम्बाई में १२०० फुट और चौड़ाई मे ८०० फुट से अधिक नहीं है। १८४८ ई० में मैंने इसकी ऊँचाई १००० फुट आँकी थी परन्तु जन-साधारण का दृढ़ विचार है कि यह पंजपीर से ऊँचा है और इसी कारण मेरा विचार है कि सम्भवतः यह १२०० फुट से कम नही है। पहाड़ी के किनारे विशाल पत्थरो की भारी पक्तियो से ढँके हुए हैं जो इसे अत्यधिक विषम एवं दुर्गम बना देते हैं, चट्टानों मे बनाई हुई और शिखर की ओर जाती हुई केवल एक ही सड़क है और अधिक नही तो कम से कम दो अति कठिन मार्ग हैं जो ऊपर की ओर जाते हैं। हम जानते है कि एओरनास का स्थान भी ऐसा था जहाँ एक विषम एवं भयानक मार्ग से टालमी शिखर पर पहुँचने मे सफल हुआ था जबकि स्वयं सिकन्दर ने हाथ से बनाये हुये एक सुनिश्चित मार्ग से इस स्थान पर आक्रमण किया था। रानीघाट ५०० फुट लम्बा एवं ४०० फुट चौड़ा एक दुर्ग युक्त स्थान बताया जा सकता है। यह पूर्व को छोड़ अन्य सभी ओर से एक पथरीले पर्वत पृष्ट से घिरा हुआ है जो उत्तर मे समान ऊँचाई तक उठ जाता है। पूर्व मे यह महाबन के निचले उभरे भाग से ऊपर उठता है। चारो ओर दुर्ग की चट्टानो को खरोंच-खरोंच कर चमकाया गया है और दो किनारो पर यह गहरे गड्ढो के कारण आस-पास के पर्वत पृष्ठ से अलग हो गया है। यह खण्ड उत्तर मे १०० फुट गहरे और पश्चिम में ५० से १५० फुट गहरे हैं। दुर्ग के उत्तर-पश्चिमी कोण पर खण्डो के आर-पार दो बाँध बना दिये गये हैं, जो पानी के बहाव को रोकने और इस प्रकार पश्चिम के खोखले स्थान मे एक बड़ा जलाशय बनाने के विचार से बनाये गये प्रतीत होते हैं। उत्तर के खण्डों मे दुर्ग तथा रानीघाट नाम की विशाल अकेली चट्टान के बीच तीन वर्गाकार कुएँ हैं। मैंने सोचा था कि उत्तर पूर्व मे कुछ स्थान नीचे मै एक अन्य बाँध की खोज कर सकता हूँ जो सम्भवतः बाह्य रक्षा पक्ति का अवशेष मात्र था। इस बाह्य पक्ति का पूर्ण व्यास लगभग ४५०० फुट अथवा एक मील से कुछ कम है।

मि० लोईवैन्थल ने दुर्ग का विवरण इस प्रकार दिया है, "पहाड़ा का शिखर छोटे आकार के एक समतल समस्थल को दर्शाता है जिसे सभी ओर किनारो पर मकानो द्वारा दृढता से सुरक्षित कर दिया गया था। यह मकान बड़ी सफाई से काटे गये पत्थरों की बड़ी-बड़ी ईंटों से बनाये गये हैं। इन ईंटो को बड़ी सावधानी के साथ लगाया गया है और उन्हे नियमानुसार स्थिर किया गया है। इनको जोड़ने के लिये उत्तम सीमेण्ट का प्रयोग किया गया है। बड़े बड़े पत्थरों के बीच अनिवार्य रूप से पड़ जाने वाली दरारों को छोटी पथरीली कङ्कणी की पतली तह से भर दिया गया है। मैंने सिन्धु नदी के उस पार तथाकथित काफरो के जितने भी भवन देखे हैं उन सभी में पथरीली कङ्कणी से दरारों को भरने की प्रथा एक अनिवार्य लक्षण बन गई थी।" इस व्याख्या मे मैं यह जोड़ देना चाहता हूँ कि पत्थरों के समूहों को आड़े तिरछे अर्थात् क्रमशः लम्बाई मे और चौड़ाई मे इतनी सावधानी से रखा गया है कि देखने वालो को

विशाल दीवारें अत्यधिक आकर्षक प्रतीत होती है। सभी मकान अब जर्जर अवस्था में है परन्तु बाह्य दीवारें को अब भी चारों ओर देखा जा सकता है। दक्षिण एवं पश्चिमी भाग में अब भी यह इमारतें काफी ऊँची खड़ी हैं और अत्यधिक अच्छी दशा में हैं। मुख्य द्वार जो दक्षिण पश्चिमी भाग पर हैं पत्थरों को एक दूसरे के ऊपर रखने के सामान्य प्राचीन ढङ्ग से बनाया गया है। निकास मार्ग दीवार के समानान्तर नहीं है परन्तु कुछ दूरी तक यह विशेष रूप से दाहिनी ओर झुका हुआ है। तत्पश्चात् यह बाईं ओर एक बन्द कमरे की ओर मुड़ जाता है और तब पुनः खुले आंगन में पहुँचने तक यह दाहिनी ओर मुड़ जाता है। शुरू में इस सम्पूर्ण निकास मार्ग को क्रमानुसार तिरछे किये गये पत्थरों की पंक्तियों से छत दिया गया था। इन पथरो को एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार रखा गया था कि इनसे एक नोकदार मेहराब के दो किनारे बन सकें। परन्तु पथरों की ऊपरी पंक्ति को सीधा छोड़ दिया गया है अतः मेहराब की नोक समकोण चोटी के समान जान पड़ती है। इस विशेषता की ओर मि० लोईवैन्यल का ध्यान भी आकर्षित हुआ था जिनका कथन है कि "मेहराब नोकली होना चाहिये था परन्तु मध्य मे समकोणीय नाली सी बन गई है।" पश्चिमी भाग में भी मैंने इसी प्रकार का एक मार्ग देखा था परन्तु इस स्थान पर इतना अधिक मलबा इकट्ठा हो गया था कि मैं इसके जाने का रास्ता नहीं ढूंढ सका।

मूल्यवान भवनों से घिरे हुए खुले आंगन सहित यह केन्द्रिय गढ़ अथवा दुर्ग मेरे विचार मे राजा का महल था जिसमे सामान्य रूप से पूजा गृह की भी व्यवस्था की गई थी। उत्तर की ओर मैंने एक अन्य समस्थल की ओर जाती हुई सीढ़ियो की खोज की थी और यह समस्थल मेरे विचार मे राजमहल अथवा दुर्ग का बाह्य आंगन रहा होगा। ऊपरी आंगन २७० फुट लम्बा और १०० फुट चौड़ा है और निचला आंगन सीढ़ियों सहित भी ऊपरी आंगन का आधा है अर्थात् १३० फुट लम्बा और १७० फुट चौड़ा। इन सभी खुले भागो मे सभी आकार की तथा सभी अवस्था मे टूटी-फूटी मूर्तियां फैली हुई थी। इनमे अधिकांश शिक्षक के रूप में बुद्ध की मूर्तियाँ थी। जिनमे बुद्ध को बैठे हुए एव खड़े हुए दिखाया गया था। कुछ एक सन्यासी बुद्ध की मूर्तिया थी जिनमें बुद्ध को पवित्र पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ दिखाया गया है और उनमे कुछ मूर्तियाँ बुद्ध की माता माया की थी जो साल वृक्ष के नीचे खड़ी थी। परन्तु वहाँ पर कुछ अन्य मूर्तियों के टुकड़े भी थे जो प्रत्यक्ष रूप से धर्म से सम्बन्धित नहीं थीं। उदाहरणार्थ जञ्जीरो के कवच में मनुष्य की एक विशालकीय मूर्ति, एक मनुष्य के नंगे शरीर की मूर्ति जिसके कन्धों पर यूनानी वस्त्र अथवा एक छोटा अङ्गरखा बनाया गया था। वहाँ एक मानवीय वक्षस्थल भी था जो आंशिक रूप से यूनानी अङ्गरखे से ढंका हुआ था और उसके गले में हार सुशोभित था। इस हार की कुण्डियों के स्थान पर दो मानव सिर वाले परन्तु परों एवं चार टाँगों वाले पशु बनाये गये थे। यह पशु उस पौराणिक प्राणी के समान

थे जिसके कमर के नीचे का भाग घोड़े का तथा ऊपरी भाग मनुष्य के समान माना जाता था। इन सभी मूर्तियों का निर्माण कोमल तथा गहरे नीले रङ्ग की मिट्टी की (पट्टिकाओ) पर किया गया था जिस पर सरलता पूर्वक चाकू से काम किया जा सकता था। यह अत्यधिक चमकीली मूर्तियां है और इसी कारण मूर्ति विरोधी मुसलमानो ने इन्हें तोड़ दिया था। क्योंकि इस मिट्टी की तख्तियो का समतल पालिश द्वारा सरलता पूर्वक चमकाया जा सकता था अतः इन मूर्तियो के टुकडे आज भी अच्छी हालत मे हैं। मैंने जितनी भी मूर्तियां वहाँ देखी थी उनमे बुद्ध की प्रतिमा सर्वोत्तम थी जिसके सिर पर घने केश थे जिन्हे सामान्य नियमानुसार घुँघराले बनाने के स्थान पर विशेष ढङ्ग से लहराते हुए दिखाया गया है। उत्तम ढङ्ग से तराशे गये नयन नक्शो से घने शान्त मुखड़े की यूनानी कला-कृतियो से तुलना करना असङ्गत न होगा परन्तु चेहरे की सुन्दरता, गोल उभडी हुई भारतीय ढङ्ग की ठुड्ढी के कारण विक्षिप्त सी हो गई है।

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि रानी घाट की पहाडी चारो ओर पत्थर के विशाल समूहों से ढँकी हुई हैं जिनके कारण ऊपर जाने का मार्ग अत्यधिक विषम एवं ऊँचा-नीचा बन गया था। इन पत्थरो मे कुछ पत्थर बहुत बडे आकार के हैं और शिखर पर पडे कुछ पत्थरो को खोखला कर कुछ तहखाने अथवा मठ बना दिये गये थे। श्री लोईवैन्थल ने इन अवशेषो मे इन तहखानो को "अति विलक्षण चिह्न" कहा है। अधिकांश तहखाने अन्दर से पूर्णतयः साधारण है परन्तु कुछ तहखानो मे एक अथवा दो रोशनदान भी हैं। खुदाई मे निकाली गई इन गुफाओ मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुफा दुर्ग के पश्चिम मे पहाड़ी के पृष्ठ-भाग पर है। जन-साधारण मे यह कन्नोकर अथवा "अन्न व्यापारी के घर" के नाम से जाना जाता था परन्तु मैं इस चट्टान के सम्बन्ध मे प्रवेश द्वार के छोटे आकार को छोड़कर अन्य कोई भी ऐसी सूचना प्राप्त नही कर सका जो इस बात का संकेत दे सके कि यह गुफा मूल रूप में किस उद्देश्य से बनाई गई थी। यह द्वार निश्चित ही एक व्यापारी की दुकान के स्थान पर एक भिक्षु के मठ के अधिक अनुकूल था। श्री लोईवैन्थल ने इस बात का उल्लेख किया है कि, "पहाड़ी पर प्राप्त वनस्पति में जैतून के वृक्ष अथवा मेहदी के पेड़ प्रमुख थे परन्तु १८४८ ई० मे इस पहाडी के शिखर पर बडे-बडे वृक्ष प्रचुर मात्रा मे पाए गये थे।

मै रानी घाट की पहाड़ी तथा एओरनाम की अनुरूपता पर अधिक जोर नही देना चाहता परन्तु यदि हम यह स्वीकार कर ले कि इतिहासकारो के विवरण अधिकतर अतिशयोक्ति पूर्ण हैं तो मेरा विचार है कि रानीघाट के अवशेष अन्य स्थानों जिनका मुझे ज्ञान है—की उपेक्षा एओरनास के प्राप्त अस्पष्ट विवरण से अधिक मिलते है। विस्तार को छोड़ अन्य सभी आवश्यक बातों मे इन दोनो स्थानों मे आश्चर्यजनक समानता है। बाजार तथा ओहिन्द अथवा बाजारिया तथा एम्बालिमा के मध्य इसकी ऐसी स्थिति है जिस पर किसी प्रकार आपत्ति नही की जा सकती। राजा वर से सम्बन्धित

होने के कारण यह सम्भव प्रतीत होता है कि इस स्थान का नाम राजा के नाम पर रखा गया हो। इस नाम से यह स्थान यूनानियों के एओरनास के अधिक समीप हो जाता है। इसकी अत्यधिक ऊँचाई, ऊंचा नीचा रास्ता, मार्ग की विषमता, चट्टानों में काट-काट कर बनाया गया मार्ग, पानी का तालाब एवं समतल भूमि तथा दुर्ग की वाह्य दीवार से अलग करने वाली गहरी खाई आदि अनेक ऐसी बातें है जिनसे दोनों स्थानो की अनुरूपता का आभास होता है और यदि इन दोनो के विस्तार में अधिक भिन्नता न होती तो मैं इन स्थानो की अनुरूपता को स्वीकार कर लेता। यद्यपि इस सम्बन्ध मे यह स्थान यूनानियो के गर्वित विवरण के अनुरूप नहीं है फिर भी हमें स्ट्रैबो के इस विचार को नहीं भूलना चाहिये कि सिकदर के मिथ्या प्रशासकों ने एओरनास पर अधिकार के विवरण को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा था। यह बात भी याद रखनी चाहिये कि असाकनस के विरुद्ध अभियान "शीतकाल में" किया गया था तथा यूनानियों ने "बसंत ऋतु के प्रारम्भ में" तक्षशिला में प्रवेश किया था। अतः एओरनास का घेरा निश्चित ही शीतकाल के उस समय में डाला गया था जब समुद्र से ७४७१ फुट ऊँचे महाबन पर्वत एवं उसकी ऊँचाई के अन्य सभी पर्वतों पर बर्फ पड़ी हुई थी। अतः यह प्रायः निश्चित है कि यूसफ जाई मैदान से ११ स्टेडिया अथवा ६६७४ फुट की तथाकथित ऊँचाई भी जो समुद्र से ७८७४ फुट की ऊँचाई के बराबर है—अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण थी। देश के इस भाग मे समुद्र से ४००० फुट अथवा यूसफ मैदान से २८०० फुट की ऊँचाई के सभी स्थानों पर प्रतिवर्ष हिमपात होता है। यूनानियों ने इस बात का उल्लेख किया है कि उन्होने शीतकाल मे बर्फ देखी थी परन्तु कहीं भी एओरनास में हिमपात का उल्लेख नही किया गया। अतः मेरा विचार है कि इस सम्बन्ध में उन (यूनानियों) के मौन को एओरनास की कथित ऊँचाई के विरुद्ध पूर्णतः निश्चित समझना चाहिये। इसी कारण महाबन एवं ४००० फुट से ऊँची अन्य पहाडियों के दावे के भी विरुद्ध समझना चाहिये। सभी प्राचीन लेखक एओरनास का एक चट्टान के रूप में उल्लेख करने मे सहमत हैं। इस चट्टान को विषम, सीधी खडी हुई एवं हाथ से बनाये एक मात्र मार्ग वाली पहाडी बताया गया है। अतः महाबन पर्वत प्राचीन विवरण की किसी भी बात से नहीं मिलता। यह (महाबन) एक विशाल पर्वत है जिस पर आपेक्षाकृत सरलता से चढ़ा जा सकता है और सिकन्दर के मिथ्या प्रशंसकों के सर्वोधिक अतिश्योक्ति पूर्ण अनुमान के दुगने विस्तार से भी अधिक है। एओरनास के नाम से इसके नाम की भी कोई समानता नहीं है जबकि रानीघाट से सम्बन्धित राजा वर की कथा से रानीघाट को एओरनास के स्थान मे सम्बन्धित बताया जा सकता है।

"परशावर अथवा पेशावर"

वर्तमान पेशावर के विशाल नगर का सर्व प्रथम उल्लेख ४०० ई० मे फाहियान

ने फो-ल्यू-शा के नाम से किया था। तत्पश्चात् सुंग-युन ने ५०२ ई० में इसका उल्लेख किया है। उस समय गांधार के राजा एवं किपिन अथवा कोफीन अर्थात् काबुल एवं गजनी तथा आस-पास के जिलों के राजा में युद्ध हो रहा था। सुंग-युन ने नगर के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसने इसे राजधानी बताया है तथा इस स्थान पर किया-नी-स्ती-किया, अथवा सम्राट कनिष्क के विशाल स्तूप का उल्लेख इसकी पहचान के लिए पर्याप्त है। ६३० ई० में ह्वेनसांग की यात्रा के समय राज परिवार प्रायः लुप्त हो चुका था तथा गान्धार राज्य कपिसा अथवा काबुल राज्य का आश्रित था परन्तु राजधानी परशावर जिसे ह्वेनसांग ने पु-लु-शा-पु-लो कहा है उस समय भी विस्तार में ४० ली अथवा ६⅔ मील का विशाल नगर था। तत्पश्चात् दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों में मसूदो तथा अब्बुरिहान ने परशावर के नाम से इसका उल्लेख किया था तथा १६ वीं शताब्दी में बाबर ने अपने बाबरनामा में पुनः इसी नाम से इसका बार-बार उल्लेख किया है। इसका आधुनिक नाम हमें अकबर से प्राप्त हुआ है जिसने नवीन परिवर्तन में अनुराग के कारण इसका नाम प्राचीन परशावर के स्थान पर बदल कर पेशावर अथवा "सीमान्त नगर" रखा था क्योंकि उसे परशावर शब्द के अर्थ का ज्ञान नहीं था। अबुलफजल ने दोनों नामों का उल्लेख किया है।

हम देख चुके हैं कि ईसा की प्रथम शताब्दियों में बुद्ध का भिक्षा पात्र पेशावर के स्थान पर पूजा की महान् वस्तु मानी जाती थी। नगर के दक्षिण पूर्व में ८ अथवा ६ ली अथवा १⅓ मील की दूरी पर पवित्र पीपल का वृक्ष एक अन्य प्रसिद्ध स्थान था। यह वृक्ष लगभग १०० फुट ऊँचा था जिसकी शाखायें चारों ओर फैली हुई थी। जन-श्रुतियों के अनुसार शक्य बुद्ध ने इसी वृक्ष की छाया में बैठकर महान् सम्राट कनिष्क के प्रकट होने की भविष्यवाणी की थी। फाहियान ने इस वृक्ष का उल्लेख नहीं किया है परन्तु सुंग-युन ने फो-थी अथवा बोधी वृक्ष के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसकी "शाखायें चारों ओर फैली हुई थी तथा जिसके पत्तों ने आकाश को ढक लिया था।" इस वृक्ष के नीचे पिछले चार बुद्धो की चार मूर्तियाँ थी। सुंग-युन ने आगे लिखा है कि यह वृक्ष सम्राट कनिष्क द्वारा उस स्थान पर लगाया गया था जहां उसने विशाल स्तूप की मुक्ताफल की महीन जाली सहित एक पीतल का बर्तन छिपाया था क्योंकि उसे इस बात का भय था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् स्तूप से इस जाली को निकाल लिया जायेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १५०५ ई० में बाबर ने इसी वृक्ष को देखा था क्योंकि उसने इसे बेग्राम का "अद्भुत वृक्ष" कहा है और इसे देखने के लिये वह तुरन्त ही वहाँ चला गया था। उस समय यह वृक्ष १५०० वर्ष से कम पुराना नहीं रहा होगा और चूँकि १५९४ में पेशावर के स्थान पर 'गोर कोठरी' का उल्लेख करते समय अबुल फज़ल ने इस वृक्ष का उल्लेख नहीं किया अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह वृक्ष आयु एवं क्षय के कारण उस समय से पूर्व ही लुप्त हो गया था।

कनिष्क के बृहद् स्तूप का सभी तीर्थ यात्रियों ने उल्लेख किया है। यह स्तूप पवित्र वृक्ष के समीप ही दक्षिण की ओर था। ५०० ई० में फाहियान ने लिखा है कि यह स्तूप ४०० फुट ऊँचा था और मूल्यवान वस्तुओं से सुसज्जित था। इसी प्रसिद्धि के कारण इस स्तूप को भारत के अन्य स्तूपों से श्रेष्ठ माना गया है। एक शताब्दी बाद सुँग-युन ने घोषणा की थी कि "देश के पश्चिमी भाग के सभी स्तूपों में यह स्तूप सर्व प्रथम था।" अन्त में ६३० ई० में ह्वेनसांग ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह स्तूप ४०० फुट से अधिक ऊँचा था। तथा परिधि में यह स्तूप १¼ ली अथवा एक चौथाई मील के बराबर था। इस स्तूप में बुद्ध के अवशेष प्रचुर मात्रा में थे। इस विशाल स्तूप का अब कोई भी अवशेष नहीं रहा।

स्तूप के पश्चिम में कनिष्क द्वारा ही बनवाया हुआ एक पुराना मठ था जो ईसा काल के प्रारम्भ में आचार्य पर्शिवक, मनोरहित तथा वासुबन्धु नामक बुद्ध धर्म के तीन नेता अथवा प्रचारकों की प्रसिद्धि के कारण बौद्ध धर्मावलम्बियों में प्रसिद्ध हो गया था। इस मठ के बुर्ज एवं बरामदे दो मंजल ऊँचे थे परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय यह भवन अत्यधिक जर्जर अवस्था में था फिर भी इस मठ में कुछ बौद्ध भिक्षु रहा करते थे जो बुद्ध धर्म के साधारण सिद्धान्तों का अनुकरण करते थे। नवीं तथा दसवीं शताब्दी में यह स्थान उस समय भी समृद्ध था जब मगध के वीरदेव को "कनिष्क के विशाल विहार में भेजा गया था। इस विहार में बौद्ध धर्म के सर्व श्रेष्ठ शिक्षक मिलते थे तथा यह स्थान वहाँ आने वालों को शान्ति प्रदान करने के लिये प्रसिद्ध था।" मेरा विश्वास है कि यह विशाल मठ बाबर तथा अकबर के समय में भी "गार कोठरी" अथवा बनिया के घर के नाम से वर्तमान था।

बाबर ने लिखा है कि "मैंने गढ़ कोठरी की प्रसिद्धि सुनी है जो हिन्दू जोगियों का पवित्र स्थान था जो दूर-दूर से इस गढ़ कोठरी में आकर अपने सिर एवं दाढ़ी मुड़वा देते थे।" अबुल फजल का विवरण उपरोक्त विवरण से छोटा है। पेशावर का का उल्लेख करते समय उसने लिखा है कि "यहाँ एक मन्दिर है जिसे गढ़ कोठरी कहा जाता है और धार्मिक आश्रय, विशेषतयः जोगियों के आश्रय का स्थान है।"

उद्यान अथवा स्वात

उतखण्ड छोड़ने के बाद ह्वेनसांग ने यू-चांग-न अथवा उद्यान तक उत्तर की ओर लगभग १०० मील की यात्रा की थी। यू-चांग-न, सू-पो-फा-सू-तू (१) अर्थात शुभ वस्तु अथवा संस्कृत के सुवस्तु, एरियन के स्वास्तस तथा वर्तमान सुआत (स्वात)

(१) युआन-च्वांग ने लिखा है कि सू-पो-फा-सू-तू (शुभवस्तु, सुवस्तु अथवा स्वात नदी) के साथ-साथ १४०० संघाराम थे। वर्तमान अवशेषों को देखकर हम कह सकते हैं कि इस कथन में कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

नदी के तट पर अवस्थित था। पूर्ववर्ती तीर्थ यात्रियों फाहियान तथा सुँग-युन ने इसे यू-चङ्ग कहा है जो उज्जैन तथा पाली के उद्यान की प्रायः नकल है। देश को अधिक उपजाऊ एवं सिंचाई युक्त प्रदेश कहा गया है। यह विवरण उन सभी स्थानीय विवरणों के समान है जिनके अनुसार स्वात केवल दूर-दूर तक प्रसिद्ध काश्मीर की घाटी से द्वितीय है। ह्वेनसांग ने उद्यान को व्यास में ८३३ मील बताया है। यदि हम स्वात नदी की सभी सहायक नदियों को सम्मिलित कर ले तो यह व्यास वास्तविक व्यास के समीप होगा। एतएव उद्यान की सीमाओ मे बुनीर, स्वात, बिजावर तथा पञ्जकोर के आधुनिक चार जिले सम्मिलित रहें होंगे। मानचित्र पर सीधे माप से इन जिलों का व्यास केवल ५०० मील है परन्तु सडक की दूरी से यह व्यास ८०० मील से कम नही है। फाहियान ने सू-फो-तो- का उल्लेख उद्यान के दक्षिण में एक छोटे जिले के रूप मे किया है। इसे प्रायः स्वात नाम से सम्बन्धित किया गया है परन्तु उद्यान के दक्षिण तथा परशावर के उत्तर मे अपनी स्थिति के कारण यह क्षेत्र स्वात नदी की विशाल घाटी नही हो सकता परन्तु बुनीर की छोटी घाटी तक ही सीमित रहा होगा। फाहियान द्वारा बाज तथा कबूतर की कथा से इसकी पुष्टि होती है। जिस (कथा) मे कबूतर की रक्षा के लिए बुद्ध ने अपना मांस काट कर बाज का दे दिया था। ह्वेनसांग ने भी इसी कथा का उल्लेख किया है परन्तु उसने इस घटना के स्थान को महाबन पर्वत के उत्तर पश्चिमी अधोभाग पर बताया है अर्थात् बुनीर की वास्तविक घाटी मे यह घटना हुई थी। उसने यह भी लिखा है कि बुद्ध उस समय शी-पी-किया-अथवा सिविल नाम का राजा था। सम्भवतः यह नाम फाहियान के सूहोतो का वास्तविक रूप हो सकता है।

उद्यान की राजधानी को मुँग-की-ली अथवा मङ्गल कहा जाता था। सम्भवतः यह नाम मि० विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगलबेग का मङ्गोर तथा जनरल कोर्ट के मानचित्र का मङ्गलोर है। यह नगर व्यास मे २३/४ मील था एवं अधिक जनपूर्ण था। राजधानी के उत्तर-पूर्व ४२ मील की दूरी पर तीर्थ यात्री नागराज अपलाला की झील अथवा शुभ वस्तु नदी के उदगम स्थान पर पहुँचा था (१) और उसी दिशा मे १२५ मील आगे एक पर्वत माला को पार करने के बाद सिन्धु नदी के पास वह था-ली लो-अथवा दरेल पहुँचा था जो उद्यान की प्राचीन राजधानी थी। दरेल सिन्धु नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर एक घाटी है जहाँ डारडस अथवा डरडस जाति का

(१) जहाँ तक अ पो-लो-लो-अथवा शुभ वस्तु नदी ने उदगम् स्थान का सबध है श्री डोन ने लिखा है कि "तीर्थ यात्री द्वारा बताई गई दूरी एव दिशा हमे ठीक उस स्थान पर ले जाते हैं जहाँ उट्रोट तथा उशू नामक छोटी नदियों का सङ्गम है। यही स्थान शुभ वस्तु नदी का आधुनिक उदगम स्थान है।

अधिकार था। इस घाटी का नाम इसी जाति के नाम पर पड़ा था। फाहियान ने इसे तो-ली-कहा था और उसने इसे एक अलग राज्य के रूप में बताया है। डॉडस जाति को वर्तमान समय में उनकी प्राकृति भाषा के आधार पर प्राय: तीन भिन्न-भिन्न जातियों में विभाजित किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों की प्राकृत भाषा अरनियाँ है वह यसन तथा चित्राल के उत्तर पश्चिमी जिलो मे बस गये हैं वह व्यक्ति जिसकी प्राकृत भाषा खाजुनाह है वह हुँजा तथा नगेर के उत्तर-पूर्वी जिलो मे बसे हुए हैं और जो शिना का प्रयोग करते हैं, वह सिन्धु नदी के साथ-साथ गिलगित, चिलास, दारेलो, कोहली तथा पालस घाटियों में बस गये हैं। इस जिले मे भावी बुद्ध मैत्रीय की एक प्रसिद्ध लकड़ी की मूर्ति थी जिसका उल्लेख दोनो तीर्थ यात्रियो ने किया था। फाहियान के अनुसार इसका निर्माण बुद्ध के निर्वाण के ३०० वर्ष पश्चात् अथवा २४३ ई० पूर्व में किया गया था। अर्थात इसका निर्माण अशोक के शासन काल में हुआ था जब धर्म प्रचारको द्वारा सम्पूर्ण भारत मे बौद्ध धर्म का प्रचार बडे जोरो पर था। ह्वेनसांग ने मूर्ति को १०० फुट ऊँची बताया है और उसका कथन है कि इसका निर्माण मध्यान्तिक द्वारा किया गया था। (१) नाम एव तिथि दोनो ही एक दूसरे से सहमत हैं। मध्यान्तिक अथवा पाली का मजभिम एक बौद्ध शिक्षक का नाम था जिसे अशोक के शासन-काल में तीसरे धार्मिक सम्मेलन के पश्चात बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु काश्मीर तथा संपूर्ण हिमवन्त देश मे भेजा गया था। सम्भवतः ह्वेनसांग ने इसी समय की ओर संकेत किया है जब दरेल उद्यान की राजधानी थी।

"बोलोर अथवा बल्टी"

दरेल से ह्वेनसांग ने एक पर्वत माला के ऊपर से होते हुए तथा सिन्धु नदी की घाटी से ऊपर पो-लू-लो-अथवा बोलोर तक ८३ मील की यात्रा की थी। इस जिले का व्यास ६६६ मील था और इसकी दूरस्थ लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर थी। यह चारो ओर हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा हुआ था तथा इस स्थान पर प्रचुर मात्रा में स्वर्ण प्राप्त था। मार्ग के विवरण की दिकाश एव दूरी से तुलना करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पो-लू-लो-आधुनिक बल्टी अथवा छोटे तिब्बत का नाम रहा होगा जो निश्चित हो सही है क्योंकि सिन्धु नदी पर पडोस के दारद्द जिले के निवासियों में बल्टी को केवल पो लो लो नाम मे जाना जाता था। बल्टी अभी भी सोने की धुलाई के लिये प्रसिद्ध है। यह नाम भी प्राचीन है क्योंकि टालमी ने यहाँ के निवासियो को बाईलियोय कहा है। अन्त मे, विस्तार एवं स्थिति मे भी बल्टी चीनी तीर्थ यात्री की व्याख्या से

(१) जूलियन ने यह विवरण दिया है परन्तु उसने इस मूर्ति के निर्माण की तिथि को बुद्ध के निर्वाण से केवल ५० वर्ष बाद बताई है। मेरे विचार में इसे ५० के स्थान पर २५० वर्ष पढ़ना चाहिए।

पूरी तरह मिलता है। इस प्रान्त की लम्बाई सिन्धु नदी के साथ-साथ पूर्व से पश्चिम १५० मील है तथा इसकी चौड़ाई दियोसेह पर्वतों से कराकुर्रम पर्वत माला तक ८० मील है अर्थात् कुल मिलाकर मानचित्र पर इसका व्यास ४६० मील था तथा सड़क की दूरी के अनुसार यह व्यास ६०० मील से कम नहीं था।

फालना अथवा बनू

फा ला-ना नाम का उल्लेख केवल ह्वेनसांग ने किया है जिसने इसे गजनी के दक्षिण पूर्व मे तथा लमगान से दक्षिण की ओर १५ दिन की यात्रा पर बताया है। इसका व्यास ६६६ मील था तथा मुख्य रूप से इसमे पर्वत एवं जङ्गल ही थे। यह कपिसीन के अधीन था तथा यहाँ के निवासियो की भाषा मध्य भारत के निवासियों की भाषा से कुछ-कुछ मिलती थी। दिकांश एवं दूरी से इसमे सन्देह नहीं कि बन्नू ही वह स्थान था जहाँ ह्वेनसांग गया था और इसी से मैं यह अनुमान भी लगा सकता हूँ कि इस स्थान का मूल नाम वरना अथवा बरना था। (१) फाहियान ने इस कथन की पुष्टि की है। उसने इस स्थान का इसके स्थानीय छोटे नाम पो-ना अथवा बन के नाम से उल्लेख किया है। वह नगरहारा से दक्षिण की ओर जाते समय १३ दिन की यात्रा के बाद इस स्थान पर पहुँचा था। पो-ना को सिन्धु नदी के पश्चिम ३ दिन की यात्रा पर बताया जाता है अतः बन्नू अथवा कुरम नदी की घाटी के निचले भाग से इसकी अनुरूपता पूर्ण हो जाती है। फाहियान के समय बन्नू का राज्य इस छोटे क्षेत्र तक ही सीमित था क्योंकि उसने करमघाटी के ऊपरी भाग को एक भिन्न जिला लो-ई अथवा रोह कहा है। परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय इस राज्य का व्यास ६०० मील से अधिक था अतः निश्चित ही कुरम तथा गोमाल नदियों की दो विशाल घाटियाँ सम्पूर्ण रूप से बन्नू की सीमाओ में सम्मिलित रही होंगी। इसका क्षेत्र सफेद कोह अथवा फाहियान के "छोटे हिम्माच्छादित पर्वतों" से दक्षिण मे सिवास्तान तक पश्चिम में गजनी तथा कन्धार की सीमाओं से पूर्व मे सिन्धु नदी तक फैला हुआ था।

मेरे विचार मे यह असम्भावित नहीं है कि इस जिले का पूरा नाम फा-ला न- अथवा वर्न खिलजी खण्ड की बुरान नामक जाति से सम्बन्धित रहा हो क्योंकि सुले-मान पर्वतों एवं गजनी के बीच कुरम तथा गोमाल दोनों नदियों की ऊपरी घाटियो में सुलेमानी खेल अथवा बुरान की प्राचीन शाखा की अनेक छोटी-छोटी जातियों का अधि-

---

(१) संस्कृत नाम बर्ण अथवा वर्ण नही है। शुद्ध नाम वर्ण है जिसे प्लिनी ने लिखा है। इस जिले मे कुरम (वैदिक) क्रुमु तथा गोमाल (वैदिक गोमती) नदियाँ बहती हैं। आधुनिक बन्नू पाकिस्तान के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश का एक जिला है तथा ३२°.१६' तथा ३०°.५' उत्तर एवं ७०°.२३' तथा ७१°.१६' पूर्व में स्थित है।

—अनुवादक

कार है। कहा जाता है कि बुराम के ज्येष्ठ पुत्र एवं सुलेमान के पिता इरयूब ने हरयूब जिले को अपना नाम दिया था। कुरम नदी की ऊपरी घाटी ही यह जिला है।

डी० सेन्ट मार्टिन ने फा-ला-ना को वानेह, बन्नेह अथवा एलफिन्स्टोन के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु वान एक छोटा सा प्रदेश है और इसकी जनसंख्या बहुत कम है जबकि बन्नू, सिन्धु नदी के पश्चिमी जिलो मे सबसे बड़ा, सबसे घनी एव जनपूर्ण जिला है। वान गजनी के दक्षिण-दक्षिण पूर्व मे है जबकि बन्नू गजनी के पूर्व-दक्षिण पूर्व में है। दोनों हो ह्वेनसांग द्वारा बताई दक्षिण पूर्व दिशा से मिलते हैं परन्तु वान लमगान के दक्षिण मे २० से २५ दिन की यात्रा पर आता है जबकि तीर्थ यात्री के अनुसार बन्नू केवल १५ दिन की यात्रा पर है। फाहियान ने बन्नू का उल्लेख पांचवीं शताब्दी के आरम्भ मे किया था अतः मेरे विचार में इसे टालमी के बानगरा के अनुरूप समझा जा सकता है। टालमी ने इस नगर को इण्डोसीथिया के सुदूर उत्तर मे तथा नागरा अथवा जलालाबाद के दक्षिण, दक्षिण पूर्व में दिखाया है। इसी दिशा में एक अन्य नगर जिसे टालमी ने अन्द्रपन का नाम दिया है सम्भवतः डेरा इस्माईल खाँ के समीप द्राबन्द अथवा देराबन्द था।

ह्वेनसाग ने फलना की दक्षिणी सीमा पर कि-कियांग-ना नामक जिले का उल्लेख किया है परन्तु इसका स्थान अभी निश्चित नहीं किया जा सका। एम विवीन डी सेन्ट मार्टिन तथा सर एच इलियट ने इसे कैकानान अथवा सिन्ध के अरब इतिहासकारों के किकान के अनुरूप माना है परन्तु दुर्भाग्यवश कैकानान की स्थिति निश्चित नहीं है। फिर भी इसे कच्छ गण्डाव के उत्तर-उत्तर पूर्व में दिखाया गया है तथा कि-कियांग ना फ-ल-ना अथवा बन्नू के पश्चिम मे था। यह सम्भव प्रतीत होता है कि जिस जिले का उल्लेख किया गया है वह पिशिन तथा क्वेटा के आस-पास किसी स्थान पर रहा होगा और चूंकि ह्वेनसांग ने इसे ऊंचे पर्वत के नीचे एक घाटी में अवस्थित बताया है अतः मैं इसे पिशिन की घाटी के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ जो उत्तर मे खोजा अमरान की पहाड़ियो तथा दक्षिण मे तकाटू पर्वत के बीच है। यह स्थान बिलदूरी के कैकान से मिलता है। बिलदूरी का कथन है कि यह खुरासान की दिशा मे सिन्ध का भाग था। इसकी पुष्टि इस कथन से भी होती है कि ककान मुल्तान से काबुल के मार्ग पर अवस्थित था। इन दोनों नगरों के बीच का सामान्य मार्ग सुलेमानी पर्वतों में सखी सरवर दर्रे से होकर गुजरता है तथा पिशिन घाटी से होकर कान्धार की ओर चला जाता है। एक छोटा परन्तु कठिन मार्ग गोमाल नदी की घाटी से होकर गजनी तक जाता है और चूंकि गोमाल की घाटी फलना से सम्बन्धित थी अतः कि-कियांग ना का जिला अवश्य ही पिशिन के पड़ोस में किसी स्थान पर रहा होगा। चूंकि इस घाटी में काकर जाति के लोग रहते हैं अतः यह असम्भावित नहीं है कि किकान अथवा कैकान नाम भी इन्हीं लोगों से प्राप्त हुआ होगा।

ओपोकीन अथवा अफगानिस्तान

ओ-पो कीन का उल्लेख केवल एक बार ह्वेनसांग ने एक छोटे गद्यांश में किया था। उसने इसे फलना तथा गजनी के बीच, फलना के उत्तर पश्चिम में तथा गजनी के दक्षिण पूर्व में दिखाया है। इस व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि ओ पो कीन, फाहियान के लो-ई तथा भारतीय इतिहासकारों के रोह के समान है। सम्भवतः ओपोकीन का नाम विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगल बेग के बोरगुन अथवा वरघिन से कुछ सम्बन्धित रहा होगा। मुगल बेग ने इस स्थान को कुरम नदी की सहायक तुन्वी अथवा तोची नदी के उदगम स्थान के समीप बताया है। ऐरोस्मिथ की "बर्न्स की यात्राओं" के साथ दिये मानचित्र में इसका नाम बोरघून लिखा गया है। परन्तु मै ओपोकीन अथवा एम जुलीन के अवकान को अफगान नाम के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ क्योंकि मैं देखता हूँ कि चीनी अक्षर कीन थान्त शब्द मे थान का प्रतिनिधित्व करता है। (१) ह्वेनसांग द्वारा जिले के अधूरे उल्लेख से मेरा अनुमान है कि यह स्थान फलना प्रान्त का भाग रहा होगा। यह निश्चित ही पहाड़ी जिले का भाग था जिसे अबुलफजल तथा फरिस्ता ने रोह कहा था अथवा यह दक्षिण पूर्वी अफगानिस्तान का भाग था जो अफगान लोगों का मूल स्थान प्रतीत होता है। मेजर रेवर्टी ने रोह का उल्लेख "अफगानिस्तान के पर्वती जिले तथा बिलूचिस्तान के भाग" अथवा "गजनी तथा कन्धार एवं सिन्धु नदी के बीच के प्रदेश" के रूप मे किया है। इस प्रान्त के निवासियों को रोहीले अथवा रोहीका अफगान कहा जाता है जिससे उन्हे अन्य अफगानो जैसे बल्ख तथा मर्व के बीच गोर के गोरी अफगानो से अलग पहचाना जा सके। फिर भी इस अनुरूपता को स्वीकार करने में कुछ ऐतिहासिक क्रम की कठिनाई है क्योंकि फरिस्ता के अनुसार खिल्जी, गोर तथा काबुल के अफगानो ने ६३ हिजरी अथवा ६८२ ई० मे रोह प्रान्त पर अधिकार किया था अर्थात ह्वेनसाग की यात्रा के लगभग ३० वर्ष। पश्चात् परन्तु मेरा विचार है कि इस कथन की सत्यता मे सन्देह करने के लिए हमारे पास कई प्रमाण उपलब्ध हैं। ह्वेनसांग ने फलना की भाषा को मध्य भारत की भाषा से मिलता-जुलता कहा है। अतः रोह निवासी भारतीय नही हो सकते थे और यदि वह भारतीय नहो थे तो प्रायः निश्चित ही वह अफगान रहे होगे। फरिस्ता ने अपना विवरण इस कथन से शुरू किया है कि पहाड़ो के मुस्लिम अफगानो ने "किरमान, शिवरान तथा पेशावर के राज्यो पर आक्रमण किया तथा उन्हे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।" तथा "किरमान एवं पेशावर के बीच

---

(१) ओपोकीन अथवा अ-पो-कान-फ-ल-न के उत्तर पश्चिम में तथा साउ-कू-त के दक्षिण पूर्व मे था। सर कनिंघम का विचार है कि यह अफगान शब्द का संकेत करता है। उन्होने इसे कुर्रम नदी की एक सहायक नदी तोची के उद्गम स्थान पर बताया है। सम्भवतः यह वायु पुराण का "अपगा" है। —अनुवादक

समतल भूमि पर" अफगानों तथा भारतीयों में अनेक युद्ध हुए थे। किरमान जिसका यहाँ उल्लेख किया गया है भारतीय महासागर के तट पर किरमान अथवा करमानियाँ का विशाल प्रान्त नहीं है परन्तु यह तैमूर के इतिहासकारों का किरमान अथवा किरमाश है जो कुर्रम नदी की घाटी में अवस्थित था। इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है यदि हम किरमान के भूभाग को निचली घाटी अथवा कुर्रम नदी के समतल भाग तक सीमित रखें तथा अफगान देश की सीमाओं को गजनी तथा काबुल के आगे तक बढ़ा दें जिससे इस भूभाग में ऊपरी घाटी अथवा कुर्रम नदी का पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित हो सके। राजनैतिक रूप से पेशावर का शासक सदैव कोहाट अथवा बन्नू का भी शासक रहा है तथा काबुल का शासक कुरम नदी की ऊपरी घाटी का स्वामी रहा है। इस जिले को आजकल खोसत कहा जाता है परन्तु यह तैमूर के इतिहासकारों तथा विलफार्ड के सर्वेक्षक मुगलबेग का इरियूब है तथा एलफिन्स्टन का हरियूब है। वर्तमान समय में घिलजी के बुरान वंश के सुलेमान खेल सख्या में सम्पूर्ण जाति के लगभग तीन चौथाई है। अतः मेरा अनुमान कि घिलजियों के मूल स्थान में पूर्व में कुरम तथा गोमाल नदियों की ऊपरी घाटी तथा पश्चिम में गजनी एवं केलात-ए-घिलजी सम्मिलित रहे होंगे। इस प्रकार हरियूब खिलजी अथवा घिलजी के अफगान जिले का भाग रहा होगा। जहाँ से पेशावर की सीमाओं में सरलता पूर्वक प्रवेश किया जा सकता था। फरिश्ता के इस कथन की यह व्याख्या सही हो या न हो मैं यह निश्चित समझता हूँ कि ह्वेनसांग का ओपोकीन अवश्य ही अफगान शब्द के लिए लिखा गया होगा। ओपोकीन का समतुल्य अवगान रहा होगा। अवगान ही चीनी भाषा में अफगान शब्द की नकल हो सकती है। यदि यह अनुवाद सही है तो जहाँ तक मेरा ज्ञान है अफगान शब्द का यह सर्व प्रथम उल्लेख है।

काश्मीर राज्य

सातवीं शताब्दी में, चीनी तीर्थ यात्री के अनुसार, काश्मीर राज्य में न केवल स्वयं काश्मीर की घाटी थी परन्तु सिन्धु नदी से चेनाब नदी के बीच तथा दक्षिण में नमक की पहाड़ियों तक का सम्पूर्ण पहाड़ी प्रदेश सम्मिलित था। भिन्न-भिन्न राज्य जहाँ ह्वेनसांग गया था इस प्रकार थे। काश्मीर के पश्चिम में उर्सा, दक्षिण पश्चिम में तक्षशिला तथा सिंहपुर एवं दक्षिण में पूंच तथा राजौरी थे। पूर्व तथा दक्षिण पूर्व के अन्य पहाड़ी राज्यों का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु यह विश्वास करने के कई ठोस कारण हैं कि वह सभी भी काश्मीर राज्य के आश्रित थे तथा सातवीं शताब्दी में काश्मीर का राज्य सिन्धु नदी से रावी नदी तक फैला हुआ था। (१) ब्यास नदी की ऊपरी

(१) राजतरङ्गिणी के अङ्गरेज अनुवादक डा० स्टीन ने कास्पीरा, कास्पीराई तथा कस्पातिरास को काश्मीर के अनुरूप बताया है। चीनियों ने काश्मीर को की-पी-ज

घाटी में कुलू का स्वतन्त्र छोटा राज्य दूरी एवं अगम्यता के कारण बच गया था और व्यास की निचली घाटी में जालन्धर का समृद्ध राज्य उस समय कन्नौज के महान् सम्राट हर्षवर्धन के अधीन था। परन्तु नवीं शताब्दी के अन्त मे शंकर वर्मा ने कांगड़ा घाटी पर अधिकार कर लिया था और काश्मीर की प्रभुसत्ता सिन्धु से सतलज तक पञ्जाब के सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र पर स्थापित हो गई थी।

ह्वेनसांग ने काश्मीर का उल्लेख चारो ओर से ऊंचे-ऊंचे पर्वतों से घिरे हुए प्रदेश के रूप मे किया है जो काश्मीर की घाटी का सही उल्लेख है परन्तु उसके इस कथन में कि इस राज्य का विस्तार ११६६ मील था। सम्भवतः काश्मीर के विस्तृत राज्य की ओर सकेत किया गया है न कि काश्मीर की घाटी का, क्योंकि इसका व्यास केवल ३०० मील है। इस राज्य की राजनैतिक सीमाओं का व्यास उत्तर में सिन्धु नदी से लेकर दक्षिण मे नमक की पहाड़ियो तक तथा पश्चिम मे सिन्धु से लेकर पूर्व मे रावी नदी तक ६०० मील से कम नही था और सम्भव है कि यह विस्तार तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये व्यास से मिलता हो।

काश्मीर

ह्वेनसांग ने काश्मीर सितम्बर ६३१ ई० में पश्चिम की ओर से काश्मीर की घाटी में प्रवेश किया था। प्रवेश स्थान पर पत्थर का द्वार था, जहां राजमाता के छोटे भाई ने तीर्थ यात्री का स्वागत किया था। पवित्र स्थानों पर पूजा के पश्चात् वह हू-सी-किया-लो-अथवा हुसकर मठ में रात्रि व्यतीत करने चला गया था। अबुरिहान ने भी इस स्थान का उल्लेख किया है जिसने पुष्कर (उष्कर) को बारह मूला (वर्तमान बारामूला) के समान बताया है जो नदी के दोनों तटों पर फैला हुआ था। राजतरंगिणी मे भी हुष्कपुर को बराह अथवा वरहमूला के समीप बताया गया है। वरहमूला बाराहमूला का सस्कृत स्वरूप है। हुषकर अथवा उष्कर बारहमूला के दक्षिण पूर्व मे दो मील की दूरी पर बेहात नदी के बाएं अथवा पूर्वी तट पर अभी भी एक छोटा गाँव है। काश्मीरी ब्राह्मणों का कथन है कि यह स्थान राजतरंगिणी का हुष्कपुर है जिसका निर्माण ई० काल के प्रारम्भ के लगभग तुरुष्कराज हुष्क ने करवाया था।

राजतरंगिणी के ऐतिहासिक क्रमानुसार ६३१ ई० मे काश्मीर का राजा प्रतापादित्य था, परन्तु उसके मामा के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय इतिहास

कहा है। युआन-च्वाग के समय मे काश्मीर का राजा दुर्लभवर्धन वू-भा-शी अथवा उरश (आधुनिक हजारा) पुआन-नू सो (पर्णोत्स) आधुनिक पूछ, को-लो शी-पू लो (राजौरी) सेङ्ग-हा-पु-लो (सिंहपुर) अथवा नमक की पहाड़ियो के क्षेत्र तथा ता-च-शो-लो (तक्षिला) का सर्वोच्च शासक था।

अन्य पहाड़ी राज्यों मे काष्ठवार (आधुनिक किश्तवार) चंपा (आधुनिक चबा) तथा बालापुर का उल्लेख किया गया है।

में कोई त्रुटि अवश्य रही होगी क्योंकि उस राजा का पिता अपनी पत्नी के अधिकार से गद्दी पर बैठा था जिसका (रानी का) कोई भाई नहीं था अतः प्रतापादित्य का सिंहासनारोहण अवश्य ही ६३३ ई० में काश्मीर से ह्वेनसांग के चले जाने के बाद हुआ होगा। इस प्रकार स्थानीय इतिहास में ३ वर्षों की त्रुटि हो जाती है परन्तु इससे भी अधिक भिन्नता उसके पुत्रों चन्द्रापीड़ तथा मुक्तापीड़ के शासन काल में देखने को मिलती है। मुक्तापीड़ ने अरबों के विरुद्ध चीनी सम्राट से सहायता की प्रार्थना की थी। प्रथम प्रार्थना की तिथि ७१३ ई० में है जबकि स्थानीय इतिहास के अनुसार चन्द्रापीड़ ने ६८० ई० से ६८८ ई० तक राज्य किया था। इस इतिहास में कम से कम २५ वर्षों का अन्तर है। चूंकि चीनी राजपत्रों में यह बात मिलती है कि सम्राट ने ७२० ई० के लगभग चन्द्रापीड़ को राजा की उपाधि दी थी। वह ७१६ ई० तक अवश्य ही जीवित रहा होगा और इस प्रकार काश्मीरी इतिहास में ठीक ३१ वर्षों का अन्तर हो जाता है। उसके पूर्ववर्ती शासको के राज्य काल की तिथियों में इसी अनुपात से शुद्ध करने पर उसके पितामह दुर्लभ का शासनकाल ६२५ से ६६१ तक होगा। अतः यही वह राजा था जो ६३१ ई० मे ह्वेनसांग की काश्मीर यात्रा के समय काश्मीर में राज कर रहा था। कहा जाता है कि दुर्लभ जो अपने पूर्ववर्ती शासक का दामाद था एक नागा का पुत्र था और जिस राजघराने की उसने नींव डाली थी उसे नाग अथवा करकोट घराना कहा जाता था। इस विशिष्ट नाम से मैं समझता हूँ कि उसका राज परिवार सर्प पूजक था। सर्पपूजन आदि काल से काश्मीर का प्रचलित धर्म रहा था। ह्वेनसांग ने इस जाति को की-ली-तो-कहा है जिसे प्रोफेसर लासेन तथा स्टेनिसलस जुलीन ने क्रीट बना दिया है। वे बौद्धधर्मावलम्बियों के कट्टर विरोधी थे जिन्होंने बारम्बार उनसे राजसत्ता छीन ली थी तथा उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया था। तीर्थ यात्री के अनुसार इसी कारण से उस समय के राजा को बुद्ध में विश्वास नहीं था और वह केवल ब्राह्मणों के देवताओं के मन्दिरों एवं पाखण्डों पर विश्वास करता था। स्थानीय इतिहास में भी इस कथन की पुष्टि की गई है जिसके अनुसार रानी अनङ्गलेखा ने एक विहार अथवा बौद्ध मठ का निर्माण करवाया था तथा अपने नाम पर इसका नाम अनंग-भवन रखा था जबकि राजा ने एक विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था तथा उसने अपने नाम पर दुर्लभ स्वामिन का नाम दिया था। इससे मेरा अनुमान है कि उस समय भी रानी अपने परिवार के बौद्ध धर्म में विश्वास करती थी जबकि राजा वस्तुतः एक ब्राह्मणवादी था फिर भी उसने बौद्ध धर्म से उत्साहहीन सम्बन्ध रखा हुआ था।

काश्मीर के निवासियों को देखने में सुन्दर व्यवहार मे सरल एवं चंचल स्वभाव में स्त्रीयोचित स्वभाव के एवम् भीरू तथा छल एवम् कपट में स्वभावतः उन्मुख कहा गया है। आज भी उनका यही चरित्र है और इस व्याख्या में मैं इतना और लिखना चाहूँगा कि भारत में काश्मीरी सबसे गन्दी एवम् अनैतिक जाति है। ह्वेनसांग का कथन

है कि पड़ोस के राजा काश्मीरियों को इतने तिरस्कार से देखते थे कि उन्होंने इनसे किसी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकार नहीं किया तथा इन्हें की-ली-तो अथवा क्रीट नाम दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाम तिरस्कारपूर्वक दुष्ट प्रकृति एक उपद्रवकारी व्यक्तियों जैसे शत्रुओं देश द्रोहियों 'हत्यारों' आदि को दिया जाता था। जो नाम मैंने सुना है वह कीड मलेच्छ अथवा क्रूर बर्बर कीडे हैं। तथा विलसन ने कीड नाम काश्मीर की घाटी को दिया है और वहाँ के निवासियो को कीडा कहा है।

सातवीं शताब्दी में इस राज्य की राजधानी नदी के पूर्वोतर पर तथा प्राचीन राजधानी के उत्तर पश्चिम लगभग १०२ मील से कम दूरी पर थी। अब्बुरहान ने राजधानी को अधिस्तान कहा है जो संस्कृत का अधिष्ठान अर्थात् मुख्य नगर है। यह वर्तमान समय का श्रीनगर है जिसका निर्माण छठीं शताब्दी के प्रारम्भ के लगभग राजा प्रवरसेन ने करवाया था। प्राचीन राजधानी को मैं पहले ही एक प्राचीन स्थान के अनुरूप बता चुका हूँ जो तख्ते-सुलेमान के दो मील दक्षिण पूर्व मे था। इस स्थान को पांडरीथान कहा जाता था जो काश्मीरी भाषा के पुराना-अधिष्ठान (पुराना मुख्य नगर) का भ्रष्ट स्वरूप है। पान "पुराना" शब्द का सामान्य काश्मीरी शब्द है। उदाहरणार्थ नदी के निचले भाग पर दराज के नये गाँव से भिन्न दिखाने के लिए "पुराने दराज" को पान दराज कहा गया है। (१) प्राचीन राजधानी के समीप एक प्रसिद्ध स्तूप था जहाँ ६३१ ई० में बुद्ध का दाँत प्रतिष्ठित किया गया था। परन्तु ६४३ ई० में ह्वेनसांग के पंजाब वापिस आने के समय तक यह पवित्र दाँत कन्नौज के शक्तिशाली शासक हर्षवर्धन को दे दिया गया था जो एक विशाल सेना लेकर इस दाँत की प्राप्ति के लिये काश्मीर की सीमाओं तक चढ़ आया था। चूँकि राजा दुर्लभ एक ब्राह्मणवादी था बुद्ध के दाँत का बलिदान ब्राह्मण धर्म के लिये बहुत बड़ी विजय थी।

प्राचीन काल से काश्मीर को कामराज तथा मेराज नाम के दो विशाल जिलो में बाँटा गया था। प्रथम जिला सिन्धु तथा बिहात नदियों के संगम स्थान से नीचे घाटी का उत्तरी भाग था। जबकि दूसरा जिला अर्थात घाटी का दक्षिणी भाग इस संगम स्थान से ऊपर था। छोटे-छोटे खंडो का उल्लेख अनावश्यक है। परन्तु धार्मिक विश्वास मे परिवर्तन के कारण उत्पन्न, दो महत्व पूर्ण हिन्दू शब्दो मे अनोखी अनियमितता का उल्लेख करना चाहूँगा। सूर्य पूजक हिन्दुओ के अनुसार चार प्रमुख दिशाओं को पूर्व दिशा के आधार पर नाम दिया जाता है, जैसे पर अथवा सम्मुख अर्थात पूर्व, जिसकी ओर वह प्रति दिन सन्मुख होकर पूजा करता है। अपर अर्थात पीछे अर्थात पश्चिम है, वाम अर्थात बाई ओर उत्तर है तथा दाहिनी ओर दक्षिण है। परन्तु मुसलमानो ने जो

(१) विलसन ने इसे बदल कर पापिन (पाम्रिन) दराज कहा है फारसी भाषा में इसका अर्थ निचला दराज है जबकि पान दराज नदी के ऊपरी भाग में है।

पूजा के समय रश्मिमान्मुख होते हैं, इन परिभाषाओं को पूर्णतः बदल दिया है और दछिन जिसका अर्थ काश्मीरो भाषा मे "दाहिना" है आजमी "उत्तर" की ओर संकेत करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है तथा बायें अथवा दक्षिण के लिये कवर शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार लिडर नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित उपखण्ड को दछिन पार कहा जाता है और नदी के दक्षिणी तट पर अवस्थित उपखण्ड को कवर कहा जाता है। दछिन शब्द के अर्थ मे दक्षिण के स्थान पर उत्तर समझे जाने का परिवर्तन अकबर के शासन काल से पूर्व हुआ होगा क्योंकि अबुलफजल ने दछिन पार को "विशाल तिब्बत की ओर एक पर्वत के अधोभाग पर अवस्थित" अथवा लिडर नदी के उत्तर की ओर बताया है।

काश्मीर के प्रमुख प्राचीन नगर इस प्रकार हैं :—प्राचीन राजधानी श्रीनगर, प्रवरसेन नाम की नवीन राजधानी प्रवरसेनपुर खागेन्द्रपुर तथा खुनामुश जिनका निर्माण अशोक के शासन काल से पूर्व करवाया गया था, बिजीपार तथा पाँतसोक जिन्हें स्वयं अशोक से सम्बन्धित किया जाता है, सुरपुर जो प्राचीन काम्बुवा की पुनर्वृत्ति स्वरूप बनवाया गया था, कनिष्कपुर, हुष्कपुर तथा जुष्कपुर जिनके नाम इन नगरों का निर्माण करवाने वाले तीन इण्डोसीथियन शासकों के नाम पर रखे गये थे। ललितादित्य द्वारा निर्मित परिहासपुर, राजा बृहस्पति के मंत्री पद्म के नाम पर बनवाया गया पदमपुर तथा राजा अवन्ति वर्मा के नाम पर अवन्तिपुरा।

कहा जाता है कि प्रवरसेनपुर के निर्माण से पूर्व काश्मीर को प्राचीन राजधानी श्रीनगर का निर्माण अशोक महान ने करवाया था जिसने २६३ से २२६ ई० पूर्व तक भारत मे राज्य किया था। यह राजधानी आधुनिक पांडरीथान के स्थान पर थी और कहा जाता है कि इसका विस्तार नदी के तट के साथ-साथ (तख्तेसुलेमान) तख्त-ए-सुलेमान के अधोभाग से पांतसोक तक ३ मील से भी अधिक था। तख्त-ए-सुलेमान के शिखर पर काश्मीर को प्रचीनतम् मन्दिर का इस घाटी के समस्त ब्राह्मणों के एक मतानुसार ज्येष्ठ रुद्र के मन्दिर के अनुरूप स्वीकार किया गया है जिसका निर्माण अशोक के पुत्र जलोक ने श्रीनगर मे करवाया था। यह अनुरूपता इस तथ्य पर आधारित है कि पहाड़ी को मूल रूप से ज्येष्टेश्वर कहा जाता था। पांतसोक गाँव के पास प्राचीन पुल के स्थान को अशोक से सम्बन्धित किया जाता है और इस स्थान के अन्य अवशेषों को दो अशोकेश्वर मन्दिरों के अवशेष कहा जाता है। काश्मीर के स्थानीय इतिहास मे भी इन मन्दिरों का उल्लेख किया गया है श्रीनगरी पाँचवी शताब्दी के अन्त के समीप प्रवरसेन प्रथम के शासनकाल मे भी काश्मीर की घाटी की राजधानी थी। उस समय राजा ने भगवान् शिव के प्रसिद्ध शिवलिंग की स्थापना करवाई थी और अपने नाम पर इसका नाम प्रवरेश्वर रखा था। यह नगर ६३१ ई० मे चीनी तीर्थ यात्री की काश्मीर यात्रा के समय भी बसा हुआ था परन्तु यह काश्मीर की राजधानी नही थी। उसने

अपने समय की राजधानी को "नयानगर" कहा है और उसका कथन है कि पुराने नगर के दक्षिण पूर्व में लगभग दो मील की दूरी पर तथा एक ऊंचे पर्वत के दक्षिण में था। इस विवरण में पाण्ड्रेथान तथा वर्तमान राजधानी की स्थिति की तख्त-ए-सुलेमान की स्थिति से तुलना इतनी सही है कि इन स्थानो को प्राचीन स्थानो का प्रतिनिधि स्वीकार करने मे परेशानी नही हो सकती। पुराना नगर ६१३ तथा ६२१ में भी बसा हुआ था जब राजा पार्थ के मन्त्री मेरू ने पुरानाधिष्ठान अथवा प्राचीन राजधानी में एक मन्दिर का निर्माण करवाया था जिसे उसने अपने नाम पर मेरू वर्धनास्वामी कहा था। इस भवन को मैंने पाण्ड्रेथान के वर्तमान मन्दिर के अनुरूप माना है। जैसा कि कल्हण पण्डित लिखता है कि जिस समय राजा अभिमन्यु ने अपनी राजधानी को आग लगा दी थी "वर्धनास्वामी के मन्दिर से लेकर भिक्षुकीपारक तक" के सभी उत्तम भवन नष्ट हो गये थे मेरा विचार है कि चूने के पत्थर से बना यह भवन एक तालाब के बीच अपनी भाग्यशाली स्थिति के कारण बच गया था और मेरे विचार में इसी विपत्ति के कारण ही प्राचीन राजधानी निर्जन हो गई थी क्योंकि जन साधारण के सामान्य निवास्थान उस विनाशकारी अग्नि से बच गये होंगे जिसमे नगर के सभी महत्वपूर्ण स्थान नष्ट हो गये थे।

प्रवरसेनपुर अथवा नवीन राजधानी का निर्माण छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजा प्रवरसेन द्वितीय ने करवाया था। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसका वही स्थान था जहाँ वर्तमान राजधानी श्रीनगर है। चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग तथा हिन्दू इतिहासकार कल्हण पण्डित के स्पष्ट एवं विशिष्ट तथ्यों से इस तथ्य की निश्चितता संदेह की किसी भी सभावना से परे है। प्रथम लेखक के कथन को मैं प्राचीन राजधानी की अपनी व्याख्या मे उधृत कर चुका हूँ परन्तु इस व्याख्या मे मैं इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि ह्वेनसांग काश्मीर मे दो वर्षों तक प्रवरसेन के मामा जयेन्द्र द्वारा निर्मित जयेन्द्र विहार में रहा था। हिन्दू लेखक ने नगर को दो नदियों के संगम स्थान पर अवस्थित बताया है तथा इसके मध्य में एक पहाड़ी भी बताई है। यह वर्तमान श्रीनगर का सही-सही उल्लेख है जिसके मध्य में हरि पर्वत है तथा जिससे होकर हूर अथवा मर नदी नगर के उत्तरी छोर पर बेहात नदी मे मिलती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार प्रवरसेनपुर के नवीन नगर ने अपना नाम त्याग कर श्रीनगरी के प्राचीन नाम को धारण कर लिया। मेरे विचार में इस कठिनाई को इस साधारण तथ्य से सुलझाया जा सकता है कि दोनों नगर वस्तुतः मिले हुए थे और चूँकि यह दोनो नगर पाँच शताब्दियों तक साथ-साथ जीवित रहे अतः दिल्ली की भाँति ही प्राचीन नाम राजधानी के परम्परागत अभिधान के रूप मे जन-साधारण मे नये नाम की उपेक्षा प्रचलित रहा होगा। यहाँ ठीक दिल्ली के प्राचीन नाम की भाँति स्थिति है। वहाँ क्रमबद्ध शासकों ने एक के बाद एक नवीन नगर का निर्माण करवाया

था और प्रत्येक नगर का नाम अपने निर्माता के विशिष्ट नाम पर रखा गया था परन्तु, चूँकि यह सभी नगर दिल्ली के आस-पास में ही थे अतः प्राचीन प्रचलित नाम राजधानी के साथ बना रहा और प्रत्येक नया विशिष्ट नाम अन्त में "दिल्ली" के सामान्य नाम में लुप्त हो गया। इसी प्रकार, मेरा विश्वास है कि श्रीनगर के प्राचीन प्रचलित नाम ने अन्त में नवीन नगर प्रवरसेनपुर के नाम को अपने मे समेट लिया था।

कल्हण पण्डित ने खागीपुर तथा खुन्दामुश के नामों को राजा खगेन्द्र से सबंधित बताया है जिसने अशोक के छठे पूर्ववर्ती शासक के रूप में ४०० ई० पू० के लगभग शासन किया था। विलसन तथा ट्रायर ने इन दो स्थानों को मुस्लिम लेखकों के काकपुर तथा गौमोह के अनुरूप स्वीकार किया है। प्रथम अनुरूपता निश्चित है क्योंकि काकपुर आज भी बेहात के बायें तट पर तख्त-ए-सुलेमान से दस मील दक्षिण तथा पामपुर के पाँच मील दक्षिण मे बसा हुआ है परन्तु गौमोह चाहे किसी भी स्थान पर हो उसकी अनुरूपता निस्सन्देह गलत है क्योंकि खुनामुश के स्थान पर अब खुनामोह का विशाल गाँव है जो पामपुर से ४ मील उत्तर पूर्व में एक पहाड़ी के नीचे अवस्थित है।

बिज बिहार अथवा विजीपार का प्राचीन नगर राजधानी से १५ मील दक्षिण पूर्व में बेहात नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ है। मूल नाम विजयपार था जिसे विज-येश के प्राचीन मन्दिर के नाम पर विजयपार कहा जाता था। यह मन्दिर आज भी देखन को मिलता है यद्यपि इसका फर्श पास-पड़ोस की भूमि से १४ फुट नीचे है। स्तर के इस अन्तर से यह पता चलता है कि इस मन्दिर के निर्माण के समय से आज तक कितने अवशेष एकत्रित हो गये हैं। जन साधारण के अनुसार अशोक ने २५० ई० पू० मे इसका निर्माण कराया था। कल्हण पण्डित का कथन है कि अशोक ने विजयेश के ईटो से बने पुराने मन्दिर को तुड़वाकर पत्थरो से पुनः इसका निर्माण करवाया था। यह सम्भवतः वही मन्दिर है जिसका उल्लेख, ईसा की कुछ शताब्दियो बाद राजा आर्य के शासनकाल में किया गया है।

सूरपुर आधुनिक सूपुर अथवा सोपुर विशाल वूलर झील के ठीक पश्चिम में बेहात नदी के दोनों तटों पर अवस्थित है। प्रारम्भ में इसे काम्बुवा कहा जाता था और पांचवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे काश्मीरी इतिहास में इसका उल्लेख इसी नाम से किया गया है। ८५४ तथा ८८३ ई० के बीच राजा अवन्ति के मन्त्री सूर ने इसका पुनर्निर्माण कराया था, जिसके नाम पर इसे सूरपुर कहा जाता था। वुलर झील के निकास स्थान पर अनुकूल स्थिति के कारण मेरे विचार में यह सम्भव है कि यह स्थान काश्मीर के प्राचीनतम स्थानों में एक है।

ईसवी काल के प्रारम्भ से कुछ ही समय पूर्व इण्डोसीथियन सम्राट कनिष्क ने कनिष्कपुर का निर्माण करवाया था। भारत की बोलचाल की भाषा में इसे कनिकपुर कहा जाता है, जिसे कशमीरी भाषा में और भी अधिक बिगाड़ कर कामपुर कहा जाता

है। यह श्रीनगर के दस मील दक्षिण मे, पीर पंचाल के दर्रे की ओर जाते हुए मार्ग पर अवस्थित है। यह एक छोटा सा गाँव है जिसमे यात्रियों के लिए एक सराय है, जिसे कामपुर सराय कहा जाता है। कैप्टन मान्टगुमरी द्वारा बनाये गये काश्मीर के विशाल मानचित्र में यह नाम गलती से खानपुर लिखा गया है।

हुष्कपुर, जिसका निर्माण इण्डोसीथियन सम्राट कनिष्क के भ्राता राजकुमार हुष्क अथवा हुविष्क ने कराया था, वेहात नदी पर अवस्थित प्रसिद्ध वराहमूल अथवा बाराहमूल (बारामूला) के समान प्रतीत होता है। अबुरिहान ने इसे "उश्कर कहा है, जो नदी के दोनो तटो पर अवस्थित बारामूला का नगर है।" चीनी तीर्थ यात्री ह्वेन-सांग ने भी इस नगर का उल्लेख इस नाम से किया है। ह्वेनसांग ने पश्चिम की ओर से पत्थर के द्वार से काश्मीर की घाटी मे प्रवेश किया था तथा हू-सी-किया-लो अथवा हुष्कर मठ मे विश्राम किया था। बारामूला के नाम ने प्राचीन विशिष्ट नाम का स्थान ग्रहण कर लिया है जो आज भी वर्तमान नगर से २ मील दक्षिण पूर्व तथा पहाड़ियों के ठीक नीचे अवस्थित उश्कर गाँव के रूप मे जीवित है। मेरी प्रार्थना पर आदरणीय श्री डब्ल्यू कोवी इस स्थान पर गये थे तथा उन्होंने वहाँ पर एक अक्षुण्ण बौद्ध स्तूप देखा था। यह वही स्मारक है जिसे ७२३ से ७६० ई० के बीच राजा ललितादित्य ने बनवाया था। स्थानीय इतिहास मे ६१३ ई० में रानी सुगन्धा के निवास्थान के रूप मे पुनः इसका उल्लेख मिलता है। इन सभी विवरणों से यह निश्चित नगर का प्राचीन नाम पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रचलित था जब अबुरिहान ने इस नगर के दोनो नामो का उल्लेख किया है। परन्तु तत्पश्चात् स्थानीय इतिहास में केवल वराहमूल नाम का उल्लेख मिलता है। स्थानीय इतिहास मे बारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे हर्ष तथा सुस्सल के शासनकाल मे इसका उल्लेख किया गया है। मेरे विचार मे यह सम्भव है कि नगर का मुख्य भाग नदी के बाये अथवा दक्षिणी तट पर रहा होगा तथा वराहमूल मूल रूप से नदी के दाहिने तट पर अवस्थित उपनगर था। बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद, जब हुष्कपुर के मठीय संस्थापन को त्याग दिया गया था, प्राचीन नगर भी आंशिक रूप से त्याग दिया गया होगा और वरामूल द्वारा इस नगर का स्थान लिये जाने के समय प्राचीन नगर को पूर्णतयः त्याग दिया गया होगा।

जुष्कपुर का निर्माण कनिष्क तथा हुष्क के भ्राता, इण्डो-सीथियन राजकुमार जुष्क ने करवाया था। काश्मीरी ब्राह्मण इस स्थान को जुक्रु अथवा जुकुर के अनुरूप स्वीकार करते हैं जो राजधानी के उत्तर मे ४ मील की दूरी पर एक बड़ा गाँव है। मैं नवम्बर १८४७ मे इस स्थान पर गया था परन्तु नगर की प्राचीनता के जो चिह्न मैं देख सका था उन चिह्नों के पत्थर के अनेक स्तम्भ तथा काश्मीर की वास्तुकला के विशेष ढङ्ग से बनाये गये नमूने थे और इन सभी को काट-काट कर मुस्लिम मकबरो एवं मस्जिदो मे आग लगा दिया गया था। परिहासपुर का निर्माण राजा ललितादित्य

ने करवाया था जिसने ७२३ से ७६० ई० तक शासन किया था। यह नगर आधुनिक सुम्बल गाँव के समीप बेहात नदी के दाहिने अथवा पूर्वी तट पर अवस्थित था। आस-पास के टीलों पर आज भी दीवारों के चिह्न एवं टूटे हुए पत्थर मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि यह नगर इसी स्थान पर रहा होगा परन्तु महत्वपूर्ण अवशेषों में केवल बेहात नदी पर एक पुल तथा एक नहर है जो वूलर झील से होकर नदी के मार्ग के कठिन मार्ग को छोड़कर सीधे सूपुर की ओर चली जाती है। चूंकि स्थानीय इतिहास में परिहासपुर का पुनः उल्लेख नहीं मिलता है अतः अवश्य ही इसके संस्थापक की मृत्यु के पश्चात् इस नगर को अति शीघ्र त्याग दिया गया होगा। स्वयं उसके पौत्र जयपीड ने एक झील के मध्य जयपुर नामक नवीन राजधानी का निर्माण करवाया था। जहाँ श्री द्वारवती नामक एक दुर्ग का निर्माण भी करवाया गया था परन्तु जन-साधारण मे यह दुर्ग सदा "भीतरी दुर्ग" के नाम से पुकारा जाता रहा है। इस स्थान की स्थिति ज्ञात नही है परन्तु मेरा विश्वास है कि यह नगर परिहासपुर के ठीक सामने बिहात नदी के बोर तट पर था जहाँ अभी भी अन्तर कोट अथवा "भीतरी दुर्ग" नाम का एक गाँव है। जन साधारण के अनुसार शंकर वर्मा ने इस नगर का पूर्ण विनाश करवाया था जिसने ८८३ से ९०१ ई० तक राज्य किया था। कहा जाता है कि वह इस नगर के पत्थरों को नवीन नगर शङ्करपुर में ले गया था जो सुम्बलपुल के दक्षिण पश्चिम में ७ मील की दूरी पर पथन नगर के रूप में आज भी अवस्थित है। हठधर्मी किसी सिकन्दर बादशाह ने जिसने १३८६ से १४१३ ई० तक राज्य किया था। परि-हास के विशाल मन्दिर को तुड़वा दिया था। मुस्लिम इतिहासकारों ने इस मन्दिर के सम्बन्ध मे एक विचित्र कथा का उल्लेख किया है। परिहासपुर का उल्लेख करते समय अब्बुलफजल का कथन है कि "यहाँ एक विशाल मन्दिर था जिसे सिकन्दर ने नष्ट करवा दिया था। अवशेषों में एक तांबे की एक तख्ती पाई गई है जिस पर भारतीय भाषा में इस आशय का एक लेख लिखा हुआ है कि ११०० वर्ष की अवधि समाप्त होने पर 'सकन्दर नाम के एक व्यक्ति द्वारा इस मन्दिर का विनाश होगा।" फरिश्ता ने इसी कथा का उल्लेख किया है और उसने राजा का नाम भी लिखा है जिसे उसने बलनत कहा है। सम्भवतः यह ललदित्त के स्थान पर गलती से लिखा गया है। काश्मी-रियों मे ललितादित्त के नाम को छोटा कर प्रायः ललदित्त कहा जाता था। इस राज-कुमार तथा सिकन्दर के बीच केवल ७०० वर्षों का अन्तर है। आश्चर्य है कि स्थानीय गाथाओं मे एक ऐसी तिथि को जीवित रखा गया है जो उनके स्थानीय इतिहास मे दी गई तिथि से इतनी भिन्न है।

राजा बृहस्पति जिसने ८३२ से ८४४ तक राज्य किया था, के मन्त्री पदम ने पदमपुर का निर्माण करवाया था जिसे आजकल पामपुर कहा जाता है। यह राजधानी

के दक्षिण पूर्व में ८ मील की दूरी पर तथा अवन्तिपुर के आधे मार्ग पर बेहात नदी के दाहिने तट पर अवस्थित है। यह स्थान अभी भी जनपूर्ण है तथा यहाँ के केसर के खेत सम्पूर्ण घाटी में सर्वाधिक उपजाऊ है।

अवन्तिपुर का निर्माण राजा अवन्ति वर्मा ने करवाया था जिसने ८५४ से ८८३ ई० तक शासन किया था। यह नगर वर्तमान राजधानी के दक्षिण पूर्व में १७ मील की दूरी पर बेहात नदी के दाहिने तट पर अवस्थित है। अब वहाँ वन्तिपुर नाम का एक छोटा गांव है परन्तु दो देदीप्यमान मंदिरों के अवशेष तथा चारों ओर दीवारों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी समय एक विशाल नगर रहा होगा। नो नगर अथवा "नवीन नगर" जो नदी की दूसरी ओर बाढ़ से बनाई हुई ऊँची भूमि से सबंधित बतलाया जाता है। कहा जाता है कि अवन्तिपुर मूल रूप से नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ था।

उरश

ह्वेनसांग ने तक्षशिला तथा काश्मीर के बीच अ-ला-शी अथवा उरश जिले का उल्लेख किया है जिसे उसकी स्थिति के कारण तुरन्त ही टालमी के 'वरसा रीगा' तथा मुज्जफराबाद के पश्चिम मे धन्तावर में आधुनिक रश जिले के अनुरूप समझा जा सकता है। काश्मीर की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों मे इसका उल्लेख घाटी के समीप ही एक पर्वतीय जिले के रूप में किया गया है। जहाँ ६०१ ई० में राजा संकर वर्मा को घातक चोट लगी थी। यह अबुल फजल के परवली से ठीक-ठीक मिलता है जिसमे सिन्धु तथा काश्मीर के बीच दक्षिण में अटक को सीमा तक का सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश सम्मिलित था। वर्तमान समय मे इस जिले के मुख्य नगर इस प्रकार है। उत्तर पूर्व मे मानसेर, मध्य मे नौशे, तथा दक्षिण पश्चिम मे किशन गढ़, अथवा हरिपुर। ह्वेनसांग के समय मे राजधानी को तक्षशिला से ३०० अथवा ५०० ली, ५० अथवा ८३ मील दूर बताया जाता था। दूरी में इस विभिन्नता के कारण सातवी शताब्दी में राजधानी के वास्तविक स्थान को ढूंढना कठिन हो जाता है परन्तु यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह (राजधानी) मांगली मे थी जो जन-साधारण के अनुसार जिले की प्राचीन राजधानी बताई जाती है। यह स्थान तक्षशिला के उत्तर-पश्चिम लगभग ५० मील की दूरी पर नौशेरा तथा मानसेर के मध्य मे है।

ह्वेनसांग के अनुसार उरश का व्यास ३३३ मील था जो सम्भवतः सही है क्योंकि इसकी लम्बाई कुनिहार नदी के उदगम स्थान से गण्डगढ़ पर्वत तक १०० मील से कम नहीं है और इसकी चौड़ाई सिन्धु से बेहात अथवा झेलम नदी तक इसके संकुचित भाग मे ५५ मील है। काश्मीर से इसकी दूरी १६७ मील बताई गई है जिससे राजधानी को नौशेरा के आस-पास किसी स्थान पर तथा मांगल से कुछ ही मील के

भीतर दिखाया जा सकता है। जनश्रुतियों के अनुसार मांगल प्राचीन राजधानी थी।

तक्षिला अथवा तक्षशिला

तक्षशिला के प्रसिद्ध नगर की स्थिति आंशिक रूप से प्लिनी द्वारा दी गई त्रुटि पूर्ण दूरी के कारण तथा कुछ सीमा तक शाह ढेरी के आस-पास प्राप्त अवशेषों के सम्बन्ध मे समुचित सूचना के अभाव के कारण अभी तक अज्ञात रही है। प्लिनी की सभी प्रतिलिपियो मे एक ही बात निहित है कि तक्षशिला प्यूकोलेटिस अथवा हस्तनगर से केवल ५५ मील दूर था। इससे तक्षशिला का स्थान हसन अब्दाल के पश्चिम अथवा सिन्धु नदी से दो दिन की यात्रा की दूरी पर हारो नदी पर किसी स्थान पर निश्चित होगा। परन्तु चीनी तीर्थ यात्रियो की मार्ग सूचक पुस्तकें इसे सिन्धु नदी के पूर्व में तीन दिन की यात्रा पर (१) अथवा काल का सराय के समीपस्त पड़ोस में दिखाने में सहमत है। काल का सराय मुगल सम्राटों का तीसरा विश्राम स्थान था और आज भी यह स्थान सैनिको एवं सामान के लिए सिन्धु नदी से तीसरा पड़ाव है। चूँकि चीन वापिस जाते समय ह्वेनसांग के साथ भार युक्त हाथा थे अतः तक्षशिला से सिन्धु की ओर उतखण्ड अथवा ओहिन्द तक उसको तीन दिन की यात्रा उतनी ही दूर की रही होगा जितनी कि आधुनिक समय की तीन दिन की यात्रा की दूरी हो सकता है और परिणाम स्वरूप तक्षशिला नगर के स्थान को काल का सराय के पड़ोस मे किसी स्थान पर देखना चाहिए। यह स्थान शाहढेरी के समीप पाया गया है जो काल का सराय के उत्तर पूर्व मे एक मील की दूरी पर एक सुदृढ़ नगर के विस्तृत अवशेषों में मिलता है। इसके आस पास मुझे कम से कम ५५ स्तूप २८ मठ तथा ९ मन्दिर ढूंढने मे सफलता मिली थी जिनमे दो स्तूप विशाल माणिकयाल स्तूप के समान बड़े थे। इस समय शाहढेरी स ओहिन्द की दूरी ३६ मील तथा ओहिन्द से हस्तनगर ३८ मील अधिक अथवा कुल मिलाकर ७४ मील है जो प्लिनी द्वारा दी गई तक्षशिला तथा प्यूकोलेटिस के बीच की दूरी से १९ मील अधिक है। इ(त्रुटि पूर्ण सख्याओं मे समानता लाने के लिये मैं यह प्रस्ताव करूँगा कि प्लिनी के ६० मील का ८० मील पढ़ा जाना चाहिए जो ७३½ मील के बराबर है अथवा दोनो स्थानों के बीच की वास्तविक दूरी से केवल आधे मील के अन्तर पर है।

अभिजात लेखक तक्षशिला के विस्तार एवम् समृद्धि के सम्बन्ध में एकमत हैं। ऐरियन ने इसे "एक विशाल एवम् समृद्ध नगर तथा सिन्धु नदी एवम् हाइडसपीज

(१) फाह्यान इसे पेशावर से सात दिन की यात्रा पर अर्थात सिन्धु नदी तक चार दिन तथा वहाँ से तक्षशिला तक तीन दिन की यात्रा पर बताया है। सुङ्ग-युन ने इसे सिन्धु नदी से पूर्व तीन दिन की यात्रा की दूरी पर बताया है। ह्वेनसांग ने इसे सिन्धु नदी के दक्षिण पूर्व तीन दिन की यात्रा पर कहा है।

(झेलम) के बीच सर्वाधिक जनपूर्ण नगर" कहा है। स्ट्रैबो ने भी इसके एक विशाल नगर होने की घोषणा की है तथा उसने यह भी कहा है कि आस-पास का प्रदेश "जन-पूर्ण तथा अत्याधिक उपजाऊ" था। प्लिनी ने इसे "अमन्द नामक एक जिले मे निचली परन्तु समतल भूमि पर अवस्थित एक प्रसिद्ध नगर" कहा है। यह विवरण शाहढेरी के समीप प्राचीन नगर की स्थिति एवम् उसके विस्तार के विवरण से ठीक-ठीक मिलते हैं जिसके अवशेष अनेक वर्ग मीलो तक फैले हुए हैं।

सिकन्दर महान् के आगमन के लगभग ५० वर्ष बाद तक्षशिला के निवासियों ने मगध के सम्राट बिन्दु सार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था जिसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुसिमा को इस नगर का घेरा डालने के लिए भेजा था। उसकी असफलता पर घेरे का कार्य उसके छोटे पुत्र प्रसिद्ध अशोक को सौंपा गया था परन्तु जन साधारण २½ योजन अथवा १७½ मील चलकर युवक राजकुमार से भेंट करने एवम् उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिये उपस्थित हुए। अशोक के सिंहासनारोहण के समय कहा जाता है कि तक्षशिला के कोष मे कुछ अनाम मुद्राओ के रूप मे ३६ कोटी अथवा ३७०० लाख रुपया था जो चाहे चान्दी के टङ्कका के रूप मे रहा हो अथवा ६ पेन्स की मुद्रा के रूप मे ९ करोड़ अथवा ९,०००,००० ब्रिटिश पोण्ड के बराबर रहा होगा। यह सम्भव है कि भारतीय लेखकों ने जिस मुद्रा का उल्लेख किया है वह स्वर्ण मुद्रा थी। अतः इस दिशा मे नगर का धन ९०० लाख अथवा एक करोड़ पौण्ड रहा होगा। मैं सिकन्दर के अभियान के पचास वर्षों के भीतर तक्षशिला की प्रसिद्ध समृद्धि के प्रमाण स्वरूप उपरोक्त कथन का उद्धृत किया है। स्वय अशोक अपने पिता के शासनकाल मे पञ्जाब के राज्यपाल के रूप मे इसी स्थान पर रहा था और इसी स्थान पर ही उसका पुत्र कुनाल रहा था जो एक विचित्र बौद्ध कथा का मुख्य पात्र है। इस कथा का उल्लेख आगे चल कर किया जाएगा।

तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व के अन्त से थोड़ा पूर्व मौर्य राजाओ के उत्तराधिकारी डेमिट्रियस तथा उसके पुत्र एन्थोडोमस के अधीन बेक्ट्रिया के यूनानियो के सम्पर्क मे आये होंगे तथा अगली शताब्दी के प्रारम्भ मे तक्षशिला यूक्रटाइडोज के भारतीय स्वतन्त्र अधिराज्य का भाग रहा होगा। १२६ ई० पू० मे सुस अथवा अबर नाम की इण्डो सीथियन जाति ने इसे यूनानियो से छीन लिया। तक्षशिला तन चौथाई शताब्दी तक इस जाति के पास रहा। तत्पश्चात् कनिष्क महान् के नेतृत्व मे इण्डोसीथियन की एक अन्य कुशान नामक जाति ने अधिकार कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुशान जाति के शासन काल मे पेशावर इण्डोसीथिन साम्राज्य की राजधानी थी जबकि तक्षशिला का शासन क्षत्रपो के अन्तरगत था। स्थानीय राज्यपालों की अनेक मुद्रायें तथा उनके शिला लेख शाहढेरी एवम् माणिक्याल के स्थान पर प्राप्त हुए हैं इनमे सबसे महत्वपूर्ण एक ताँबे की तख्ती है जिसे मिस्टर राबर्ट ने प्राप्त किया था तथा जिस पर

तक्षसिला के पाली स्वरूप तक्षशिला लिखा हुआ था इसी शब्द से यूनानियों को उनका तक्षशिला शब्द प्राप्त हुआ था।

४२ से ४५ ई० तक पारथिया के बरडनीय के शासन काल में टयाना के अपोलो नीयस तथा उसके साथी असीरिया डमिस ने तक्षशिला की यात्रा की थी। फिलोस्ट्राटस का कथन है कि अपोलोनीयस की जीवनी में डमिस के यात्रा के विवरण का अनुसरण किया गया है। दार्शनिक के कार्य एव कथनो के सम्बन्ध मे दिया उसका विवरण अनेक स्थानों मे स्पष्ट रूप से अतिशयोक्ति पूर्ण है परन्तु स्थानो का उल्लेख प्रायः परिमित एवं सत्य प्रतीत होता है। यदि उनका उल्लेख डमिस के विवरण मे नही मिलता तो सिकन्दर के किन्ही अनुयायियो के विवरण से इसे प्राप्त किया गया होगा और दोनों मे किसी भी दिशा मे यह विवरण महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अनेक ऐसी छोटी सूचनाये प्राप्त होती है जिनका अनियमित इतिहास मे अभाव है। फिलोस्ट्राटस के अनुसार तक्षशिला "प्राचीन नीनस के असमान नही था तथा अन्य यूनानी नगरो के ढग पर ही इस नगर के चारो ओर दीवारे बनाई गई थी।" नीनस अथवा नीनवे को हमे बैबलोन पढना चाहिए क्योकि इस विशाल असीरियाई नगर के सम्बन्ध मे हमे कोई उल्लेख प्राप्त नही है। हीरोडोटस के समय से लगभग दो शताब्दी पूर्व यह नगर नष्ट हो गया था। अब हमे कर्टियस से यह सूचना मिलती है कि बैबिलोन की "यथा प्रमाणता एव प्राचीनता" के कारण ही सिकन्दर एवं अन्य उन सभी आक्रमण कारियो को आकर्षित किया था जिन्होने इसे सर्व प्रथम देखा था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि अपनी समानता के कारण तक्षशिला से यूनानियो को बैबिलोन का स्मरण हुआ होगा जैसा कि फिलोस्ट्राटस का कथन है कि यह नगर "बड़ी नियमितता से सकीर्ण गलियो मे विभाजित था।" उसने एक सूर्य मन्दिर जो नगर की दीवारो से बाहर था तथा एक राज भवन का भी उल्लेख किया है जिसमें बलपूर्वक अधिकार करने वाले को बन्द रखा गया था। उसने एक स्टेडियम के समान लम्बे उद्यान का भी उल्लेख किया है जिसके मध्य मे एक तालाब था जिसे "शीतल एव विश्रान्त जल से" भरा गया था। इन सभी बातो पर एक भिन्न लेख मे उस समय विचार किया जाएगा जब मैं इन प्राचीन नगर के वर्तमान अवशेषों का उल्लेख करूंगा।

तत्पश्चात् ४०० ई० तक हमें तक्षशिला (१) का उल्लेख नहीं मिलता। (२)

(१) तक्षशिला का उल्लेख २४० ई० तक मिलता है। तत्पश्चात् इसका विस्तृत विवरण कम नहीं है कि इस नगर का विनाश कब और किस प्रकार हुआ। मुसलमान लेखकों ने इसका उल्लेख नहीं किया है। अलबेरूनी ने कुमार विभाग पर टिप्पणी करते हुए इसे तक्षशिला अर्थात् मारीकल कहा है।

(२) देश की सीमायें उत्तर में उरश, पूर्व में झेलम, दक्षिण में सिंहपुर तथा पश्चिम मे सिन्धु नदी थीं।

४०० ई० में चीनी तीर्थ यात्री फाह्यान ने इस स्थान की यात्रा की थी। उसने इस नगर को चू-शा-शी-लो अथवा "कटा सिर" कहा है तथा उसने यह भी लिखा है कि "बुद्ध ने इस स्थान पर अपना सिर भिक्षा मे दे दिया था और इसी कारण इस प्रदेश का यह नाम रखा गया था।" अनुवाद से पता चलता है कि संस्कृत का मूल नाम च्युत शिर रहा होगा जो "कटा हुआ शिर" का पर्यायवाची शब्द है। भारत के बौद्ध धर्मावलम्बियो मे तक्षशिला को इसी सामान्य नाम से जाना जाता था। ५०२ ई० मे सुङ्ग-युन ने "उस स्थान" की यात्रा की थी "जहाँ बुद्ध ने अपने सिर का भिक्षा दान दिया था" उसने इस स्थान को शिन-तू अथवा सिन्धु नदी के पूर्व तीन दिन की यात्रा पर बताया है।

अब हम चीनी तीर्थ यात्रियो के अन्तिम तथा श्रेष्ठ ह्वेनसाग का उल्लेख करेंगे जिसने ता-चा-शी-लो अथवा तक्षशिला की प्रथम यात्रा ६३० ई० मे की थी तथा चीन वापसी के समय ६४३ ई० मे पुन: इस नगर की यात्रा की थी। उसने नगर को व्यास मे १२ मील कहा है। राजधराना लुप्त हो चुका था तथा यह प्रान्त जो इससे पूर्व कपिशा के अधीन था उस समय काश्मीर का आश्रित राज्य था। यहाँ की भूमि अनेक नदियो, नालो एवम् तालाबो से सिचाई की सुविधा से अपने उपजाऊपन के कारण प्रसिद्ध थी। यहाँ पर अनेकानेक मठ थे परन्तु अधिकांश जर्जर अवस्था मे थे तथा बहुत कम ऐसे भिक्षु थे जो महायान अथवा बौद्धधर्म के गोपनीय सिद्धान्तो का अध्ययन करते थे। नगर से २ मील उत्तर मे सम्राट अशोक का स्तूप था। जिसका निर्माण उस स्थान पर कराया गया था जहाँ बुद्ध ने अपने पिछले जीवन मे अपने सिर का भिक्षा-दान दिया था अथवा जहाँ जैसा कि किसी ने लिखा है बुद्ध ने "इतने ही जन्मों मे १००० बार" अपने सिर की भिक्षा दी थी। यह स्तूप उन चार विशाल स्तूपो मे था जो सम्पूर्ण उत्तर पश्चिमी भारत मे प्रसिद्ध थे तथा तदनुसार अपनी वापसी के समय ह्वेनसांग ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि उसने "एक सहस्र सिरो के भिक्षा दान वाले स्तूप" पर दूसरी बार पूजा की थी। जिले का आधुनिक नाम चत्र-हजारा है जो मेरे विचार मे शिरस सहस्र का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। तक्षशिला के क्षत्रप (राज्यपाल) लियाको कुसुलक की ताँबे की तख्ती पर इसका नाम छहर चुक्ष लिखा गया है जो उपरोक्त नाम का एक अन्य भ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता है।

चीनी तीर्थ यात्रियो के इन विवरणो से हम देखते हैं कि तक्षशिला बुद्ध के सर्वश्रेष्ठ भिक्षा कार्य जब उसने अपना सिर भिक्षा मे दे दिया था—के रूप मे सभी बौद्ध धर्मावलम्बियो के लिये विशेष महत्व रखता था। मेरा विचार है कि इस कथा की उत्पत्ति को तक्षशिला नाम मे ढूंढा जा सकता है। जिसका अर्थ है। "कटा हुआ पत्थर" और जिसे थोड़े परिवर्तन के बाद तक्षशिरा अर्थात् "कटा सिर" बना दिया गया था। या तो कथा से नाम की उत्पत्ति हुई है अथवा नाम से मिलाने के लिए कथा का

आविष्कार किया गया है। (१) इस सम्बन्ध में हमें यह निश्चित मान लेना चाहिये कि दूसरी बात ही सही है क्योंकि यूनानियों ने बौद्ध धर्म द्वारा समस्त प्रदेश मे शक्य बुद्ध के प्रशंसनीय कार्यों की असीमित कथाओं से फैलाये जाने से पूर्व मूल नाम के उच्चारण को सुरक्षित रखा था। कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि बुद्ध ने किसे सिर दान दिया था परन्तु मेरा विश्वास है कि यह दान एक भूखे शेर को दिया गया था जिसके सात बच्चो को अपना रक्त देकर बुद्ध ने पहले ही बचाया था। मेरा यह विश्वास इस तथ्य के कारण है कि ध्वस्त नगर के ठीक उत्तर के प्रदेश को बबर खाना कहा जाता है। यह नाम महमूद के समय पुराना है क्योंकि अबु-रिहान ने 'बबरकान' को सिन्धु तथा झेलम के बीच आधे मार्ग पर बताया है। यह वर्णन प्राचीन तक्षशिला के बबरखाना के लिये लो समान रूप मे लागू होता है। यह तुर्की नाम है अतः इतना प्राचीन है जितना कनिष्क का शासन काल। इस नाम के निरन्तर सत्ता से मेरा अनुमान है कि विशाल स्तूप समीपस्थ ही एक मन्दिर था जिसमें बुद्ध को शेर को अपना सिर दान करते दिखाया था। इस मन्दिर को तुर्कों ने स्वभावतः बबरखाना "शेर का घर" कहा होगा और चूँकि तक्षशिला का ह्रास हो गया इस मन्दिर का नाम उस नगर के नाम से पूर्व ही धीरे-धीरे लुप्त हो गया होगा। मेरा विश्वास है कि बुद्ध के अत्यधिक उदारतापूर्वक कार्य को मारगल अथवा "कटा सिर" के नाम मे सुरक्षित रखा गया है जो शाहढेरी के दक्षिण मे २ मील दूर एक पहाड़ी को दिया गया है। मारगल का अक्षरशः अर्थ है गला काटना जिसे गन मार्टन से लिया गया है जो "गला काटने" का मुहावरेदार वर्णन है।

शाहढेरी के समीप प्राचीन नगर के अवशेष जिन्हें मैं तक्षशिला के अनुरूप समझने का प्रस्ताव करता हूँ—उत्तर से दक्षिण ३ मील तथा पूर्व से पश्चिम २ मील के विस्तृत क्षेत्र मे फैले हुए हैं। अनेक स्तूपो एवम् मठों के अवशेष चारो ओर अनेक मीलो तक फैले हुए हैं परन्तु नगर के वास्तविक अवशेष उपरोक्त लिखित सीमाओं मे ही सीमित हैं। इन अवशेषो मे अनेक पृथक भाग हैं जिन्हें आज भी भिन्न-भिन्न नामो से

---

(१) तक्षशिला का नाम प्रायः नागराज तक्षक से सम्बन्धित किया जाता है। तक्षक के वंशज टक्क है जो उस समय देश पर राज्य करते थे। इस नाम का अर्थ गुन्थी चट्टान भी हो सकता है क्योंकि यह नगर मिट्टी अथवा ईंटों के स्थान पर पत्थर से बना हुआ था। सस्कृत शिरस प्राकृत से सिला (सिर) के समान है अतः इसका अर्थ कटा हुआ सिर भी हो सकता है। इसी स्थान पर बुद्ध ने अपने सिर की बलि दी थी। यह एक बहुत बड़ा बौद्ध तीर्थ था तथा यहाँ एक विश्वविद्यालय भी था।

युआन-युन ने लिखा है कि बुद्ध ने एक अन्य व्यक्ति की जीवन रक्षा हेतु अपना सिर अर्पित कर दिया था।

पुकारा जाता है। इन निर्माण कार्यों की सामान्य दिशा दक्षिण, दक्षिण पश्चिम से उत्तर-उत्तर पूर्व की ओर है और मैं इसी क्रम से इनका उल्लेख करूँगा। दक्षिण से शुरू करने पर उनके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) बीर अथवा फेर
(२) हतियाल
(३) सिर-कप-का-कोट
(४) कच्चा कोट
(५) बबरखाना
(६) सिर सुख का कोट

जन साधारण के विश्वासानुसार इन अवशेषो का प्राचीनतम भाग एक विशाल टीला है जिस पर बीर अथवा फेर नाम का एक छोटा गाँव बसा हुआ है। यह टीला उत्तर मे दक्षिण ४००० फुट लम्बा तथा २६०० फुट चौड़ा है जिसका व्यास १०,८०० फुट अथवा २ मील से भी अधिक है। शाहढेरी के पथरीले गाँव की ओर पश्चिम दिशा मे बीर टीले की ऊचाई अपने समीपस्थ खेतो से १५ से २५ फुट है परन्तु जैसे-जैसे यह टीला शाहढेरी की ओर ढलवां होता जाता है इसकी सामान्य ऊँचाई २५ से ३५ फुट से कम नहीं है। पूर्व की ओर तबरा अथवा तमरा नाले के ठीक ऊपर यह टीला खेतों से ४० फुट तथा नाले के स्तर से ६८ फुट ऊपर उठ जाता है। दीवारो के अवशेष पूर्व तथा पश्चिम दोनो ओर केवल कुछ स्थानो पर देखे जा सकते हैं परन्तु सम्पूर्ण पृष्ठ भाग टूटे हुए पत्थरो तथा ईटो एवम् नाना के बर्तनो के टुकड़ो से ढका हुआ है। इस स्थान पर पुरानी मुद्रायें अवशेषो के अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा अधिक सख्या मे प्राप्त हैं और इसी स्थान पर ही एक मात्र व्यक्ति ने केवल दो घण्टे ही मे मेरे लिए वैडूर्य (एक नीला बहुमूल्य रत्न) के दो मुट्ठी भर छोटे-छोटे टुकड़े एकत्रित कर लिये थे जो अन्य किसी स्थान पर दिखाई नही देते। स्थान के विस्तार से मेरा अनुमान है कि यह ह्वेनसांग के समय नगर के बसे हुए भाग का मुख्य स्थान रहा होगा। जिसने इसे व्यास मे १$\frac{2}{3}$ मील बताया है। बबरखाना की भूमि के मध्य मे विशाल ध्वस्त दुर्ग की स्थिति से उपरोक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। यह भूमि बीर के टीले के समीपस्थ द्वार से ८००० फुट उत्तर, उत्तर पूर्व मे तथा मुख्य प्रवेश द्वार से प्राचीन नगर के मध्य तक १००० फुट अथवा प्रायः २ मील की दूरी पर है। चूँकि ह्वेनसांग ने "सिर भिक्षा" के स्तूप को नगर से उत्तर की ओर २ मील से कुछ अधिक बताया है अतः मेरा अनुमान है कि इस बात मे लेशमात्र सन्देह नही हो सकता कि उसके समय का नगर बीर के टीले पर बसा हुआ था। मैंने टीले के उत्तर तथा पूर्वी किनारे पर तीन छोटे बौद्ध स्तूपो के अवशेषों की खोज की थी जिन्हें पहले ही ग्रामवासियों ने खोद

किया था परन्तु उन्होंने इस तथ्य का जोरदार खण्डन किया। उनका कथन था कि जनरल एबाट तथा मेजर पीर्यस ने इन स्तूपों की छान बीन की थी।

हतियाल, मार्गल पर्वत माला के उभडे भाग के पश्चिमी छोर पर एक सुरक्षित स्थान है तथा बीर टीले के ठीक उत्तर पूर्व में है। तबरा नाला हतियाल को बीर टीले से अलग करता है। बीर से प्रायः आधे मील की दूरी पर यह उभडा भाग प्रायः दो समानान्तर पर्वत पृष्ठो मे विभाजित हो जाता है जो एक दूसरे से १५०० फुट दूर है तथा पश्चिम मे तबरा के किनारे तक फैले हुए हैं जहाँ एक ऊँचे प्राचीर से दोनो मिल जाते हैं। इस प्रकार दोनो पर्वत पृष्ठो से घिरा हुआ स्थान २००० फुट × १००० फुट से अधिक नही है परन्तु पर्वत पृष्ठ तथा कृतिम प्राचीर के साथ-साथ रक्षा पंक्ति का पूर्ण व्यास लगभग ८४०० फुट अथवा १½ मील से कुछ अधिक है। पूर्वी छोर पर दानो पर्वत पृष्ठो को १५ फुट चार इञ्च चौडी पत्थर की दीवार से मिला दिया गया है। इस दीवाल के स्थान-स्थान पर चतुर्भुजाकार बुर्ज है जो इस समय की अत्यधिक अच्छी हालत म है। दक्षिणी अथवा मुख्य पर्वत पृष्ट खेतो के सीमान्त स्तर से २६१ फुट ऊँचा ह जबकि उत्तरी पर्वत पृष्ठ कवल १६२ फुट ऊँचा उठा हुआ है। इन दोनों के बीच २०६ फुट ऊँचा एक छोटा पथरीला पर्वत पृष्ठ है जिसके शिखर पर एक विशाल बुर्ज अथवा अटारी है। जिस जन साधारण मे स्तूप समझा जाता है। उत्तरी पर्वत पृष्ठ पर इसी प्रकार का बुज है। इसकी खोज की प्रेरणा मुझे नूर नामक एक ग्रामीण स मिली थी जिसने मुझे सूचित किया था कि उसे इस बुर्ज के चारो कोणो से एक ताब की मुद्रा प्राप्त हुई थी जिस वह इस विश्वास का निश्चित प्रमाण समझता था कि यह भवन एक बौद्ध स्तूप था। मुझे ज्ञात था कि वर्मा मे चतुर्भुजाकार सुदृढ़ बनाये गये नगरो म किनार क चारो उभडे भागो पर स्तूप बनाये जाने की प्रथा थी परन्तु मेरी खुदाई म जिस २६ फुट की गहराई तक निचली चट्टान तक ले जाया गया था। वहाँ विशाल ऊँचे-नीचे पत्थरो का सीढ़ियाँ प्राप्त हुई थी जिन्हे बड़ी कठिनाई से निकाला गया था। इस अटारी के पश्चिम की ओर समीप ही मैंने १६३ फुट लम्बे एवम् ११५½ फुट चौड़ आगन का खोज की थी। यह आंगन चारो ओर दो-दो कमरो मे विभाजित था अतः मैंने सर्व प्रथम यह अनुमान लगाया कि यह भवन एक मठ रहा होगा परन्तु गुलेलबाजो द्वारा अपनाई जाने वाली गोलियो के आकार की जली हुई मिट्टी की गोलियो की प्रचुर मात्रा म पश्चातवर्ती प्राप्ति स मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह स्थान सम्भवतः केवल सैनिको का रक्षक गृह रहा होगा। दोनों पर्वत पृष्ठ पश्चिम की ओर १२०० फुट तक बहुत ढलवा हो जाते है यहाँ तक कि यह दोनो मध्यवर्ती भूमि के सामान्य स्तर से मिल जाते है। यह स्थान दुर्ग के दो प्रवेश द्वार हैं जिनमें एक-दूसरे क ठीक उत्तर मे है। उत्तरी पर्वत पृष्ठ पुनः ऊपर उठता है तथा पश्चिम, दक्षिण पश्चिम की ओर २००० फुट तक जाने के बाद १३० फुट ऊँचे चतुर्भुजाकार शिखर

वाले टीले से मिल जाता है। पर्वत पृष्ठ का यह भाग जर्जर भवनों के अवशेषों से पूर्णतयः सटा हुआ है और इसके पूर्वी छोर के समीप ही ग्रामीण नूर ने एक जर्जर स्तूप से तांबे की कुछ मुद्रायें प्राप्त की थी। हति ाल के नाम के सम्बन्ध में मैं किसी प्रकार की कोई सूचना एकत्रित नही कर सका परन्तु सम्भवतः यह पुराना नाम है क्योंकि मेरे विचार मे इसे हट्टियार-लङ्क के अनुसार समझा जा सकता है जिसे अबुल फजल ने सिन्ध सागर दोआब मे बताया है। नाम के उच्चारण के हट्टि अर्थात दुकान का संकेत मिलता है तथा हट्टियाल बाजार का नाम रहा होगा। परन्तु हतियाल दुर्ग इस प्राचीन स्थान के दुर्ग के रूप मे इतना प्रत्यक्ष है कि मैं उपरोक्त व्युत्पत्ति के अत्यधिक सन्देहस्पद समझता हूँ।

सिर कप का सुरक्षित नगर हतियाल के उत्तरी अधोभाग पर एक विशाल समतल टीले पर बसा हुआ है। वस्तुतः यह हतियाल का ही एक भाग है क्योंकि इसकी दीवारे दुर्ग की दीवारो से मिली हुई है। यह उत्तर से दक्षिण की ओर लम्बाई मे आधा मील है जिसकी चौडाई दक्षिणी छोर पर २००० हजार फुट है परन्तु उत्तरा छोर पर यह केवल १४०० फुट चौड़ा है। सिरकप का व्यास ८३०० फुट अथवा १$\frac{3}{5}$ मील से कुछ अधिक है। इसकी दीवारे जो पूर्णतः चर्तुभुजाकर पत्थरो से बनाई गई हैं, १४ फुट ६ इञ्च मोटी है जिसके ऊपर ३० फुट आकार के चर्तुभुजाकार बुर्ज हैं जिन्हे १४० फुट के पर्दों से अलग किया गया है। पूर्वी तथा उत्तरी दीवारे सीधी है परन्तु पश्चिमी दीवार की रेखा, गहरी गुफा से टूट गई है। इन दीवारो मे प्रत्येक मे दो विशाल दीवारे हैं। कहा जाता है कि यह सभी प्राचीन द्वारों के स्थान थे। इनमे उत्तरी भाग की दरार द्वार के रूप मे निश्चित है। क्योंकि यह हतियाल दुर्ग के दो प्रवेश द्वारो के ठीक उत्तर में तथा बब्बर खाना मे तीन ध्वस्त टीलो के ठीक दक्षिण में है। इसी प्रकार पूर्व की द्वार अवस्थिति भी निश्चित है क्योंकि द्वार की दीवारो के कुछ अंश इस द्वार तक आने वाली सडक के भागो के अशो सहित अब भी विद्यमान हैं। पश्चिम की ओर उपर्युक्त द्वार के ठीक सामने तीसरा द्वार भी प्रायः निश्चित है क्योंकि नगर के भीतर समस्त प्राचीन आधार शिलायें उत्तर तथा दक्षिणी कोणों पर बड़ी सावधानी से रखी गई है। सिरकप की स्थिति प्राकृतिक रूप से अत्यधिक सुदृढ़ है क्योंकि यह सभी ओर से अच्छी तरह सुरक्षित है। दक्षिण मे हतियाल के ऊँचे दुर्ग से, पश्चिम मे तबरा नाला से, तथा पूर्व तथा उत्तर दिशा मे गोउ-नाला से। दोनो स्थानो की दीवारो का सम्पूर्ण व्यास १४२०० फुट अथवा प्रायः २$\frac{3}{4}$ मील है।

कच्चा कोट अथवा "मिट्टी का दुर्ग" गऊ-नाला से सङ्गम स्थान से कुछ नीचे तबरा-नाला के दोहरे चक्कर से बनाए हुए सुदृढ़ एकान्त स्थान मे सिरकप के उत्तर मे अवस्थित है। तबरा तथा गऊ-नाला दोनो मिलकर इस स्थान को पूर्व मे छोड़कर अन्य सभी ओर से घेरे हुए है। कच्चे कोट की प्राचीरे जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है।

पूर्णतः मिट्टी की बनी हुई है तथा नदी से ३० से लेकर ५० फुट की ऊँचाई तक उठी हुई हैं। पूर्व की ओर किसी रक्षा पंक्ति के चिह्न नहीं है और इसके भीतर किसी भवन का कोई चिह्न नही है अतः यह कहना कठिन है कि इसका निर्माण किस उद्देश्य से किया गया था। चूंकि गऊ-नाला इससे होकर गुजरता है अतः मेरे विचार मे यह संभव प्रतीत होता है कि कच्चा कोट घेरे की स्थिति मे हाथियो एवम् अन्य पशुओ की सुरक्षा हेतु बनवाया गया हो। व्यास मे यह ६७०० फुट अथवा १¼ माल से अधिक है। जन-साधारण इसे प्रायः कोट कहा करते थे। सिरकप को भी इसी नाम से पुकारा जाता था परन्तु जब उन्हे दोनो स्थानो मे भेद करना होता तो वह इसे कच्चा कोट कहा करते थे। 'बाबरनामा' एवम् 'आईने अकबरी' दोनो मे ही इस नाम का उल्लेख मिलता हैं। बाबरनामा मे हारो नदी को कच्चा कोट की नदी कहा गया है जो अवश्य ही उस नदी के तट क समीप कोई बडा स्थान रहा होगा परन्तु मुझे सन्देह है कि इस स्थान को हसन अबदल के समीप अथवा उससे भी कुछ नीचे देखा जाना चाहिये।

बबरखाना, उत्तर मे लुण्डी नाला तथा दक्षिण मे तबरा तथा गौ नालो के बीच के भू-भाग का नाम है। इस भू-भाग मे कच्चा कोट सम्मिलित है तथा इसका विस्तार कच्चा कोट के पूर्व तथा पश्चिम दोनो ओर लगभग एक मील तक है जिसमे उत्तर पश्चिम की ओर सेरी-की-पिण्ड का विशाल टोला तथा पूर्व में गगू समूह के स्तूप एवम् अन्य अवशेष सम्मिलित हैं। इस भू भाग के ठीक मध्य मे जहाँ लुण्डी तथा तबरा नाले एक दूसरे से १००० फुट की दूरी पर रह जाते हैं ४५ फुट ऊँचा एक टीला है जिसे समीप के एक छोटे गाँव के नाम पर भणिडयाल पिण्ड कहा जाता है। पिण्ड अथवा टीले के पश्चिम की ओर खण्डहरो का एक अन्य टीला है जो इससे अधिक चौड़ा है परन्तु केवल २६ फुट ऊँचा है। प्रत्यक्ष रूप से यह एक विशाल मठ के खण्डहर है। यह उल्लेखनीय है कि हतियाल के दोनो द्वारो से तथा सिरकप के उत्तरी द्वार से होकर जाने वाली सड़क इन दोनो टीलों के मध्य मे जाती है और भणिडयाल पिण्ड से १२०० फुट दूर लुण्डिनाला के तट पर विशाल स्तूप के खण्डहरो से मिल जाती है। मेरा विश्वास है कि यह अन्तिम स्तूप प्रसिद्ध "सिर की भिक्षा का स्तूप" हैं जिसे ईसवी पूर्व की तृतीय शताब्दी में सम्राट अशोक द्वारा निर्मित बताया जाता है। मैं ह्वेनसांग द्वारा दिये गये उल्लेख का ठीक-ठीक उत्तर देने वाली इसकी स्थिति का सकेत दे चुका हूँ और अब मैं इस विचार की पुष्टि के रूप मे इतना और जोड देना चाहूँगा कि तक्षशिला नगर की ओर जाने वाली मुख्य सडक भणिडयाल स्तूप के उत्तर सीधी रेखा मे बनाई गई थी। यह तथ्य निर्विवाद रूप से उच्च सम्मान को सिद्ध करता है जो इस विशेष स्मारक को उस समय प्राप्त रहा होगा। उत्तर पश्चिम मे ३६०० फुट दूर एक अन्य टीले की समीपता से इसकी पुष्टि होती है जिसे सेरी की पिण्ड अथवा सिरी की-पिण्ड कहा जाता था जो बुद्ध के सिरशासनम अथवा सिरदान की ओर संकेत करता प्रतीत

होता है। इस सभी बातों पर विचार करने से मेरा विचार है कि बबरखाना के विशाल ध्वस्त स्तूप को बुद्ध के "सिरदान" के स्तूप के अनुरूप स्वीकार कर लेने के अधिक ठोस प्रमाण प्राप्त हैं।

सिरसुक नाम का विशाल सुरक्षित गढ़ लुण्डी नाला से आगे बबरखाना के उत्तर पूर्वी छोर पर अवस्थित है। आकृति मे यह चतुर्भुज के अति समीप है जिसके उत्तरी तथा दक्षिणी किनारे ४ लम्बाई मे ४५०० फुट, पश्चिमी किनारा ३३०० फुट तथा पूर्वी किनारा ३००० फुट हैं। इस प्रकार कुल व्यास १५,३०० फुट अथवा लगभग तीन मील है। दक्षिणी भाग जो लुण्डी नाला से द्वारा सुरक्षित है बनावट मे सिर कप की रक्षा पक्ति के समान है। इसको दीवारे पत्थरो की बनी हुई हैं जिनका केवल वाह्य भाग चकोर बनाया गया है। यह दीवारें १८ फुट मोटी है तथा १२० फुट के अन्तर पर चतुर्भुजाकार बुर्ज हैं। इस भाग के बुर्ज एक ओर की अपेक्षा दूसरी ओर संकरी नीव सहित बडी सावधानी से बनाये गये हैं जिनके सभी पत्थरो को अच्छी तरह तिरछा रख कर एक ढलवान बनाई गई है। दक्षिण पूर्वी छोर का बुर्ज जो वर्तमान खडे खण्डरो मे सबसे ऊँचा भाग है—भीतरी भाग से १० फुट ऊपर तथा नदी के तट की निचली भूमि से २५ फुट ऊपर उठा हुआ है। पश्चिम की ओर-जहाँ पत्थर हटा दिये गये हैं—दक्षिणी दीवार भीतरी समतल से २ अथवा २ फुट से अधिक ऊँची नहीं है। पूर्वी तथा पश्चिमी दिशा मे लगभग आधी दीवारे आज भी देखी जा सकती हैं परन्तु उत्तर की ओर की दीवार का कोई चिह्न नहीं रहा। केवल दो किनारो पर कुछ टीले देखे जा सकते है। इन दीवारों के भीतर एक विशाल ध्वस्त टीले सहित मीरपुर, तुपकिया तथा पिन्ड नामक तीन गाँव है। इस टीले को पिंडोरा कहा जाता है और अधोभाग मे ६०० वर्गफुट है। पिंडोरा के दक्षिण मे तथा तुपकिया गाँव के समीप एक छोटे टीले पर एक खानगाह अथवा एक मुस्लिम महत्मा को समाधि है। चूँकि इसे चतुर्भुजाकार पत्थरों से बनाया गया है अत: मेरा अनुमान है कि खानगाह किसी स्तूप का प्रतिनिधित्व करती है जिसके नाम पर तुपिया गाँव का नाम पड़ा होगा और पिंडोरा का विशाल टीला एक बहुत बडा मठ रहा होगा। मैंने पत्थरो की दो विशाल नालियाँ प्राप्त की थी जिनके आकार मे यह प्रतीत होता है कि उनका प्रयोग आंगन से दीवार के बाहर वर्षा का पानी निकालने के लिए ही किया गया होगा। पश्चिम की ओर लगभग आधे मील की दूरी पर ऊँचे मिट्टी के टीलो को एक वाह्य दीवार है जो उत्तर तथा दक्षिण मे २००० फुट से अधिक दूरी तक चली गई है जहाँ यह पूर्व उत्तर पूर्व की ओर मुड़ जाती है। तत्पश्चात् यह वाह्य रेखा ३५०० फुट तक केवल एक चौडे क्षेत्र मे फैले हुए टूटे हुए पत्थरो से पहचानी जा सकती है। यहाँ यह दीवार १२०० फुट तक दक्षिण पूर्व की ओर मुड़ जाती है तथा सिर कप की उत्तरी दीवार मे मिल जाती है। यह वाह्य रेखायें किसी बडे निर्माण कार्य की अवशेष प्रतीत

होती हैं जिसका उत्तरी पश्चिमी कोण किसी समय लुंडि नाला पर आधारित रहा होगा। सिरसुक एवं इसके निर्माण कार्यों का कुल व्यास लगभग २०,३०० फुट अथवा लगभग ४ मील है।

मैं अब इस विशाल नगर के सभी भिन्न-भिन्न भागों की व्याख्या कर चुका हूँ जिसके ६ वर्ग मील मे फैले हुए खन्डहर पञ्जाब में किसी भी प्राचीन स्थान के खन्डहरों की अपेक्षा अधिक विस्तृत, अधिक रुचिकर एव अत्यधिक अच्छी हालत मे हैं। हतियाल दुर्ग एवं इसके अन्य निर्माण कार्यों बीर एवं कच्चाकोट सहित सिर कप नगर का व्यास ४३/४ मील है तथा सिरसुक का विशाल दुर्ग अपने अन्य निर्माण कार्यों सहित इतने ही आकार का है। यह दोनो ही लगभग इतने विशाल हैं जितना शाहजहाँ का राजकीय नगर दिल्ली। परन्तु स्तूपो, मठों एव अन्य धार्मिक भवनो की संख्या एवं आकार नगर के अत्यधिक विस्तार से भी अधिक आश्चर्यजनक हैं। यहाँ पर मुद्रायें एव प्राचीन काल के पदार्थ सिन्धु तथा झेलम के बीच अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं। अतएव यही शिला का स्थान रहा होगा जो प्राचीन लेखको की एक मत साक्षी के अनुसार सिन्धु एवं हाईडस्पीज के बीच सबसे बडा नगर था। स्ट्रैबो तथा ह्वेनसांग दोनो ने यहाँ की भूमि के उपजाऊ होने का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग ने यहाँ के झरनो एव जल मार्गों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। चूंकि उपरोक्त विवरण केवल तबरा नाला के उत्तर की समृद्ध भूमि के अनुकूल है जिसे हारो नदी से खींची गई अनेक नालियो से पर्याप्त रूप से सींचा जाता है अतः मेरी दी हुई अनुरूपता का प्रमाण पर्याप्त है। बनस ने १८३२ ई० में इस भू-भाग को पार किया था जब उसने शाहढेरी से तीन मील उत्तर तथा हारो नदी के लगभग एक मील दक्षिण मे पडाव किया था। उसने इस गाँव का उल्लेख "बाह्य पहाडियो के अधोभाग के सलीप एक घाटी के मुहाने समतल भूमि पर" खडे एक गाँव के रूप मे किया है। यह विवरण स्टेबो तथा प्लिनी के विवरण से ठीक-ठीक मिलता है जिन्होंने तक्षशिला को एक समतल प्रदेश मे बसा हुआ बताया है जहाँ पहाड़ियाँ समतल मैदानो के साथ मिलती है। उस्मान के सम्बन्ध मे वर्नस ने आगे लिखा है कि "यहाँ की चरागाहें पर्वतों से निकली सर्वोधिक सुन्दर एव स्वच्छ छोटी नदियों से सींची जाती है।" इस कथन के प्रथम भाग मे उसका कथन यथार्थ है परन्तु अन्तिम भाग मे निःसन्देह उसका कथन त्रुटिपूर्ण है क्यों कि पानी का प्रत्येक कण जो उस्मान से होकर गुजरता है हारो नदी कृतिम साधनो द्वारा खींचा गया है। दो मील दक्षिण मे सिंचाई कार्य लुन्डी नाला को पार कर किया जाता है। परन्तु इस नदी का सम्पूर्ण जल कृतिम साधनो से हारो नदी से प्राप्त किया गया है। अतः सिंचाई का पूरा प्रबन्ध वस्तु उसी नदी से हुआ समझा जाना चाहिये।

ह्वेनसांग ने शिला के जिले को व्यास में २००० ली अथवा ३३३ मील बताया

है। इसकी सीमायें पश्चिम में सिन्ध नदी, उत्तर मे उरश का जिला, पूर्व में झेलम अथवा बेहात नदी तथा दक्षिण मे सिंहपुर का जिला थी। चूँकि सिंहपुर की राजधानी नमक की पहाड़ियो में केटास अथवा उसके समीप थी अतः उस ओर तक्षशिला की सीमायें सम्भवतः दक्षिण पश्चिम मे सुहान नदी द्वारा निश्चित थी तथा दक्षिण पूर्व में विकराल पर्वत श्रेणी द्वारा निर्धारित की गई थी। इन सीमाओ को प्रायः सही स्वीकार करने से सिन्धु तथा झेलम की सीमान्त रेखा लम्बाई में क्रमशः ८० मील तथा ५० मील होगी तथा उत्तरी एव दक्षिणी सीमाये क्रमशः ६० तथा १२० मील अथवा कुल मिला कर ३१० मील होगी जो ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आकडो के अति समीप है।

मानिक्याल

मानिक्याल के प्रसिद्ध स्तूप अथवा बौद्ध स्मारक की सूचना एल्फिन्स्टन की यात्रा से मिलती है और जनरल वेन्चूरा एव जनरल कोर्ट के द्वारा इसकी खोज की जा चुकी है। यह नाम राजा मान अथवा मानिक से प्राप्त किया गया बताया जाता है, जिसने इस प्रसिद्ध स्तूप का निर्माण करवाया था। यह प्रथा सम्भवतः सही है क्योंकि मैंने गाँव के पूर्व मे एक छोटे बौद्ध स्तूप से एक मुद्रा तथा मानिगल के पुत्र क्षत्रप जिहोनिया अथवा ज्योनिसस की अस्थियां प्राप्त की थी। प्राचीन नगर जिसे प्रायः मानिकपुर अथवा मानिक नगर कहा जाता है। रसालू की विचित्र पौराणिक कथा का स्थान बताया जाता है जिसने वहाँ के राक्षसों को निष्कासित किया था तथा जनसाधारण को सिर-कप अर्थात् सिर काटने वाले व्यक्ति एव उसके भाइयो के अत्याचार से मुक्त कराया था।

मानिक्याल के नाम का उल्लेख किसी भी चीनी तीर्थ यात्री ने नही किया यद्यपि उनमे प्रत्येक व्यक्ति ने इस स्थान की स्थिति का उल्लेख किया है। फाह्यान ने केवल इतना ही कहा है कि तक्षशिला से पूर्व दो दिन की यात्रा पर वह स्थान है जहाँ बुद्ध ने "एक भूखे शेर को अपना शरीर अर्पित कर दिया था।" परन्तु सुङ्ग-युन ने इस कृति की घटना के स्थान को गान्धार की राजधानी के दक्षिण पूर्व मे आठ दिन की यात्रा पर निश्चित किया है, जो पेशावर से अथवा हश्त नगर से मानिक्याल के दूरी का सही वर्णन है। अन्त में ह्वेन सांग ने "शरीर दान" के स्थान को शिला के दक्षिण पूर्व में लगभग ५४ मील की दूरी पर बताया है जो कि शाहढेरी से मानिक्याल की दिकाश एवम् दूरी का सही उल्लेख है परन्तु उसका यह कथन है कि उसने शिन-तू अथवा सिन्धु नदी को पार किया था सुहान अथवा सूआन नदी के स्थान पर एक साधारण त्रुटि है। यह नदी इन दोनो स्थानों के मध्य में बहती है।

"शरीर दान" के प्रसिद्ध स्तूप को मैंने जनरल कोर्ट द्वारा निकाले गये स्मारक के अनुरूप स्वीकार किया है जिसका निर्माण, भीतर प्राप्त शिलालेखों के अनुसार ईसवी

काल के प्रारम्भ से कुछ ही समय पूर्व प्रसिद्ध इण्डो सीथियन सम्राट कनिष्क के शासन काल मे बीसवें वर्ष में कराया गया था। अतः मानिक्याल अति प्रारम्भिक समय में पजाब के सर्वोधिक प्रसिद्ध स्थानों मे एक स्थान था परन्तु मेरा विचार है कि किसी विशाल नगर का स्थान होने की अपेक्षा यह विशाल धार्मिक संस्थानो का स्थान था। जब जनरल एबाट ने १८५३ ई० मे मानिक्याल के बौद्ध स्तूप के आसपास के खहडरों का निरीक्षण किया था तो वे "एक नगर को उपस्थिति का कोई प्रमाण नही देख सके थे। जलमग्न खडरों का विस्तार क्षेत्र गाँव का अधिकांश भाग नहीं रहा होगा जब कि काट-काट कर बनाये गये पत्थरों की तुलनात्मक संख्या किसी मूल्यवान निर्माण का सकेत देती है जो सम्पूर्ण स्थान पर फैला हुआ होगा।" १८१४ में जनरल कोर्ट ने इस स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है "स्वय नगर के खडहर अधिक विस्तृत थे जिसमे कुओ की अधिक संख्या के अतिरिक्त पत्थरो एवम् चूने की विशाल दीवारें प्रत्येक स्थान पर देखी जा सकती थी।" इस स्थान के सावधानी पूर्वक निरीक्षण के बाद मैं भी जनरल एबाट के ही निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यहाँ पर एक विशाल नगर के कोई चिन्ह नही हैं और मैं इस बात से पूर्णतयः सन्तुष्ट हूँ कि कटे पत्थरो की विशाल दीवारें जिन्हे जनरल कोर्ट ने उचित रूप से प्रत्येक स्थान पर प्राप्त बताया है आवश्य ही मूल्यवान मठों एवं अन्य धार्मिक भवन से सम्बन्धित रही होगी। निस्सन्देह, किसी गाँव मे भी कुछेक व्यक्तिगत भवन चतुर्भुजाकार पत्थरो के बने हो सकते हैं, परन्तु मोटी तहो वाली छतो वाले यह विशाल भवन जो खुदाई के परिश्रम का आज भी मूल्य चुका सकते हैं मेरे विचार मे अत्यधिक, इतने विशाल तथा इतने फैले हुए हैं कि वह एक विशाल नगर के भी व्यक्तिगत भवनो के खडहर नही हो सकते। जन साधारण प्रसिद्ध स्तूप के ठीक पश्चिम मे ऊंची भूमि की ओर राजमान के राजभवन के रूप मे सकेत करते हैं क्योकि प्लास्टर के टुकडे केवल इसी स्थान पर प्राप्त हैं खण्डहरो के अन्य किसी स्थान पर नही। यहा यह सम्भव है कि तक्षशिला के क्षत्रपो ने अपना निवास स्थान बना लिया हो जब वह बुद्ध के "शरीर दान" के प्रसिद्ध स्मारक पर अपनी श्रद्धा अर्पित करने आया करते थे। हो सकता है कि यहां १५०० अथवा २००० घरों का एक गांव भी रहा हो जो उत्तर की ओर फैला हुआ था तथा सम्पूर्ण ऊँची जमीन पर रहा होगा जहां वर्तमान मानिक्याल गांव अवस्थित है। मेरा अनुमान है कि नगर के सम्पूर्ण क्षेत्र का व्यास डेढ़ मील रहा होगा जहां प्रति व्यक्ति ५०० वर्ग फुट की दर से १२,५००० व्यक्तियों की जनसंख्या प्राप्त होती है अथवा प्रत्येक घर के पीछे केवल छः व्यक्ति रहे होंगे।

जनसाधारण अपने इस कथन में एकमत हैं कि नगर का विनाश अग्नि से हुआ था और यह विश्वास चाहे प्रथा पर आधारित हो अथवा दृढ़ विश्वास पर। कोयले एवं भस्म की मात्रा से इस विश्वास की पुष्टि होती है जो ध्वस्त सभी भवनों में प्राप्त

है। जनरल कोर्ट के बौद्ध स्तूप के उत्तर की ओर विशाल मठ में मैंने जो खुदाई कराई थी उससे उपरोक्त कथन की पर्याप्त पुष्टि होती है। मैंने दीवारों के प्लास्टर को आग से काला हुआ देखा था तथा चूने के पत्थर के कङ्कण से बनाई गई ईंटों को बिन बुझाये हुये चूने मे परिवर्तन देखा था। छत की चोब की लकडी अपने जले हुए टुकड़ो एवम् भस्म से सरलता पूर्वक पहचानी जा सकती थी। दुर्भाग्यवश मैं अपनी खोज के दौरान ऐसा कुछ भी प्राप्त नही कर सका जिससे इन भवनो के विनाश के सम्भावित काल का संकेत मिल सके, परन्तु चूंकि देश के इस भाग पर ह्वेनसाग के समय से पूर्व ही काश्मीरी राजाओ की शक्ति स्थापित हो चुकी थी, मैं मुस्लिम असहिष्णुता की अपेक्षा ब्राह्मणो के ईर्षा द्वेष को ही इनके विनाश का कारण स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

सिंहपुर अथवा केटास

ह्वेनसाग के अनुसार सेंग-हो-पू-लो-अथवा सिंहपुर के राज्य की राजधानी तक्षशिला के दक्षिण पूर्व मे ११७ माल की दूरी पर अवस्थित थी। इसके दिकाश झेलम की ओर संकेत करते हैं जिसके समीप मगोही नगर है जिसे एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने सिंहपुर के सम्भव प्रतिनिधि के रूप मे उल्लेख किया है। परन्तु तीर्थयात्री द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार कठिन मार्ग के एक ऊंचे पर्वत पर अवस्थित होने के स्थान पर मगाही एक खुले मैदान मे अवस्थित है। स्वच्छ जल के दस कुण्डो की समीनता जिनके चारो ओर मन्दिर एव मूर्तियां है, केटाक्ष अथवा खेटास के पवित्र तालाब की ओर संकेत करती है। जहाँ अब भी भारत के सभी भागो से अनेक तीर्थयात्री आते है। मेरा यह भी विचार है कि केटास संस्कृत के श्वेतावास का आंशिक परिवर्तित स्वरूप है। ह्वेनसाग ने सिंहपुर के समीप निवास करने वाले एक धार्मिक समुदाय के मुखिया की उपाधि के रूप मे इस (श्वेतावास) का उल्लेख किया है। पश्चिमी देशों मे जहाँ 'स्व' के मिश्रण को 'ख' मे बदल दिया जाता है। इस शब्द को खेटावास अथवा थोडा संक्षिप्त करने पर खेटास कहा जाता होगा। (१) यद्यपि ब्राह्मणो ने इसे अपने धर्म से सम्बन्धित बताया है तथापि उनका कथन है इस स्थान को कटाक्ष अथवा "आश्रुपूर्ण नेत्र" कहा जाता था क्योकि जब शिव को अपनी पत्नी सती की मृत्यु की सूचना मिली तो उनके नेत्रो से आसुओ की वर्षा हो रही थी। परन्तु केटास नाम का उच्चारण जो मुझे उन्ही से प्राप्त हुआ था ब्राह्मणो द्वारा दिये गये अर्थ से भिन्न है। अत. मैं ऊपर दी गई शब्द व्युत्पत्ति को ही स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। यह सम्प्रदाय जैनियो के श्वेताम्बर वर्ग से सम्बन्धित प्रतीत होता है जबकि इसी स्थान का

(१) इस प्रकार संस्कृत का सरस्वती जेन्द अवस्ता का हराखेती तथा यूनानियो का अराखोटस बन गया था।

एक अन्य सम्प्रदाय जिसे ह्वेनसांग ने नग्न रहने वाले कहा है जो जैनियों का दिगम्बर सम्प्रदाय रहा होगा। कहा जाता है कि उनकी पुस्तकें मुख्यतः बौद्ध साहित्य से नकल की गई थीं। जबकि उनके देवता की मूर्ति स्वयं बुद्ध से मिलती-जुलती है। इन विचित्र तथ्यों से यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यह धर्म विरोधी सम्प्रदाय जैनियों का सम्प्रदाय था जिनका धर्म में बौद्ध धर्म से बहुत कुछ समानता रखता है और जिनकी मूर्तियों से प्रायः बुद्ध की मूर्ति होने का भ्रम होता है।

केटास पिण्ड दादन खाँ से १६ मील तथा चकवाल से १८ मील की दूरी पर नमक की पहाड़ियों के उत्तरी भाग में अवस्थित है परन्तु शाहढेरी अथवा तक्षशिला से इसकी दूरी ८५ मील से अधिक नहीं है। तक्षशिला से सिंहपुर की दूरी ७०० ली अथवा ११७ मील बताई गई है जो निश्चित ही बहुत अधिक है क्योंकि इससे राजधानी का स्थान दक्षिण तथा पूर्व के बीच किसी भी दिशा मे पहाड़ियों के दूरस्थ बिन्दु से ३० मील दूर चला जायेगा। सिहपुर को दुर्गम चढ़ाई वाली एक उन्नत पहाडी के शिखर पर अवस्थित बताया गया है और यहाँ की जलवायु भी अति ठण्डी बताई गई है, अतः यह निश्चित है कि यह स्थान नमक की पहाड़ियो के दक्षिण-दक्षिण पूर्व अथवा बालनाथ श्रेणी के पूर्व-दक्षिण पूर्व की अकेली चोटियों में किसी चोटी पर रहा होगा। परन्तु चूंकि बालनाथ पर्वत श्रेणी में मछलियों से भरे स्वच्छ तालाब नहीं हैं अतः मुझे इस स्थान को ह्वेनसांग द्वारा वर्णित केटास के सुन्दर स्वच्छ कुण्डों के अनुरूप स्वीकार करने मे थोड़ा सङ्कोच है जो अति प्राचीन काल से पवित्र माने जाते है।

सिंहपुर की राजधानी पवित्र कुण्डो के उत्तर पश्चिम मे ४० से ५० ली अथवा ७ से ८ मील की दूरी पर अवस्थित थी परन्तु मुझे ऐसे किसी स्थान का ज्ञान नहीं है जो इस दिकांश एवं दूरी से मिलता हो। मालोट प्रारम्भिक काल में जनजुहा की राजधानी थी परन्तु इसका दिकांश दक्षिण पूर्व है तथा इसकी दूरी १२ मील। यदि हम ४० अथवा ५० ली के स्थान पर ४ से ५ ली मान ले तो राजधानी को तुरन्त केटाश के जर्जर दुर्ग के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो पश्चिम में २०० फुट ऊँची एक अति ढलवां पहाडी पर अवस्थित है। यह केटास के नगर एवम् पवित्र कुण्डों के ऊपर झुकी हुई है। इसे प्राचीन नगर कहा जाता है। इसमे १२०० फुट लम्बा तथा ३०० चौडा एक ऊपरी दुर्ग तथा ८०० फुट लम्बा एवम् ४५० फुट चौड़ा निचला दुर्ग है। इन दोनों का व्यास ३५०० फुट अथवा एक मील के तीन चौथाई भाग से कुछ कम है परन्तु नदी के दोनों तटो पर दुर्ग के ऊपरी एवम् निचले भाग में आधुनिक नगर सहित केटास का पूर्ण व्यास लगभग दो मील है। यह ह्वेनसांग द्वारा वर्णित राजधानी से छोटा है। जिसका व्यास २⅔ अथवा २½ मील था। परन्तु चूंकि यह अन्य सभी विशिष्ट बातों मे इससे मिलता है अतः मेरा विचार है सिंहपुर की राजधानी के अनुरूप स्वीकार किये जाने का केटास का दावा सही है।

ह्वेनसांग के अनुसार जिले का व्यास ३६०० ली अथवा ६०० मील था। यह पश्चिम में सिन्धु नदी, उत्तर में तक्षशिला की दक्षिणी सीमा तथा दक्षिण में झेलम एवं ताकी अथवा पंजाब के समतल प्रदेश की उत्तरी सीमा से घिरा हुआ था। अतः यह नमक की पहाड़ियों से अधिक दूर फैला हुआ नही हो सकता था। इस सीमा मे सिन्धु तट की सीमा लगभग ६० मील, झेलम की सीमा ५० मील तथा उत्तरी एवम् दक्षिणी सीमाये लगभग ५० मील अथवा कुल मिलाकर यह सीमा ३५० मील रही होगी। इस सख्या एवम् ह्वेनसाग द्वारा दिये गये आकडो मे भिन्नता का एक मात्र उत्तर मेरी समझ से यह सम्भावना है कि पञ्जाब का प्राचीन कोस आधुनिक कोस अर्थात् १ मील अथवा १ मील २ फर्लाङ्ग के छोटे कोस के बराबर रहा होगा और चीनी तीर्थ यात्री ने इस भिन्नता से अनभिज्ञ होने के कारण दो मील के सामान्य भारतीय कोस के आधार पर अपने आकड़े दिये होगे। इससे उसके आकडे लगभग एक तिहाई कम हो जायेगे और साथ हो साथ यह आंकड़े हमारे मानचित्रों मे दिये गये वास्तविक आंकड़ो के समीप हो जायेगे। इस प्रकार सिहपुर के व्यास के लिये ह्वेनसांग का ६०० मील घट कर ४०० मील रह जायेगा जो पहले दिये गये वास्तविक आंकडो से केवल ५० मील के अन्तर मे हैं। सीमाओ की दूरी के अनुमान अधिक यथार्थ होने की आशा नही की जा सकती क्योकि चीनी तीर्थ यात्री के पास अपने सूचना देने वालो की सत्यता की जाँच के साधन नही थे। मार्ग की दूरी जहाँ वह स्वय गया है—के सम्बन्ध मे यह बात भिन्न है क्योकि मार्ग की दूरी को वह यात्रा मे लगे समय के ज्ञान से तथा दो स्थानो के बीच यात्राओ की सख्या से भली प्रकार बता सकता था। सिहपुर के प्रस्तुत उदाहरण मे यह प्रायः निश्चित है कि सीमा की दूरी को बढ़ा-चढा कर लिखा गया है क्योकि सोकिया अथवा ताकी की सीमा को भी सिन्धु नदी तक बताया जाता है और यदि सिहपुर की सीमा मेरी निर्धारित सीमा से दक्षिण मे होती तो उपरोक्त बात सम्भव नही हो सकती थी।

पुनच अथवा पूँच

ह्वेनसांग ने पुआन-नू-सो-अथवा पुनच को काश्मीर से ११७ मील दक्षिण पश्चिम मे बताया है। काश्मीरी इसे पुनत्स कहा करते है। उन्होने पञ्जाबियों के पांचाल के स्थान पर पीर पंतसाल में निहित च के कोमल उच्चारण को अपना लिया है। मूरक्राफ्ट ने इसे प्रुन्च अथवा काश्मीरियो के अनुसार प्रुन्तज् कहा है। जनरल कोर्ट ने भी प्रून्च लिखा है परन्तु विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुग़ल बेग ने इसका नाम पुंजी लिखा है तथा विजनी ने पूँच। दोनों ही इस स्थान पर गये थे। मानचित्र पर काश्मीर से इसकी दूरी बारामूला तथा उडी के रास्ते ७५ मील है जो वास्तविक मार्ग दूरी के १०० मील के समान है।

ह्वेनसांग ने पुनच को व्यास में ३३३ मील कहा है जो कि वास्तविक आकार से दुगना है। यह पश्चिम में झेलम, उत्तर में पीर पांचाल पर्वत श्रेणी तथा पूर्व एवं दक्षिण पूर्व मे राजौरी के छोटे राज्य से घिरा हुआ है परन्तु यह सीमायें जिनमे कोटाली का छोटा राज्य भी सम्मिलित है, व्यास में १७० मील से अधिक नहीं है और यदि पुनच नदी के उद्गम स्थान के प्रदेश को भी उपरोक्त सीमाओ मे सम्मिलित कर लिया जाये तो भी इसका व्यास २०० मील से अधिक नही होगा। परन्तु चूँकि पर्वतीय जिलों मे सीमा की दूरी को मार्ग की दूरी के आधार पर आँका गया था अतः सीमा रेखा की दूरी को मार्ग दूरी मे ३०० मील के समान समझा जाना चाहिये।

सातवी शताब्दी में पूंच में कोई राजा नही था और यह काश्मीर का आश्रित राज्य था परन्तु बाद में इस नगर का अपना प्रमुख था जिसके वंशजों शेरजङ्ग खाँ तथा शम्स खाँ को जम्मू के गुलाब सिंह ने मरवा डाला था और यह छोटा राज्य पुनः काश्मीर राज्य का एक भाग बन गया।

राजपुरा अथवा राजौरी

पूंच से ह्वेनसांग को-लो-शी-पू-लो अथवा राजपुरा गया था जो पूंच के ६७ दक्षिण पूर्व मे था जिसे मैं पहले ही काश्मीर से दक्षिण में राजौरी को छोटी रियासत के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। इस जिले का व्यास ६६७ मील आंका गया था जो वास्तविक आकडों से दुगना है। यदि रावी के तट तक के सभी प्रदेश इसकी सीमाओ मे स्वीकार कर लिये जाये तो उपरोक्त आकडे सही हो सकते हैं। काश्मीर के स्थानीय इतिहास से हमे पता चलता है कि घाटी के दक्षिण एवम् दक्षिण पूर्व के छोटी-छोटी पहाडी जागीरे सामान्यतः काश्मीर के अधीन थी और ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नही है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय वह स्वतन्त्र थी।

राजौरी का विशिष्ट जिला चारो ओर लगभग ४० मील सीमा वाला प्रायः एक चतुर्भुज है जो उत्तर मे पीर पांचाल, पश्चिम मे पूंच, दक्षिण में त्रिम्बर तथा पूर्व मे रियासी तथा अखनूर से घिरा हुआ है। इसकी सीमाओ को पूर्व में चेनाब तक तथा दक्षिण मे मैदानो तक बढ़ा देने से इसमे यह सभी छोटी-छोटी जागीरे सम्मिलित हो जायेगी परन्तु इस पर भी इसकी सीमाएँ २४० मील अथवा सडक की दूरी के अनुसार लगभग ३२० मील से अधिक नही होगी। परन्तु यदि काश्मीर के अधीन इन पर्वतीय राज्यो की सीमाये पूर्व मे रावी नदी तक बढ़ा दी जाये तो इसँका व्यास मानचित्र पर नाप के अनुसार लगभग ४२० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ५६० मील होगा।

काश्मीर के मध्यकालीन इतिहास में राजापुरी का बारम्बार उल्लेख मिलता है परन्तु मुख्य रूप से इसका उल्लेख ग्यारहवी एवम् बारहवी शताब्दियों मे किया गया है जिस समय यह अपने ही शासक के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य था। पन्द्रहवीं शताब्दी मे यहाँ के हिन्दू राजघराने को काश्मीर के मुस्लिम शासक के एक पुत्र के लिये पदच्युत

कर दिया गया था तथा उसके वंशज को गुलाबसिंह ने इतना दबाया कि उसने १८४६ में प्रसन्नता पूर्वक राजौरी की छोटी रियासत के बदले कांगड़ा के अङ्गरेजी जिले में एक जागीर स्वीकार कर ली थी।

पञ्जाब के पर्वतीय राज्य

चूँकि चीनी तीर्थ यात्री ने पञ्जाब के पर्वतीय राज्यों में बहुत कम राज्यों का उल्लेख किया है अतः मैं उस सूचना को संक्षिप्त वाह्य रूपरेखा यहाँ जोड़ देना चाहता हूँ जिसे मैं स्वयं इन राज्यों के सम्बन्ध में एकत्रित कर सका हूँ।

प्रचलित विचारानुसार पर्वतीय पञ्जाब के छोटे-छोटे राज्यों में २२ मुस्लिम एवम् २२ हिन्दू राज्य थे। मुस्लिम राज्य चेनाब नदी के पश्चिम में तथा हिन्दू राज्य इसके पूर्व में थे। एक प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक वर्ग का नाम राज्यों के सङ्गठन में सर्व शक्तिशाली राज्य के नाम पर रखा गया था। ये राज्य थे काश्मीर, डोगरा तथा त्रिगर्त। प्रथम राज्य में काश्मीर की समृद्ध घाटी तथा सिन्धु एवम् झेलम के मध्य के सभी छोटे राज्य सम्मिलित थे। द्वितीय राज्य में जम्मू तथा झेलम एवम् रावी के बीच के सभी छोटे राज्य थे तथा तृतीय राज्य में जलन्धर तथा रावी एवम् सतलज के बीच के अनेक छोटे-छोटे राज्य सम्मिलित थे।

तीन वर्गों का यह विभाजन सम्भवतः सातवीं शताब्दी से पूर्व का था क्योंकि हम देखते हैं कि रावी नदी से पूर्व के राज्य काश्मीर से पूर्णतयः स्वतन्त्र थे जबकि उरश, पुँछ तथा राजौरी के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार कहा जाता है जिससे यह प्रतीत हो कि काश्मीर के अधीन होने से पूर्व ये राज्य अपने-अपने राजा के अधीन स्वतन्त्र थे। काश्मीरी इतिहास में त्रिगर्त का एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में बारम्बार उल्लेख किया गया है और इसके निजी इतिहास से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जलन्धर की पहाड़ियों के छोटे-छोटे राज्यों में आधे राज्य एक ही परिवार के अधिपत्य में राज्य के विभाजन से उत्पन्न हुये हैं।

निम्नलिखित सूची में काश्मीर अथवा पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी खण्ड से सम्बन्धित राज्यों के नाम एवम् अधिकार क्षेत्र दिये गये हैं :--

खाक
- (१) काश्मीर
- (२) गिङ्गल, बेहात नदी पर अवस्थित
- (३) मुज़फ्फराबाद
- (४) खागान, कुनिहार नदी पर
- (५) गढ़ी

अफगान
(६) रश, पखली नदी पर
(७) वन्तावर, डोर नदी पर
(८) गण्डगढ़
(६) दरबन्द, सिन्धु नदी पर
(१०) तोरबेला ,, ,,

गक्कर
(११) फरवाल, बेहात नदी के समीप
(१२) सुल्तानपुर, बेहात नदी पर
(१३) खानपुर, हारो नदी पर

बारामूला से नीचे बेहात नदी की घाटी पर तथा काश्मीर के उत्तर पश्चिम में कुनिहार नदी के सम्पूर्ण मार्ग पर खाक बम्ब सरदारों का अधिकार था। वे सभी मुस्लिम धर्मावलम्बी थे तथा सम्भवतः देश के प्रारम्भिक निवासियो के वशज थे जो अफगान आक्रमण कारियों के बढ़ाव के कारण अपने वर्तमान स्थान पर आकर बस गये थे।

काश्मीर के दक्षिण पश्चिम मे पखली एव डोर नदियों की घाटियों पर अफगान सरदारो का अधिकार था। वह सभी मुसलमान हैं और इस देश मे उनका निवास कुछ ही समय का है। अब्बुलफजल ने लिखा है कि अकबर के समय से पूर्व पखली का राजा काश्मोर का आश्रित था। उसका यह भी कथन है कि तैमूर इस जिले में अपने सैनिको की एक छोटी टुकडी छाड गया था जिनके वंशज उसके समय मे अब भी मौजूद थे।

झेलम की निचली घाटी तथा काश्मीर के दक्षिण पश्चिम मे हारो नदी के ऊपरी मार्ग पर गक्कर सरदारो का अधिकार था। वह सभी भी मुसलमान हैं परन्तु उनका धर्म परिवर्तन अपेक्षाकृत नया है क्योकि तैमूर के आक्रमण के समय तक उनके नाम भारतीय थे। इस जिले पर उनका अधिकार अधिक प्रारम्भिक काल से है परन्तु वे तुरानी हैं आर्य नही, क्योकि गक्कर को छोड़ अन्य कोई भी व्यक्तियो गक्कर मे विवाह सम्बन्ध नही करेगा। यह प्रथा हिन्दू धर्म से पूर्ण विरोधी प्रथा है जिसमे (हिन्दू धर्म मे) किसी भी व्यक्ति को अपनी जाति मे विवाह करने की स्वीकृति नही हैं। पूर्वी दाआब के अनेक भागो जैसे गुज्जर खाँ के समीप गुलियाना तथा बाल नाथ को उन्नत पहाड़ी के नीचे बुगियाल पर भो गक्करो का अधिकार था। सातवी शताब्दी मे ह्वेनसांग की यात्रा के समय ये जिले यद्यपि काश्मीर के अधीन थे परन्तु ये जिले समुचित रूप से पहाड़ी जिले नही थे।

निम्नलिखित सूची मे पर्वतीय पंजाब के मध्य अथवा जम्मू खण्ड से सम्बन्धित राज्यों के नाम एवं स्थान दिये गये हैं :—

हिन्दू
(१) जम्मू, चेनाब नदी के पूर्व में
(२) भाओ

मुस्लिम
(३) रिहासी, चेनाब नदी पर
(४) अखनूर
(५) पूंच, पुनच नदी पर
(६) राजौरी, तोही नदी पर
(७) कोटाली, पुनच नदी पर
(८) भिम्बर, पहाड़ियों के नीचे
(९) खरियाली, भिम्बर के समीप
(१०) काष्टवार, अप्पर चेनाब नदी पर
(११) भद्रवार, काष्टवार के दक्षिण मे

हिन्दू
(१२) चनेनी, भद्रवार के पश्चिम मे
(१३) बन्दराल्ट, चनेनी के दक्षिण मे
(१४) साम्बा, बन्दराल्ट के दक्षिण पश्चिम मे

हिन्दू
(१५) जसरोटा, बन्दराल्ट के दक्षिण मे
(१६) टीरीकोट, जसरोटा के समीप
(१७) मानकोट, बन्दराल्ट के दक्षिण मे
(१८) बदवाल, अथवा बड्डीवास
(१९) बल्लावर, अथवा बिसोहली

जम्मू तथा भाओ के नगर, जिनका निर्माण दो भाइयो द्वारा कराया गया था तोही नाम की एक छोटी नदी के दोनो किनारो पर अवस्थित थे। यह नदी पहाड़ियों के नीचे चिनाब नदी से मिलती है। मुस्लिम इतिहास में तैमूर द्वारा बलपूर्वक राजा के धर्म परिवर्तन के समय से लेकर पिछली शताब्दी के अन्त तक जम्मू का बारम्बार उल्लेख किया गया है। रजीतसिंह के दरबार के तीन प्रसिद्ध बन्धुओ, गुलाब सिह ध्यान सिंह तथा सुचेत सिंह, इसी परिवार की नई पीढ़ी से सम्बन्धित थे तथा गुलाब सिंह का पुत्र इस समय काश्मीर एवम् पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी एवम् मध्य खण्डों के सभी राज्यो पर शासन कर रहा है।

रिहासी तथा अखनूर के छोटे सरदार जम्मू परिवार की शाखायें थे जिन पर वह प्रायः आश्रित रहा करते थे। पूंच यदा कदा स्वतन्त्र था परन्तु काश्मीर से अपनी समीपता के कारण यह राज्य अपने अधिक शक्तिशाली पड़ोसी की दया पर निर्भर था। रजौरी तथा पोटाली काश्मीर के राजघराने की दो शाखाओं के अधिकार में थे परन्तु

मध्य काल में हिन्दू शासकों के अधिपत्य में पोटाली पूँछ का एक भाग था। एक ही घाटी के भाग होने के कारण यह प्राकृतिक रूप से पूँछ से सम्बन्धित था। भिम्बर तथा खरियाली, कांगड़ा तथा जलन्धर के सोम वंशी राजाओं की चिब अथवा चिबान शाखा के खड थे। प्रारम्भ मे भिम्बर का नाम बहुत कम प्रयोग मे लाया जाता था। सामान्य नाम चिब्बान था जिसका उल्लेख जिमाल के स्वरूप मे शिरूफद्दीन द्वारा लिखित तैमूर के इतिहास मे मिलता है। इस परिवार के मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लेने की तिथि सम्भवतः बाद की तिथि है क्योंकि फरिश्ता ने ८६१ हिजरी अथवा १४८६ ई० में डिब्बर के हाऊन राजा का उल्लेख किया है। परन्तु इन पर्वतीय सरदारों में अधिकांश ने मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के बाद भी अपने हिन्दू नामो को अपनाये रखा था अतः केवल हिन्दू नाम को ही धर्म अपरिवर्तित रहने का निश्चित प्रमाण स्वीकार नही किया जा सकता। काष्टवार तथा भद्रवार, काश्मीर के दक्षिण पूर्व मे ऊपर चेनाब नदी के विपरीत किनारो पर अवस्थित है परन्तु ये राज्य प्रायः काश्मीर के आश्रित थे। मध्य खण्ड की छोटी रियासतो को पश्चिमी खण्ड की १३ से जोड देने से हमे २२ मुस्लिम राज्य प्राप्त होते हैं जिसे जन साधारण मे पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी अर्द्ध भाग मे सम्बन्धित किया जाता था।

इस खण्ड के शेष आठ रियासतो के सम्बन्ध में मैं अधिक सूचना देने के योग्य नही हूँ क्योंकि उनमे अधिकाश सिख राज्य के प्रारम्भिक काल मे लुप्त हो गई थीं और इस समय जम्मू परिवार ने इन सभी को काश्मीर के विशाल राज्य मे सम्मिलित कर लिया है। पहाड़ियो की वाह्य श्रेणी मे जसरोटा, एक समय कुछ महत्व का राज्य था तथा यहाँ के शासक ने पर्वतीय पञ्जाब के अन्य राजपूत परिवारो के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किये थे परन्तु मैं किसी भी इतिहास में इस स्थान का उल्लेख नहीं ढूंढ सका हूँ। बल्लावर तथा बदवाल निश्चित ही एक समय एक ही शासक के अधीन थे क्योंकि तुक्क के पुत्र कलस का नाम जिसका राजतरङ्गिणी में १०२८ के लगभग बल्लापुर के शासक के रूप मे दो बार उल्लेख किया है—दोनो परिवारों के वंशावली मे लिखा गया है। यह सत्य है कि इसी इतिहास मे वाडीवास को प्रारम्भ मे एक भिन्न जिला कहा गया है परन्तु चूँकि किसी राजा का उल्लेख नही मिलता अतः इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह बल्लापुर के छोटे राज्य का भाग रहा हो। चूँकि दोनों वंशावलियों मे कलस नाम के पश्चात् नामों में अन्तर है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् यह राज्य छिन भिन्न हो गया हो। यह निश्चित है कि वह काश्मीरी राजनीति से सम्बन्धित था और चूँकि पड़ोसी चम्ब राज्य के तत्कालीन राजा का काश्मीर के राजा अनन्त ने वध करा दिया था अतः मेरा निष्कर्ष है कि बल्लावर भी इसी समय अधिकार में कर लिया गया होगा।

मैं यह उल्लेख करना चाहूँगा कि मध्य खण्ड के सभी राजा जिनकी वंशावलियाँ

मेरे पास हैं स्वयं को सूर्य वन्शी कहा करते थे। भिम्बर का चिबान ही एक मात्र अपवाद था। जम्मू, जमरोटा तथा बल्लावर के शासक एवम् उनके वन्शज जो छोटे-छोटे राज्यों मे कुल आठ राज्यों मे शासन करते थे—सूर्यवन्शी होने का दावा करते थे और पड़ोस के अन्य राजपूत उनके इस दावे को स्वीकार करते थे।

निम्नलिखित सूची मे पर्वतीय पजाब के पूर्वी अथवा जलन्धर खण्ड के विभिन्न राज्यों के नाम एवम् स्थान दिये गये है :—

सोमवशी —
(१) कागडा, अथवा काटोच
(२) गुलेर, कांगड़ा के दक्षिण पश्चिम मे
(३) जसवाल, मुहान नदी पर
(४) दतारपुर, निचली व्यास नदी पर
(५) सिबा, निचली व्यास नदी पर

सूरजवशी —
(६) चम्बा, रावी तट पर
(७) कुलू, अपर व्यास नदी पर

गुण्डार अथवा पाण्डेय —
(८) मण्डी, मध्य व्यास नदी पर
(९) सुखेट, मण्डी के दक्षिण मे
(१०) नूरपुर, रावी एवम् व्यास नदियों के बीच
(११) कोटिला, नूरपुर के पूर्व मे
(१२) कोटलेहार

इन राज्यों मे कम से कम पाँच राज्य एक समय के समृद्ध जलन्धर राज्य के उपखण्ड मात्र थे जिसमे रावी एवम् सतलज के मध्य का सम्पूर्ण दोआब अथवा समतल प्रदेश, तथा रावी एवम् मण्डी तथा सुखेट की सीमाओं के मध्य का सम्पूर्ण भू-भाग सम्मिलित था। इसमे नूरपुर, कोटिला तथा कोट लिहार सम्मिलित थे और चूँकि मण्डी एवम् सुखलेट प्रारम्भ मे एक ही शासक के अधीन थे अत: पर्वतीय पञ्जाब के पूर्वी खण्ड मे मूल रूप से केवल चार राज्य थे अर्थात् जलन्धर, चम्बा, कुलू तथा मंडी।

जलन्धर

पञ्जाब के मैदानों पर मुसलमानों के अधिकार के समय से जलन्धर का प्राचीन राज्य लगभग पूरी तरह से अपनी पर्वतीय सीमाओं तक सीमित रहा है जो अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध दुर्ग के नाम पर सामान्य रूप से कागड़ा के नाम से प्रख्यात था। इस जिले को काटोच जिसका अर्थ अज्ञात है तथा त्रिगर्त (१) कहा जाता था जो पुराणों एवम् काश्मीर के स्थानीय इतिहास में पाया जाने वाला सामान्य संस्कृत नाम है।

(१) हेमकोष जलन्धरास त्रिगर्तास्यु, "जालन्धर को त्रिगर्त है।"

सातवीं शताब्दी में चीनी तीर्थ यात्री ने जलन्धर को पूर्व से पश्चिम लम्बाई में १६७ मील तथा उत्तर से दक्षिण चौडाई में १३३ मील कहा है। यह आकड़े यदि सत्य के समीप भी थे तो जलन्धर की सीमाओ में, उत्तर मे चम्बा राज्य, पूर्व मे मण्डी एवम् सुखेर राज्य एवम् दक्षिण पूर्व मे सतर्द्रू सम्मिलित होते। चूंकि सतर्द्रू का एक मात्र जिला ही सतलुज के पूर्व में है अतः मेरा अनुमान है कि यह अवश्य ही जालन्धर राज्य का भाग रहा होगा। इन जिलो को जोड़ देने से प्रान्त का आकार चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये आंकडो से भली-भांति मिल जायेगा।

ह्वेनसाग की यात्रा के समय जलन्धर ही राज्य की राजधानी थी जिसे उसने व्यास मे दो मील से कुछ ऊपर बताया है। इसकी प्राचीनता निस्सन्देह है क्योंकि टालमी ने कुलिण्ड्राईन अथवा कटुलिनड्राईन के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसे सरलतापूर्वक सुलण्ड्राईन पढ़ा जा सकता है क्योंकि यूनानी भाषा मे 'क' एवम् 'स' अक्षरो की प्रायः अदला-बदली होती है। पद्म पुराण के अनुसार जालन्धर नगर महान दैत्य राज जालन्धर की राजधानी थी जो अपनी कठोरता के कारण अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर अविजयी बन गया था। अन्त मे शिव ने किसी प्रकार अशोभनीय कपट से उसे पराजित किया तथा योगनियो ने उसके शरीर का भक्षण किया, परन्तु स्थानीय पुराण (जालन्धर पुराण) मे उस कथा का अन्तिम भाग भिन्न रूप से दिया गया है। इस पुराण के अनुसार शिव ने उसे एक विशाल पर्वत से कुचल कर मार डाला था। उस समय उसके मुख से जो ज्वालामुखी के नीचे था ज्वालाये निकल रही थी, उसका शरीर दोआब के ऊपरी भाग के नीचे था जिसे आज भी जालन्धर पीठ कहा जाता है और उसके चरण दोआब के निचले भाग मुल्तान मे थे। अकबर ने नदियो के बीच भिन्न दोआबों का नाम करण करते समय उपर्युक्त कथा के इसी मत का आंशिक अनुसरण किया था और सतलज एवम् व्यास के बीच की भूमि को सब दोआब कहने के स्थान पर दो आब ए-बिस्ट जालन्धर अथवा बिट जालन्धर कहा था। यदि वह पूर्वी नदी के प्रथम अक्षर से नामकरण करता जैसा कि उसने बारी एवम् चज दोआब के नामो मे किया है तो उपर्युक्त दोआब का नाम 'सब' दोआब होना चाहिये था।

जालन्धर तथा कांगडा का राज परिवार भारत के प्राचीनतम परिवारो मे है और अपने संस्थापक सुशर्मचन्द्र के समय से इनकी वंशावली मुझे राजपूताना के अधिक शक्तिशाली परिवारो द्वारा दी गई नामों की लम्बी सूची से अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है। इस घराने के सभी भिन्न-भिन्न वंशज सूर्यवंशी होने का दावा करते हैं और उनका दावा है कि मुल्तान जिले पर उनके पूर्वजो का अधिकार था एवम् उन्होंने महायुद्ध में पाँच पाण्डवों के विरुद्ध दुर्योधन की ओर से युद्ध लड़ा था। युद्ध के पश्चात् उन्हें अपना देश त्याग देना पड़ा तथा वह अपने नेता सुशर्माचन्द्र के नेतृत्व मे जालन्धर दोआब की ओर चले गये जहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया एवम् कांगड़ा के सुदृढ़

दुर्ग का निर्माण किया। सिकन्दर का सैनिक अभियान हाइफसिस अथवा बयान नदी पर समाप्त हो गया था परन्तु नदी पार के जिले अर्थात् जलन्धर दोआब के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार की थी। सातवी शताब्दी मे राजा अ-ती-तो-अथवा उदित्य ने जिसे मैं वंशावली सूची का अदीम समझता हूँ, एक माह तक चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग की आवभगत की थी। एक सौ साठ वर्ष पश्चात् ८०४ ई० के एक लेख मे जलन्धर के राजा का नाम जयचन्द्र दिया गया है जो सूची का जय मल्ल चन्द्र है तथा अदीम की सातवी पीढ़ी मे है। अन्त मे १०२८ मे १०८१ तक काश्मीर के राजा अवन्त ने जलन्धर के राजा इन्दु चन्द्र की दो कन्याओ से विवाह किया था। यह राजा कांगडा को वशानुक्रम सूची का इन्द्र चन्द्र है। यह उदाहरण यह प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है कि जलन्धर मुस्लिम अधिकार से पूर्व कई शताब्दियो तक स्वतन्त्र राज्य था।

गुलेर, जसवाल दातारपुर तथा सिवा के अपेक्षाकृत छोटे राज्य कागड़ा वश की ही शाखाये है। गुलेर अथवा हरिपुर का स्वतन्त्र राज्य १४०० ई० मे हरिश्चन्द्र ने स्थापित किया था जब उसने कांगडा अपने कनिष्ठ भ्राता कर्माचन्द्र को सौप दिया था। अन्य रियासतो की स्थापना की तिथि अज्ञात है परन्तु मेरा अनुमान है कि मुसलमानी आक्रमण के समय तक यह सभी रियासते मूल राज्य की आश्रित थी। महमूद गजनी की कांगडा विजय से इन रियासतो को अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने का अवसर प्राप्त हुआ।

फ्रान्सीसी यात्री थेवेनाट ने दिल्ली साम्राज्य के अपने विवरण में लिखा है कि "ऐसे अनेक राजा हैं जो महान मुगल सम्राट का आधिपत्य स्वीकार नही करते हैं।" परन्तु इन राजाओ के राज्य पहाडियो के भीतरी भाग मे रहे होगे क्योकि हमे ज्ञात है कि वाह्य पहाडियो के सभी राज्य मुगल सम्राटो के अधीन थे। थेवेनाट ने "काकारीज बङ्कश, नगर कट, सिबा आदि मुगल सम्राटो के अधीन उत्तर के दूरस्थ राज्यो में आयौद्ध अथवा हाऊद" का विशेष उल्लेख किया है। काकरीज निश्चित ही गक्कर थे। जिहोने झेलम के पश्चिम मे निचली पहाडियो पर अधिकार कर रखा था। टेरी ने उन्हे ककरोज एवम् उनके मुख्य नगरो को दीकाली तथा पुरहोल (अथवा दांगली तथा फरवाल) कहा है। बङ्कश, टेरी के 'वनचिश' है "जिनका मुख्य नगर बिशूर (पेशावर) काश्मीर के पूर्व (पश्चिम पढ़े) अथवा किसी सीमा तक दक्षिणी दिशा मे पड़ता था। सिन्धु नदी इस नगर को काश्मीर से अलग करती थी। नगरकूट, कांगड़ा अथवा नगरकोट है जिसका उल्लेख इसी नाम से अबुरिहान ने भी किया है जो महमूद गजनी द्वारा इस नगर पर अधिकार के समय वहाँ उपस्थित था। सिबा कांगड़ा के समीप का छोटा राज्य नही है परन्तु यह गङ्गा नदी पर अवस्थित जिला है जिसका मुख्य नगर "हरद्वार (अथवा हरिद्वार) था जहाँ गङ्गा नदी विशाल चट्टानो से निकल कर एक

बड़ी नदी में परिवर्तित हो जाती है।" इन व्याख्यानों से यह स्पष्ट है कि पश्चिम में पेशावर से लेकर पूर्व मे गङ्गा तक निचली पहाडियों के सभी राज्य दिल्ली सम्राट के अधीन थे। थेवेनाट द्वारा दिये गये अयौद अथवा हाऊद के सामान्य नाम के सम्बन्ध में मैं केवल इतनी कल्पना कर सकता हूँ कि यह नाम हिमावत अथवा हिमवत का भ्रष्ट स्वरूप हो सकता है। हिमवत हिमालय पर्वतो का एक सर्व प्रसिद्ध नाम है जिसे यूनानियों ने इमोदस तथा ईमाउस के दो विभिन्न स्वरूपों मे सुरक्षित रखा है।

चम्पा अथवा चम्बा

चम्बा एक विशाल जिला है जिसमें रावी के सभी सहायक नदियों की घाटियाँ एवम् लाहूल एवम् काष्टवार के बीच चेनाब की ऊपरी घाटी का एक भाग सम्मिलित है। ह्वेनसाग ने इसका उल्लेख नही किया है अतः इस बात की सम्भावना है कि उसने इसे काश्मीर की सीमाओ मे सम्मिलित कर लिया था। इसकी प्राचीन राजधानी बुधिल नदी पर बरमपुर अथवा बरमावर थी। जहाँ आज भी अनेक सुन्दर मन्दिर एवम् एक पूरे आकार का पीतल का बना बैल इसके प्रारम्भिक शासको की समृद्धि एवम् धर्मनिष्ठा को साक्षी के रूप मे खडे हैं। शिलालेखो के अनुसार यह निर्माण कार्य नवी एवम् दसवी शताब्दियों में हुआ था। काश्मीर के स्थानीय इतिहास मे चम्पा के नाम से इस देश का बारम्बार उल्लेख किया है और स्थानीय वंशावलियों से प्रत्येक उल्लेख की पुष्टि होती है। १०२८ तथा १०३१ के बीच काश्मीर के राजा अनन्त ने इस राज्य पर आक्रमण कर दिया था और यहाँ के राजा साल को पराजित कर उसका बध करा दिया था। उसके पुत्र ने चम्पावती देवी के नाम पर चम्पापुर नाम की नवीन राजधानी की स्थापना की थी जो चम्बा के नाम से आज भी जिले का मुख्य स्थान है। तत्पश्चात् काश्मीर के राजाओ ने चम्बा परिवार से विवाह सम्बन्ध स्थापित किये तथा मुसलमानी आक्रमणो के परिणाम स्वरूप फैली अराजकता मे यह छोटी रियासत स्वतन्त्र हो गई और वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक काल मे गुलाब सिंह द्वारा कुचल दिये जाने के समय तक स्वतन्त्र बनी रही।

कुलू

ह्वेनसांग ने क्यू-लो-तो के राज को जालन्धर से ११७ मील उत्तर-पूर्व में बताया है जो व्यास नदी की ऊपरी घाटी मे कुलू के जिले की स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है। विष्णु पुराण में उलूटा अथवा कुलूटा लोगो का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः वही लोग हैं जिन्हें रामायण एवम् बृहत् संहिता मे कौलूटा कहा गया है। चूँकि इस नाम का उपयुक्त स्वरूप चीनी क्यूलूटा से मिलता है अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आधुनिक कुलू प्राचीन नाम का संक्षिप्त स्वरूप ही होगा। जिले को व्यास में ५०० मील कहा गया है और यह पूर्णतयः पर्वतों से घिरा हुआ है। कुलू की वर्तमान सीमित

सीमाओं के लिये यह आकार अत्यधिक पूर्ण अतिशयोक्ति है परन्तु प्राचीन राज्य में जन-साधारण के अनुसार पश्चिम मे मण्डी एवम् सुखेत तथा सतलज के दक्षिण में सीमा का बहुत बडा भाग सम्मिलित था अतः यह सम्भव है कि यदि मार्ग दूरी से सीमा की लम्बाई आंकी जाये तो ५०० मील को कथित लम्बाई वास्तविक लम्बाई के समीप हो सकती है।

घाटी की वर्तमान राजधानी सुल्तानपुर है परन्तु प्राचीन राजधानी मकरसा को अभी भी नगर कहा जाता है और यह नगर इसी नाम से सर्व विदित है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि इस जिले मे स्वर्ण रजत तथा ताँबा सभी प्राप्त है परन्तु इस कथन मे केवल आंशिक सत्यता है क्योंकि धुलाई मे सोना बहुत कम मात्रा मे प्राप्त होता है तथा चाँदी एवम् ताँबे की खाने काफी समय से त्याग दी गई हैं।

ह्वेनसाग ने कुलू के उत्तर-पूर्व मे लो-हू-लो जिले का उल्लेख किया है जो स्पष्ट रूप से तिब्बतियों का ल्हो-याल तथा कुलू एवम् अन्य पड़ोसी राज्यो के जन साधारण के अनुसार लाहूल है। उत्तर की ओर थोडा आगे उसने मो-लू-सो के जिले का उल्लेख किया है जो उसकी व्याख्या के अनुसार लद्दाख रहा होगा। अतः मैं चीनी नाम को परिवर्तित कर मो-चो पो पढना चाहूँगा जो मार-पो की सही नकल है। मार-पो, यहाँ की मिट्टी एवम् पर्वतो के सामान्य रङ्ग के आधार पर लाल जिला अथवा मार-पो-युन के रूप मे लद्दाख प्रान्त का वास्तविक नाम है। चीनी भाषा के सो एवम् पो अक्षर इतने मिलते-जुलते हैं कि उन्हे प्रायः एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग मे लाया जाता है जैसा कि पानिनी के जन्म स्थान सलातुर के प्रसिद्ध नाम मे किया गया है। ह्वेनसांग की यात्राओ के मूल चीनी विवरण मे सलातुर को पो-लो-तू-लो अथवा पालातुर कहा गया है।

मण्डी तथा सुखेट

मूल रूप से मण्डी एवम् सुखेट राज्यो का एक ही राज्य था जो पश्चिम मे कागडा, पूर्व मे कुलू उत्तर मे धवलाधार पर्वतो तथा दक्षिण मे सतलज से घिरा हुआ था। मण्डी का अर्थ है बाजार और दक्षिण एवम् पश्चिम से आने वाले दो मार्गों के चौराहे पर व्यास नदी पर अपनी अनुकूल स्थिति के कारण प्रारम्भ से ही लोग यहाँ आकर बस गये होंगे और आस पास के भू भाग मे लोहे तथा काला नमक की मूल्यवान खानो की उपलब्धि के कारण यह स्थान समृद्धिशाली बन गया था।

नूरपुर अथवा पठानियाँ

नूरपुर नगर का नाम सम्राट जहाँगीर की पत्नी प्रख्यात नूरजहाँ के नाम पर रखा गया था। इसका मूल नाम दहमाड़ी अथवा दहमाल अथवा जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है। दहमाहड़ी था यद्यपि उसने किसी दुर्ग का उल्लेख नही किया है। तारीख-

ए-अलफी में इसे दमाल कहा गया है तथा "हिन्दुस्तान की सीमाओं पर एक उन्नत पहाड़ी के शिखर पर अवस्थित" बताया गया है। इब्राहीम गजनवी ने एक लम्बे घेरे के बाद इस दुर्ग पर अधिकार किया था। जिले का नाम पठावट है तथा मैदानो में अवस्थित इसकी राजधानी को पठियान अथवा पठियानकोट कहा जाता था जिसे वर्तमान समय में आंशिक परिवर्तन के बाद पठानकोट कहा जाता है। परन्तु यह नाम हिन्दू राजपूतों की पठान जाति से लिया गया है न कि प्रसिद्ध मुसलमान पठानों अथवा अफगानों से १८१५ ई० मे रंजीत सिंह ने यहाँ के राजा को बन्दी बना लिया था तथा इस देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

नूरपुर के पूर्व में, पठानियाँ परिवार की एक शाखा के छोटे राज्य कोटिला पर भी इसी समय सिक्खो का अधिकार हो गया तथा इसे सिक्ख राज्य मे मिला लिया गया।

कोट लेहार, ज्वालामुखी के दक्षिण पूर्व मे जसवाल दून में एक छोटा राज्य था। यह सामान्यतः कांगड़ा का आश्रित राज्य था।

सतद्रू

चीनी तीर्थ यात्री ने श-तो-तू लो अथवा सतद्रू जिले को व्यास मे २००० ली अथवा ३३३ मील कहा है जिसको पश्चिमी सीमा के रूप मे एक विशाल नदी है। राजधानी को कुलू के दक्षिण की ओर ७०० ली अथवा ११७ मील तथा बैरात के उत्तर पूर्व मे ८०० ली अथवा १३३ मील की दूरी पर दिखाया गया है। परन्तु इन संख्याओ मे कोई एक संख्या त्रुटिपूर्ण है क्योकि कुलू तथा बैरात के मध्य की दूरी मानचित्र पर सीधे माप से ३३६ मील अथवा मार्ग दूरी से ३६० मील से कम नही है। अत. दोनो स्थानो के बीच दूरियो मे एक दूरी मे सीधी रेखा से लगभग ११० मील अथवा ७०० ली अथवा दिकाश के आधार पर चक्कर दार मार्ग से लगभग १५० मील अथवा १००० ली की कमी है। यह उल्लेखनीय है कि मथुरा से थानेसर तक समानान्तर मार्ग पर वापसी यात्रा मे भी इतनी ही मात्रा की कमी है। इस दूरी को तीर्थ यात्री ने १२०० ली अथवा २०० मील के स्थान पर केवल ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है जबकि वास्तविक दूरी १६६ मील है। चूंकि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनो मार्गों मे किसी अज्ञात कारणो से समान मात्रा में कमी कर दी गई है अतः यह सम्भवतः पश्चिमी रेखा की यह कमी सतद्रू तथा बैरात के बीच दक्षिणी भाग मे निहित रही हो जो मथुरा तथा थानेसर के मध्य समानान्तर रेखा के समीप है। अन्त मे मैं पहले के दो स्थानो के मध्य की दूरी मे १५० मील की वृद्धि कर दूंगा जिससे कुल दूरी २८३ मील हो जायेगी। बैरात को इस शुद्ध दूरी तथा कुलू से दक्षिण मे ११७ मील की उल्लिखित दूरी से सतद्रू की स्थिति सरहिन्द के विशाल नगर म ... ठीक-ठीक

मिल जायेगी जो इतिहास एवम् प्रथाओ दोनों मे देश के इस भाग का प्राचीनतम स्थान माना गया है।

सरहिन्द के वर्तमान खण्डहरो मे पूर्णतयः पश्चात्वर्ती मुसलमानी इमारतों के खण्डहर है परन्तु हिन्दुओ के समय यह स्थान निश्चित ही किसी महत्व का स्थान रहा होगा क्योंकि दिल्ली के प्रथम मुसलमान मुल्तान मुहम्मद गोरी ने इस स्थान पर घेरा डाला था और अपने अधिकार मे कर लिया था। प्रचलित धारणा के अनुसार यह कहा जाता है कि नगर को सरहिन्द अथवा "हिन्द की हद (सीमा)" का नाम कुछ समय पूर्व दिया गया था जब यह नगर हिन्दुओ तथा गजनी एवम् लाहौर के मुस्लिम शासको के बीच सीमान्त नगर था। परन्तु यह नाम सम्भवतः प्राचीन है क्योंकि ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर ने कुलू निवासियो, कुलूट के पश्चात् तथा ब्रह्मपुर के निवासियो के उल्लेख से थोडा पूर्व सैरन्ध जाति का उल्लेख किया है। ब्रह्मपुर, जैसा कि हमे चीनी तीर्थ यात्री से ज्ञात होता है, हरिद्वार के उत्तर मे पर्वतीय प्रदेश की राजधानी थी। अतः सैरन्ध अथवा सिरिन्ध निवासी उस विस्तृत क्षेत्र मे बसे होगे जहाँ वर्तमान सरहिन्द अवस्थित है और इसमे लेशमात्र सन्देह नही हो सकता कि दोनो नाम एक ही है। परन्तु वराह मिहिर की भौगालिक सूची उसके पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्य पराशर की सूची की अक्षरशः नकल है जिसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि वह ईसा की प्रथम शताब्दी के पश्चात् जीवित नही था।

यदि हम कुलू तथा सतद्रू के बीच की रेखा के उत्तरी अर्द्ध भाग मे ११० मील की वृद्धि को स्वीकार कर ले तो सतद्रू की स्थिति हाँसी की स्थिति से मिल जायेगी जो सरहिन्द से भी अधिक शक्ति एवम् प्रसिद्धि का प्राचीन मार्चबन्द नगर है। परन्तु ह्वेनसांग ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि सतद्रू की सीमा व्यास मे केवल ३३३ मील था तथा यह पश्चिम मे एक विशाल नदी जो कि केवल सतलज अथवा सतद्रू नदी हो सकती है से घिरा हुआ था अतः यह पूर्णतयः असम्भव है कि हाँसी ही के स्थान का सकेत किया गया हो क्योकि यह स्थान उपर्युक्त के समीपस्थ विन्दु से भी १३० मील से अधिक दूरी पर है।

भटनेर के प्रसिद्ध दुर्ग का स्थान, पश्चिम मे सतलज से घिरे एक छोटे जिले के विवरण के अनुकूल होगा और कुलू की शुद्ध दूरी से भी मिल जायेगा परन्तु इसकी दिशा दक्षिण के स्थान पर दक्षिण पश्चिम है तथा बैरात से इसकी दूरी तीर्थ यात्री द्वारा दी गई १३३ मील की दूरी के स्थान पर २०० मील से अधिक है। फिर भी बैरात का दिकांश भटनेर के पक्ष मे है क्योकि चीनी तीर्थ यात्री का दक्षिण पश्चिम निश्चित ही दक्षिण पूर्व के स्थान पर गलती से लिखा गया था। अन्यथा मथुरा से बैरात की दूरी ८३ मील की कथित दूरी के स्थान पर लगभग २५० मील होती। यदि हम ५०० ली के स्थान पर १५०० ली पढ़ना स्वीकार कर ले तो भटनेर तथा बैरात की

तुलनात्मक स्थिति तीर्थ यात्री के विवरण से भली प्रकार मिल जायेगी क्योंकि हाँसी के मार्ग से दोनों स्थानों के बीच की मार्ग दूरी लगभग २५० मील है। यह भी प्रायः सम्भव है कि प्रारम्भिक चोनी भाषा के शी अथवा सा में त्रुटि हो गई हो जो पो अथवा मा के समान है और यदि ऐसा है तो चीनी अक्षर पो-तो तू-लो भटस्थल अथवा भटनेर का प्रतिनिधित्व करेगा। भटनेर का अर्थ है "भटियों का दुर्ग" परन्तु नगर को बन्द अथवा बन्द्र कहा जाता था जो सम्भवतः भटस्थल का संक्षिप्त स्वरूप हो जैसे मारू मरूस्थल का सामान्य संक्षिप्त स्वरूप है। परन्तु नाम एवम् स्थिति मे सुखद समानताओ के होते हुए भी मेरा झुकाव इस विचार की ओर है कि सरहिन्द ही वह स्थान था जिसकी ओर तीर्थ यात्री ने सतद्रु की राजधानी होने का सकेत दिया है। इस निष्कर्ष की पुष्टि तीर्थ यात्री के इस कथन से होती है कि इस देश में स्वर्ण मिलता था। जहाँ तक मेरा ज्ञान है यह कथन सरहिन्द के उत्तर मे निचली पहाड़ियों पर लागू होता है। जहाँ सतलज की कुछ छोटी सहायक नदियों मे अब भी सोना मिलता है।

सरहिन्द को सतद्रु की राजधानी स्वीकार कर लेने से जिले की सीमाओ को इसके आकार से प्रायः निश्चित किया जा सकता है। पश्चिम तथा उत्तर में यह जिला शिमला के पडोस से लेकर लुधियाना के नीचे तिहाड़ा तक १०० मील से कुछ अधिक दूरी तक सतलज से घिरा हुआ है। दक्षिण में इसकी सीमा तिहाड़ा से अम्बाला तक लगभग १०० मील तक फैली हुई है तथा पूर्व मे अम्बाला से शिमला तक लगभग इतनी ही विस्तृत है। इस प्रकार उल्लिखित व्यास मे मैदानो में लुधियाना तथा सरहिन्द के जिलो सहित, शिमला के पश्चिम तथा दक्षिण के पर्वतीय राज्यो का पर्याप्त भाग सम्मिलित रहा होगा। चूंकि सतलज के पूर्व मे यह ही एक मात्र जिला है जिसे उत्तरी भारत की सीमाओ मे सम्मिलित किया जाता हैं अतः मेरा अनुमान है कि यह अवश्य ही पड़ोसी जलन्धर राज्य का आश्रित रहा होगा।

ताकी अथवा पञ्जाब

सिन्धु से व्यास तक तथा पर्वतो के अधोभाग से मुल्तान के नीचे पाँच नदियों के सङ्गम तक पञ्जाब का सम्पूर्ण समतल उस राज्य के अन्तर्गत था जिसे ह्वेनसाग ने शो-किया अथवा ताकी कहा है। ह्वेनसांग ने चोनी अक्षर सी को (दनककाट) सी को दनककाट के नाम से निहित संस्कृत के त के लिये प्रयुक्त किया है। दनककाट का नाम कन्हारी तथा कारली (१) में पश्चिमी कन्दराओ के शिलालेखो मे कम से कम पाँच

(१) डा० स्टीवेन्सन ने इस नाम को यूनानी क्षेनोक्रेटीज़ के पाली स्वरूप में पढ़ा है परन्तु कन्हरी तथा कारली के सभी शिला लेखों मे इसे स्पष्ट रूप से एक नगर अथवा देश के नाम के रूप में लिखा गया है।

बार प्राप्त हुआ है। ह्वेनसांग की यात्राओ के विवरण मे इस नाम को तो नो-किया-शी किया लिखा गया है जिसके अन्तिम दो अक्षर परिवर्तित किये गये हैं। यह अब्बुरिहान का दनका है जो—जैसा कि आगे देखा जायेगा—सम्भवत: अमरावती के आधुनिक नगर के समीप कृष्णा नदी पर अवस्थित ० धरनी कोट के प्राचीन नगर के समान है। अत: सी-किया-ताकी का प्रतिनिधित्व करता है जो प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी मे पञ्जाब के राज्य एवम् इसकी राजधानी का नाम था, ठीक उसी प्रकार जैसे लाहौर रजीतसिंह के राज्य एवम् राजधानी का नाम था। राजधानी की स्थिति का उल्लेख बाद मे किया जायेगा। इतना उल्लेख पर्याप्त होगा कि यह राजधानी अधिक प्राचीन राजधानी शी-की-लो के कुछ ही मीलो के भीतर थी जिसे काफी समय पूर्व प्रोफेसर लासेन ने महाभारत के साकला (शाकल) अथवा एरियान के सागला के अनुरूप बताया था। महाभारत मे शाकल के निवासियो को मद्र, अरट्ट, जारटिक तथा बाह्रिक (१) कहा गया है तथा हेमचन्द्र के शब्द संग्रह मे बाह्रिको को टक्को के समान बताया गया है। पुन: राजतरङ्गिणी मे टक्क देश के जिले को गुज्जर (चेनाब नदी के समीप गुजरात) राज्य का भाग बताया गया है जिसे राजा अलखान ने विवश होकर ८८३ तथा ९०३ ई० के बीच काश्मीर को समर्पित कर देना पड़ा था। इन कथनो से स्पष्ट है कि साकल टक्को की शक्तिशाली जाति की प्राचीन राजधानी थी जिनके देश को उन्ही के नाम पर टक्कदेश कहा जाता था। ह्वेनसाग ने वस्तुत नवीन राजधानी के नाम का उल्लेख नही किया है परन्तु मेरा विश्वास है कि इसका नाम ताकी अथवा टक्कावर था जिसे मैं कण्ठस्थवर्ण क को श्वास मे उच्चारित ह मे बदलने से Pentingerian सूची के टहोरा के अनुरूप स्वीकार करूंगा। इस सूची मे टहोरा को सिकन्द्रिया ब्युसोफालस के विपरीत स्पातुरा से ७० रोमन मील, ६४½ ब्रिटिश मील की दूरी पर बताया गया है।

अब मैं प्रारंभिक मुसलमान लेखको की ओर ध्यान दूंगा जिन्होने काश्मीर तथा सिन्ध का उल्लेख किया है। अत: जिन्होंने इन दोनो प्रान्तो के मध्य पजाब जैसे इतने महत्वपूर्ण देश का उल्लेख करने मे शायद ही भूल की हो। सर हेनरी इलियट के अनुसार मसूदी ने ९१५ ई० मे सिन्ध का उल्लेख इस प्रकार किया था। (२) "एस सिन्ध

(१) महाभारत तथा विष्णु पुराण मे इस नाम को बालिहक कहा गया है परन्तु कुलूटो का अनुसरण करने के कारण यह निश्चित प्रतीत होता है कि शुद्ध नाम बाह्रिक है।

(२) सर एच० एम० इलियट की पुस्तक "भारत के मुस्लिम इतिहासकार" पृ० ५६ तथा प्रोफेसर डाइसन के संस्करण में इसका नाम ताफन लिखा गया है परन्तु स्प्रेंजर ने 'मसूदी' के अपने अनुवाद मे इसके अनेक भिन्न नाम दिये हैं जैसे ताफी, ताकन ताफन तथा ताकीन।

का मिहरान एस सिन्ध की उन्नत भूमि, बुद्ध के राज्य में किन्नौज (कन्नौज) से सम्बन्धित प्रदेश से, तथा काश्मीर, एल कन्धार एवम् एट ताकीन के सर्वज्ञात उदगम स्थानों से निकलती है। इसकी सहायक नदियाँ जो इन देशों से निकलती हैं एल मुल्तान तक चली जाती हैं तथा वहाँ से संयुक्त नदी को मिहरान का नाम प्राप्त होता है।" इस पुस्तकांश से ताकीन शब्द का अभिप्राय निश्चित ही पंजाब की पहाड़ियों से रहा होगा। काबुल तथा सिन्धु दोनों ही गांधार अथवा एल कन्धार से होकर प्रवाहित होती हैं, झेलम काश्मीर से आती है तथा व्यास एवम् सतलज जालन्धर तथा कहलुर से होकर जाती हैं जो ह्वेनसांग के समय कन्नौज के अधीन थे। सिन्ध की अन्य सहायक नदियों में केवल चेनाब तथा रावी रह जाती हैं अतः इनका बहाव ताकीन राज्य से होकर रहा होगा। गांधार तथा कन्नौज के उल्लेख से ज्ञात होता है कि मसूदी ने नदियों के वास्तविक उदगम स्थानो का उल्लेख नही किया वरन् उसने पहाड़ियो की निचली श्रेणियो का उल्लेख किया है जहाँ यह नदियाँ मैदानो मे प्रवेश करती हैं। अतः मसूदी के समय ताकीन मुल्तान के उत्तर मे पंजाब के मैदानो एवम् निचली पहाडियों का नाम रहा होगा जो उस समय काबुल के ब्राह्मण राजा के अधीन थे।

सर हेनरी इलियट ने इस नाम को ताकीन पढ़ा है तथा गिल्डीमिस्टर ने अपनी पुस्तक में ताफन लिखा है। प्रथम पाठ को अबुरिहान तथा रशीदुद्दीन का समर्थन प्राप्त है जो इस कथन मे सहमत है कि बेलारजिक (लार्ज्क) के विशाल हिमाच्छादित पर्वत जो अपने गुम्बद स्वरूप से डीमावैण्ड के सदृश है उनको ताकीशर तथा लोहाबर को सीमाओं से देखा जा सकता है। इलियट ने एक गद्यांश मे ताकीशर को शुद्ध कर काश्मीर लिखा है परन्तु यह परिवर्तन पूर्णतः अस्वीकार्य है क्योंकि पर्वत को काश्मीर से दो फरसांग अथवा लगभग ८ मील दूर होने का विशेष उल्लेख किया गया है। कोई भी व्यक्ति इसी प्रकार कह सकता है कि सेन्टपाल का गिरजाघर लुडगेट पहाडी तथा विण्डसर से दिखाई देता है। यहाँ जिस पर्वत का संकेत दिया गया है वह काश्मीर के पश्चिम में दयमूर अथवा नांगा पर्वत है जिसकी ऊँचाई २६६२६ फुट है तथा जिसे मैंने २०० मील दूर चिनाब नदी पर रामनगर से बारम्बार देखा है। इसी लेखक के एक अन्य पुस्तकांश में सर हेनरी ने इस पर्वत को (१) कलारचल कहा है तथा दोनो स्थानों को जहाँ से यह पर्वत देखा जा सकता है उसने ताकस तथा लोहावर का नाम दिया है। यह ताकस अथवा ताकीशर मेरे विचार में ह्वेनसाग के सोकिया अथवा ताकी तथा मसूदी के ताकीन नामक स्थान है।

(१) यदि यह पर्वत इब्नबतूना के कराचल अथवा "कालापर्वत" के समान है तो नांगा पर्वत से इसकी अनुरूपता प्रायः निश्चित है क्योंकि बर्फ के न होने के कारण नङ्गा पर्वत काला दिखाई देता है।

व्यापारी सुलेमान सर्व प्रथम मुस्लिम लेखक है जिसने ताकी का उल्लेख किया है तथा जिसने ८५१ ई० में पूर्व की यात्रा की थी, जब उसकी यात्रा का विवरण लिखा गया था। ताफक का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है कि यह बहुत बड़े विस्तार का क्षेत्र नहीं था तथा यहाँ का राजा दुर्बल था तथा पडोसी राजकुमारों का आश्रित था। परन्तु उसने यह भी लिखा है कि उसके पास "सम्पूर्ण भारत की सर्व श्रेष्ठ गौर वर्ण स्त्रियाँ थी।" चूंकि फारसी चरित्र मे ताफक तथा ताकीन लगभग एक समान है अतः ताफक को पञ्जाब के अनुरूप समझने मे मुझे कोई हिचक नही है जहाँ (पञ्जाब) की स्त्रियाँ विशेषतः निचली पहाड़ियो की स्त्रियाँ, भारत मे सबसे गौर वर्ण एवम् श्रेष्ठ हैं।

इब्न-खुरदाद बा ने—जिसकी मृत्यु ९१२ ई० मे हुई थी, ताफ़ा के राजा को प्रसिद्धि मे बलहा-रा से द्वितीय स्थान पर बताया है। अन्त मे, काजविनी ने तैफन्द को दुर्गम पर्वत के शिखर पर एक सुदृढ भारतीय दुर्ग कहा है जिसे महमूद गजनी ने १०२३ ई० मे अपने अधिकार में कर लिया था। यह विवरण सांगला की वास्तविक पहाडी से मिलता है जो तीन ओर से प्रायः अगम्य है तथा चौथी ओर से जल के कारण सुरक्षित है।

ताकीन, ताफन, ताफक, ताफा, ताकस तथा ताकीशर के अल्पमात्र भिन्नता वाले नामो को मैं केवल ताकी अथवा ताकीन के मूल स्वरूप के विभिन्न उच्चारण मात्र समझता हूँ जिन्हे स्वरो की विशिष्ट चिह्नो के बिना लिखने पर भिन्न-भिन्न प्रकार से पढा जा सकता है। एम० रिनाड ने इसे ताबन लिखा है जिसे स्वरो के विशिष्ट चिह्नो के अभाव में ताफ़न के अन्य स्वरूप के रूप मे भिन्न भिन्न प्रकार से पढ़ा जा सकता है। अतः मेरा यह निष्कर्ष है कि देश के नाम का वास्तविक स्वरूप ह्वेनसाग द्वारा दिया गया ताकी अथवा ताका था। राजधानी का नाम सम्भवतः या तो ताकीन था अथवा तक्कावर, जिनमे प्रथम नाम काज़बिनी के तैफन्द से ठीक-ठीक मिलता है तथा दूसरा नाम पेन्टिगेरियन सूची के ताह़ोरा से मिलता है। मैं इसे प्रायः निश्चित समझता हूँ कि यह नाम टाक अथवा टक जाति से लिया गया होगा जो एक समय पञ्जाब के असन्दिग्ध शासक थे तथा जो आज भी झेलम तथा रावी के बीच निचली पहाड़ियों मे अनेक कृषक जातियो के रूप मे निवास करते हैं।

इस जाति के पूर्ववर्ती महत्व को सम्भवतः इस तथ्य से भली-भाँति दिखाया जा सकता है कि प्राचीन नागरी स्वरूप जो बामियान से लेकर यमुना के तट तक सम्पूर्ण प्रदेश मे अब भी प्रचलित है, उसे टाकरी नाम दिया गया था जिसका कारण सम्भवतः यह था कि इस विशिष्ट स्वरूप को टाकों अथवा टक्को ने प्रचलित किया था। मैंने इस भाषा के स्वरूप को सिन्धु के पश्चिम तथा सतलज के पूर्व व्यापारियों मे और साथ ही साथ काश्मीर तथा कागड़ा के ब्राह्मणो मे इसी नाम से प्रचलित पाया है। शिलालेखों में तथा काश्मीर एवम् कागड़ा की मुद्राओ पर इसका प्रयोग किया गया है। इसे मण्डी

के सती स्मारकों तथा पिन्जोर के शिलालेखों में भी देखा जा सकता है और अन्त में, काश्मीर की राजतरङ्गिणी की एक मात्र प्रतिलिपि टाकरी लिपि में सुरक्षित रखी गई थी। मैंने पेशावर तथा शिमला के बीच २६ विभिन्न स्थानों से इस वर्ण माला की प्रतिलिपियाँ प्राप्त की हैं। इनमे अधिकांश स्थानो मे टाकरी को मुण्डो तथा लुण्डो (अथवा मुण्डे-लुण्डे) भी कहा जाता है परन्तु इन शब्दो के अर्थ अज्ञात हैं। इस वर्ण-माला को मुख्य विशेषता यह है कि स्वरों को व्यञ्जनों के साथ नहीं जोड़ा जाता परन्तु छोटा 'अ' के एक मात्र अपवाद को छोड़ उन्हें अलग-अलग लिखा जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस वर्णमाला में गणनात्मक सख्याओ के प्रारम्भिक अक्षरों का लगभग वही स्वरूप है जैसा स्वरूप वर्तमान समय में प्रयोग की जाने वाली संख्याओं का है।

सातवी शताब्दी मे ताकी राज्य तीन प्रान्तो में विभाजित था, उत्तर तथा पश्चिम मे ताकी, पूर्व में शोरकोट तथा दक्षिण में मुल्तान। ताकी प्रान्त में सिन्धु नदी से व्यास नदी तक मुल्तान जिले के उत्तर का भू-भाग अथवा सिन्ध सागर, रिचना तथा बारी के तीन दोआबो के उत्तरी भागो सहित सम्पूर्ण चज दोआब सम्मिलित था। शोरकोट प्रान्त मे इन दोआबो के मध्य भाग सम्मिलित थे तथा मुल्तान प्रान्त में इनके निचले भाग सम्मिलित थे। यह भी सम्भव है कि मुल्तान का अधिकार क्षेत्र सिन्धु के पश्चिम और साथ ही साथ सतलज के पूर्व फैला हुआ हो जैसा कि अकबर के समय में था।

ताकी अथवा उत्तरी पंजाब

ताकी प्रान्त ने प्राचीन भारत के प्रसिद्ध स्थानो मे अनेक स्थान सम्मिलित थे जिनमें कुछेक सिकन्दर के युद्धों में प्रसिद्ध हुए, कुछेक को बौद्ध इतिहास में ख्याति प्राप्त हुई और अन्य स्थान केवल जनसाधारण की दूर-दूर तक फैली हुई प्रथाओ मे प्रसिद्ध हुए थे। निम्नलिखित सूची में प्राचीन स्थानों में सर्वोधिक महत्व के स्थानों के नाम पश्चिम से पूर्व उनकी भौगोलिक स्थिति के अनुसार दिये गये हैं। दोआबों के नामों का प्रचलन अकबर ने दो नदियो के नामों को मिला कर किया था। इस प्रकार चज, चेनाब तथा झेलम नदियों के दोआब का संक्षिप्त नाम है, रिचना, रावी तथा चेनाब का तथा बारी, ब्यास तथा रावी नदियों के बीच के स्थान का संक्षिप्त नाम है।

सिन्ध सागर दोआब { (१) जोबनाथ नगर अथवा भिड़
(२) बुकेफल अथवा दिलावर

चज के दोआब { (३) निकेया अथवा मोंग
(४) गुजरात

रिचना दोआब
- (५) शाकल अथवा सांगला
- (६) ताकी अथवा असरूर
- (७) नरसिंह अथवा रासी
- (८) अम्मकाटिस अथवा अम्बकाप

बारी दोआब
- (९) लोहावर अथवा लाहौर
- (१०) कुसावर अथवा कसूर
- (११) बिना पट्टी अथवा पट्टी

जोबनाथनगर अथवा भिड़

भिड अथवा भेडा का आधुनिक नगर झेलम के बायें अथवा पूर्वी तट पर अवस्थित है परन्तु नदी के दूसरे तट पर अहमदाबाद के समीप खण्डरों का अत्यधिक विस्तृत टीला है जिसे पुराना भिड अथवा राजा जोबनाथ अथवा चोबनाथ के रूप में जोबनाथ नगर कहा जाता है। इस स्थान पर नमक के काफलों के दो बडे मार्ग क्रमशः लाहौर तथा मुल्तान की ओर मुड जाते हैं और प्राचीन समय की राजधानी इसी स्थान पर थी तथा मेरा विश्वास है कि सिकन्दर महान् के समकालीन सोफीटीज़ की राजधानी भी इसी स्थान पर थी। एरियन के अनुसार सिकन्दर ने सोपीथोस की राजधानी के स्थान पर ही वह स्थान निश्चित किया था जहाँ क्रेटेरस तथा हेफस्टियन को नदी के दोनों तटों पर अपना पडाव डालकर स्वयं सिकन्दर के नेतृत्व मे नौकाओं के बेडे एवम् फिलिप के नेतृत्व मे सैनिको के मुख्य दल की प्रतीक्षा करनी थी। चूंकि सिकन्दर निश्चित स्थान पर तीसरे दिन पहुँच गया था अतः हम जानते है कि सोफीटोज की राजधानी हाईडस्पीज पर, निकाया से भरी नौकाओ की तीन दिन की यात्रा पर थी। अब, भिड नौका यात्रा द्वारा मोंग से केवल तीन दिन की यात्रा का दूरी पर है जो जैसा कि मैं दिखाने का प्रयत्न करूंगा—प्रायः निश्चित ही निकाया की स्थिति थी। जहाँ सिकन्दर ने पोरस को पराजित किया था। पिण्ड दादन खाँ द्वारा अपना स्थान ग्रहण किये जाने के समय तक भिड ही देश के इस भाग का सदैव मुख्य नगर था। भिड के स्थान पर ही चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने ४०० ई० मे झेलम नदी को पार किया था तथा ग्यारह शताब्दी पश्चात् साहसी बाबर ने भारत में अपना प्रथम सैनिक अभियान भिड के विरुद्ध चलाया था।

सोफीटीज के शासन क्षेत्र के सम्बन्ध मे प्राचीन उल्लेख परस्पर विरोधी है। स्ट्रैबो के कथन मे इस प्रकार लिखा है—कुछ लेखको ने एक राजा सोपीथीज़ के देश कथेइया को दो नदियों (हाईडस्पीज तथा अकेस्नीज) के मध्य के प्रदेश मे अवस्थित बताया है। कुछ लेखको ने इसे अकेस्नीज तथा हाईड्राओटोज के दूसरी ओर एक अन्य पोरस, प्रथम पोरस के भतीजे—जिसे सिकन्दर ने बन्दी बना लिया था—की सीमाओं पर अवस्थित बताया है और उन्होने उसके देश को गांधारिस कहा है।" मेरा विश्वास

है कि इस नाम को गुन्दलबार अथवा गुन्दर बार के आधुनिक जिले के अनुरूप समझा जा सकता है। बार शब्द का प्रयोग प्रत्येक दोआब के मध्य भाग के लिये किया गया है जिसकी ऊँची भूमि में दोनों नदियों का जल सिंचाई कार्य हेतु नहीं पहुँचाया जा सकता। इस प्रकार सन्दल अथवा सन्दर बार झेलम एवम् चेनाब के मध्य चज दोआब के मध्य भाग का नाम है। गुन्दल बार दोआब का ऊपरी भाग जिसको लेकर वर्तमान गुजरात जिला बनाया गया है उस समय सिकन्दर के प्रतिद्वन्दी प्रसिद्ध पोरस के अधिकार में था तथा सन्दर बार दोआब का ऊपरी भाग उसके भतीजे, अन्य पोरस के अधिकार में था जिसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उसने गडारोडाय के पास शरण ली थी। टिप्पणी कारो ने इस नाम को बदल कर गङ्गारीडाय अथवा गङ्गा तट के निवासी कर दिया है परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दिवोडोरस की पुस्तक सम्भवतः सर्व शुद्ध है तथा गडारीडाय गङ्गडारिस जिले के पडोस के निवासियो का नाम रहा होगा जो सोफीटीज के अधीन थे।

भारतीय राजा का शासन हाईडस्पीस तथा अकेसिनीज के मध्य दोआब तक ही सीमित नही था क्योकि स्ट्रैबों ने लिखा है कि "सोपीथीज की सीमाओं मे सेन्धा नमक का एक पर्वत है जो (नमक) सम्पूर्ण भारत के लिये पर्याप्त है।" चूँकि यह विवरण नमक की पहाड़ियों की सर्व ज्ञात खानों को ओर सकेत करता है अतः सिन्ध सागर दोआब का सम्पूर्ण ऊपरी भाग सोपीथीज के राज्य में रहा होगा। अतः उसका अधिकार क्षेत्र पश्चिम मे सिन्धु से लेकर पूर्व में अकेसीनीज तक फैला हुआ था और इस प्रकार उसमें वर्तमान पिण्ड दादन तथा शाहपुर के सम्पूर्ण जिले सम्मिलित थे। प्लिनी के लेख में दिये गये एक देश के नाम के दो अक्षरों में साधारण अदला-बदली करने से भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नमक को मूल्यवान खानें सोपीथीज अथवा सोफीटीज के राज्य मे थी। प्लिनी द्वारा इस देश के नाम ने सभी टिप्पणी कारों को अभी तक दुविधा मे रखा है। प्लिनी का कथन है कि "जिस समय सिकन्दर महान् अपने भारतीय अभियान पर था अलबानिया के शासक ने उसे एक असमान्य आकार का कुत्ता भेंट मे दिया था। जिसने उसके सामने ही एक शेर तथा एक हाथी दोनों पर ही सफलता पूर्वक आक्रमण किया था। उसके अनुकर्ता सोलिनस ने देश के नाम मे किसी प्रकार के परिवर्तन के बिना इसी कथा को दोहराया है। अब स्ट्रैबो दिवोडोरस तथा कर्टियस के संयुक्त साक्षी से हम जानते हैं कि सिकन्दर को इन लड़ाकू कुत्तों की भेंट देने वाला भारतीय राजा सोफीटीज था। अतः वह ही अलबानिया का शासक रहा होगा। प्रथम दो अक्षरों की साधारण अदला-बदली से मैं इस नाम को लबानिया पढ़ने का प्रस्ताव करता हूँ। इस प्रकार अलबान लबान बन जायेगा जिससे तुरन्त ही यह संकेत मिलता है कि अभी तक के भ्रान्तिपूर्ण नाम का मूलरूप संस्कृत का 'लवण' था। प्लिनी ने पर्वत का नाम ओरोमीनस रखा है तथा उसका कथन है कि यहाँ के राजा को स्वर्ण

अथवा मोतियों की अपेक्षा नमक से अधिक आय प्राप्त होती थी। यह नाम सम्भवतः संस्कृत के रौमक के लिये लिखा गया है जो पण्डितों के अनुसार रूमा नामक देश की पहाड़ियों से निकाले गये नमक का नाम है। एच० एच० विलसन ने रूमा को साम्भर के अनुरूप बताया है और चूंकि रौम का अर्थ नमक है अतः यह सम्भव है कि राजपूताना की सांम्भर झील तथा पञ्जाब की नमक की पहाड़ियों दोनो को ही यह नाम दिया गया हो।

सिकन्दर के इतिहासकारो ने सोफीटीज, उसके देश तथा उसकी अधीन जनता के सम्बन्ध मे अनेक विचित्र एवम् विस्तृत विवरण सुरक्षित रखे हैं। स्वयं राजा के सम्बन्ध मे कर्टियस ने लिखा है कि वह बर्बर लोगों में सुन्दरता के लिये प्रख्यात था डियोडोरस ने यह जोड़ दिया है कि वह छः फुट लम्बा था। मेरे पास यूनानी कारीगरी की एक मुद्रा है जिसके एक ओर टोप धारण किए हुए एक सिर बनाया गया है और दूसरी ओर एक विशिष्ट नाम सहित खड़ा मुर्गा दिखाया गया है। इस बात को विश्वास करने मे अनेक अच्छे कारण हैं कि यह मुद्रा भारतीय राजा से सम्बन्धित रही होगी। इसका चेहरा अति तीक्ष्ण तथा विशिष्ट आकृति के लिये उल्लेखनीय है। सोफीटीज् की जनता भी अपनी व्यक्तिगत सुन्दरता के कारण प्रसिद्ध थी। डियोडोरस के अनुसार वह अपनी सुन्दरता को सुरक्षित रखने के लिए उन सभी बच्चों की हत्या कर देते थे जो सुन्दर नही होते थे। स्ट्रैबो ने कथायी की इसी वस्तु का उल्लेख किया है परन्तु उसने चूंकि यह लिखा है कि यह लोग सर्व सुन्दर व्यक्ति को अपना राजा चुना करते थे, उसका विवरण सोफीटीज् की जनता के लिये ही दिया गया होगा क्योंकि सागला के कथाइयो का अपना कोई राजा नही था। फिर भी कथायी तथा सोफीटीज की जनता के सम्बन्ध मे दिये गये सभी लेखको के विवरणो मे इतनी अधिक गडबड़ी है कि यह अति सम्भव प्रतीत होता है कि वह दोनो एक ही जनता के नाम थे। निश्चित ही यह एक दूसरे के पड़ोसी थे और चूंकि दोनो की विशिष्ट प्रथायें एक समान प्रतीत होती हैं और व्यक्तिगत सुन्दरता मे समान रूप से उल्लेखनीय हैं। अतः मेरा निष्कर्ष है कि वह एक ही जाति के दिभिन्न शाखाओ से सम्बन्धित रहे होगे।

बुकेफल अथवा दिलावर

सिकन्दर अथवा पोरस के बीच युद्ध का स्थान काफी लम्बे समय से विद्वानों की कल्पना शक्ति एवम् आकर्षण केन्द्र रहा है। न्यायप्रिय एलफिन्स्टन ने इसे जलालपुर के विपरीत बताया है परन्तु बनर्जी इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह स्थान झेलम के समीप रहा होगा, क्योंकि यह तरतारी से आने वाले विशाल मार्ग पर अवस्थित है। सिकन्दर को इस मार्ग का अनुसरण करते हुए बताया गया है। १८३६ में जनरल कोर्ट ने इस विषय पर विवेचना की थी जिन्हें अपने प्रारम्भिक सैनिक प्रशिक्षण एवम् पञ्जाब

में लम्बी अवधि के निवास से निरीक्षण हेतु प्राप्त असाधारण अवसरों से किसी सुनिश्चित विचार पर पहुँचने के सम्भव साधन प्राप्त हुये थे। जनरल कोर्ट ने सिकन्दर के पड़ाव को झेलम में निश्चित किया, नदी पार करने का स्थान झेलम से ऊपर ३ कोस अथवा ६ मील की दूरी पर खिलीपटम में, पोरस के साथ युद्ध का स्थान झेलम से ८ मील पूर्व जाबा नदी पर पट्टी कोटी में, तथा निकाया की स्थिति को वेस्सा अथवा भेसा के स्थान पर बताया, जो पथी अथवा पट्टी कोटी के ३ मील दक्षिण पूर्व में है। स्वर्गीय लार्ड हार्डिंग को इस विषय में अत्यधिक रुचि थी और उन्होंने १८४६ तथा १८४७ में मेरे साथ दो बार इस विषय पर पत्र-व्यवहार किया था। उनका विचार मेरे विचार से मिलता है कि सिकन्दर का पड़ाव सम्भवतः जलालपुर के समीप था। अगले वर्ष जनरल कोर्ट ने पोरस एवम् सिकन्दर के युद्ध क्षेत्र का विस्तृत विवरण छापा था जिसमें उन्होने सिकन्दर के पड़ाव को झेलम मे तथा पोरस के पड़ाव को नदी के दूसरे तट पर नोरङ्गाबाद के समीप बताया था। नदी पार करने के स्थान को उन्होने झेलम से लगभग १० मील ऊपर भूना में तथा युद्ध क्षेत्र को सुखचेनपुर के १ मील उत्तर पकराल के समीप निश्चित किया था। १८६३ तक यह प्रश्न इसी स्थिति में रहा और उस समय पञ्जाब के अपने दौरे पर मुझे जलालपुर से लेकर झेलम तक हाईडस्पीस के तटों का समुचित निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त हुआ।

सिकन्दर की गतिविधियों पर विवेचना करने से पूर्व मैं जलालपुर से झेलम के मध्य नदी के साथ-साथ विभिन्न स्थानों का पश्चिम की ओर से वहाँ पहुँचने के सभी मार्गों सहित उल्लेख करना उचित समझता हूँ। जब हम उस स्थान का निर्णय कर लेंगे जो बुकेफल के विवरण से सर्वाधिक समानता रखता है तो हम सिकन्दर के पड़ाव के रूप मे जलालपुर तथा झेलम के अपेक्षाकृत दावो पर निश्चय करने की स्थिति में हो जायेंगे। इस विवेचन मे मै जिन दूरियों का उल्लेख करूंगा वह सभी वास्तविक माप से ली गई है।

झेलम नगर, जलालपुर से ३० मील उत्तर पूर्व तथा लाहौर से ठीक १०० मील उत्तर, उत्तर पश्चिम मे नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। प्राचीन नगर के अवशेषों में वर्तमान नगर के पश्चिम लगभग १३०० फुट वर्गाकार एवम् ३० फुट ऊँचा एक विशाल ध्वस्त टीला सम्मिलित है जो टूटी हुई ईंटो एवं चीनी के बर्तनों से ढंके खेतो से घिरा हुआ है। वर्गाकार टीले को मैं दुर्ग के खण्डहर समझता हूँ कहा जाता है कि इसका नाम पुट्टा था। वर्षा के पश्चात् इस टीले से आज भी अनेक मुद्रायें प्राप्त होती है परन्तु वह मुद्रायें जिन्हें मैं एकत्रित कर सका था वह सभी पश्चात्वर्ती इण्डो-सीथियन राजाओं, काबुल के ब्राह्मणों तथा काश्मीर के राजाओं से सम्बन्धित थीं। चूंकि जनरल कोर्ट तथा जनरल एबाट ने पिछले वर्षों में इसी प्रकार की तथा इससे पर्व समय की अनेक मुद्रायें प्राप्त की थी अतः यह निश्चित है कि यह नगर ईसा की

प्रथम शताब्दी से पूर्व का रहा होगा। परन्तु उत्तरी पञ्जाब से होकर जाने वाले दो मुख्य मार्गों मे एक पर अवस्थित होने के इतने अधिक लाभ हैं कि मेरे विचार मे अत्यधिक प्राचीन समय मे यह नगर बसा होगा। पुराने टीले की खुदाई मे प्राप्त बड़ी-बड़ी ईंटों की प्राप्ति से इस विचार की पुष्टि होती है।

दारापुर के समीप का ध्वस्त नगर जिसका बर्नस तथा कोर्ट ने उल्लेख किया है—झेलम से २० मील नीचे तथा जलालपुर से १० मील ऊपर नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। उनके समय मे यह टीला निर्जन था परन्तु १८३२ ई० के लगभग दिलावर के निवासियो पश्चिम की पहाडी पर अवस्थित गाँव को त्याग कर, ध्वस्त नगर के स्थान पर बस गये थे। उस समय से पूर्व इस स्थान को प्राय: पिण्ड अथवा 'टीला' कहा जाता था यद्यपि इसका वास्तविक नाम उधम नगर अथवा उदीनगर कहा जाता है। बर्नोज ने भी इसी नाम का उल्लेख किया है परन्तु कोर्ट ने जिन्होने इन खण्डहरो की ओर दो बार सकेत किया है, किसी नाम का उल्लेख नही किया है। हो सकता है कि उन्होंने इन नामो को गधीराखी के अन्तर्गत माना हो जिसके खण्डहरो को उन्होने "ज्लालपुर के समीप से लेकर दारापुर तक हाईडम्पीस के" तटो पर फैले हुये बताया है। इस विवरण के अनुसार यह खण्डहर लम्बाई मे ६ अथवा ७ मील से कम नही होगे। मैं यह सम्भव समझता हूँ कि दो विभिन्न स्थानो के मध्य कुछ शङ्का रही है जिन्हे मिलाकर खण्डहरा का एक ही विस्तृत क्षेत्र बना दिया गया है। गिरझाक, जिसे मैं कोर्ट के गधीराखी का मूल स्वरूप समझता हूँ, जलालपुर के उत्तर मे पहाडी के शिखर पर एक प्राचीन ध्वस्त दुर्ग है, जो जनसाधारण के अनुसार अति विस्तृत था। परन्तु यह दारापुर से कम से कम ८ मील की दूरी पर है तथा गहरी कदहार खाइयो द्वारा तथा जिन पहाडियो के अधोभाग मे दिलावर अवस्थित है उन पहाडियों की ऊँची खड़ी श्रेणियो द्वारा दारापुर से अलग कर दिया गया है। बर्नस ने भी प्राचीन नगर को "तीन अथवा चार मील" विस्तृत कहा है परन्तु यह निश्चित ही अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि मैं खण्डहरो को लम्बाई मे एक मील तथा चौडाई मे आधा मील के बाद नही ढूँढ सका था। इन अवशेषो के अन्तर्गत, लगभग आधा मील की दूरी पर दो विशाल टीले तथा उसके मध्य दो छोटे टीले हैं। दक्षिणी टीले जिस पर दिलावर अवस्थित है—शिखर पर लगभग ५०० फुट वर्गाकार है तथा अधोभाग मे यह १०० अथवा १२०० फुट है एव इसकी ऊँचाई ५० से ६० फुट है। उत्तरी टीला जिस पर दारापुर अवस्थित है—६०० फुट वर्गाकार तथा २० से ३० फुट ऊँचा है। इन टीलों के मध्य के खेत टूटी ईंटों तथा चीनी के बर्तनो से ढके हुए है तथा कहा जाता है कि सम्पूर्ण स्थान पर एक ही नगर के अवशेष हैं। दिलावर के भवनो की दीवारे इस टीले से खोद कर निकाली गई विशाल पुरानी ईंटो से बनाई गई है जो आकार मे दो प्रकार की है। एक ११½ × ८½ × ३ इञ्च मोटी है और दूसरी इससे केवल आधी मोटाई की है।

दिलावर के टीले से पुरानी मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। कहा जाता है कि दिलावर से जलालपुर बाजार को यह वस्तुयें भेजी जाती है ठीक उसी प्रकार जैसे जोगनाथ नगर के अवशेषो से पिण्ड दादन को यह वस्तुयें प्राप्त होती है। मैंने जिन मुद्राओं को प्राप्त किया था वह प्रथम इण्डोसीथियन राजाओ, काबुल के ब्राह्मणो, काश्मीर के राजाओं तथा कारलूकी हजारा के प्रमुखो, हसन एवं उसके पुत्र मुहम्मद के समय की है। अतः यह स्थान ईसा काल के दूसरी शताब्दी के समय से बसा होगा। कहा जाता है कि राजा भारती ने—जिसकी आयु अज्ञात है—इस नगर का निर्माण करवाया था। फिर भी मेरा निष्कर्ष है कि अपनी स्थिति के कारण दिलावर अत्यधिक प्रारम्भिक काल में बस गया होगा क्योकि यह झेलम के मार्ग पर उस विन्दु पर नियंत्रण करता है जहाँ पश्चिम की ओर से आने वाला निचला मार्ग बुनहार नदी के मुहाने से ठीक नीचे पहाड़ियो को छोड़ देता है।

जलालपुर नगर, झेलम नदी के पश्चिमी तट पर उस स्थान पर अवस्थित है जहाँ कन्दार खाई नदी के पुराने मार्ग से मिल जाती है। यह नदी अब दो मील दूर है और मध्यवर्ती भाग जिसका कुछ भाग छोटे वृक्षो से ढँका हुआ है—अब भी रेतीला है। कहा जाता है कि नगर का यह नाम अकबर के सम्मान मे रखा गया था जिसके समय मे सम्भवतः यह अधिक समृद्ध स्थान रहा होगा। परन्तु नदी के हट जाने के समय से और विशेष रूप से पिण्ड दादन की स्थापना के समय से यह स्थान धीरे-धीरे घटता गया और अब यहाँ पर लगभग ४००० निवासियों सहित केवल ७३८ गृह हैं। इस स्थान का देखने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस नगर का प्रारम्भिक विस्तार वर्तमान विस्तार से लगभग तीन अथवा चार गुणा अधिक रहा होगा। यह भवन नमक की पहाड़ियो के दूरस्थ पूर्वी छोर की अन्तिम ढलान पर बनाए गये हैं। यह स्थान सड़क से धीरे-धीरे १५० फुट की ऊँचाई तक ऊपर उठ जाता है। इसका पुराना हिन्दू नाम गिरझाक बताया जाता है और चूँकि इस नाम को अबुल फज़ल की आइने-अकबरी मे सिन्ध-सागर का केरचक (गिरजक ?) लिखा गया है अतः हमारे पास इस बात का प्रमाण है कि यह नाम अकबर के समय तक प्रचलित था और उसके समय मे इसका नाम बदल कर जलालपुर रखा गया था। परन्तु जनसाधारण 'मङ्गल दी पहाडी' के शिखर पर दीवारो के अवशेषो को आज भी गिरझाक नाम से पुकारते हैं। यह पहाड़ी जलालपुर से ११०० फुट ऊँची उठी हुई है। जन श्रुतियो के अनुसार गिरझाक पश्चिम उत्तर पश्चिम मे ११ मील की दूरी पर बाघनवाल के पुराने मन्दिर तक विस्तृत था। परन्तु यह केवल अज्ञानता की सामान्य अतिशयोक्ति है जैसा कि अन्य सभी प्राचीन स्थानों के सम्बन्ध मे किया गया है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि यह नगर किसी समय पश्चिम की ओर कुछ अधिक दूरी तक विस्तृत था क्योकि उस ओर लगभग आधे मील की दूरी तक सम्पूर्ण स्थान पर चीनी के बर्तनों के टुकड़े अधिक मात्रा

में फैले हुए हैं। इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है क्योंकि यहाँ पर प्राप्त होने वाली मुद्रायें सिकन्दर के उत्तराधिकारियों के समय की है। परन्तु मेरा विश्वास है कि यह स्थान अत्यधिक पुराना है क्योंकि निचले मार्ग के दक्षिण पूर्वी छोर पर अपनी अनुकूल स्थिति के कारण निश्चित ही यह स्थान अधिक प्रारम्भिक काल में बस गया होगा। अतः मेरा विचार है कि यह स्थान रामायण के गिरिराज के अनुरूप समझा जा सकता है। प्रथाओं में काम कमारत नाम के केवल एक राजा का नाम रखा गया है जिसे मोंग के संस्थापक मोंगा की बहिन का पुत्र बताया जाता है। मुगलबेग ने इस नाम को घर-जेहाक लिखा है और यहाँ के कुछ निवासियों द्वारा भी इस नाम को इस प्रकार लिखा गया है क्योंकि यह नाम गिरि-जोहाक अथवा जोहाक की पहाड़ी से लिया गया है परन्तु इसके उच्चारण के अनुसार इसे झाक लिखा जाता है।

झेलम से जलालपुर तक नदी का मार्ग पर्वतों की लगभग दो समानान्तर श्रेणियों के बीच उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर है। यह श्रेणियाँ सामान्य रूप से टीला तथा पभी पहाड़ियों के नाम से ज्ञात है। टीला श्रेणी जो लम्बाई में लगभग ३० मील है, मङ्गला से नीचे नदी के विशाल पूर्वी घुमाव से लेकर जलालपुर के १२ मील उत्तर में बुनहार नदी तक पश्चिमी तट के साथ फैली हुई है। टीला का अर्थ है शिखर, अथवा पहाड़ी और इसका पूरा नाम गोरख नाथ का टीला है। इसका पुराना नाम बालनाथ का टीला था। यह दोनों नाम शिखर पर बने मन्दिर से लिये गये हैं जो प्रारम्भ में बालनाथ के रूप में सूर्य का मन्दिर था परन्तु जहाँ वर्तमान समय में शिव के स्वरूप गोरखनाथ की पूजा होती है। फिर भी दूसरा नाम अधिक पुराना नहीं है क्योंकि बुगलबेग जिसने १७८४ तथा १७६४ ई० के बीच इस देश का सर्वेक्षण किया था—इसे "जोगियान-दो-टिब्बी, अथवा जोगियों की अटारी कहा है जिनके मुखिया को बिलनाट कहा जाता है।" अब्बुल फजल ने भी "बलनाट की कन्दरा" तथा जोगियों अथवा भक्तों का उल्लेख किया है जिनके नाम पर कभी-कभी इस पहाड़ी को जोगी टीला कहा जाता है। परन्तु बालनाथ का नाम सम्भवतः सिकन्दर के समय से अधिक पुराना है क्योंकि प्लूटार्च ने लिखा है कि जिस समय पोरस सिकन्दर का सामना करने के लिए अपनी सेना को एकत्रित कर रहा था उस समय राजकीय हाथी सूर्य की पवित्र पहाड़ी की ओर भागा तथा मानव भाषा में उसने घोषणा की, कि "ए महान् राजा, तुम गिगासीयस के पूर्वज हो अतः तुम सिकन्दर का विरोध त्याग दो क्योंकि स्वयं गिगासियस भी जोव की जाति से सम्बन्धित था।"

"सूर्य की पहाड़ी" बालनाथ का टीला का केवल अक्षर सा अनुवाद है परन्तु प्लूटार्च का कथन है कि इसे बाद में "हाथी का पहाड़ी" कहा जाता था जिसे मैं बालनाथ से इसकी अनुरूपता का एक अन्य प्रमाण समझता हूँ, क्योंकि जनसाधारण में इस नाम को सामान्यतः बिलनाट पुकारा जाता है और चूँकि मुगलबेग ने इसे इसी नाम से

लिखा है अतः मैसीडोनियाँ के निवासियों ने जो फारस से होकर उस समय वहाँ पहुँचे थे, इसे निश्चित ही गलती से फिल-नाथ, अथवा पिल-नाथ अर्थात् 'हाथी' समझ लिया होगा। परन्तु सिकन्दर का पड़ाव झेलम अथवा जलालपुर कहीं भी रहा हो यह निश्चित है कि मैसीडोनिया के निवासी इस महत्वपूर्ण पहाड़ी की ओर आकर्षित हुये होंगे क्योंकि यह हाईडसपेस से ५० मील के भीतर सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। इसकी सबसे ऊँची चोटी समुद्र से ३२४२ फुट अथवा नदी के स्तर से लगभग २५००० फुट ऊंची है।

नदी के पूर्वी तट पर पहाडियो की सभी श्रेणी मिम्बर के पडोस के लेकर रसूल तक लगभग ३० मील तक फैली हुई है। यह श्रेणी बहुत नीची है क्योंकि उच्चतम विन्दु समुद्र से १४०० फुट से अधिक ऊंचा नहीं है तथा नदी के स्तर से ५०० फुट से कम है। परन्तु पहाडी के दोनो ओर ऊँचा नीचा एवम् दुर्गम स्थान एक रुकावट का काम करता है जो उतना ही दुर्गम है जितना कि एक अधिक उन्नत पहाडी हो सकती है। पञ्जाब पर अङ्ग्रेजी अधिकार हो जाने के समय तक पभी पहाड़ियों को रसूल के उत्तर पूर्व मे पाँच मील की दूरी पर केवल कोहरी दर्रे के मार्ग से तथा झेलम के दस मील दक्षिण पूर्व मे खारियान दर्रे से एक पगडण्डी द्वारा पार किया जा सकता था। यद्यपि मुख्य सडक को अब खारियान दर्रे से ले जा । जा चुका है फिर भी मूसलाधार वर्षा के पश्चात् यह सडक बन्द हो जाती है।

पश्चिम की ओर से हाईडस्पीस तक पहुँचने के लिए सिकन्दर के पास दो विभिन्न मार्ग थे जिन्हे बाबर ने ऊपरी एवम् निचला मार्ग कहा है। सिन्धु नदी से हसन अब्बदाल अथवा शाहढेरी तक यह दोनो मार्ग एक ही थे। तत्पश्चात् ऊपरी मार्ग मारगल दर्रे के रास्ते रावलपिण्डी तथा मानिक्याल से होकर घमाक तथा बकराल तक चला गया है जिस स्थान से यह मार्ग काहून नदी के मार्ग से टीला श्रेणी के मध्य रिक्त स्थान से होते हुए रोहतास तक नीचे चला जाता है और वहाँ से खुले मैदान से होकर झेलम तक चला जाता हैं। बकराल से झेलम तक एक पगडण्डी भी थी जो रोहतास से लगभग छः मील उत्तर पूर्व में टीला श्रेणी से होकर जाती है। परन्तु यह दर्रा घोडो तथा ऊँटों के लिये सदैव भयानक तथा पैदल यात्रियों के लिए भी कठिन मार्ग था। शाहढेरी से रोहतास के मार्ग से झेलम तक यह ऊपरी मार्ग ६४ मील लम्बा था परन्तु अब इसे नई सड़क द्वारा घटाकर ८७ मील कर दिया गया है। इस मार्ग के कारण रोहतास तथा घमाक के मार्ग से दो लम्बे घुमाओ से बचा जा सकता है।

निचला मार्ग तक्षशिला अथवा शाहढेरी से मारगल दर्रे से होकर जङ्गी तक जाता है जहाँ से यह चाऊनतरा से होकर दुधियाल की ओर चला जाता है। इस स्थान पर यह सड़क दो शाखाओ में बँट जाती है। दक्षिण की ओर जाने वाला मार्ग चकवाल तथा नमक की खानों के मार्ग से पिण्ड दादन तथा अहमदाबाद तक चला जाता है। पूर्व की ओर जाने वाला मार्ग असनोट तथा बुनहार नदी के मार्ग से रसूल के विपरीत

दिलावर तक अथवा असनोट तथा बक्र के मार्ग से जलालपुर तक चला जाता है। शाहढेरी से दुधियाल की दूरी ५५ मील है। वहाँ से असनोट तक ३३ मील है और तत्पश्चात् दिलावर अथवा जलालपुर तक प्रत्येक २ मील दूर है इस प्रकार इस मार्ग से सड़क की कुल दूरी ११८ मील है। यदि यात्री नमक की पहाड़ियो के अधोभाग से सीधे जलालपुर चला जाये तो उपर्युक्त दूरी को घटाकर ११४ मील किया जा सकता है। एक तीसरा मार्ग भी है जो मानिक्याल स्तूप से ६ मील दक्षिण मे मण्डरा पर ऊपरी मार्ग से अलग हो जाता है तथा चकोवाल तथा पिण्ड दादन के मार्ग से जलालपुर चला जाता है। इस मार्ग से शाहढेरी से जलालपुर तक की कुल दूरी ११६½ मील अथवा नमक की पहाडियो से मार्ग को छोडकर सीधे जलालपुर जाने से ११२½ मील है। इन तीन विभिन्न मार्गों की दूरी क्रमशः १०६, ११४ तथा ११२½ मील है और दूरी ११२½ मील है।

अब प्लिनी ने सिकन्दर के सर्वेक्षका दिवोगनिटीज तथा बैटन द्वारा दिये गये माप के आधार पर तक्षशिला से हाईडसपीज़ की दूरी १२० रोमन मील आंकी है जा स्मिथ के "प्राचीनता के काम मे निश्चित ०९१९३ की दर से ११०½ मील के समान है। चूँकि प्लिनी की प्रत्येक प्रतिलिपियो मे एक ही सख्या दी गई है अतः हमे इसे उस मार्ग को वास्तविक दूरी के स्वरूप मे स्वीकार कर लेना चाहिए जिसका सिकन्दर ने तक्षशिला से हाईडसपीज़ पर अपने पडाव तक अनुसरण किया था। इस दूरी को शाहढेरी से झेलम तथा जलालपुर की उपरोक्त दूरियो से तुलना करने पर हम निस्संकोच झेलम को अस्वीकार कर सकते हैं जो कथित दूरी से कम से कम १६ मील कम है जबकि जलालपुर इस दूरी से २ मील से कम के अन्तर पर है। परन्तु एक अन्य आपत्ति भी है जो समान रूप से झेलम के विरुद्ध है। स्ट्रैबो के अनुसार "हाईडसपीज की दूरी तक सिकन्दर की यात्रा की दिशा अधिकांश रूप से दक्षिण की ओर थी। तत्पश्चात् हिपानीज तक यह पूर्व की ओर अधिक थी।" अब यदि मानचित्र पर सिन्धु नदी पर ओहिन्द से तक्षशिला के मार्ग से झेलम तक सीधी रेखा को आगे बढ़ाया जाए तो यह रेखा गुजरात तथा सोद्रा से होकर जलन्धर तथा सरहिन्द तक चली जाएगी। चूँकि गङ्गा नदी तक जाने के लिए यह सबसे उत्तरी मार्ग है जिसका सभवतः सिकन्दर अनुसरण कर सकता था अत. झेलम से होकर उसका मार्ग एक निरन्तर सीधी रेखा पर रहा होगा और यह स्ट्रैबो के स्पष्ट कथन का पूर्ण विरोधी है। यदि हम जलालपुर के दावे को स्वीकार कर ले तो यह कठिनाई दूर हो जायगी क्योकि दिशा मे परिवर्तन २५ दिकांश पूर्व मे अधिक रहा होगा। झेलम के विरोध मे तीसरी आपत्ति यद्यपि पिछली आपत्तियो के समान ठोस आपत्ति नहीं है फिर भी यह एक ही विचार के पक्ष मे एक अतिरिक्त साक्षी के रूप में महत्वपूर्ण है। एरियान के अनुसार निकाया से हाईडसपीज़ मे नीचे की ओर आते समय नौकाओं का बेडा सोपिथीज़ की राजधानी में

तीसरे दिन पहुँचा था। मैं यह पहले ही सिद्ध कर चुका हूँ कि सोपिथीज़ का निवास जोबनाथ नगर अथवा अहमदाबाद में था जो लदी हुई नाव के लिए जलालपुर से तीन दिन की यात्रा पर परन्तु झेलम से छः दिन की यात्रा पर है। चूँकि इन प्रत्येक भिन्न परीक्षणों में सभी तथ्य जलालपुर के पक्ष में, और झेलम के उतने ही विरोधी हैं, अतः मेरा विचार है कि हम जलालपुर को सिकन्दर के पड़ाव के सम्भावित स्थान के रूप में उचित रूप से स्वीकार कर सकते हैं।

अब हमें यह देखना है कि जलालपुर के पास नदी एवम् प्रदेश सिकन्दर द्वारा हाईडसपीज़ को पार करने के अभियान तथा पोरस के साथ पश्चात्‌वर्ती युद्ध के कथित विवरण से किस प्रकार सहमत होगा। एरियन के अनुसार "नदी के तट पर बाहर की ओर निकला हुआ बन क्षेत्र था तथा पडाव से १७$\frac{1}{2}$ मील ऊपर तथा इसके ठीक सामने घने जङ्गल सहित एक टापू था।" कर्टियस ने भी घने जङ्गल वाले टापू का उल्लेख "उसके सैनिक अभियान पर पर्दा डालने योग्य स्थान" के रूप में किया है। उसने यह भी लिखा है कि "यहाँ पर एक गहरी खाई भी थी जो उसके पड़ाव से अधिक दूर नहीं थी तथा जिसमे न केवल पैदल सेना छिप सकती थी वरन् घुड़सवार सेना भी छिपे रूप मे रह सकती थी।" एरियन से हमें ज्ञात होता है कि यह खाई नदी के समीप नहीं थी क्योंकि "सिकन्दर अपनी सेना को तट से कुछ दूरी पर ले गया था ताकि शत्रु को यह आभास न हो कि वह घने जङ्गल अथवा टापू की ओर जा रहा है।" जलालपुर के उत्तर मे एक खाई है जो दोनो इतिहासकारो द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार है। यह खाई कन्दरनाला का पाट है जो अपने उद्गम स्थान से जलालपुर तक ६ मील के बाद मरुभूमि मे लुप्त हो जाती है। इस खाई के ऊपर एक मार्ग सदैव रहा है परन्तु झेलम की ओर जाने वाली सड़क दुर्गम थी। समुद्र से १०८० फुट तथा नदी स्तर से ३४५ फुट ऊँचे कन्दर शिखर से यह सड़क ३ मील तक उत्तरी दिशा मे काशो नामक एक अन्य खाई के साथ नीचे चली जाती है। तत्पश्चात् यह सड़क अचानक पूर्व की ओर मुड़ जाती है और ६$\frac{1}{2}$ मील के बाद पुनः १$\frac{1}{2}$ मील दक्षिण की ओर जाती है जहाँ यह दिलावर से नीचे झेलम मे मिल जाती है इस प्रकार जलालपुर से कुल दूरी ठीक १७ मील है। सिकन्दर की यात्रा की सम्भावना पर विचार करने के उद्देश्य से मैं स्वय इस खाई के साथ-साथ सड़क पर गया था और मुझे सन्तोष है कि इस यात्रा मे प्रथम आधे भाग मे थोड़े उतार चढ़ाव के कारण होने वाली थकावट तथा दूसरे आधे भाग मे मरुस्थल मे चलने को कठिनाई को छोड अन्य कोई कठिनाई नहीं है। जैसा कि एरियन ने लिखा है, यह खाई "तट में कुछ दूरी पर है।" क्योंकि काशो का मोड़ झेलम से ७ मील की दूरी पर है और जैसा कर्टियस ने लिखा है यह खाई "अधिक गहरी खाई" भी है क्योंकि इसके प्रत्येक ओर पहाड़ियाँ १०० से २०० तथा ३०० फुट ऊँची उठ जाती हैं। अतः इस सम्बन्ध में दिये गये तीन प्रमुख

तथ्यों में इस खाई का विवरण प्राचीन इतिहासकारों के विवरण से ठीक-ठीक मिलता है।

अन्य छोटी-छोटी बातो मे एक बात मुझे नदी के उस भाग से विशेष रूप से सम्बन्धित प्रतीत होती है जो जलालपुर से ठीक ऊपर है। एरियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने नदी तट के साथ-साथ धावक प्रहरी नियुक्त किये थे जो एक दूसरे से केवल इतनी दूरी पर थे कि वह परस्पर देख सकें एवम् उसकी आज्ञाये प्रसारित कर सकें। अब, मेरा विश्वास है कि चैतन्य शत्रु के सम्मुख यह कार्य दिलावर तथा जलालपुर के मध्य नदी तट को छोड अन्य किसी स्थान पर नही किया जा सकता था। अन्य सभी भागो मे नदी के पश्चिमी तट पर कोई बाधा नही है परन्तु इस भाग मे घनी एवम् पथरीली पहाडियाँ नदी की ओर ढलवा हो जाती है तथा अकेले सन्तरियो के छिपाने के लिये पर्याप्त स्थान प्रदान करती हैं। चूँकि नदी तट के साथ की दूरी १० मील से कम है तथा पडाव के पूर्वी छोर से यह ७ मील से अधिक दूर नही था अतः इस बात को समझना सरल है कि सिकन्दर ने क्यो अधिक लम्बे मार्ग—जिस पर उसने स्वय आगे बढना था—की अपेक्षा इस मार्ग पर सन्तरियो को नियुक्त किया था। नदी मार्ग मे एक चट्टान की उपस्थिति एक अन्य ऐसी बात है जहाँ कर्टियस के अनुसार एक नाव टकरा गई थी। आज भी कोटेरा, मेरियाल, मलिकपुर तथा शाह कबीर के स्थान पर नदी मे चट्टाने मिलती हैं और यह सभी स्थान दिलावर तथा जलालपुर के मध्य है। कोटेरा गाँव एक घने जङ्गल वाले उभडे भाग के अन्तिम छोर पर अवस्थित है जो दिलावर से एक मील नीचे नदी के ऊपर उभडा हुआ है इस घने उभडे भाग के साथ की चट्टान सहित मैं एरियन के आक्का तथा कर्टियस के पेत्रा के अनुरूप समझता हूँ। इस चट्टान के दूसरी ओर घने जङ्गल वाला टापू था जिसके कारण उभडे भाग का निचला भाग नदी के दूसरे तट से नहीं देखा जा सकता था। झेलम के इस भाग में अनेक टापू हैं परन्तु जब एक ही वर्ष इनमे किसी एक टापू को समाप्त करने के लिये है तो २००० वर्षों के पश्चात् सिकन्दर के टापू को ढूढने की आशा करना असङ्गत होगा। परन्तु १८४६ ई० मे कोटेरा के सामने २½ मील लम्बा तथा आधा मील चौड़ा इस प्रकार का एक टापू था जो आज की विशाल रेतीले तट के रूप मे दिखाई देता है। चूँकि यह यात्रा वर्षा ऋतु मे हुई थी। अतः विशाल रेतीले तट के टापू पर झाऊ की झाडियो का निकल आना स्वाभाविक था जिनकी ऊँचाई पैदल सेना तथा पैदल घुड़-सवारो की गतिविधियो को छिपाने के लिए पर्याप्त थी।

मेरे विश्वासानुसार दोनो पडावो की स्थिति इस प्रकार थी—तक्षशिला के मोफिज के नेतृत्व में ५००० भारतीय सैनिकों सहित लगभग ५०,००० सैनिकों के साथ सिकन्दर का मुख्यालय जलालपुर में था तथा उसका पड़ाव सम्भवतः जलालपुर से दो मील उत्तर पूर्व में शाह कबीर से लेकर जलालपुर के नीचे ४ मील पश्चिम दक्षिण

पश्चिम से स्यादपुर तक विस्तृत था। पोरस का मुख्यालय मोंग से ४ मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में तथा जलालपुर से ३ मील दक्षिण पूर्व में मुहाबतपुर के पास रहा होगा। हाथियों, धनुषधारियों तथा रथ सेना सहित उसकी ५०००० सेना भी मैसोडोनिया की सेना के समान ही विस्तृत क्षेत्र में रही होगी अतः इसका विस्तार मुहाबतपुर से २ मील ऊपर तथा ४ मील नीचे रहा होगा। ऐसी स्थिति मे सिकन्दर के पड़ाव का वाम पक्ष कोटेरा के घने उभड़े भाग से केवल ६ मील दूर रहा होगा जहाँ वह नदी को पार करने के प्रयत्न को गुप्त रखना चाहता था तथा भारतीय सेना का दाहिना पार्श्व मोंग से २ मील तथा कोटेरा के विपरीत बिन्दु से ६ मील दूर रहा होगा।

चूंकि मेरा तत्कालिक उद्देश्य सिकन्दर एव पोरस के युद्ध स्थल की पहचान करना है न कि युद्ध के उतार चढाव का उल्लेख करना, अतः सिकन्दर के निजी पत्रो के आधार पर प्लूटार्च द्वारा युद्ध सम्बन्धी विवरण को उद्धृत करना पर्याप्त होगा— "उसने एक गहरी काली एवं तूफानी रात का लाभ उठाते हुए अपनी पैदल सेना के एक अश तथा चुने हुए घुड़सवारो सहित भारतीयो से कुछ ही दूरी पर नदी के छोटे टापू पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर उसे एवं उसके सैनिकों को अत्यधिक भयानक तूफान तथा गरजते बादलों एवम् चमकती हुई बिजली सहित वर्षा का सामना करना पडा।" परन्तु तूफान एवम् वर्षा के होते हुये भी वह आगे बढ़ते गये तथा छाती तक गहरे जल को पार करते हुये वह सुरक्षा पूर्वक नदी के दूसरे तट तक पहुँच गये। सिकंदर के पत्रो को उद्धृत करते हुये (१) प्लूटार्च लिखता है, "नदी के पार पहुँच जाने पर वह घुडसवार सेना सहित ढाई मील तक बढ़ गया और उसकी पद सेना पीछे थी। उसका यह अनुमान था कि यदि शत्रु अपनी घुड़सवार सेना सहित आक्रमण करे तो उसकी निजी सेना उससे श्रेष्ठ होनी चाहिये और यदि वह अपनी पद सेना की गतिविधियो को बढ़ाए तो उसकी पद-सेना उनका सामना करने के लिए समय पर पहुँच सके।" एरियन से हमें पता चलता है कि जैसे ही शत्रु ने टापू एवं मुख्य भूमि के मध्य जल को पार करना आरम्भ किया उन्हें भारतीय गुप्तचरो ने देख लिया था और उन्होने तुरन्त पोरस को सूचना दी। कुछ कठिनाइयों के पश्चात् नदी को पार करने पर सिकन्दर ने अपनी ६००० पद सेना तथा १०००० घुड़सवारों की छोटी सेना को सङ्गठित करने हेतु विश्राम किया तत्पश्चात् वह "५००० घुड़ सवारो सहित शीघ्रता

(१) 'सिकन्दर की जीवनी' में सर डब्ल्यू नेपियर ने दोनों जनरलों की उचित सराहना की है। सिकन्दर द्वारा कारनिकस को पार करने के कार्य का उल्लेख करते हुए उनका कथन है कि 'सिकन्दर की सैनिक योग्यता के लिये इस कार्य की उसके हाईडस्पीज़ पार करने एवं पोरस को पराजित करने के कार्य से तुलना नहीं की जा सकती, उस महान व्यक्ति के सम्मुख वह उसी साहसिक कार्य को नहीं कर सकता था।'

से आगे बढ गया और पद-सेना को सुविधानुसार एवं अनुशासन पूर्वक आगे बढ़ने के लिये पीछे छोड गया।" जिस समय यह गतिविधियाँ हो रही थी पोरस ने दो अथवा ३ हजार घुडसवारों एवं एक हजार बीस रथो सहित अपने पुत्र को सिकन्दर का सामना करने के लिए भेजा। दोनो सेनायें नदी पार करने के स्थान से २½ मील, अथवा मोंग से लगभग दो मील उत्तर पूर्व में आमने-सामने खडी हुईं। यहाँ गीली एव चिकनी मिट्टी पर रथ व्यर्थ सिद्ध हुए और सभी पर शत्रु का अधिकार हो गया फिर भी यह युद्ध तीव्र रहा होगा क्योंकि सिकन्दर के प्रिय घोडे बुकेफलस को युवक राजकुमार (पोरस का पुत्र) ने घातक चोट दी थी और वह स्वय अपने ४०० साथियों सहित मारा गया था। जब पोरस को अपने पुत्र की मृत्यु की सूचना मिली तो तुरत ही उसने अपनी अधिकांश सेना लेकर सिकन्दर का सामना करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु एक मैदान में पहुँचने पर जहाँ भूमि कठिन तथा चिकनी नही थी परन्तु ठोस एवं रेतीली थी और उसके रथों की गतिविधियों के अनुकूल थी उसने अपना बढाव रोक दिया और अपनी सेना को युद्ध हेतु तैयार करने लगा। उसके २ ० हाथी पद सेना के आगे लगभग एक प्लेथरन अथवा १०० फुट की दूरी पर पक्तिबद्ध खडे थे तथा उसके रथ एवं घुडसवार पास में ही नियुक्त किये गये थे। इस प्रबन्ध के अनुसार उत्तर पूर्व की ओर सम्मुख सेना का अगला भाग नदी तट से लखनावाली तक लगभग ४ मील के क्षेत्र मे फैला होगा और सेना का मध्य विन्दु जहाँ तक सम्भव है वर्तमान मोग नगर के स्थान पर रहा होगा। इस स्थान के चारो ओर मिट्टी ठोस एव रेतीली है परन्तु उत्तर पूर्व की ओर जहाँ सिकन्दर ने युवक भारतीय राजकुमार का सामना किया था भूमि पर ठोस लाल मिट्टी की तह जमी हुई है जो वर्षा ऋतु के पश्चात् भारी एवं चिकनी हो जाती है। (१)

जब सिकन्दर ने भारतीय सेना की व्यूह रचना को देखा तो उसने अपनी पद-सेना की प्रतीक्षा के लिए तथा शत्रु के स्थानों का भेद लेने के लिए, पडाव डाल दिया। चूँकि घुडसवार सेना मे उसकी सेना पोरस की सेना से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी उसने पोरस की सेना के मध्य भाग पर आक्रमण न करने का निश्चय किया क्योकि वहाँ हाथियो की सुदृढ पक्ति को अपार पद सेना की सहायता प्राप्त थी। उसने दोनों मोर्चों पर आक्रमण करने एव भारतीयो को अव्यवस्थित करने का निश्चय किया। स्वयं सिकन्दर के नेतृत्व मे सेना के दाहिने भाग ने शत्रु की घुडसवार सेना को हाथियों की

(१) मैं युद्ध के कुछ दिनो पश्चात चिलियान वाल की युद्ध भूमि के वास्तविक निरीक्षण के पश्चात लिख रहा हूँ। उस समय देश मे मूसलाधार वर्षा हो चुकी थी। दोनो ही युद्ध पास ही पहाड़ियों के दक्षिणी छोर तथा मौंग नगर के बीच एक ही स्थान पर लडे गये थे।

पंक्ति तक पीछे ढकेल दिया, तत्पश्चात् हाथियों की सेना आगे बढ़ी और मैसीडोनिया की सेना के बढ़ाव को रोक दिया। "पोरस ने जहाँ कहीं घुड़सवारों को बढ़ते देखा उसने हाथियों के साथ उनका सामना किया परन्तु यह सुस्त एवम् स्थूल पशु घोड़ों की तीव्र गतिविधियो का सामना न कर सके।" अन्त मे घायल एवम् भयभीत हाथी मद-मत्त होकर भाग खड़े हुए और अपनी एवम् शत्रु सेना को रौंदने लगे। तत्पश्चात् भारतीयों की छोटी घुड़सवार सेना घेरे मे आ गई और मैसीडोनिया निवासियों ने उसे पराजित कर दिया। लगभग सभी घुड़सवार मारे गये। भारतीय पद सेना के अधिकांश भाग पर चारों ओर से विजयी घुड़सवारो द्वारा आक्रमण होने लगा और यह सेना जो अभी तक शत्रु का सफलतापूर्वक सामना कर रही थी इस आक्रमण के बाद अस्त-व्यस्त हो गई और भाग खड़ी हुई। एरियान का कथन है कि तत्पश्चात् "क्रेटरस तथा उसके साथी सैनिको ने, जो नदी के दूसरी ओर थे, मैसीडोनिया की सेना की विजय श्री का अनुमान लगाते ही नदी के पार हो गये और भागते हुए भारतीयो का भयानक रूप से बध किया।"

उपरोक्त कथन से, जिसे मैंने उद्धृत किया है यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के पड़ाव से युद्ध क्षेत्र को देखा जा सकता था। अब, यह कथन मोंग के आस-पास के भू-भाग के लिए विशेष रूप से सत्य है। यह मैदान शाह कबीर के स्थान पर सिकन्दर के पड़ाव के पूर्व से सरलता पूर्वक देखा जा सकता था। निकटतम बिन्दु केवल दो मील की दूरी पर है। सिकन्दर के पड़ाव के रूप में जला ,पुर के पक्ष मे इस अन्तिम सुदृढ़ साक्षी के पश्चात् मैं इस रुचि पूर्ण प्रश्न पर विचार विमर्श समाप्त करता हूँ। परन्तु यूनान के इतिहासकार श्री ग्रोटे जैसे कुछ पाठक अब भी यह सोचते हैं कि जनरल एबाट ने अपने इस विचार के पक्ष में "अत्यधिक स्वीकार्य कारण" दिये हैं कि सिकन्दर का पड़ाव झेलम मे था। अतः मैं यहाँ यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि पबराल गाँव जिसे उसने युद्ध क्षेत्र के रूप में चुना है झेलम से १४ मील से कम दूरी पर नहीं है। अतः सिकन्दर के पड़ाव से इसे देखना असम्भव है। मैं एबाट की निजी स्वीकृति को भी उद्धृत कर सकता हूँ कि सुखेत्र नदी का तल जो एक मील रेतीला समतल है, "भारी वर्षा के पश्चात् तीव्र धारा वाली नदी बन जाती है और अधिक रेत के कारण यह सैनिक अभियान के प्रतिकूल हो जाता है।" अब, यह सुखेत्र नदी वस्तुतः पबराल तथा झेलम के विपरीत भारतीय पड़ाव के बीच पड़ती है और चूँकि हमें ज्ञात है कि युद्ध से पूर्व की रात मूसलाधार वर्षा हुई थी अतः युद्ध के समय से सुखेत्र को पार करना असंभव रहा होगा और इसी प्रकार जब नदी को भी पार करना असम्भव रहा होगा, जो सुखेत्र नदी के ठीक नीचे झेलम मे मिलती है। मध्य की इन दो नदियो के कारण जो चाहे गीली हो अथवा सूखी, भारतीय सेना के लिये विशेष रूप से भारतीय सेना और उनके रथो को पार जाने के लिए समान रूप से बड़ी बाधा रही होगी।

बुकेफल की स्थिति पर विचार विमर्श अभी शेष है। स्ट्रैबो के अनुसार बुकेफल का नगर नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था जहाँ सिकन्दर ने इसे (नदी) पार किया था परन्तु प्लूटार्च का कथन है कि यह हाईडसपीज़ के समीप उस स्थान पर था जहाँ बुकेफलस दफनाया गया था। परन्तु एरियान का कथन है कि इसका निर्माण उस (सिकन्दर) के पड़ाव के स्थान पर किया गया था तथा उसके अश्व की स्मृति मे इसका नाम बुकेफल रखा गया था। दियोडोरस, कर्टियस तथा जसटन ने वास्तविक स्थिति को अनिश्चित छोड दिया है परन्तु वे सभी इस बात पर सहमत हैं कि यह निकाया की ओर जाने वाली नदी के दूसरे तट पर था। जिसका निर्माण निश्चित ही युद्ध के स्थान पर किया गया था। हमारे पथ प्रदर्शन के लिए केवल इन विपरीत कथनों की उपलब्धि के कारण किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना कठिन है। स्ट्रैबो अथवा एरियान का अनुसरण करने के परिणाम स्वरूप हमे बुकेफल के दिलावर अथवा जलालपुर के स्थान पर दिखाना पडेगा। दोनों स्थान मौंग के युद्ध क्षेत्र से समान दूरी पर है और मौंग को मैं निस्सङ्कोच निकाया का स्थान समझता हूँ। यदि दोनो नगर एक ही योजनानुसार बनाए गए हों, जो कि असम्भव नही है तो बुकेफल के प्रतिनिधि के रूप में दिलावर अधिक अनुकूल है क्योंकि इसका ध्वस्त टीला आकार एवम् ऊंचाई मे मोग के समान है। एक अन्य स्थान पर मैंने इस बात की सम्भावना का उल्लेख किया है कि जिस जिले में दिलावर अवस्थित है उसका बुगियाद अथवा बुगियाल नाम बुकेफानिया का संक्षिप्त नाम हो सकता है। परन्तु यह केवल एक अनुमान है। मैं केवल इस विषय पर इस तथ्य को छोड़ अन्य कुछ नही कह सकता कि जलालपुर का प्राचीन नाम निश्चित ही गिरजात था जबकि दिलावर का नाम पूर्णतयः अनिश्चित है क्योंकि उदिनगर का नाम कम से कम तीन विभिन्न स्थानो के लिए प्रयुक्त किया गया है। दिलावर तथा जलालपुर के दावे, स्थिति सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण बिन्दु को छोड़ सम्भवतः सन्तुलित हैं और इस स्थिति मे जलालपुर निश्चित ही श्रेष्ठ है और चूंकि यह श्रेष्ठता सिकिन्द्रिया के सस्थापक के तीव्र निरीक्षण से नही बची होगी अतः मेरा विचार है कि जलालपुर ही बुकेफल के प्रसिद्ध नगर का स्थान रहा होगा।

निकाया अथवा मोंग

मोंग की स्थिति का उल्लेख पहले किया जा चुका है, परन्तु मैं यह दोहरा सकता हूँ कि यह नगर जलालपुर से ६ मील पूर्व में तथा दिलावर के दक्षिण में इतनी ही दूरी पर था। इसका उच्चारण मोग अथवा मूग किया जाता है परन्तु इसे लिखने मे नासिका सम्बन्धी चिह्न का प्रयोग नहीं किया जाता और कहा जाता है कि इसका निर्माण राजा मोगा अथवा मूगा ने करवाया था। उसे राजा शङ्कहर भी कहा जाता है जिसे मैं शकों का राजा समझता हूँ। उसके बन्धु राम ने रामपुर अथवा राम नगर

आधुनिक रसून का निर्माण करवाया था जो मोंग के छः मील उत्तर पूर्व में तथा जिला-वर के ठीक दूसरी ओर है। उसका भांजा काम-कमारत गिरजाक अथवा जलालपुर का राजा था। प्राचीन ध्वस्त टीला. जिस पर मोंग अवस्थित है ६०० फुट लम्बा ४०० फुट चौड़ा तथा ५० फुट ऊंचा है और यह चारों ओर से अनेक मीलों तक दिखाई देता है। यहाँ पर पुरानी विशाल ईंटों से बने ६७५ गृह तथा ५००० निवासी हैं जो मुख्यतः जाट हैं। पुराने कुएँ बहुत अधिक हैं और मुझे सूचना देने वाले के अनुसार उनकी ठीक संख्या १७५ है।

मैं यह पहले ही लिख चुका हूँ कि मोंग को मैं निकाया अर्थात् उस नगर का स्थान समझता हूँ जिसे सिकन्दर ने पोरस के साथ अपने युद्ध के स्थान पर बनवाया था। मेरे विचार मे इस विषय पर प्राप्त साक्षी उतनी ही पूर्ण हैं जितना कि हम आशा कर सकते हैं परन्तु मुझे अभी भी इस बात का विश्लेषण करना है कि किस प्रकार निकाया का नाम मोग हो गया। इस तथ्य से कि श्री राबर्ट के तक्षशिला के शिलालेख मे महाराजा मोगा का उल्लेख किया गया है। इस प्रथा की पुष्टि होती है कि नगर का निर्माण राजा मोगा ने करवाया था। अब, मोगा एवम् मोआ एक ही नाम है तथा मोआ अथवा मोअस की मुद्राये मोग मे आज भी प्राप्त होती हैं परन्तु इन मुद्राओं पर सामान्य यूनानी चिह्नों से 'निक' बनता है जिसे मैं निकाया, अर्थात् मुद्रा बनाने के स्थान-का सक्षिप्त स्वरूप समझता हूँ। यदि यह अनुमान सही है और मैं विश्वास करता हूँ कि यह ऐसा ही है, तो निकाया महान राजा मोग का मुख्य मुद्रा नगर रहा होगा। अतएव यह अत्यधिक महत्वपूर्ण नगर रहा होगा। चूँकि राजा मोग को मोंग के संस्था-पक के रूप मे बताया जाता है अतः हम उचित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उसने मोगा ग्राम के नवीन नाम के अन्तर्गत इसका पुनर्निर्माण करवाया होगा अथवा इसका विस्तार करवाया होगा और मोगा ग्राम को बालचाल की भाषा में मोगाँव अथवा मोग कर दिया होगा। मोग के सभी इण्डो-सीथियन राजकुमारो की मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है और मैं इस बात में सन्देह का कोई कारण नहीं देखता कि यह स्थान सिकन्दर के समय जितना पुराना है। नाम विहीन इण्डो-सीथियन राजा की ताँबे की मुद्राये विशेष रूप से इतनी मात्रा में प्राप्त होती है कि उन्हें आस पड़ोस में सामान्यतः मोगा साही कहा जाता है।

गुजरात

गुजरात नगर चेनाब नदी के ६ मील पश्चिम में झेलम से लाहौर जाने वाले मुख्य मार्ग पर अवस्थित है। प्रारम्भ मे नगर को हैरात तथा जिले को हैरात देश कहा जाता था। (१) इसकी मूल स्थापना को बचनपाल नामक एक सूर्यवंशी राजा

(१) मेरे विचार मे हैरात, अराट्ट का उच्चारित स्वरूप है।

से सम्बन्धित बताया जाता है जिसके सम्बन्ध मे अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसके पुनर्निर्माण को अली खां नामक एक गुज्जर से सम्बन्धित किया जाता है जिसका नाम आश्चर्यजनक रूप से गुज्जर के राजा अलखान से मिलता है जिसे सगकर वर्मा ने ८८३ तथा ९०१ ई० मे पराजित किया था। इन जनश्रुतियो का अनुसरण करने से गुजरात को, १३०३ ई० मे नष्ट हुआ तथा ९९६ हिजरी अथवा १५८८ ई० मे अकबर के शासन में गुज्जरो द्वारा पुन: निर्मित बताया जाता है।

साकल अथवा सागला,

सिकन्दर के सांगला को काफी समय पूर्व ब्राह्मणों का शाकल तथा बौद्धों का सागल स्वीकार कर लिया गया है और यदि भाग्यवश ६३० ई० मे चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने इस स्थान की यात्रा न की होती तो इसकी निश्चित सम्भवतः आज भी अनिश्चित रहती। एरियान तथा कर्टियस दोना ने सागला को हाइड्राओटीज़ अथवा रावी के पूर्व में बताया है परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा सूची से पता चलता है कि यह रावी के पश्चिम मे और जहाँ तक सम्भव है वर्तमान 'सांगला वाला तोबा' अथवा सागला पहाडो के स्थान पर था। मैं सर्वप्रथम १८३९ ई० मे इस स्थान से परिचित हुआ था जब मुझे विल्फोर्ड द्वारा एकत्रित मुगलबेग के हाथ के बने मानचित्र की एक प्रतिलिपि प्राप्त हुई थी जिसने 'एशियाटिक रिसर्चेज' मे इसकी स्थिति का तीन बार उल्लेख किया है परन्तु मैं १८५४ ई० तक इस स्थान का कोई भी विवरण प्राप्त नही कर सका। उस समय मुझे कर्नल जी हेम्स्टिन जो इस स्थान पर गये थे—तथा केप्टन ब्रन जिन्होंने इस स्थान का सर्वेक्षण किया था—से यह सूचना प्राप्त हुई कि सांगला वस्तुतः एक पहाड़ी है जिस पर भवनों के चिह्न शेष है तथा जिसके एक ओर जल भी उपलब्ध है। पञ्जाब मे भ्रमण करते समय मैं स्वयं इस पहाडी पर गया था और अब मैं सन्तुष्ट हूँ कि यह ही सिकन्दर का सांगला रहा होगा यद्यपि इसकी स्थिति इतिहासकारो द्वारा दिये गये विवरण के समदृश्य नही है।

ह्वेनसांग के समय में शो-की, लो अथवा शाकल जर्जर अवस्था मे था और जिले का मुख्य नगर शी किया अथवा चोकिया था जिसे ठक अथवा टक भी पढ़ा जा सकता है। तीर्थ यात्री ने इस नवीन नगर को शाकल के २½ मील उत्तर पूर्व में बताया है परन्तु उस क्षेत्र के भीतर चूँकि सम्पूर्ण प्रदेश खुला हुआ एवम् समतल था अतः यह निश्चित है कि इङ्गित स्थान पर किसी नगर के होने की सम्भावना नही हो सकती फिर भी इसी दिशा मे, परन्तु १६ मील की दूरी पर मुझे असरूर नामक एक विशाल नगर के अवशेष मिले थे जो तीर्थ यात्री द्वारा त्सोकिया के नवीन नगर के दिये गये उल्लेख से प्रायः ठीक-ठीक मिलता है। इस स्थान की स्थिति को निश्चय करना आवश्यक है क्योंकि आने के समय तथा जाने के समय भी ह्वेनसांग के आंकड़े शाकल के स्थान पर

इससे सम्बन्धित हैं। काश्मीर से तीर्थ यात्री, पूँछ के मार्ग से निचली पहाड़ियों के एक छोटे नगर राजपुरा गया था जिसे अब राजौरी कहा जाता है तत्पश्चात् वह दक्षिण पूर्व में एक पर्वत के ऊपर तथा चिन-त-लो-पो-किया नामक नदी के पार शी-यी-पू लो अथवा जयपुरा (सम्भवतः हफ़ीज़ाबाद) तक गया था। जहाँ वह एक रात ठहरा था। उपर्युक्त नदी चन्द्रभाग अथवा आधुनिक चेनाब है। दूसरे दिन वह त्सीक्या पहुँचा था इस प्रकार कुल दूरी ११६ मील थी। चूँकि दक्षिण पूर्व दिशा की यात्रा तीर्थ यात्री को रावी के पूर्व में ले जाती है, अतः हमें उसके त्रुटि पूर्ण दिकांश को शुद्ध करने के सर्व श्रेष्ठ साधन के रूप मे उसके पश्चात्वर्ती मार्ग मे किसी ज्ञात स्थान को ढूँढना होगा। इस निश्चित स्थान को हम शी-लान-तो-लो, सर्व प्रसिद्ध जलन्धर मे प्राप्त करते हैं जिसे तीर्थ यात्री ने ५०० × ५० × १४० अथवा १५० ली अथवा त्सीक्या के पूर्व में कुल मिलाकर ६९० अथवा ७०० ली की दूरी बताया है। अतः जहाँ तक सम्भव है यह स्थान राजौरी तथा जलन्धर के समान दूरी पर था। अब, मानचित्र पर सीधी रेखा से असरूर इन दोनो स्थानो से ठीक ११२ मील की दूरी पर है और चूँकि यह निस्सन्देह अधिक विस्तार का एक अति प्राचीन स्थान है, मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि यह स्थान ह्वेनसांग द्वारा वर्णित त्सीक्या नगर रहा होगा।

६३० ई० मे तीर्थयात्री ने शाकल की दीवारों को पूर्णतः जर्जर अवस्था में पाया था परन्तु उनकी नीवें शेष थी जिनका घेरा लगभग ३½ मील था। इन खण्डहरों के मध्य मे उस समय भी प्राचीन नगर का एक छोटा भाग बसा हुआ था जिसका व्यास केवल १ मील था। नगर के भीतर एक सहस्र भिक्षुओ का मठ था जिन्होंने हिनय्यान अथवा बौद्ध धर्म के साधारण सिद्धान्तों का अध्ययन किया था। इसके साथ ही २०० फुट ऊँचा एक स्तूप था जहाँ पिछले चार बुद्धो ने अपने पद चिह्न छोड़े थे। यहाँ से १ मील से कुछ कम, उत्तर पश्चिम में २०० फुट ऊँची एक अन्य स्तूप था जिसका निर्माण सम्राट अशोक ने उस स्थान पर करवाया था जहाँ पिछले चार बुद्धो ने न्याय पर विवेचना की थी। सांगला वाला टीबा एक त्रिभुज के दो किनारे बनाती हुई एक छोटी चट्टानी पहाड़ी है जिसका खुला भाग दक्षिण पूर्व की ओर है। पहाड़ी का उत्तरी भाग २१५ फुट ऊँचा उठ जाता है परन्तु उत्तर पूर्वी भाग केवल १६० फुट ऊँचा है। त्रिकोण का भीतरी भाग धीरे-धीरे दक्षिण पूर्व की ओर ढलुवाँ होता जाता है और फिर एकाएक यह धरती से ३२ फुट ऊँचे अति ढलवाँ तट पर समाप्त हो जाती है। इस तट पर किसी समय ईंटों की एक दीवार थी जिनके चिह्न मैं पूर्वी छोर पर ढूंढ सका था जहाँ यह चट्टान के साथ मिल जाती थी। सम्पूर्ण क्षेत्र में टूटी हुई ईंटें फैली हुई हैं जिनमे मुझे दो वर्गाकार आधार-शिलाएँ मिली थीं। ये ईंटें बहुत बड़े आकार अर्थात् १५ × ६ × ३ इञ्च बड़ी हैं। पिछले १५ वर्षों में इन ईंटों को बहुत बड़ी संख्या मे हटा दिया गया है। लगभग ४००० ईंटें उत्तर में ६ मील की दूरी पर

माट नामक विशाल गाँव में ले जाई गई थी और इतनी हीं मात्रा में इन ईंटों को सर्वेक्षण कार्य हेतु एक अटारी के निर्माण के लिए पहाड़ी के शिखर पर ले जाया गया था। पहाड़ी का अधोभाग प्रत्येक ओर से १७०० से १८०० फुट अथवा व्यास में प्रायः एक मील था। पूर्वी तथा दक्षिणी किनारो पर पहाड़ी पर पहुँचने का मार्ग आधा मील लम्बी तथा लगभग एक चौथाई मील चौड़ी एक विशाल दलदल से ढका हुआ था जो प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती है परन्तु वर्षा काल मे इसकी सामान्य गहराई प्रायः तीन फुट होती है। सिकन्दर के समय मे यह एक तालाब रहा होगा जिसकी गहराई प्रति वर्ष की वर्षा मे पहाड़ी से बह कर आने वाली मिट्टी से धीरे धीरे कम हो गई है। पहाड़ी के उत्तर पूर्वी किनारे पर दो विशाल भवनो के अवशेष हैं जिनसे मुझे १७½ × ११ × ३ इंच के बहुत बड़े आकार की पुरानी ईंटे प्राप्त हुई थी। समीप ही एक पुराना कुँआ है जिसे कुछ समय पूर्व भ्रमण-कारी यात्रियो द्वारा साफ किया गया था। उत्तर पश्चिमी भाग मे १००० फुट की दूरी पर २५ से ३० फुट ऊँची तथा लगभग ५० फुट लम्बा मुण्डा-का-पुरा नामक एक निचला पर्वत पृष्ठ है जो पहले ईंटो से बने भवनो से ढका हुआ था। दक्षिण में १½ मील की दूरी पर अरना तथा छोटा सागला नामक तीन छोटी पहाड़ियो का एक अन्य पर्वत पृष्ठ है। यह सभी पहाड़ियाँ उसी गहरी भूरी चट्टान की है जो चन्योट तथा चनाब के पश्चिम कराना पहाड़ियो मे मिलती है। इस चट्टान में अधिक लोहा होता है परन्तु ईंधन की कमी के कारण इसे निकाला नही जाता। ह्वेनसांग ने भी लोहे की उत्पत्ति का उल्लेख किया है।

इस विवरण की चीनी तीर्थ यात्री के विवरण से तुलना करने पर मैं केवल दो स्थानो को पहचान सकता हूँ। प्रथम स्थान आधुनिक नगर का स्थान है जो व्यास में प्रायः एक मील था तथा खडहरों पर अवस्थित था। इसे मैं स्वयं पहाड़ी ही समझता हूँ जो विवरण से ठीक-ठीक मिलती है तथा निचले खुले समतल के किसी भी भाग की अपेक्षा इसकी सुरक्षित स्थिति के कारण लोग यहाँ आकर बस गये होगें। दूसरा अशोक का स्तूप है जो नगर के भीतर मठ के उत्तर पश्चिम मे एक मील से कम दूरी पर अवस्थित था। इसे मैं मुण्डा-का-पुरा नामक उत्तर पश्चिम के निचले पर्वत पृष्ठ के अनुरूप समझता हूँ जिसके उत्तर पश्चिमी छोर पर उच्चतम बिन्दु ४००० फुट अथवा नगर के त्रिभुजा कोण क्षेत्र से तीन चौथाई से अधिक दूरी पर है। पहाड़ी के उत्तर तथा पश्चिम भाग के समतल मे टूटे हुए चीनी के बर्तन तथा ईंटो के टुकड़े अधिक दूरी तक फैले हुए हैं जिनसे यह पता चलता है कि यह नगर किसी समय इन दोनो दिशाओं मे विस्तृत रहा होगा। परन्तु इन अवशेषों का सम्पूर्ण व्यास १⅔ अथवा १½ मील अथवा ह्वेनसांग के माप के आधा से अधिक प्रतीत नही होता। शाकल के सम्बन्ध मे ब्राह्मणो द्वारा दिये गये विवरण को प्रोफेसर लासेन ने अपनी 'पैन्टापोटामियाँ इन्डिका' में महाभारत से लिया होगा। उस कविता के अनुसार मद्रों की राजधानी शाकल,

एरावती अथवा रावी के पश्चिम अपगा नामक छोटी नदी पर अवस्थित थी। मद्रों को आरटिक तथा बाहिक भी कहा जाता था। इस स्थान पर पूर्व की ओर से पीलू वन के सौम्य मार्गों से पहुँचा जा सकता था।

"पीलू पञ्जाब के इस प्रदेश मे समान्यतम लकड़ी है और रिचना दुआब में विशेष रूप से प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। पीलू वन के इन सौम्य मार्गों पर यात्री को दुर्भाग्य-वश लुटेरो द्वारा अपने कपडो से वञ्चित किये जाने का भय था। महाभारत के लेखक के इस विवरण को पुष्टि ह्लेनसांग ने ६३० ई० मे की थी तथा पुनः मैंने १८६३ ई० में इस विवरण की पुष्टि की है। शाकल छोड़ने पर चीनी तीर्थ यात्री पूर्व की ओर पो-लो-शी वृक्षो के वन में गया था जहाँ उसके दल को ५० लुटेरो का सामना करना पडा, जिन्होने उनके कपडे छीन लिए। नवम्बर १८६३ में मैं पूर्व की ओर से पीलू वृक्षो के निरन्तर जङ्गल से होकर शाकल के समीप गया था तथा मैंने पहाड़ी के अधोभाग पर अपना खेमा गाड़ा था। रात्रि के समय डाकुओ के दलो ने तोन बार खेमे तक पहुँचने का प्रयत्न किया परन्तु मेरे प्रहरी कुत्तें की सतर्कता के कारण उन्हे देख लिया गया। एम० जुलीन ने ह्लेनसाग के पो-लो-शी को पालासा अर्थात् ढाक वृक्ष कहा परन्तु वन में चूंकि ह्लेनसाग के समय से पूर्व एवम् पश्चात् पीलू वृक्ष थे, मैं पी-लो शो को शुद्ध कर पीलो लिखने का प्रस्ताव करूंगा। मेरा अनुमान है कि चीनी तीर्थ यात्री की जीवनी के सम्पादक ने जो सम्भवतः पीलू शब्द से अनभिज्ञ था—ह्लेन-साग द्वारा बारम्बार उल्लिखित सर्व ज्ञात पलासा को इस विश्वास के कारण बदल दिया था कि ऐसा करने से वह एक आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण शुद्धि कर रहा है।

यह प्रदेश मद्र देश अथवा मद्रों के जिले के नाम से अब भी सर्व ज्ञात है। कुछ लोगों के अनुसार यह व्यास से झेलम तक विस्तृत था परन्तु अन्य लेखक इसे केवल चेनाब तक विस्तृत बतलाते हैं। जहाँ तक अपगा नदी का सम्बन्ध है, मेरा विश्वास है कि इसे आयक नाम की एक छोटी नदी के अनुरूप समझा जा सकता है जो स्यालकोट के उत्तर पूर्व मे जम्मू की पहाडियों से निकलती है। स्यालकोट के पश्चात् आयक नदी सोधरा के समीप पश्चिम की ओर मुड जाती है जहाँ वर्षा ऋतु में इसका अतिरिक्त जल चेनाब नदी में चला जाता है। तत्पश्चात् यह नदी बक्का तथा नन्दनवा से भुटाला तक दक्षिण-दक्षिण पश्चिम दिशा मे मुड़ जाती है तथा असरूर से कुछ मीलों की दूरी तक यह इसी दिशा में प्रवाहित होती है। यहाँ यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है जो असरूर के पूर्व एवम् पश्चिम मे होकर गुजरने के बाद सांगला वाला तीबा के २½ मील दक्षिण मे पुनः मिल जाती है। राजस्व सम्बन्धी सर्वेक्षण मानचित्रों में इस नदी के मार्ग को सांगला के दक्षिण-पश्चिम मे १५ मील की दूरी तक दिखाया गया है जहाँ इसे ननन्वा नहर कहा जाता है। असरूर के एक बुद्धिमान व्यक्ति ने मुझे सूचित किया था कि उसने दक्षिण-पश्चिम में २० कोस की दूरी तक ननन्वा का मार्ग देखा

था और यह भी बताया कि वह सदा से यही सुनता आया है कि यह नदी अधिक दूर जाकर रावी में गिरती है। अतः यही एरियान की 'छोटी नदी' रही होगी जिसके समीप, हाईडस्पीज़ के साथ अपने सङ्गम से नीचे अकेसिनीज़ के ११२ मील पूर्व सिकंदर ने अपना पड़ाव डाला था। अतः उस समय आयक का प्रवाह सांगला के नीचे अधिक दूरी तक रहा होगा और सम्भवतः यह रावी में गिरती होगी जैसा कि मुझे सूचना देने वाले ने कहा है। असरूर तथा सांगला के समीप आयक अब सभी ऋतुओं मे सूखी रहती है परन्तु असरूर से केवल २४ मील ऊपर ठकवाल के स्थान पर शाहजहाँ के शासन काल के समय तक इसमें जल रहा होगा क्योंकि उस समय उसके पुत्र दारा शिकोह ने यहाँ से अपने आखेट स्थान शेखूपुरा तक एक नहर बनवाई थी जिसे आयक अथवा झिलरी नहर भी कहा जाता है।

शाकल के बौद्ध उल्लेख, मुख्य रूप से बुद्ध धर्म से सम्बन्धित इसके इतिहास का संकेत करते हैं। इनमे सात राजाओ की एक कथा आती है जो राजा कुश की पत्नी प्रभावती का हरण करने के लिए सागल की ओर गये थे। परन्तु राजा हाथी पर चढ़ कर नगर के बाहर उन्हे मिला तथा "मैं कुश हूँ", की घोषणा इतनी ऊँची आवाज़ मे की कि उसका गर्जन सम्पूर्ण संसार में सुना गया और सातो राजा भयभीत होकर भाग गये। यह कथा अम्ब-काप के सात बन्धुओ एवं बहनो से सम्बन्धित हो सकती है। अम्ब-काप सांगला के पूर्व मे केवल ४० मील की दूरी पर है। ईसा काल के प्रारम्भ से पूर्व सांगल राजा मिलिन्द की राजधानी थी जिसका नाम पवित्र नागसेन के चतुर विरोधी के रूप मे सभी बौद्ध देशो मे प्रसिद्ध है। उस समय इस प्रदेश को योन अथवा यवन कहा जाता था जो सम्भवतः यूनानी विजेताओं अथवा उनके इन्डो-सीथियन-उत्तराधिकारियों की ओर सकेत करता है। परन्तु नागसेन को चूंकि बुद्ध के ४०० अथवा ५०० वर्ष पश्चात् जीवित बताया गया है अतः मिलिन्द का समय अनिश्चित है। मिलिन्द ने स्वय कहा है कि उसका जन्म अलसद्दा मे हुआ था जो सागल से २०० योजन अथवा १४०० मील की दूरी पर था। अतः निस्संदेह वह एक विदेशी था और अतिशयोक्तिपूर्ण दूरी के होते हुए भी मैं उसके जन्म स्थान को काबुल के लगभग ४० मील उत्तर मे हिन्दूकुश के अधोभाग पर अवस्थित सिकन्द्रियां ओपीयाने के अनुरूप समझूँगा। इससे कुछ समय पश्चात् शाकल मिहिरकुल के अधीन था जिसने मगध के राजा बालादित्य के विरूद्ध एक असफल आक्रमण से अपना राज्य खो दिया था। परन्तु विजेता द्वारा स्वतन्त्र कर दिए जाने के पश्चात् उसने कपट पूर्वक काश्मीर पर अधिकार कर लिया। मुझे ६३३ ई० तक शाकल के किसी उल्लेख का ज्ञान नहीं है। ६३३ ई० में ह्वेनसांग इस स्थान पर गया था और उसने त्शो-क्या के पड़ोसी नगर को एक विशाल राज्य की राजधानी के रूप मे बताया है जो सिन्धु से व्यास तक तथा पहाड़ियो के अधोभाग से पाँच नदियो के सगम तक विस्तृत था।

सांगला के अधिकृत वर्णन एरियन तथा कर्टियस के ऐतिहासिक उल्लेखों एवं दियोडोरस के आकस्मिक उल्लेख तक सीमित है। कर्टियस ने इसे केवल "एक विशाल नगर कहा था जो न केवल एक दीवार से वरन् एक दलदल से भी सुरक्षित था।" परन्तु यह दलदल गहरी थी क्योंकि यहाँ के कुछ निवासी इसे तैर कर पार कर गये थे। एरियन ने इसे एक झील कहा है परन्तु उसने यह भी जोड़ दिया है कि यह गहरी नहीं थी, नगर की दीवार के समीप थी तथा एक द्वार इस ओर खुलता था। उसने नगर को कृत्रिम एवं प्राकृतिक रूप से ईंटों की दीवारों एवं झील के कारण सुरक्षित बताया था। नगर के बाहर एक निचली पहाड़ी थी जिसे कथायियों ने अपने पड़ाव के सुरक्षार्थ गाड़ियों की तीन पंक्तियों से घेर रखा था। इस छोटी पहाड़ी को मैं उत्तर पश्चिम ओर मुण्डपापुरा नामक निचले पर्वत पृष्ठ के अनुरूप समझूँगा जो निश्चित ही नगर की दीवारों के बाहर प्रतीत होगा क्योंकि टूटी हुई ईंटे एवम् बर्तनों के टुकड़े इतनी दूर तक नहीं फैले हुए हैं। मेरा निष्कर्ष है कि पहाड़ी का पड़ाव मुख्य रूप से अन्य स्थानों से भाग कर आये हुए व्यक्तियों द्वारा स्थापित किया गया था जिनके लिए जन-पूर्ण नगर में कोई स्थान नहीं था। यह पहाड़ी नगर की दीवारों के समीप रही होगी क्योंकि यूनानियों द्वारा गाड़ियों की द्वितीय पंक्ति को छिन्न-भिन्न किये जाने के पश्चात् कथायियों ने नगर में शरण ली थी और नगर के द्वार बन्द कर दिये थे। अतः यह स्पष्ट है कि गाड़ियों की तीन पंक्तियाँ पहाड़ी को केवल तीन ओर से घेर सकती थी और चौथी दिशा में वह नगर की ओर खुली थीं। इस प्रकार पहाड़ी अस्थाई एवम् बाह्य रक्षा पंक्ति के रूप में सम्बन्धित रही होगी जहाँ से सैनिक दबाव पड़ने पर दीवारों के पीछे सुरक्षित हो सकते थे। चूँकि सिकन्दर द्वारा अधिकार में ली गई गाड़ियों की संख्या केवल ३०० थी, यह पहाड़ी अति छोटी रही होगी क्योंकि यदि हम प्रत्येक पंक्ति में १०० गाड़ियों को स्वीकार करें तो भीतरी पंक्ति जहाँ वह १०, १० फुट के फासले पर खड़ी की गई थीं। अधोभाग के तीन ओर लम्बाई में १००० फुट से अधिक नहीं था। मध्य पंक्ति को भीतरी पंक्ति से ५० फुट आगे रखने पर इसकी लम्बाई १२०० फुट रही होगी और इसी दूरी के अनुसार बाह्य पंक्ति १४०० फुट अथवा एक चौथाई मील से थोड़ा अधिक रही होगी। अब यह मुण्डापुरा पहाड़ी के आकार में इतनी अधिक मिलती है कि मुझे अपनी अनुरूपता के सही होने का अधिक विश्वास होता है क्योंकि टालमी ने इन गाड़ियों का प्रयोग झील के बाहर अकेली रुकावट के रूप में किया था अतः हमें इनकी संख्या ज्ञात हो जाती है क्योंकि १७ फुट की दूरी पर ३०० गाड़ियाँ ५००० फुट से अधिक विस्तृत नहीं रही होगी। परन्तु झील के तट पर अनेक वृक्ष रहे होंगे अतः हो सकता है कि यह रुकावट ६००० फुट तक विस्तृत रही होगी। अब, यह उल्लेखनीय है कि यह लम्बाई मेरे सर्वेक्षणानुसार बाह्य पंक्ति से ठीक मिलती है जो वर्षा ऋतु में झील के सर्वाधिक विस्तार को दिखाती है। मैं किसी दीवार अथवा खाई

का चिह्न नही देख सका जिसकी सहायता लेकर सिकन्दर ने नगर का घेरा डाला था परन्तु मैं असन्तुष्ट भी नहीं था क्योंकि दो हजार वर्षों की वर्षा ने इन्हें काफी समय पूर्व समाप्त कर दिया होगा।

कथायनो ने रात्रि के समय झील पार कर बचने का असफल प्रयत्न किया था परन्तु गाड़ियों की बाधा से वह आगे नही बढ़ सके और उन्हे पुनः नगर मे खदेड दिया गया। तत्पश्चात् दीवार को सेन्ध लगा कर तोड दिया गया और आक्रमण के बाद इस स्थान पर यूनानियो का अधिकार हो गया। एरियन के अनुसार इस आक्रमण मे १७,००० कथायन मारे गये तथा ७०,००० को बन्दी बना लिया गया। कर्टियस ने मृत कथायनो की सख्या ८००० दी है। मैं यह समझता हूँ कि त्रुटि अथवा अतिश्योक्ति के कारण एरियन के आकडे अशुद्ध है क्योंकि यह एक छोटा नगर था और ४०० अथवा ५०० वर्ग फुट के पीछे एक व्यक्ति की दर से इस नगर मे १२,००० से अधिक निवासी नही हो सकते। यदि हम इस सख्या को बाहर से भाग कर आने वालो की सख्या के कारण दुगना अथवा तिगुना भी कर दे कुछ तो सख्या लगभग ३०,००० रही होगी। अतः मैं एरियन की सख्याओ को ७,००० मृत एव १७,००० बन्दी पढ़ना चाहूँगा। इस प्रकार मृतको की सख्या कर्टियस की सख्या से मिल जायेगी तथा उसकी कुल संख्या सम्भावित आंकडो से मिल जायेगी।

कर्टियस तथा एरियन दोनो इस कथन मे सहमत हैं कि सिकन्दर ने सांगला के विरुद्ध जाने से पूर्व हाईड्राओटीज को पार किया था। अतः जिसे नदी के पूर्व में होना चाहिये था। परन्तु ह्वेनसाग के विस्तृत आकडे इतने यथार्थ हैं, महाभारत मे इस का विवरण इतना स्पष्ट है तथा दोनो नामो की समानता इतनी समरूप है कि उन्हें सरलता पूर्वक अस्वीकार नही किया जा सकता। अब, एरियन तथा कर्टियस दोनों ने यह लिखा है कि सिकन्दर गगा की ओर तीव्र गति से जा रहा था जब उसे सूचना मिली कि "कुछ स्वतन्त्र भारतीयो एव कथायनो ने उसके उस ओर अग्रसर होने पर उससे युद्ध करने का निश्चय कर लिया है। इस सूचना के मिलते ही सिकन्दर ने कथायनो की आर प्रस्थान किया अर्थात् अपनी यात्रा की पूर्व दिशा को बदल कर उसने सांगला की ओर प्रस्थान किया। शत्रु को अपने पीछे न छोडने की ही निरन्तर योजना थी जिसका सिकन्दर ने एशिया मे अपने सैनिक अभियानो मे अनुसरण किया था। जिस समय वह ईरान की ओर बढ रहा था, वह टायर पर घेरा डालने के लिये मुड गया, डारियस के हत्यारे बीसस का पीछा करते समय वह दरङ्गियाना तथा अरकोसिया पर अधिकार करने के लिये दक्षिण की ओर मुड़ गया और जिस समय वह भारत मे प्रवेश करने की उत्कृष्ट इच्छा रखता था वह अपने सीधे मार्ग से मुड कर एओरनास का घेरा डालने चला गया था। कथायनो की ओर से भी समान उत्तेजना थी। टायर, दरगियाना तथा एओरनास के निवासी बजारियनो की भाँति ही वह सिकन्दर का

सामना करने के स्थान पर उसे टाल देना चाहते थे परन्तु आक्रमण होने की स्थिति में उन्होंने उसका सामना करने का निश्चय कर लिया था। उस समय सिकन्दर हाईड्राओटीज अथवा रावी के पूर्वी तट पर था और नदी से यात्रा करने के दूसरे दिन वह पिम्प्रम नगर पहुँचा था जहाँ उसने घोडों को आराम देने के विचार से पड़ाव किया था और तीसरे दिन वह सांगला पहुँचा था। चूंकि दो दिनों की यात्रा के पश्चात् ही उसे बिश्राम करने पर बाध्य होना पड़ा अतः यह यात्रायें २५ मील प्रति दिन की दर की कठिन यात्राये थी जबकि अन्तिम दिन की यात्रा १२ से १५ मील की साधारण यात्रा थी। अतः सांगला नदी तट के पड़ाव से ६० अथवा ६५ मील की दूरी पर रहा होगा। अब, लाहौर से सांगला पहाडियो की ठीक यही दूरी है जो (लाहौर) सम्भवतः सिकन्दर के पडाव का स्थान था जब उसे कथायनो के विरोध की सूचना मिली थी। अतः मेरा विश्वास है कि सिकन्दर ने गगा की ओर जाने का अपना विचार तुरन्त छोड दिया और अधीनता अस्वीकार करने के दुःसाहस के परिणाम स्वरूप सांगला के निवासियो को दण्ड देने के लिये उसने रावी को पुनः पार किया।

ताकी तथा असरूर

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि असरूर ह्वेनसांग के शीकिया का सम्भावित स्थान था जो ६३३ ई० में पञ्जाब की राजधानी थी। यह लाहौर तथा पिण्ड भटियाँ के मध्य सड़क के २ मील दक्षिण मे अवस्थित था और प्रथम स्थान से ४५ मील तथा द्वितीय स्थान से २४ मील की दूरी पर था। सांगला से सडक की दूरी से यह १६ मील दूर है परन्तु सीधे मार्ग से यह दूरी १६ मील से अधिक नहीं है। इसके प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है परन्तु जनसाधारण का कथन है कि मूल रूप से इसे उदयनगर अथवा उदनगरी कहा जाता था और अकबर के शासन काल तक कई शताब्दियो तक यह स्थान निर्जन था। अकबर के समय मे उग्र शाह नामक एक डोगर ने एक मस्जिद का निर्माण करवाया था जो टीले के ऊपर आज भी दिखाई देती है १८×१०×३ इञ्च की विशाल ईंटों से जो खण्डहरों के चारो ओर प्राप्त हैं तथा प्रतिवर्ष की मूसलाधार वर्षा के पश्चात् यहाँ प्राप्त होने वाली इण्डो-सीथियन मुद्राओं की अपार संख्या से इस स्थान को कथित प्राचीनता की पुष्टि होती है। अतः यह स्थान ईसा काल से पूर्व की प्रथम शताब्दी जितना पुराना है और इसकी स्थिति से मैं इसे सिकन्दर का पिम्प्रम समझता हूँ।

असरूर के अवशेषों मे १५६०० फुट अथवा प्रायः तीन मील के घेरे का एक विस्तृत टीला है। इसका उच्चतम बिन्दु उत्तर पश्चिमी भाग मे है जहाँ यह टोला पास के खेतों से ५६ फुट ऊपर उठ जाता है। यह भाग जिसे मैं प्राचीन राजमहल समझता हूँ ६०० फुट लम्बा तथा ४०० फुट चौड़ा एवम् प्रायः नियमित आकार का है। इसमें

२१ फुट व्यास का एक पुराना कुआँ है जिसे अनेक वर्षों से प्रयोग में नहीं लाया गया तथा जो अब सूखा है। राजमहल २५ फुट ऊँचे विशाल टीलो की पंक्ति से घिरा हुआ है जिसका घेरा ८१०० फुट अथवा १½ मील था तथा जो प्रत्यक्ष रूप से इस स्थान का दुर्ग था। यह टीले विशाल बुर्जो की भाँति गोलाकार एवम् उन्नत है। दुर्ग के पूर्वी एव दक्षिणी किनारों पर खण्डहरो का समूह १० से १५ फुट रह जाता परन्तु दुर्ग से इनका आकार दुगना है तथा यह निस्सन्देह प्राचीन नगर के ही खण्डहर है। मैं प्राचीन भवनों के चिह्न नहीं ढूंढ सका क्योंकि यहाँ की सभी ईटे खानगाह मसरूर के स्थान पर उस शाह की समाधि पर ले जाई गई हैं परन्तु मस्जिद के चारो ओर की दीवार की पुरानी ईंटो मे मैं तीन विभिन्न प्रकार की ईटे देख सका था जो केवल कुछ महत्वपूर्ण भवनों से सम्बन्धित रही होगी। मुझे १५ इञ्च लम्बी तथा ३ इञ्च मोटी पञ्चभुजाकार ईटें प्राप्त हुई थी जो सकुचित छोर पर १० इञ्च तथा दूसरे छोर पर १०½ इञ्च चौड़ी थी। यह ईंटें किसी स्तूप अथवा कुएँ के लिये हो सकती थी और सम्भवत: यह कुएँ के लिये ही थी क्योंकि वर्तमान कुएँ का व्यास २१ फुट है। असरूर उस समय ४५ घरो का एक छोटा गाँव है।

ह्वेनसांग ने त्सी-किया को शाकल के उत्तर पूर्व मे २½ मील की दूरी पर बताया है परन्तु इस स्थान पर किसी भी नगर के कोई चिह्न नही है अत: मैं यह सभव समझता हूँ कि वास्तविक आंकड़े १६ मील रहे होंगे जो सांगला तथा असरूर के मध्य सड़क की दूरी है यद्यपि सीधी रेखा से यह दूरी १६ मील से अधिक नही है। त्सी-किया का घेरा लगभग २० ली अथवा ३ मील से कुछ अधिक था और यह आकडे असरूर के खण्डहरा के सम्बन्ध मे मेरे आकड़ो, १५,६००० फुट अथवा ३ मील से भली-भाँति मिलते हैं। ह्वेनसांग के समय में यहाँ १० मठ थे परन्तु कुछ बौद्ध धर्मावलम्बी एव अधिकांश जनता ब्राह्मणो के देवताओ की पूजा करती थी। नगर के उत्तर पूर्व मे १० ली अथवा २ मील की दूरी पर अशोक का २०० फुट ऊँचा स्तूप था जो उस स्थान की ओर संकेत करता था जहाँ बुद्ध ने विश्राम किया था एवं जिसमे बुद्ध के अवशेषों का अधिकांश भाग रखा गया था। मेरे विचार मे इस स्तूप को असरूर के उत्तर मे दो मील की दूरी पर थट्टा सैयदो के समीप सालार के छोटे टीले से अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है।

रासी अथवा नरसिंह

सीकिया छोडने के पश्चात् ह्वेनसांग पूर्व की ओर ना-लो-सेग-पो अथवा नरसिंह गया था जिसके बाद उसने पो-लो-शी-अथवा पीलू वृक्षो के बन में प्रवेश किया था जहाँ-जैसा कि पहले बताया जा चुका है उसे लुटेरों का सामना करना पड़ा था। मेरा विश्वास है कि रासी का विशाल ध्वस्त टीला नर-सिंह नगर का प्रतिनिधित्व

करता है जो शेखूपुरा के ६ मील दक्षिण में तथा असरूर के पूर्व उत्तर में २५ मील की दूरी पर तथा लाहौर के पश्चिम में इतनी ही दूरी पर अवस्थित है। सि अथवा सिंह, सिंह का सामान्य भारतीय सक्षिप्त स्वरूप है तथा रन एवं नर के उच्चारण की अदला-बदली सर्व ज्ञात है जैसा कि नरवर के दक्षिण में लगभग ३५ मील की दूरी पर ग्वालियर राज्य के एक विशाल नगर रनोट अथवा नरोद के सम्बन्ध मे तथा कटहर अथवा रोहेलखण्ड की राजधानी लखनोर के स्थान पर नखलोर के सम्बन्ध में किया गया है। अतः रांसी के सम्बन्ध मे हमारे पास न केवल स्थिति की समानता का तथ्य है वरन् नामों मे भी चीनी तीर्थ यात्री के नरसिंह से अत्यधिक समानता का तथ्य है। यह अनुरूपता अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे हमे प्राचीन लेखकों द्वारा बताई गई पूर्वी दिशा के स्थान पर ह्वेनसांग द्वारा सांगला को रावी के पश्चिम में दिखाने की सत्यता का सर्वाधिक निश्चित प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

रांसी के खण्डहरों मे, उत्तर से दक्षिण की ओर ६०० फुट लम्बा तथा पूर्व से पश्चिम ५०० फुट चौड़ा एवम् २० से २५ फुट की सामान्य ऊँचाई का एक विशाल टीला है। यह विशाल आकार की टूटी हुई ईंटो से ढका हुआ है और शोरा उत्पादको को यहाँ प्रायः मुद्राये मिल जाती हैं। शोरकोट, मुल्तान तथा हड़प्पा इत्यादि पञ्जाब के सभी ध्वस्त टीलों मे शोरा प्रचुर मात्रा मे मिलता है और यह शोरा चूंकि केवल बसे हुये स्थानो से प्राप्त होता है अतः यह इस बात का निश्चित प्रमाण है कि रांसी का टीला प्राकृतिक न होकर अनेक शताब्दियो के परिणाम स्वरूप मलवे के कृत्रिम रूप से इकट्ठे हो जाने से बना है। रांसों मे नौगज अथवा नौ गज के एक राक्षस का मकबरा है जिसे मैं निर्वान अथवा मृत्यु के पश्चात् बुद्ध को लेटी हुई प्रतिभा समझता हूँ। बर्मा मे आज भी ईंटो एवम् मिट्टी की इसी प्रकार की विशालकाय प्रतिमाये बनती है जो ध्वस्त अवस्था मे नौगज मकबरे के समान दिखाई देती हैं। चूंकि यह विश्वास किया जाता है कि मृत्यु के समय बुद्ध पूर्वोन्मुख था अतः सभी निर्वान प्रतिमाये उत्तर से दक्षिण की ओर इसी दिशा में रखी जायेगी और चूंकि भारत में मुसलमानों के मकबरे भी इसी दिशा में रखे जाते हैं अतः मेरा विश्वास है कि प्रारम्भिक मुसलमानों ने युद्ध मे मरे अपने नेताओ की कबर हेतु इन बुद्ध प्रतिमाओ का प्रयोग किया होगा। इस विषय में मुझे आगे चलकर और भी कुछ कहना होगा परन्तु यहाँ रांसी की प्राचीनता के एक अन्य प्रमाण के रूप मे ही इसका उल्लेख कर रहा हूँ।

अम्बकापी अथवा अमकटीस

अम्ब एवं कापी प्राचीन नगरो के अवशेषो के रूप में दो ध्वस्त टीलो के नाम हैं जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इनके नाम एक भाई बहन के नाम पर पड़े थे जिनकी कथा का वर्णन मैं मानिक्याल के अपने विवरण में कर चुका हूँ। इस कथा के

अनुसार इस परिवार में सिर-कप, सिर-सुक तथा अम्ब नामक तीन बन्धु एवं कापी, कल्पी, मुण्डी तथा मण्डे ही नामक चार बहने थी और इनमे प्रत्येक ने शेखपुरा के दक्षिण मे तथा रांसी के समीप ही एक नगर का निर्माण करवाया था। इन नगरों के अवशेष निम्न स्थानों पर बताये जाते हैं।

प्रथम—सिर-कप शेखपुरा के ६ मील दक्षिण मे बलरह नामक गाँव के समीप अवशेषों का एक टीला है। यह उल्लेखनीय है कि सिन्ध सागर दोआब की कथाओ मे बलरह के नाम को सिर-कप से सम्बन्धित बताया जाता है। इन कथाओ मे इस बलरह स्तूप को इस राजा का स्थान बताया जाता है।

द्वितीय—सिर-सुक, शेखपुरा के ३½ मील दक्षिण में, तथा सिर-कप टीले के २½ मील उत्तर मे मुराद गाँव के समीप एक ध्वस्त टीला है।

तृतीय—अम्ब, शेखपुरा से ६ मील से कुछ अधिक दक्षिण में तथा रांसी के एक मील पूर्व मे एक विशाल ध्वस्त टीला एवम् गाँव है।

चतुर्थ—कापी अथवा कांपी जैसा कि इसे लिखा जाता है एवम् इसका उच्चारण किया जाता है, लाहौर की ओर जाने वाले उच्च मार्ग पर अम्ब के २½ मील पूर्व मे एक छोटा टीला है।

पञ्चम—काल्पी, सिर कप एवम् अम्ब के टीलो के मध्य भूईपुर नामक ग्राम के समीप एक अन्य छोटा टीला है।

छठा—मुण्डी, रांसी एवम् अम्ब के दक्षिण मे ८ मील की दूरी पर बाग बच्चा नदी के पश्चिमी तट पर एक ध्वस्त टीला एवम् गाँव है।

सातवां—मुण्डे ही अम्ब एव कापी के दक्षिण पूर्व मे दोनो से ३½ मील की समान दूरी पर एक ध्वस्त टीला एव गाँव है।

यह सभी टीले बाग बच्चा नदी के पश्चिमी तट पर हैं तथा लाहौर के पश्चिम की ओर लगभग २५ मील की औसत दूरी पर है। उपर्युक्त सभी गाँव लाहौर जिले के विशाल मानचित्र में देखे जा सकते हैं परन्तु टीलों को केवल सड़कपुर परगना के विशाल मानचित्र मे दिखाया गया है। मैं यह उल्लेख कर चुका हूँ कि बाग बच्चा नदी का नाम सम्भवतः "भूखे शेर के सात बच्चों" की कथा से सम्बन्धित है जिनके नाम उपर्युक्त सात टीलों के नामो में सुरक्षित रखे गये हैं। यहाँ भी उसी कथा का उल्लेख किया जाता है जो सिन्ध सागर दोआब में इतनी जनप्रिय है। स्यालकोट का राजा रसालू एक मानव सिर की शर्त पर सिर-कप से चौपड़ खेलता है और शर्त जीत जाने पर शर्त की वस्तु के स्थान पर उसको पुत्री कोकिला से विवाह कर लेता है। जन साधारण को इस कथा के सत्य होने पर असंदिग्ध विश्वास है और अपने विश्वास के प्रमाण स्वरूप वह निम्नलिखित कविता को उद्धृत करते हैं।

"अम्ब कप पाई लड़ाई
कल्पी बहन छुडावण आई"

'जब अम्ब कप में झगड़ा हुआ तो उनकी बहन कल्पी उनका झगडा समाप्त कराने आई ।

चूँकि वह इस झगडे के स्वरूप का कोई उत्तर नहीं दे सकते थे अतः इस कविता से सात बन्धुओ एवं बहनो के सम्बन्ध में हमारी सूचना मे कोई वृद्धि नही हो सकती है । फिर भी मैं इतना कहना चाहूँगा कि अम्ब एवम् कापी ये दो नामो का मिश्रण इतना पुराना है जितना टालमी का समय, क्योकि उसने अमकारीज़ अथवा अमकापीज़ नामक नगर को रावी के पश्चिम मे एवं लबोकला अथवा लाहौर के निकटस्थ प्रदेश में दिखाया है ।

अम्ब का टीला ६०० वर्ग फुट है तथा इसकी ऊँचाई २५ से ३० फुट है और चूंकि लगभग ६०० फुट की चोडाई तक चारो ओर के खेत टूटे हुए बर्तनो से ढके हुए है अतः प्राचीन नगर का पूर्ण विस्तार ८००० फुट से कम नही होगा अथवा इसका घेरा ३ मील से अधिक होगा । यह टीला भी बड़े आकार की टूटी हुई ईंटों से ढका हुआ है जिन मे मेने ढाली गई इटों के अनेक टुकडे प्राप्त किये थे । मुझे भूरे रंग के एक बलुआ पत्थर का टुकडा एव लोहे की छड़ का चितकबरा टुकड़ा प्राप्त हुआ था जो सागला तथा कराना पहाडियो मे प्राप्त टुकड़ों के समान था । जन साधारण के कथनों के अनुसार इस कथन का निर्माण राजा अम्ब ने १८०० अथवा १६०० वर्ष पूर्व अथवा ईसवो काल के प्रारम्भ के समय करवाया था । इस तिथि के अनुसार यह तीनों बन्धु इण्डो-सीथियनो की यूची अथवा कुषान जाति के तीन महान राजाओ हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क के समकालीन थे और अन्य कारणो के आधार पर मैं उन्हे इन्हीं राजाओं के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ ।

लोहावर अथवा लाहौर

लाहौर का विशाल नगर जो लगभग ६०० वर्षों तक पञ्जाब की राजधानी रहा है राम के पुत्र लव अथवा लो द्वारा बनवाया गया था और उन्ही के नाम पर इसका नाम लोहावर रखा गया था । अब्बु-रिहान ने इसी स्वरूप के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है परन्तु इसके तत्कालिक स्वरूप का लाहौर नाम जिसे मुस्लिम विजेताओ ने शीघ्र अपना लिया था अब सर्व प्रसिद्ध हो गया है । श्री थार्टन ने रुचिकर सूचनाओं से ओत-प्रोत एक पूर्ण एवम् योग्य विवरण में इसके इतिहास का उल्लेख किया है । उसने लाहौर को टालमी के लबोकला के अनुरूप स्वीकार किया है । (१) जो लव नाम का

(१) टालमी के अनुसार उसके लबोकला की लाहौर से अनुरूपता का उल्लेख सर्व प्रथम कीपर्ट के द्वारा 'भारत के मानचित्र' में मिलता है । "हिस्ट्री एण्ड एन्टीक्यू-

प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रथम दो अक्षरो लबो के लेने से मेरे विश्वासानुसार सही है। परन्तु मैं कला को परिवर्तित कर लका पढूँगा और इस प्रकार यह नाम लबोलक अथवा लवालक अर्थात् 'लव का पेट' बन जायेगा।

ह्वेनसांग ने लाहोर का उल्लेख नही किया है यद्यपि यह निश्चित है कि ताकी से जलन्धर जाते समय वह इस स्थान से होकर गया होगा। उसने लिखा है कि वह ताकी की पूर्वी सीमा पर एक विशाल नगर मे एक मास तक रहा था और चूंकि पूर्व मे इस राज्य का विस्तार व्यास नदी तक था अतः पूर्वी सीमा के 'विशाल नगर' को रावी के स्थान पर व्यास नदी पर देखना होगा। अधिक सम्भावना यह है कि यह नगर कसूर नगर था। लाहौर का प्रथम विशिष्ट उल्लेख महमूद गजनी के आक्रमणो मे मिलता है जब काबुल को घाटी के ब्राह्मण राजाओ ने पेशावर तथा ओहिन्द से निकाल दिये जाने के पश्चात्, पहले झेलम नदी पर भिड़ के स्थान पर अपनी राजधानी बनाई और बाद में लाहौर के स्थान पर इस प्रकार फरिश्ता ने महमूद के दो उत्तरोत्तर विरोधियो जयपाल एवम् उसके पुत्र आनन्दपाल को लाहौर का राजा कहा है। यह हिन्दू परिवार १०३१ ई० मे पदच्युत हो गया जब लाहौर गजनी के अधीन मुस्लिम गवर्नर का निवास स्थान बन गया था। (१) एक शताब्दी से कुछ समय पश्चात् ११५२ ई० मे जब गोर अफगानो ने बहराम को गजनी से निष्कासित किया तो उसके पुत्र खुसरो ने लाहौर मे राज्य सत्ता सम्भाल ली। परन्तु यह राज्य ११८६ ई० तक केवल दो पीढ़ियो तक चल सका। ११८६ ई० मे इस जाति के अन्तिम शासक खुसरो मलिक के बन्दी बना लिये जाने पर गजनी की सत्ता का अन्तिम रूप से ह्रास हो गया।

कुसावर अथवा कसूर

जन साधारण की प्रथाओ के अनुसार कसूर का निर्माण राम के पुत्र कुश ने करवाया था जिसके नाम पर इसका नाम कुसावर रखा गया था और लोहावर के समकालीन नगर की भाँति ही इस नाम के दो व्यजनो मे अदला-बदली द्वारा परिवर्तित कर दिया गया है। यह नगर लाहौर के दक्षिण-दक्षिण पूर्व मे ३२ मील को दूरी पर पुरानी व्यास नदी के ऊंचे तट पर अवस्थित है और प्रचलित है कि किसी समय इस नगर मे १२ दुर्ग थे जिनमे अब केवल सात हैं। इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है। किसी महत्व के भवन अथवा अवशेष यहाँ नही है परन्तु इन अवशेषो का विस्तार बहुत अधिक

टिज आफ लाहौर" के लेखक श्री टी० एच० थार्टन की खोज से इसकी पुष्टि होती है।

(१) यह तिथि फरिश्ता से ली गई है परन्तु अरबो तथा संस्कृत लेखों सहित महमूद की मुद्रायें भी प्राप्त हैं जो १०१९ हिजरी मे महमूदपुर मे बनाई गई थीं। श्री थामस ने इसे लाहौर के अनुरूप माना है। अबु-रिहान तथा अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने लाहौर की राजधानी मण्डुकूर के भ्रष्ट स्वरूप से इसका उल्लेख किया है।

है तथा फिरोज के विपरीत व्यास एवम् सतलज के पुराने सङ्गम स्थान एवम् लाहौर के मध्य मार्ग पर इसकी स्थिति इतनी अनुकूल है कि यह स्थान अधिक प्रारम्भिक काल से बसा होगा। इसकी स्थिति भी सुदृढ़ है क्योंकि दक्षिण में यह व्यास नदी से एवम् अन्य सभी ओर गहरी खाइयों से सुरक्षित है। प्राचीन नगर की सीमाओं को निर्धारित करना प्रायः असम्भव है क्योंकि वर्तमान नगर के उपनगरों में मकबरों मस्जिदों एवम् अन्य बड़ी इमारतों के खण्डहर फैले हुए हैं परन्तु मेरे विचार में इसका कुल विस्तार एक वर्ग मील से कम नही था जिससे एक दीवार युक्त नगर का घेरा लगभग चार मील हो जायेगा। इनमे अनेक मकबरे वर्तमान नगर से ठीक एक मील की दूरी पर है और खण्डहरों से भरे मध्यवर्ती क्षेत्र का कम से कम आधा भाग नगर से सम्बन्धित रहा होगा। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि ताकी की पूर्वी सीमा अर्थात् व्यास नदी पर यही "विशाल नगर" रहा होगा जहाँ ताकी की राजधानी से चिनापट्टी जाते समय ह्वेनसांग एक मास तक ठहरा था। दुर्भाग्यवश उसने सामान्य विस्तृत वर्णन को छोड दिया है क्योंकि इसकी स्थिति के निर्धारण मे हमारी सहायतार्थ इस तथ्य को छोड अन्य कुछ भी नही है कि यह लाहौर के विपरीत व्यास के दाहिने तट पर किसी स्थान पर अवस्थित था।

चिनापट्टी अथवा पट्टी

ह्वेनसांग ने चिनापट्टी नगर को ताकी के पूर्व में ८३ मील की दूरी पर दिखाया है। यह स्थिति कसूर से २७ मील उत्तर पूर्व तथा व्यास नदी से १० मील पश्चिम मे अवस्थित एक विशाल एवम् अधिक प्राचीन नगर चिनापट्टी से ठीक-ठीक मिलती है। ह्वेनसांग ने इस नगर के पश्चात् जिस स्थान की यात्रा की थी दुर्भाग्यवश उसकी कथित दूरी मे कुछ त्रुटि है अन्यथा चिनापट्टी की स्थिति का निर्धारण जलन्धर के सर्व ज्ञात नगर से दिकांश एवम् दूरी के आधार पर किया जा सकता था। ह्वेनसांग की जीवनी मे चिनापट्टी को तामस-वन मठ के उत्तर पश्चिम की ओर आठ मील की दूरी पर बताया गया है। यह मठ जलन्धर से २५ मील दक्षिण पश्चिम मे था। परन्तु ह्वेनसांग की यात्राओं के विवरण मे मठ को चिनापट्टी से ८३ मील की दूरी पर दिखाया गया है। यह अन्तिम दूरी पूर्णतयः असम्भव है क्योंकि इसम चिनापट्टी ताकी के ८३ मील पूर्व मे होने के स्थान पर इससे ३० मील उत्तर मे चला जायेगा। तीर्थ यात्री ने अपनी पुस्तक मे इसे ताकी के ८३ मील पूर्व में बताया है। दूसरी ओर आठ मील की कम दूरी इस नगर को व्यास नदी के रेतीले मार्ग मे ले जायेगी जहाँ आज तक कोई नगर नही बसा है। अतः मैं इसे २५ मील पढ़ने का प्रस्ताव करूंगा जिससे चिनापट्टी पट्टी नगर के स्थान पर उसी स्थिति में हो जायेगा जिसे पहले ही ताकी से दिकांश एवं दूर के आधार पर निश्चित किया जा चुका है।

पट्टी अत्यधिक प्राचीनता का ईंटो का विशाल नगर है। बर्न्स के अनुसार इसका निर्माण अकबर के समय में हुआ था परन्तु उसका कथित निश्चित रूप से गलत है क्योंकि यह नगर हुमायूँ के समय में परगना का मुख्य स्थान था जिसे उसने अपने दास जौहर को दे दिया था। अबुल-फज़ल ने इसे पट्टी हैबतपुर कहा है और आज भी यह हैबतपुर पट्टी के नाम से ज्ञात है। जन साधारण के अनुसार नगर को यह मुस्लिम नाम हैबत खाँ से प्राप्त हुआ था जिसका समय अज्ञात है। परन्तु मेरे विचार में यह सम्भव है कि उसे हैबत खाँ शेरवानी समझना चाहिये जो सिकन्दर लोदी के समय में प्रमुख सरदार था तथा जिसने फारस यात्रा से वापसी पर हुमायूँ के विरुद्ध अफगान राजा की सेनाओं का नेतृत्व किया था। पट्टी की प्राचीनता नगर के आस-पास प्राप्त जली हुई ईंटो एवं पुराने कुओं की संख्या से प्रमाणित होती है। सम्राट हुमायूँ के दास जौहर ने ३०० वर्ष पूर्व इन पुराने सूखे कुओं का उल्लेख किया था और ईंटो के विचित्र बनावट से बर्न्स चकित रह गया था जिसका कथन है "यहाँ के घर ईंटों के बने हुए हैं और यहाँ की गलियो में भी ईंटे बिछाई गई हैं। इसके पड़ोस में कुआँ खोदते समय कुछ श्रमिकों को एक अन्य पुराना कुआँ प्राप्त हुआ था जिस पर एक हिन्दू लेख था। इसमे लिखा था कि इसका निर्माण किसी अगरतूता ने करवाया था जिसके सम्बन्ध में प्रथाओं मे कोई उल्लेख नही मिलता।" मैं बर्न्स के कुछ ही वर्ष पश्चात् १८३८ मे इस स्थान पर गया था परन्तु मुझे यह शिला-लेख नही मिल सका।

प्राचीनता का एक अन्य प्रमाण एक लम्बी कबर अथवा मकबरे की उपस्थिति है जिसे जनता बर्न के अनुसार "पट्टी का नो गज" कहती है परन्तु य मकबरे जो उत्तर पश्चिमी भारत मे सामान्य रूप से पाये जाते हैं सामान्यतः गजनियो से सम्बन्धित किये जाते हैं जो इस्लाम धर्म के प्रारम्भिक काल मे काफरो के विरुद्ध लडते हुए मारे गये थे। अतः मैं इन कबरो को महमूद गजनी के समय की एव इनके ऊपर बनाये गये ईंटो के मकबरो को अकबर के शासन काल मे निर्मित बतलाऊँगा।

ह्वेनसाग के अनुसार चिना पट्टी के जिले का घेरा ३३३ मील था। इन आंकड़ों के अनुसार इस जिले मे पहाडियो के अधोभाग से लेकर फिरोजपुर के समीप व्यास एवम् सतलज के पुराने सङ्गम स्थान तक व्यास तथा रावी के मध्य सम्पूर्ण ऊपरी दोआब सम्मिलित रहा होगा। ची-न-पो-ती-अथवा चिना पट्टी के नाम को महान् इण्डो-सीथियन सम्राट कनिष्क के समय से सम्बन्धित किया जाता है जिसने अपने चीनी अतिथियो के लिए यह स्थान निश्चित किया था। यात्री ने यह भी जोड़ दिया है कि चीनियों के निवास से पूर्व भारत मे न तो आड़ू थे न नाशपातियाँ और यह दोनो चीनी अतिथियों द्वारा लाये गये थे। नाशपातियों को ची-न-नी अथवा चीनानी अर्थात् चीन से लाया गया कहा जाता था तथा आड़ूओं को ची-न-लो-शी-फो-ता-लो

अथवा चीना राज पुत्र अर्थात् चीनी राजा का पुत्र कहा जाता था। यह पूर्णतयः सही नहीं है कि नाशपाती एवम् आड़ू दोनों फल ही पड़ोस की पहाड़ियों मे पाये जाते हैं परन्तु आजकल दो प्रकार के आड़ुओं की कृषि की जाती है एक गोल एवम् रसभरे तथा दूसरे चिपटे एवम् मीठे। प्रथम को हिन्दी में आड़ू तथा फारसी में शफतालू कहा जाता है यह पूर्णतयः भारतीय फल है परन्तु दूसरा जिसे चीनी शफतालू कहा जाता है सम्भवतः वही फल है जिसे ह्वेनसांग ने चीन से लाया गया बतलाया है।

शोरकोट

शोरकोट खण्डहरों का एक विशाल टीला है जिससे परगना अथवा शोर खण्ड अथवा रिचना दोआब के निचले भाग का शोरकोट नाम रखा गया है। बर्न्स ने इस स्थान की यात्रा की थी और उसने इस स्थान का उल्लेख "एक मिट्टी के एक टीले के रूप मे किया है जो ईंटो की दीवार से घिरा हुआ है तथा इतना उन्नत है कि इसे ८ मील के घेरे से देखा जा सकता है।" उसने यह भी लिखा है कि यह सेहवान के टीले से अधिक बडा है जो (सेहवान) डी-ला-होस्टे के आंकड़ों के अनुसार १२०० फुट लम्बा तथा ७५० फुट चौडा है। मेरी सूचना के अनुसार शोरकोट हड़प्पा से अधिक छोटा है तथा अकबर के आकार का अर्थात् २००० फुट लम्बा तथा हजार फुट चौड़ा है परन्तु इन दोनों से ऊँचा है। यह टीला बडे आकार की ईंटो की दीवार से घिरा हुआ है जो इसकी प्राचीनता का असंदिग्ध प्रमाण है। वर्न्स को जन साधारण ने सूचित किया था कि लगभग १३०० वर्ष पूर्व पश्चिम मे किसी राजा ने उनके नगर का विनाश किया था। स्थिति के कारण वर्न्स इसे वह स्थान समझता है जहाँ सिकन्दर घायल हुआ था और उसके अनुसार सिकन्दर ने ही इस नगर का विनाश कराया था। मैंने भी इस नगर के विनाश की इसी कथा को सुना था परन्तु मैं इसे श्वेत हूणो से सम्बन्धित समझता हूँ जिन्होने छठीं शताब्दी में अथवा प्रथा मे दिये गये समय मे ही पश्चिम की ओर से पञ्जाब मे प्रवेश किया था।

इस नगर की स्थापना को शोर नामक एक कल्पित राजा से सम्बन्धित किया जाता है जिसके सम्बन्ध मे नाम को छोड अन्य कुछ भी ज्ञात नही है। मैं यह सम्भव समझता हूँ कि शोरकोट स्टीफन्स बाईजेन्टाईन का सिकन्दरिया सोरियाने है जिसने इस तथ्य को छोड़ अन्य कोई संकेत नही दिया है कि यह भारत में था। यह दोनों नाम इतने ठीक-ठीक मिलते हैं कि मुझे इस प्रस्ताव को रखने की प्रेरणा मिलती है कि फ़िलिप ने शोरकोट का विस्तार किया होगा एवं इसे सुदृढ़ बनाया होगा जिसे सिकन्दर ने ओक्षड्रकाय तथा मल्ली के गवर्नर के रूप मे पीछे छोड़ दिया था। यह प्रस्ताव उस समय अधिक सम्भव प्रतीत होता है जब हम यह देखते हैं कि शोरकोट हाइडस्पीज़ तथा एकिसनीज़ के सङ्गम स्थान से मल्ली की राजधानी तक सिकन्दर के सीधे मार्ग में

पड़ता था । अतः मैं इसे मल्ली नगर के अनुरूप स्वीकार करूंगा जिसने डियोडोरस तथा कर्टियस के अनुसार अल्प कालीन घेरे के पश्चात् आत्म-समर्पण कर दिया था । कर्टियस ने इसे नदियों के सङ्गम स्थान से २८ै मील बताया है और यह स्थिति शोरकोट की स्थिति से ठीक-ठीक मिलती है । एरियन का विवरण अन्य अनेक महत्वपूर्ण बातों में अन्य दोनों इतिहासकारों के विवरणों से भिन्न है । उसका कथन है कि नदियों के सङ्गम स्थान को छोड़ने के पश्चात् सिकन्दर ने जिस प्रथम नगर पर अधिकार किया था वह एकिसीनीज़ (चेनाब) से ४६ मील दूर था तथा इस पर आक्रमण कर अधिकार किया गया था । मेरा अनुमान है कि यह नगर कोट कमलिया था और मैं दोनों विवरणों के त्रुटि को एरियन द्वारा इस अभियान के दिये गये विस्तार से तुलना करने से समझाऊंगा । सिकन्दर ने अपनी सेनाओ को तीन बडे दलो में विभाजित किया । इनमें अग्रिम दल हीफस्टियन के नेतृत्व मे पाँच दिन पूर्व यात्रा कर रहा था । मध्य दल का नेतृत्व वह स्वयं कर रहा था तथा अन्तिम दल जो टालमी के नेतृत्व में था तीन दिन के पश्चात् अनुसरण कर रहा था । चूंकि यह आक्रमण मल्लो के विरुद्ध था अतः मेरा निष्कर्ष है कि सेना ने सीधे मार्ग से शोरकोट के मार्ग से मुल्तान की ओर यात्रा की थी । जो निश्चय ही मल्ली की राजधानी थी । इस प्रकार शोरकोट पर हीफास्टियन ने अधिकार किया होगा जो सेना के अग्रिम दल का नेतृत्व कर रहा था । जिस समय मैं कोट कमालिया का विवरण दूंगा उसी समय मैं सिकन्दर के निजी मार्ग का उल्लेख भी करूंगा ।

शोरकोट की प्राचीनता का अनुमान यहाँ प्राप्त होने वाली मुद्राओ से लगाया जा सकता है । इनमे मुख्यतः सभी कालो की इण्डो-सीथियन ताँबे की मुद्रायें हैं, कुछेक हिन्दू मुद्राओ के नमूने भी हैं तथा मुस्लिम काल को मुद्राये अधिक मात्रा मे मिलती हैं । अपोलोडोतस का एक मात्र ताँबे की मुद्रा वर्न्स को प्राप्त हुई थी । इन आंकड़ो से मैं अनुमान लगाऊँगा कि यह नगर निश्चित ही एरियन तथा पञ्जाब के यूनानी राजा के समय जितने प्रारम्भिक काल मे बस गया होगा तथा १२६ ई० पू० से २५० ई० तक अथवा उससे भी कुछ समय पश्चात् इण्डो-सीथियनो के आक्रमण के समय यह नगर समृद्ध अवस्था मे था । चूंकि शोरकोट मे मुझे प्राप्त होने वाली हिन्दू मुद्रायें काबुल की घाटी तथा पञ्जाब के ब्राह्मण राजाओ तक ही सीमित थी अतः मेरा निष्कर्ष है कि मध्य काल मे यह स्थान या तो निर्जन था अथवा बहुत ही जर्जर अवस्था मे था तथा दसवीं शताब्दी मे इनमे किसी ब्राह्मण राजा ने या तो इस पर पुनः अधिकार स्थापित किया था अथवा इसे पुर्नजीवित किया था ।

कोट-कमालिया

कोट कमालिया रावी के उत्तरी तट के दाहिने छोर पर जो नदी के इस ओर

अधिकतम बढ़ाव की सीमा है—एक अकेले टीले पर अवस्थित छोटा परन्तु प्राचीन नगर है। यह हाइडस्पेस तथा एकिसीनीज के सङ्गम स्थान से ४४ मील दक्षिण पूर्व में तथा शोर के ३५ मील पूर्व-दक्षिण पूर्व में है। यहाँ जली हुई ईटों का एक प्राचीन टीला है और शोरकोट तथा हड़प्पा के विनाश के समय ही किसी पश्चिमी राजा द्वारा इसका विनाश बताया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार इसका आधुनिक नाम कमालु-उद-दीन नामक एक मुस्लिम गवर्नर के नाम से लिया गया था परन्तु यह निश्चित बात नही है और मैं इसे प्रायः सम्भव समझता हूँ कि इस नाम का मूल रूप मल्लो जाति से लिया गया था जो आज भी देश के इस भू-भाग मे निवास करती है। परन्तु नाम चाहे पुराना हो अथवा नही यह निश्चित है कि यह स्थान अति प्राचीन स्थान है और मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि इसे मल्ली के विरुद्ध आक्रमण के समय सिकन्दर द्वारा अधिकृत प्रथम नगर के अनुरूप समझा जाना चाहिये।

एरियन द्वारा दिया गया उपर्युक्त आक्रमण का विवरण इतना स्पष्ट एवम् संक्षिप्त है कि मै उसी के शब्दो को उद्धृत कर इसका वर्णन करूँगा। नदियों के संगम स्थान को छोडने के पश्चात् सिकन्दर ने "एक मरुप्रदेश से मल्ली के विरुद्ध प्रस्थान किया तथा प्रथम दिन एकसीनीज के तट मे ११½ मील की दूरी पर एक छोटी नदी के तट पर अपना खेमा खड़ा किया। अपने सैनिकों को भोजन एवम् विश्राम हेतु थोड़ा समय देने के पश्चात् उसने प्रत्येक व्यक्ति को सभी बर्तन पानी से भर लेने की आज्ञा दी और ऐसा हो जाने पर उसने शेष दिन एवम् पूरी रात अपनी यात्रा जारी रखी और दूसरे दिन प्रातःकाल वह एक ऐसे नगर पहुँचा जहाँ अनेक मल्लियो ने भाग कर शरण ली थी और यह नगर एकिसीनीज् से ४५ मील की दूरी पर था।" उपर्युक्त छोटी नदी मेरे विश्वासानुसार आयक नदी का निचला मार्ग है जो पहाडियों की बाह्य शृङ्खला से निकलती है तथा स्यालकोट के समीप से प्रवाहित होकर सांगला की ओर चली जाती है। इससे नीचे कुछ दूरी तक इस नदी का पाट दिखाई देता है। यह फङ्ग के १८ मील पूर्व मे पुनः दिखाई देती है और शोरकोट के १२ मील पूर्व में अन्तिम रूप से लुप्त हो जाती है। सिकन्दर ने इन दो स्थानो के बीच किसी स्थान पर आयक नदी को पार किया होगा क्योंकि मरुप्रदेश जिसे उसने पार किया था इसके तुरन्त बाद शुरू हो जाता है। यदि वह दक्षिण को ओर जाता तो वह शोरकोट मे पहुँचता परन्तु इस ओर उसे किसी मरुस्थल का सामना नहीं करना पड़ता क्योंकि उसका मार्ग खादर अथवा चेनाब की घाटी के निचले प्रदेश से होकर गुजरता था। दक्षिणी दिशा मे ४६ मील की यात्रा उसे हाईड्राओटीज् अथवा रावी के दाहिने तट पर ले जाती है और यह एक ऐसा स्थान है जहाँ एरियन के अनुसार सिकन्दर एक अन्य रात्रि को यात्रा के पश्चात् पहुँचा था। चूँकि यह यात्रा गो धूली के समय से सूर्योदय के समय तक निरंतर रही अन्त यह यात्रा १८ अथवा २० मील की यात्रा से कम नही हो सकती। यह

दूरी कोट कमालिया से तुलम्बा के विपरीत रावी की दूरी से ठीक-ठीक मिलती है। अतः सिकन्दर को यात्रा की दिशा दक्षिण पूर्व की ओर रही होगी, सर्व प्रथम आयक नदी तक जहाँ उसने सैनिको को विश्राम देने तथा पानी भरने के लिए पडाव किया और तत्पश्चात् सन्दर बार नामक ठोस मिट्टी एवम् जलविहीन प्रदेश को पार किया। सन्दर बार सन्दर अथवा चन्द्र नदी का मरुस्थल है। इस प्रकार नदी की स्थिति, निर्जन प्रदेश का उल्लेख तथा नदियो के सङ्गम स्थान से नगर की दूरी, यह सभी कोट कमालिया के दुर्ग की ओर सकेत करने मे हम सहमत हैं जहाँ सिकन्दर ने आक्रमण किया था।

एरियन ने इस स्थान का दीवारयुक्त नगर के रूप में उल्लेख किया है जहाँ दुर्गम चढ़ाई के स्थान पर एक दुर्ग था जिसे भारतीयो ने अधिक समय तक सुरक्षित रखा। अन्त मे एक भीषण आक्रमण के बाद इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया तथा यहाँ के २००० सैनिको को तलवार के घाट उतार दिया गया।

हड़प्पा

जिस समय सिकन्दर उपर्युक्त नगर पर आक्रमण मे व्यस्त था उस समय एरियन के अनुसार उसने पेरडिक्कस को घुडसवार सेना सहित "मल्ली के एक अन्य नगर की ओर भेजा था जहाँ भारतीयो के एक बहुत बडे दल ने भाग कर शरण ली थी।" उसकी आज्ञा उसके वहाँ पहुँचने तक नगर को घेरे रखने की थी परन्तु वहाँ के निवासियो ने पेरडिक्कस के समीप आने की सूचना मिलते ही नगर को त्याग दिया तथा आस पास की दलदल मे शरण ली थी। मुझे विश्वास है कि यह नगर हड़प्पा था। दलदलो का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि यह रावी के समीप रही होगी और चूँकि पेरडिक्कस को सिकन्दर के आगे आगे भेजा गया था अतः यह कोट कमालिया से आगे अर्थात् इसके पूर्व अथवा दक्षिण पूर्व की ओर रहा होगा। यह हड़प्पा की ठीक-ठीक स्थिति है जो कोट कमालिया के १६ मील पूर्व दक्षिण पूर्व मे तथा रावी के दूसरे ऊँचे तट पर अवस्थित है। उसके आस-पास निचली भूमि मे अनेक दलदले हैं।

दो सर्व प्रसिद्ध यात्रियो बर्न्स तथा मसोन ने हड़प्पा का विवरण दिया है और मैं यद्यपि भिन्न समय मे इस स्थान पर तीन बार रहा हूँ परन्तु इन दोनो यात्रियो द्वारा दिये गये विवरण मे अधिक जोडना मेरे लिए सम्भव नही है। बर्न्स ने खण्डहरो के विस्तार को "लगभग तीन मील के घेरे में होने का अनुमान लगाया है जो वास्तविक विस्तार से ½ भाग अधिक है क्योकि खण्डहरो का वास्तविक टीला प्रत्येक ओर आधे मील अथवा दो मील घेरे का एक असमान चतुर्भुज बनाता है।" परन्तु इसमें केवल दीवार युक्त नगर के अवशेष सम्मिलित हैं जिसमे हम उचित रूप से उपनगरों अथवा टूटी हुई ईंटो एवम् अन्य अवशेषों से ढके खेत भी सम्मिलित कर सकते हैं जिससे प्राचीन नगर का कुल विस्तार बर्न्स द्वारा अनुमानित विस्तार से मिल जायेगा। मसोन

ने एक प्रथा का उल्लेख किया है जिनके अनुसार हड़प्पा किसी समय पश्चिम की ओर चिचावत्नी तक अर्थात् १२ मील की दूरी तक विस्तृत रहा होगा जिससे कम से कम नगर के पूर्ववर्ती विस्तार एवम् महत्व मे जनसाधारण का विश्वास प्रगट होता है।

खण्डहरों का अधिकांश ढेर पश्चिमी भाग में है जहाँ यह टीला मध्य में ६० फुट की ऊँचाई तक ऊपर उठ जाता है। इस स्थान पर विशाल ईंटों की बनी अनेक विशाल दीवारें हैं जो निस्सन्देह किसी विस्तृत भवन की अवशेष हैं। टीले के अन्य भाग ३० से ५० फुट की भिन्न-भिन्न ऊँचाई के हैं जिनमे अधिकाश टीले पूर्णतय: टूटी हुई ईंटों के ढेर हैं। प्रयाओ मे अज्ञात काल के किसी राजा हड़प्पा ने इसकी स्थापना की थी तथा छठी शताब्दी मे पश्चिम के किसी राजा ने इस नगर का विनाश करवाया था जिसने शोरकोट का विनाश भी कराया था और जिसे मैं श्वेत हूणों का नेता समझता हूँ। इस राजा के पाप कर्मों से जो प्रत्येक विवाह मे पति के विशेषाधिकारो का प्रयोग करना चाहता था—यह प्रदेश देवताओं के कोप का भाजन बना और हड़प्पा अनेक शताब्दियो तक निर्जन रहा। चूकि यहाँ प्राप्त होने वाली मुद्रायें शोरकोट से प्राप्त मुद्राओ के समान है अत: मेरा विचार है कि दोनों स्थानो का समान भाग्य रहा होगा। अत: मैं इसके विनाश का उत्तरदायित्व अरबों पर डालूंगा जिन्होंने ७१३ ई० में मुल्तान पर अधिकार के बाद तुरन्त सम्पूर्ण पञ्जाब को रौंद डाला था।

अकबर

अकबर गाँव लाहोर से मुल्तान की ओर जाने वाले ऊँचे मार्ग पर गुगेरा से ६ मील दक्षिण पश्चिम मे तथा लाहोर से ८० मील की दूरी पर अवस्थित है। प्राचीन नगर के खण्डहरों मे जो गाँव के समीप ही है—१००० फुट के वर्ग का एक विशाल टीला है जिसके उत्तरी छोर पर २०० फुट वर्गाकार तथा ७५ फुट ऊँचा दुर्ग है। इन खण्डहरो मे दक्षिणी छोर पर ८०० फुट लम्बा तथा ४०० फुट चौड़ा एक अन्य निचला टीला भी है। यह अत्यधिक प्राचीन स्थान रहा होगा क्योंकि मुझे २०×१०×३½ इञ्च की अत्यधिक बड़ी ईंट प्राप्त हुई थीं जिनका पिछली अनेक शताब्दियो से उत्पादन नहीं हुआ है। यह स्थान १८२३ ई० तक निर्जन था जब गुलाबसिंह पोबिन्दिया ने वर्तमान अकबर गाँव की स्थापना की थी। प्राचीन नाम अब पूर्णतय: लुप्त हो चुका है और हमें इस बात का दु:ख है क्योंकि खण्डहरों मे प्राप्त होने वाली हुई ईंटों से यह ज्ञात होता है कि इस स्थान पर निर्माण कला के महत्वपूर्ण भवन रहे होंगे।

सतगढ़

सतगढ़ गुगेरा के १३ मील पूर्व ऊँचे तट के बाहर निकले हुये भागों में एक भाग पर अवस्थित है जो पूर्व मे रावी के घुमावों की अन्तिम सीमा है। नाम का अर्थ है 'सात दुर्ग' परन्तु इस समय इनमे एक भी दिखाई नहीं देता। एक टीले पर ईंटों का दुर्ग एवम् टूटी हुई ईंटों एवम् अन्य अवशेषों से ढके अनेक अकेले टीले हैं जो प्राचीन

नगर के स्थान का संकेत देते हैं। इण्डो ग्रीथियन राजाओं एवम् उनके बाद के राजाओं की प्राचीन मुद्रायें प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती है। अतः यह स्थान सम्भवतः ईसा काल के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक निरन्तर बसा हुआ है।

दीपालपुर

दिल्ली के पठान सम्राटों के शासन काल मे दीपालपुर उत्तरी पञ्जाब की राजधानी थी। यह फिरोज शाह का मनवांछित निवास स्थान था। उसने नगर के बाहर एक विशाल मस्जिद का निर्माण करवाया तथा यहाँ की भूमि की सिंचाई हेतु सतलज से एक नहर निकलवाई थी। तैमूर के आक्रमण के समय आकार एवम् महत्व में यह केवल मुल्तान से दूसरे नम्बर पर था परन्तु यह प्रचलित था कि यहाँ ८४ बुर्ज, ८४ मस्जिदें तथा ८४ कुएँ थे। वर्तमान समय मे यह प्रायः निर्जन है क्योंकि दो द्वारो के मध्य जाने वाली केवल एक गली मे ही लोग बसे हुए हैं। आकार मे यह लगभग १६०० फुट का एक चतुर्भुज है जिसके दक्षिण पूर्वी भाग मे ५०० फुट का एक चतुर्भुज बाहर की ओर निकला हुआ है। दक्षिण पश्चिम मे एक उन्नत ध्वस्त टीला है जिसे एक दुर्ग का खण्डहर कहा जाता है। नगर से यह एक पुल से जुड़ा हुआ है जो आज भी खड़ा हुआ है और इसकी उन्नत एवम् नियन्त्रण करने वाली स्थिति के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह अवश्य ही एक दुर्ग रहा होगा। पूर्व तथा दक्षिण में भी अवशेषो के लम्बे टीले हैं जो निस्सन्देह उपनगरो के अवशेष हैं। दुर्ग एवम् उपनगरो सहित दीपालपुर के वास्तविक खण्डहर लम्बाई मे तीन चौथाई मील तथा चौड़ाई में आधा मील फैले हुए हैं अर्थात् इनका घेरा २½ मील है परन्तु समृद्धि के दिनो मे यह नगर अधिक बड़ा रहा होगा क्योंकि पूर्व की ओर नहर के किनारे तक सभी खेत ईंटों से भरे हुए हैं। फिरोजशाह की मस्जिद इसी नगर के समीप बनवाई गई थी। दीवारो से बाहर नगर के विस्तार का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि तैमूर के आक्रमण के समय दीपालपुर निवासियो ने भटनेर में शरण ली होगी और यदि उनका नगर सुरक्षित योग्य होता तो वह ऐसा नही करते।

इस स्थान की स्थापना राजा देवपाल द्वारा बताई जाती है जिसकी तिथि अज्ञात है। फिर भी इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है क्योंकि भीतरी भाग जहाँ अभी मकान बना लिये गये है दुर्ग की तोपो के स्थान सहित एक समतल पर है। पुरानी मुद्रायें जो यहाँ अधिक मात्रा मे प्राप्त होती हैं यही प्रदर्शित करती है कि दीपालपुर इण्डो-सीथियनो के समय से ही बसा हुआ रहा होगा। अतः मैं इसे टालमी के डेडाला के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ जो लबोकला तथा अमकाटीज अथवा लाहौर एवम् अम्बकायी के दक्षिण मे सतलज नदी पर अवस्थित था।

अजुधान अथवा पाक पटन

अजुधान का प्राचीन नगर दीपालपुर के २८ मील दक्षिण पश्चिम में तथा नदी के वर्तमान मार्ग से १० मील की दूरी पर पुरानी सतलज के ऊंचे तट पर अवस्थित है। कहा जाता है कि इसका निर्माण एक हिन्दू सन्यासी अथवा उसी नाम के एक राजा ने करवाया था जिसके सम्बन्ध मे अन्य कुछ नही लिखा गया है। दोआब का यह भाग अभी भी सुराट देश के नाम से ज्ञात है जिससे अन्य यूनानी लेखकों के सुद्रेकाय अथवा ओक्षड्रकाय का स्मरण हो आता है। अब, यूनानी लेखकों ने सुद्रेकाय को सदैव मल्लियों से जोड़ा है ठीक उसी प्रकार जैसे मुस्लिम इतिहासकारो ने अजुधान तथा मुल्तान को एक साथ जोड दिया है। अतः मेरा विचार है कि हमे अजुधान तथा इसके पड़ोसी दीपालपुर को सूद्रको अथवा सूरको के दो मुख्य नगरो के रूप मे देखना चाहिये। जो सिकन्दर के समय मे भारत की स्वतन्त्र जातियो मे थे। डियोनीसियस तथा नोनस ने हुडरकाय नाम का प्रयोग किया है। प्लिनी ने सैड्राकाय का—जो स्ट्रेबो के सुड्कोय से मिलता है तथा दियोडोरस ने इसे सुरकोसाय लिखा है। केवल कर्टियस तथा एरियन ने ओक्षड्राकाय लिखा है। स्ट्रेबो ने यह भी जोड दिया है कि वह बुच्चस के वंशज थे। मैटीलोन के चरीस ने लिखा है कि भारतीय देवता का अर्थ "शराबी" है अतः मेरा अनुमान है कि उन लोगो ने जो स्वय को बुच्चस का वंशज होने का दावा करते थे उन्होने स्वय को सुराक अथवा बच्चोडाय भी कहा होगा। सुड्काय मे ड अक्षर यूनानियों ने व्यर्थ रूप से जोड दिया है। एरियन के अड्रेस्टाय तथा दियोडोरस के अन्ड्रिसताय में भी यही अक्षर जोड़ा गया है। इन लोगों का संस्कृत नाम अराष्ट्रक था जिसे जस्टिन ने अपन अरिस्टाय शब्द मे समुचित रूप से सुरक्षित रखा है। सुराकाई अर्थात् सुरा के वंशज ही इसका वास्तविक यूनानी स्वरूप होगा। दियोडोरस द्वारा दिये गये लम्बे नाम मे इसकी पुष्टि होती है जिसे सम्भवतः संस्कृत सुरा तथा कुश "मदमस्त" से लिया गया है। इस प्रकार इसका साधारण अर्थ होगा 'शराबी' और इसमें सन्देह नही कि यह उपनाम उनके पड़ोसी आर्यों ने दिया होगा जो पञ्जाब की तुरानियन जनता को उपनाम देने मे अधिक उदार थे। इस प्रकार सांगला के कथाओ को महाभारत में "लुटेरे बाहिक" और साथ ही साथ "शराबी" एवम् "गोमासाहारी" कहा गया है। उन्हें मद्र, बाहिक, अरट्ट तथा जारट्टिक्क आदि भिन्न-भिन्न नामो से अलकृत किया गया है। एक बार भी उनके निजी नाम से उनका उल्लेख नही किया गया जबकि सिकन्दर के इतिहासकारो से हमें ज्ञात होता है कि उनका वास्तविक नाम कठायी था जो आज भी वर्तमान काठी शब्द मे सुरक्षित है। अतः मैं स्वीकार करता हूँ कि अधिकांश जाति सम्बन्धी विशिष्ट नाम जिन्हे यूनानियो ने हमारे लिये छोड़ रखा है केवल उपनाम अथवा अपशब्द युक्त पदवियाँ थी जो ब्राह्मणवादी आर्यों ने अपने तुरानियन पडोसियो के लिये प्रयोग में लाये गये थे। उदाहरणार्थ कम्बिर स्योली नाम, जिसे एरियन ने ह्राड्राओटीज

अथवा रावी के तट के निवासियों को दिया है सम्भवतः संस्कृत के कपिस स्थल अर्थात् शराब खाने से लिया गया है जो सुराकोसस अथवा शराबियों के स्थान हेतु स्वाभाविक अपशब्द होगा। इसी प्रकार ओक्षड्काय को मैं असुरक अथवा राक्षस समझूँगा।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या सुराक अथवा "शराबी" इस जाति का वास्तविक नाम हो सकता था। एरियन ने ओक्षड्काय को हाईडस्पीज तथा अकिसीनीज् के सङ्गम स्थान का निवासी कहा है जहाँ कटियस ने सोबो, डियोडोरस ने इबोय तथा स्ट्रैबो ने सिबाय निवासियों को दिखाया है। इस त्रुटि के एकमात्र उत्तर में यह दे सकता हूँ कि यह सोबी अथवा फरिश्ता के चोबिया तथा सोरी अथवा सुराक के बीच सम्भावित सन्देह के कारण हो सकता है। प्रथम नाम सोपीथोज अथवा सोफीटीज की जनता का नाम था, जिसका राज्य हाईडस्पीज तथा अकिसीनीज् के सङ्गम स्थान से ऊपर नमक की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। दूसरे नाम को मैं शोरकोट से सम्बन्धित करूँगा जिसे मैं पहले ही सिकन्दिया सोरियाने के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। यह आज भी शार जिले की राजधानी है जो हाईडस्पीज तथा अकिसीनीज के सङ्गम स्थान से ठीक नीचे पड़ता है। अतः सोबी सोरी के पड़ोसी थे और इनमें प्रथम जाति नदियों के सङ्गम से ऊपर के प्रदेश में तथा द्वितीय जाति इस स्थान से नीचे निवास करती थी।

सोरी अथवा सुराक जाति की इस स्थिति से एरियन के इस कथन का उत्तर मिलता है कि कठायो ओक्षड्राकोय एवम् मल्ली के सहयोगी मित्र थे। यह पड़ोसी जातियाँ थी जो सदैव परस्पर युद्ध में व्यस्त रहती थीं परन्तु सामान्य शत्रु के सम्मुख एक हो जाया करती थीं।

प्लिनी ने सुद्रको की सीमा में सिकन्दर के अभियानों को हाईफासिस अथवा व्यास नदी के दूसरे तट तक सीमित बताया है। इस बिन्दु से सैड्रस नदी अर्थात् हैसीड्रस अथवा सतलज नदी तक की दूरी को उसने १५४ मील बताया है और सैड्रस से जोमानीज अथवा यमुना तक इतनी ही दूरी बताई है। परन्तु व्यास से यमुना तक अथवा पहाड़ियों के अधोभाग से प्रथम नदी पर कसूर तक तथा दूसरी नदी पर करनाल तक की दूरी १५० से १६० मील है अतः मेरा अनुमान है कि प्लिनी की मूल पुस्तक में केवल एक ही दूरी का उल्लेख किया गया है। हाइफसिस के पूर्वी तट का प्रसिद्ध स्थान जहाँ सिकन्दर ने "विश्राम एवम् रुदन" किया था कसूर तथा बजिदपुर के विपरीत सतलज एवम् व्यास नदियों के पुराने सङ्गम स्थान से कुछ दूरी पर इन दोनों नदियों के बीच निचली भूमि पर कहीं रहा होगा। इस बिन्दु से ऊपर २० मील की दूरी तक दोनों नदियाँ प्रारम्भिक काल से १७९६ ई० तक प्रायः समानान्तर एवम् एक दूसरे से कुछ ही मीलों के अन्तर पर बहती हैं। १७९६ ई० में अचानक ही सतलज नदी ने अपना मार्ग बदल दिया और अब यह हरी-की-पटन के पास व्यास से मिलती है। २० मील के भीतर इन दो नदियों के मध्य का क्षेत्र इतना छोटा था कि सिकन्दर

के पड़ाव से यमुना की दूरी का उल्लेख करते समय इसे भूल जाना सम्भव था। फिर भी मेरा विश्वास है कि सिकन्दर के समकालीनों ने वस्तुतः इसका उल्लेख किया था क्योंकि यमुना तट की दूरी का वर्णन करने के बाद प्लिनी का कथन है कि "कुछ प्रतिलिपियों में ५ मील अधिक जोड़ दिया गया है।" अब यह रोमन मील व्यास के पूर्वी तट से सतलज के पुराने मार्ग की दूरी का सही-सही वर्णन करते हैं और सम्भव है कि कुछेक प्राचीन लेखकों ने इस माप को कम महत्वपूर्ण समझकर इसकी अवहेलना की हो। सभी आंकड़ो पर सामान्य रूप से विचार करने से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर की वेदी के स्थान को हरी-की-पटन से कुछ मील नीचे सतलज के वर्तमान मार्ग पर देखना चाहिये और यह सोबरांव के सर्व ज्ञात खेतो से अधिक दूर नहीं था जो सतलज के पुराने मार्ग के अनेक घुमाओं से ५ मील से अधिक दूर नहीं है। अतः सिकन्दर के के समय मे मुद्राकाय अथवा सुराकस की सीमाये इस विन्दु तक विस्तृत रही होगी।

कई शताब्दियो तक अजुधान सतलज को पार करने का मुख्य घाट रहा है। यहाँ पर पश्चिम की ओर से डेरा ग़ाज़ी खाँ तथा डेरा इस्माईल खाँ से आने वाले दो मार्ग मिलते हैं। प्रथम मार्ग मानकेरा शोरकोट तथा हड़प्पा के रास्ते आता है दूसरा मार्ग मुल्तान से होकर आता है। इसी स्थान पर महान् विजेताओं, महमूद एवम् तैमूर ने तथा महान यात्री इब्न बतूता ने सतलज नदी को पार किया था। कहा जाता है कि पञ्जाब मे लूट-पाट के अपने अभियानो के समय सबुक्तगीन ने ३६७ हिजरी अथवा ९७७-७८ ई० मे इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था और पुन: ४७२ हिजरी अथवा १०७९-८० ई० में इब्राहिम गजनवी ने इस पर अधिकार किया था। तैमूर के आक्रमण के समय अधिकांश जनता भाग कर भटनेर चली गई थी और शेष जनता को उस निर्मोहर बर्बर ने प्रसिद्ध फकीर फरीदुद्दीन शकर गञ्ज के सम्मान मे छोड़ दिया था जिसकी समाधि अजुधान में है। इस फकीर से इस स्थान को पाक पट्टन अथवा "शुद्ध व्यक्ति के घाट" का आधुनिक नाम प्राप्त हुआ है। शुद्ध व्यक्ति फरीद को कहा गया है जिसके अन्तिम दिन अजुधान मे व्यतीत हुये थे। कहा जाता है कि निरन्तर उपवासो के कारण उसका शरीर इतना शुद्ध हो गया था कि क्षुधा को शान्त करने के लिये वह मिट्टी तथा पत्थरो सहित किसी भी वस्तु को मुँह मे डालते तो यह तुरन्त चीनी में परिवर्तित हो जाती थी। इसी कारण उसका नाम शक्कर गञ्ज अर्थात् 'शक्कर का भण्डार' रखा गया था। इस अद्भुत शक्ति को फारसी के एक सर्व प्रसिद्ध दोहे मे लिखा गया है :—

"सङ्ग दर दस्त-ओ-गुहार गरदद,
जहेर दर काम-वो-शक्कर गरदद।"

जिसका अर्थ इस प्रकार से किया जा सकता है। 'उसके हाथ में पत्थर मोती बन जाते हैं तथा उसके मुँह में विष मधु समान हो जाता है।'

उसकी स्मृति में लिखे एक अन्य दोहे से हमें ज्ञात होता है कि उसकी मृत्यु ६६४ हिजरी अथवा १२६५-६६ ई० में हुई थी और उस समय उनकी आयु ९५ वर्ष की थी। परन्तु अजुधान का पुराना नाम ही एक मात्र नाम है जिसका उल्लेख १३३४ ई० में इब्न बतूता ने तथा १३९७ मे तैमूर के इतिहासकारों द्वारा किया गया है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि पाक पट्टन का वर्तमान नाम अपेक्षाकृत पश्चात्वर्ती समय का होगा। सम्भवतः यह अकबर के शासन काल से अधिक पुराना नहीं है जब इस फकीर के वंशज नूर-उद-दीन ने अपनी प्रार्थनाओं द्वारा सम्राट के उत्तराधिकारी का जन्म पर अपने घराने की पूर्ववर्ती ख्याति प्राप्त कर ली थी।

मुल्तान प्रान्त

पञ्जाब का दक्षिणी प्रान्त मुल्तान है। ह्वेनसांग के अनुसार इसका घेरा ६६७ मील था जो नदियों के मध्य वास्तविक प्रदेश के घेरे से इतना अधिक है कि उपरोक्त घेरे के अनुसार यह प्रान्त नदी पार तक विस्तृत रहा होगा। अकबर के समय में कम से कम १७ जिले अथवा भिन्न-भिन्न परगने मुल्तान प्रान्त से सम्बन्धित थे जिनमें उच, दिराबल माज तथा मरोट आदि वह सभी जिले जिन्हे मैं पहचान सकता हूँ सतलज के पूर्व मे थे। यह नाम इस बात को दर्शाने के लिये पर्याप्त हैं कि मुल्तान की पूर्वी सीमा घघर नदी के पुराने मार्ग से परे बीकानेर की मरु भूमि के समीप तक विस्तृत थी। इस प्रदेश को जो अब बहालपुर की सीमाएँ बनाता है विशाल मरुस्थल की प्राकृतिक रुकावट इसे पूर्व के समृद्ध प्रान्तो से अलग करती है। एक सुदृढ़ सरकार के अन्तर्गत यह सदैव मुल्तान का एक भाग रहा है और दिल्ली के मुस्लिम साम्राज्य के पतन के समय ही बहावल खाँ ने एक भिन्न छोटा राज्य की स्थापना की थी। अतः मेरा अनुमान है कि सातवीं शताब्दी मे मुल्तान प्रान्त की सीमाओं मे नदियों के बीच के प्रदेश के अतिरिक्त बहावलपुर को वर्तमान सीमाओ का उत्तरी अर्द्ध भाग सम्मिलित रहा होगा। उत्तरी सीमा को पहले ही सिन्धु नदी पर डेरा दीन पनाह से लेकर सतलज नदी पर पाक पट्टन तक, १५० मील विस्तृत बताया जा चुका है। पश्चिम ने खानपुर तक सिन्धु नदी की सीमान्त रेखा १६० मील लम्बी है। पूर्व मे पाक पट्टन से पुरानी घघर नदी तक यह सीमा ८० मील है तथा दक्षिण मे खानपुर से घघर तक इस सीमा की लम्बाई २२० मील है। कुल मिलाकर यह सीमा रेखा ६६० मील है। यदि ह्वेनसाग के आंकडे पञ्जाब के छोटे कोस पर आधारित थे तो कुल घेरा ६६७ मील का $\frac{६}{७}$ वाँ भाग अथवा ४३७ मील होगा और इस स्थिति मे यह प्रान्त दक्षिण में मिठानकोट से आगे विस्तृत नही हो सकता था।

मुल्तान के भूगोल का वर्णन करते समय उन महान् परिवर्तनो को ध्यान मे रखना आवश्यक है जो इस प्रान्त मे प्रवाहित होने वाली सभी नदियो के मार्गों मे हुये

हैं। तैमूर तथा अकबर के समय में चेनाब तथा सिन्धु नदियों का सङ्गम मिठानकोट के वर्तमान सङ्गम स्थान से ६० मील ऊपर उछ के विपरीत होता था। यह उस समय भी अपरिवर्तित था जब १७८८ ई० मे रेनैल ने "भारत का भूगोल" लिखा था और उसके बाद १७९६ ई० मे जब विल्फोर्ड के सर्वेक्षक मिर्जा मुगल बेग ने इस स्थान की यात्रा की थी उस समय भी यह अपरिवर्तित था परन्तु वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में सिन्धु नदी धीरे-धीरे अपना मार्ग बदलती गई और उछ के ऊपर २० मील की दूरी पर अपने पुराने मार्ग को छोड़ मिठानकोट मे पुराने मार्ग मे पुनः प्रवाहित होने तक इस नदी का प्रवाह दक्षिण-दक्षिण पश्चिम की ओर है।

रावी एवम् चेनाब का वर्तमान सङ्गम मुल्तान से ३० मील से अधिक ऊपर दिवाना सनन्द के समीप होता है परन्तु सिकन्दर के समय मे हाईड्राओटीज तथा अकिसीनीज़ का सगम मल्ली की राजधानी से कुछ दूर नीचे की ओर होता था जिसे (मल्ली) मैं मुल्तान के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। पुराना मार्ग अब भी है और मुल्तान जिले के बडे मानचित्रो मे इसे समुचित रूप से दिखाया जाता है। यह वर्तमान मार्ग को सराय सिधु मे छोड़ देती है तथा दक्षिण दक्षिण पश्चिम की ओर ३० मील तक घुमावदार मार्ग मे प्रवाहित होती है। तत्पश्चात् यह अठारह मील के लिए अचानक पश्चिम की ओर मुल्तान तक प्रवाहित होती है और मुल्तान के दुर्ग का पूरी तरह घेर डालने के बाद मुल्तान के नीचे ५ मील तक पश्चिम की ओर चली जाती है। तत्पश्चात् यह अचानक दक्षिण दक्षिण पश्चिम की ओर मुड जाती है और १० मील के बाद यह चेनाब के पाट की निचली भूमि मे अन्तिम रूप से लुप्त हो जाती है। आज तक रावी अपने प्राचीन मार्ग से चिपटी हुई है और अधिक बाढ़ के समय नदी का पानी आज भी पुराने मार्ग से मुल्तान तक चला जाता है जैसा कि दो अवसरों पर मैं स्वयं देख चुका हूँ। परिवर्तन की तिथि अज्ञात है परन्तु निश्चित ही यह परिवर्तन ७१३ ई० में मुल्तान पर मुहम्मद बिन कासिम के अधिकार के बाद हुआ है और पुराने मार्ग से निकाली गई नहरो की अत्यधिक सख्या से मेरा अनुमान है कि मुख्य नदी अपेक्षाकृत निकट भूतकाल तक और सम्भवतः तैमूर के आक्रमण के समय तक पुराने मार्ग से प्रवाहित थी। फिर भी यह परिवर्तन अकबर के शासन काल से पूर्व हुआ था क्योंकि अबुलफजल ने चेनाब तथा झेलम के सङ्गम से चेनाब तथा रावी के सङ्गम स्थान को २७ मील तथा अन्तिम स्थान से चेनाब तथा सिन्धु के सङ्गम स्थान को ६० मील की दूरी पर बताया है और यह दोनों आंकडे इन नदियो की पश्चात्वर्ती स्थिति से मिलते हैं।

व्यास एवं सतलज का वर्तमान संगम केवल १७९० ई० में हुआ है जब सतलज धर्म कोट में अपना पुराना मार्ग त्याग कर हरी-की पट्टन में व्यास नदी से मिलती है। पिछली अनेक शताब्दियों तक यह संगम स्थान निरन्तर कसूर तथा फीरोजपुर के बीच हरी-की-पट्टन के घाट से कुछ ऊपर रहा था। जौहर ने १५५५ ई० में तथा

अबुल फजल ने १५९६ ई० में इस संगम का उल्लेख किया है। यद्यपि फिरोजपुर के समीप दोनों नदियों का संगम स्थान काफी समय से निर्धारित रहा है फिर भी कुछ समय पश्चात् भी व्यास नदी का जल पुराने मार्ग से प्रवाहित होता रहा है क्योंकि अबुल फजल ने लिखा है कि—"फिरोजपुर के समीप १२ कोस की दूरी तक व्यास एवं सतलज नादियाँ सयुक्त रूप से प्रवाहित हैं। तत्पश्चात यह हर, हरी, दण्ड तथा नूरनी नामक चार छोटी नादियो मे विभाजित हो जाती हैं और यह चारो मुल्तान नगर के समीप पुनः मिल जाती है।" व्यास एवं सतलज के यह पुराने मार्ग अभी भी देखे जा सकते है और इनसे सतलज तथा व्यास के ऊंचे तट के मध्य सम्पूर्ण दोआब मे सूखी नहरो का जटिल जाल बिछा हुआ है। ग्लेडविन द्वारा आईन-ए-अकबरी के अनुवाद में दिये गये नामो मे अब कोई नाम नही मिलता। मेरे विचार मे इसका कारण फारसी वर्णमाला की त्रुटि है जिसके कारण नामो का उच्चारण करने मे निरन्तर त्रुटि हुआ करती है। मैं हर को नरा, हरी को राधी तथा नूरनी को सूक-नई समझता हूँ जो हड़प्पा के दक्षिण मे व्यास नदी के सूखे मार्ग हैं। दण्ड सम्भवतः सतलज का एक पुराना मार्ग धमक अथवा दन्क है जो आगे चल कर भटियारी कहलाती है तथा महलमी, कहकर तथा लोधरान से होकर चेनाब से अपने सगम से थोड़ा ऊपर अपने नवीन मार्ग में मिल जाती है। हमारे अधिकांश मानचित्रो मे पुराने व्यास को भटियारी के निचले मार्ग मे मिलता हुआ दिखाया गया है जबकि इसका सुनिश्चित एव जीवित मार्ग शुजाहाबाद से २० मील नीचे चेनाब मे मिलता है और इसका दूरस्थ दक्षिणी बिन्दु भटियारी के समीपस्थ घुमाव से १० मील की दूरी पर है।

ऊपर बताये गये परिवर्तन पञ्जाब की नदियो के केवल प्रमुख परिवर्तन है जो बारम्बार अपना मार्ग बदल देते हैं। व्यास नदी के परिवर्तन उल्लेखनीय हैं क्योंकि इस नदी ने लगभग अपना स्वतन्त्र मार्ग त्याग दिया है और अब यह सतलज की सहायक नदी मात्र रह गई है। इस प्रकार कलोवाल के नीचे चेनाब की घाटी लगभग ३० मील चौड़ी है तथा गुगेरा के समीप रावी की घाटी २० मील चौड़ी है। दोनो नादियो की दूरस्त सीमाये सुनिश्चित ऊँचे तटो द्वारा निर्धारित हैं जिन पर पञ्जाब के अधिक प्राचीन नगरों मे अधिकाश नगर अवस्थित है। मुल्तान खण्ड मे यह प्राचीन स्थान अधिक सख्या मे दिखाई देते हैं परन्तु यह सभी अब अधिकांश रूप से निर्जन तथा नाम विहीन है तथा सम्भवतः नदियो के वहाँ से हट जाने के साथ-साथ जनसाधारण ने इन्हे त्याग दिया होगा। तुलम्बा के प्राचीन नगर के साथ निश्चित ही यही कारण था जिसे रावी के मार्ग मे परिवतन के परिणाम स्वरूप १५० वर्ष पूर्व ही त्याग दिया बताया जाता है क्योंकि इस परिवर्तन से नगर को पानी का मिलना पूर्णतय बन्द हो गया था। तुलम्बा के पश्चिम दक्षिण पश्चिम मे २० मील की दूरी पर एक ध्वस्त नगर अटारी के निर्जन हो जाने का यही कारण था यद्यपि यह तुलम्बा से कुछ समय पश्चात् निर्जन हुआ था।

इस नगर की जल पूर्ति पुरानी रावी से एक नहर द्वारा की जाती थी। अपने वर्तमान विवरण में मैं जिन स्थानों का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ वह निम्न प्रकार से है :—

बारी दोआब — (१) तुलम्बा, (२) अटारी, (३) मुल्तान

जलन्धर पीठ संगम पर — (४) कहरोर, (५) उन्छ

इनमें चार स्थान भारत के इतिहास मे प्रसिद्ध हैं और द्वितीय स्थान अटारी को मैंने इसके विस्तार एवं स्थिति के कारण सम्मिलित किया है जिसने निश्चित ही सिकन्दर एवं पञ्जाब के अन्य विजेताओं का ध्यान आकर्षित किया होगा।

तुलम्बा

तुलम्बा नगर मुल्तान से ५२ मील उत्तर पूर्व में रावी के बायें तट पर अवस्थित है। यह चारों ओर से ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है तथा यहाँ के गृह मुख्यतः तुलम्बा के प्राचीन दुर्ग से लाई गई जली ईंटों से बनाये गये हैं। यह दुर्ग वर्तमान नगर से एक मील दक्षिण मे अवस्थित है। मसोन के अनुसार यह "प्राचीन समय में विशेष रूप से सुदृढ़ दुर्ग रहा होगा" और निस्सन्देह यह ऐसा ही था क्योंकि तैमूर ने इसे अछूता छोड़ दिया था अन्यथा इस पर घेरा डालने से उसकी प्रगति में बाधा पड़ती थी। विचित्र बात है कि यह स्थान बर्न्स के उल्लेखों से बचा रहा क्योंकि इसकी उन्नत दीवारें जिन्हे अधिक दूरी से देखा जा सकता है सामान्यतः यात्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। मै दो बार इस स्थान पर गया हूँ। इसमे एक खुला हुआ नगर था जो दक्षिण की ओर से १००० फुट चतुराकार एवम् उन्नत दुर्ग से सुरक्षित है। इसकी बाहरी दीवारें मिट्टी की बनी हुई हैं और बाहर से २० फुट ऊँची है। इसके ऊपर इसी ऊँचाई की मिट्टी की एक अन्य दीवार है। प्रारम्भ में इन दोनों दीवारो में १२×८×२½ इञ्च की ईंटें लगाई गई थीं। मिट्टी की दीवार के भीतर १०० फुट चौड़ा स्थान अथवा खाईं है। जिसने ४०० फुट वर्गाकार एवम् ४० फुट ऊँचे भीतरी दुर्ग को चारो ओर से घेर रखा है और इसके मध्य में ७० फुट ऊँचा एक चतुर्भुजाकार दुर्ग है जो सम्पूर्ण दुर्ग पर नियन्त्रण करता है। चारों ओर फैले हुए ईंटों के अनेकानेक टुकड़े तथा बाहरी ओर अनेक स्थानों पर ईंटों के लगाये जाने के चिह्न जनसाधारण के इन कथनों की पुष्टि करते हैं कि मिट्टी की दीवारों में पहले ईंटें लगाई गई थीं। मैं यह बता चुका हूँ कि इस प्राचीन दुर्ग को लगभग ३०० वर्ष पूर्व रावी के जल मार्ग में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप त्याग दिया गया था क्योंकि यह स्थान पूर्ण रूपेण

रावी के जल पर निर्भर था। ईंटों के हटाये जाने के कार्य को शुजावल खाँ से संबंधित किया जाता है जो मुल्तान के महमूद लङ्ग का दामाद एवम् वजीर था तथा १५१० से १५१५ तक उसके उत्तराधिकारी का बहनोई था।

तुलम्बा की प्राचीनता प्रथाओ एवम् विशाल आकार की ईंटों से प्रमाणित होती है जो मुल्तान के खण्डहरो एवम् उसकी दीवारों में प्राप्त प्राचीनतम ईंटों के समान हैं। प्राचीन नगर को तैमूर ने लूट लिया था एवम् जलाकर भस्म कर दिया था और यहाँ के निवासियो का बध करवा दिया था। परन्तु यह दुर्ग उसकी क्रूरता से बच गया था। इसका कारण कुछ अशो तक इसकी अपनी सुदृढ़ स्थिति थी और कुछ अंशों का यह कारण था कि आक्रमणकारी शीघ्र अति शीघ्र दिल्ली की ओर जाना चाहता था। एक प्रथा के अनुसार महमूद गजनी ने तुलम्बा पर अधिकार कर लिया था जिसके सत्य होने की अधिक सम्भावना है क्योंकि यह नगर उसके मुल्तान जाने के सीधे मार्ग से कुछ ही परे रहा होगा। इसी कारण से मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि यह नगर भी सिकन्दर द्वारा अधिकृत नगरो में रहा होगा। मसोन ने पहले सूचना दी है कि यह "मल्लो की राजधानी" थी अथवा सम्भवतः यह "ब्राह्मणों के अधिकार मे एक दुर्ग था जिन्होने हठ पूर्वक इसकी रक्षा की जबकि यह रक्षा उनके लिये घातक थी और यह दुर्ग प्रत्यक्ष रूप से मल्ली की राजधानी का एक भाग था।" परन्तु मैं इनमे किसी भी प्रस्ताव से सहमत नही हूँ अतः मैं अब सिकन्दर के मार्ग के इस भाग के विभिन्न विवरणों पर विचार एव उनकी तुलना करूँगा।

कोट कमालिया के अपने विवरण मे मैं इस स्थान को, हाईडस्पीज् तथा अकिसीनीज के सगम स्थान से मल्ली के विरुद्ध यात्रोपरान्त सिकन्दर द्वारा अधिकृत प्रथम नगर के अनुरूप समझने के कुछ ठोस कारण बता चुका हूँ। एरियन ने तब लिखा है कि "अपने सैनिको को भोजनादि एवं विश्राम हेतु कुछ समय देने के पश्चात् सिकन्दर ने रात्रि के प्रथम पहर मे आगे बढना शुरू किया तथा उस रात की कठिन यात्रोपरान्त लगभग सूर्योदय के समय हाइड्राओटीज् नदी पर पहुँच गया और यह जानकर कि मल्ली राज्य के कुछ दलों ने कुछ ही समय पूर्व नदी को पार किया है उसने तुरन्त उन पर आक्रमण कर दिया और अनेक सैनिको को तलवार के घाट उतार दिया और अपनी सेना सहित स्वय नदी पार कर उस ओर भाग कर जाने वाले शत्रुओं का पीछा किया। उसने अनेक सैनिको का बध करा दिया और अनेक बन्दी बना लिये। फिर भी कुछ सैनिक बच कर भाग निकले और एक नगर मे चले गये जो कृतिम एव प्राकृतिक रूप से सुदृढ बना हुआ था।" आठ अथवा नौ घण्टो को सम्पूर्ण रात्रि की यात्रा २५ मील से कम नही रही होगी जो कोट कमालिया से तुलम्बा के विपरीत रावी की ठीक दूरी है। अतः मेरा अनुमान है कि यहाँ सिकन्दर ने रात्रि नदी को पार किया होगा और मैं तुलम्बा को ही "कृत्रिम एव प्राकृतिक रूप से सुदृढ़ बनाया गया

नगर" समझता हूँ जिससे कृत्रिम कार्य था। ईंटों की दीवार एवम् प्राकृतिक सहयोग मिट्टी की दीवारों के अनेक टीलों के रूप में था। कर्टियस का विवरण एरियन के विवरण से मिलता है, "एक नदी के तट पर एक अन्य राष्ट्र ने ४००० सैनिकों की सेना लेकर उसका सामना किया। नदी पार कर उसने उन पर आक्रमण कर दिया और जिस दुर्ग में उन्होंने शरण ली थी उस पर भीषण आक्रमण कर अधिकार कर लिया।" दिवोडोरस ने अगलसाय नामक जाति के सम्बन्ध में इसी कथा का उल्लेख किया है कि उन्होंने ४००० पैदल सेना एवम् ३ हजार घुड़सवार सेना एकत्रित कर सिकन्दर का सामना किया था। यह भी विवरण प्रत्यक्ष रूप से एक ही स्थान की ओर संकेत करते हैं जो रावी के बायें तट के समीप एक सुदृढ़ दुर्ग था। यह विवरण हड़प्पा के लिए भी उपयुक्त हो सकता है परन्तु मैं यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि यह सम्भवतः वह नगर था जिसके विरुद्ध पेरडिक्कस को भेजा गया था। इसके अतिरिक्त कोट कमालिया से इसकी दूरी १६ मील से अधिक नहीं है। इसके विपरीत तुलम्बा सभी बातों का उचित उत्तर दे सकता है और यह मल्ली की राजधानी मुल्तान की ओर जाने वाले मार्ग पर अवस्थित है जिस ओर सिकन्दर अग्रसर हो रहा था।

अगलसाय अथवा अगलेसेनसाय का नाम भ्रम में डालने वाला है। एरियन के अनुसार नगर की जनता मल्ली थी परन्तु यह उल्लेखनीय है कि दिवोडोरस तथा कर्टियस ने कुछ समय पूर्व तक ओक्षड्रेकाय अथवा मल्ली के नाम का उल्लेख नहीं किया था। जस्टिन ने गेस्टियानी नामक जाति को अरेस्टाय अथवा कगायी जाति के साथ सम्बन्धित किया है अतः इन्हें मल्ली अथवा ओक्षड्रेकाय के समान होना चाहिये। अलग अथवा अगलासा नगर का नाम रहा होगा परन्तु दुर्भाग्यवश तुलम्बा अथवा आस-पास के किसी भी स्थान के नाम से इसकी समानता नहीं है।

अटारी

सभी इतिहासकारों ने मल्ली के विरुद्ध सैनिक अभियान के अन्तर्गत सिकन्दर द्वारा अधिकृत तीसरे नगर का उल्लेख एक ही ढंग से किया है। एरियन के अनुसार "सिकन्दर तब ब्राह्मणों के किसी नगर की ओर बढ़ा जहां उसकी सूचनानुसार मल्लियों का एक अन्य दल शरण लिये हुए था।" जिस पर आक्रमण होने की स्थिति में उन्होंने अपने घरों को आग लगा दी और उस अग्नि में जल कर भस्म हो गये। इस घेरे के समय लगभग ५००० मल्ली मारे गये तथा उनका शौर्य इतना महना था कि बहुत कम व्यक्ति जीवितावस्था में शत्रु के हाथ लगे।" कर्टियस तथा दिवोडोरस दोनों ने ही अग्नि एवं दुर्ग की सेना द्वारा ठोस मुकाबला किये जाने का उल्लेख किया है। अन्तिम लेखक ने इस सेना की संख्या २०,००० बताई है जिनमें केवल ३० ० सैनिक दुर्ग में जाकर

सुरक्षित हो सके। यहां उन्होंने सिकन्दर से सन्धि कर ली। कर्टियस ने भी लिखा है कि दुर्ग को कोई क्षति नही हुई थी तथा सिकन्दर ने अपनी सैनिक टुकड़ी छोड़ दी थी।

यह सभी विवरण अटारी के ध्वस्त नगर एवं दुर्ग की स्थिति एवं आकार से भली-भाँति मिलते हैं जो तुलम्बा के २० मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में तथा मुल्तान की ओर जाने वाली सड़क पर अवस्थित है। इन अवशेषो मे ७५० फुट वर्गाकर तथा ३५ फुट ऊँचा एक सुदृढ़ दुर्ग है जिसके चारो ओर खाई है तथा जिसके मध्य में ५० फुट ऊँचा एक बुर्ज है। दो किनारो पर नगर के अवशेष हैं जिनसे २० फुट ऊँचा एवं १२०० फुट वर्गाकार टीला बना हुआ है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र १८०० फुट लम्बा एवं १२०० फुट चौड़ा खण्डहरो का एक ढेर है। इसके इतिहास के सम्बन्ध मे कोई प्रमाण तक नही है परन्तु ईटो का विशाल आकार यह दिखाने के लिये पर्याप्त है कि यह महत्व-पूर्ण प्राचीनता का स्थान रहा होगा। प्राचीन नगर का नाम अज्ञात है। अटारी केवल पड़ोस के गाँव का नाम है जिसे निकट भूत काल मे सिक्खो के अटारीवाला परिवार के किसी सदस्य ने स्थापित करवाया था। परन्तु इसके विस्तार एवं दृढ़ता को देखकर एवं तुलम्बा तथा मुल्तान के मध्य इसके अनुकूल स्थिति से मेरा अनुमान है कि अटारी के ध्वस्त टीले को ब्राह्मणो के सुदृढ़ नगर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जहाँ सिकन्दर का डट कर मुकाबला किया गया था।

कर्टियस ने इस नगर के सम्बन्ध मे कुछ विस्तृत विवरण दिया है जिसकी ओर एरियन अथवा दियोडोरस ने संकेत तक नही किया, परन्तु वह कुछ महत्व दिये जाने के हकदार है क्योंकि सम्भव है कि इसे दोनों सहयोगियो के कथनो मे किसी एक से सम्बन्धित किया जा सके। उसने लिखा है कि "सिकन्दर ने एक नाव मे बैठ कर दुर्ग की परिक्रमा की थी" जो सम्भव हो सकता है क्योंकि इस खाई को निश्चित रूप से इच्छानुसार रावी के जल से भरा जा सकता था जैसा कि मुलतान की खाई के सम्बन्ध मे किया जा सकता है। अब, अटारी का पुराना दुर्ग आज भी चारो ओर खाई से घिरा हुआ है जिसे समीप से गुजरती पुरानी नहर से भरा जा सकता था। इस स्थान पर नहरो के मार्गों की संख्या विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मैंने अटारी के ठीक पश्चिम में इन नहरो के १२ समानान्तर पुराने मार्ग गिने थे और यह सभी नहरें सराय सिधु के दक्षिण मे पुरानी रावी से निकाली गई थी। अतः मैं इस सम्भावना को स्वीकार करने के लिये पूर्णतयः तत्पर हूँ कि ब्राह्मणो का नगर चारों ओर से जल से भरी खाई से घिरा हुआ था और सिकन्दर उनकी मोर्चा बन्दी देखने के उद्देश्य से इस खाई में गया था। परन्तु जब कर्टियस यह लिखता है कि गङ्गा को छोड़ भारत की तीन बड़ी नदियाँ अर्थात् सिन्धु, हाईड्राओटीज़ तथा अकिसानीज़ दुर्ग के चारो ओर खाई बनाने के लिये एक साथ मिल जाती हैं तो मैं केवल यह अनुमान लगा सकता हूँ कि यह विवरण सम्भवतः पाँच नदियों के संगम स्थान नीचे किसी अन्य नगर के पश्चात्वर्ती

घेरे के विवरण से त्रुटिपूर्वक लिया गया है अथवा लेखक ने दुर्ग की खाइयों एवं नदियों के संगम के दो विभिन्न विवरणों को एक साथ मिला दिया है। दियोडोरस ने भी नदियों के संगम का उल्लेख किया है परन्तु उसने इनके जल द्वारा किसी दुर्ग के चारों ओर खाई बनाये जाने का कोई संकेत नहीं दिया अतः यह सम्भव है कि तीन नदियों का यह विवरण कर्टियस को कल्पना की उडान हो सकती है।

मुल्तान

मुल्तान की प्रसिद्ध महानगरी मूल रूप से रावी के दो टापुओं पर अवस्थित थी परन्तु नदी ने काफी समय पूर्व ही अपना पुराना मार्ग त्याग दिया है तथा अब इसका निकटतम बिन्दु ३० मील से अधिक दूरी पर है। परन्तु बाढ के समय रावी का जल अब भी पुराने मार्ग मे प्रवाहित होता है तथा मैंने दो बार मुल्तान की खाइयों को नदी के अतिरिक्त जल से भरते हुए देखा है। (१) मुल्तान के अर्न्तगत दीवारों से घिरा एक नगर एव एक सुदृढ़ नगर है जो पुरानी रावी के विपरीत किनारो पर अवस्थित थे। यह नदी किसी समय इन दोनो के बीच एवं इनके चारो ओर प्रवाहित थी। इनके मूल स्थान पर दो छोटे टीले थे जिनकी ऊँचाई प्रदेश की सामान्य ऊँचाई से ८ अथवा १० फुट से अधिक नही थी। इनकी वर्तमान ऊँचाई ४५ से ५० फुट तक है और ३५ से ४० फुट की यह भिन्नता कई शताब्दियो से खण्डहरो के एकत्रित हो जाने के कारण है। मैंने व्यक्तिगत रूप से यहाँ की प्राकृतिक मिट्टी तक अनेक कुएँ खुदवा कर इस तथ्य की पुष्टि की थी। प्राकृतिक मिट्टी से मेरा आशय ईंटो राख एव मानव अधिकार के अन्य प्रमाणो से रहित मिट्टी से है।

दुर्ग को एक असमान अर्ध व्यास कहा जा सकता है जिसका अर्ध व्यास अथवा उत्तर की ओर उन्मुक्त सीधी रेखा २५०० फुट लम्बी अथवा नगर की ओर तिरछा भाग ४१०० फुट है। इस प्रकार इसका पूर्ण व्यास ६६०० फुट अथवा १¼ मील है। इस नगर मे चार द्वारो के पार्श्व में दो-दो बुर्जों सहित ४६ बुर्ज थे। दीवार युक्त नगर जिसमे तिरछे अर्ध व्यास के दो तिहाई भाग तक दुर्ग को घेरा हुआ है, की लम्बाई ४२०० फुट एव इसकी चौड़ाई २४०० फुट है जिसकी लम्बी सीधी रेखा दक्षिण पश्चिम की ओर है। नगर एवं दुर्ग सहित मुल्तान की दीवारों का कुल व्यास १५०० फुट

(१) बर्न्स ने 'पजाब, बोखारा आदि की यात्राओ' मे गलती से मुल्तान के आस-पास के प्रदेश के जल मग्न होने का कारण "चेनाब एवं उसकी नहरों" को बताया है। यदि वह स्थलमार्ग के स्थान पर जल मार्ग से यात्रा करता तो उसे यह स्पष्ट हो जाता कि यह जल रावी मे बाढ़ आ जाने से वहाँ आया था तो सराय सिधु मे अपने पुराने मार्ग में प्रवाहित होकर मुल्तान की ओर आ जाती है। मैंने १८५६ ई० की अगस्त मे इस क्षेत्र की यात्रा की थी तथा रावी के पुराने मार्ग को पूर्ण बाढ़ में देखा था।

अथवा लगभग ३ मील है एवं उपनगरों सहित इस स्थान का पूर्ण व्यास ४½ मील है। यह अन्तिम आंकडे ह्वेनसांग के आंकडों के अत्याधिक समीप है। जिसने मुल्तान के व्यास को ३० ली अथवा ५ मील बताया है। यह आकडे एलफिन्स्टन के आकड़ों से अधिक समानता रखते है जिसने मुल्तान को "पूर्ण व्यास मे साढ़े चार मील से कुछ अधिक" बताया है और उसके आंकड़े सामान्यतः शुद्ध है। जिस समय एलफिनस्टन तथा बर्न्स ने इस दुर्ग को देखा था, यहां खाइयां नही थी क्योकि मूल्यतः यह रावी के जल से घिरा हुआ था। परन्तु बर्न्स की यात्रा के कुछ ही समय पश्चात् रणजीतसिंह के प्रतिभाशाली गवर्नर सांवनमल द्वारा एक खाई खुदवाई गई थी। कहा जाता है कि इसकी दीवारों का निर्माण शाहजहां के सबसे छोटे पुत्र मुरादबख्श ने करवाया था। परन्तु १८५४ ई० में मुल्तान के दुर्ग को गिराते समय मैंने देखा था कि यह दीवारे सामान्यतः दो पक्तियो मे थीं जिसकी बाहरी दीवार लगभग ४ फुट मोटी तथा भीतरी ३½ फुट से ४ फुट मोटी थी। (१) अतः मेरा निष्कर्ष है कि मुरादबख्श मे केवल बाहरी दीवार का निर्माण करवाया था। सम्पूर्ण दीवारें बाहरी दीवारों को छोड़ जली हुई ईंटों एवम् मिट्टी की बनी हुई है। बाहरी दीवार पर चूने का ९ इञ्च मोटा पलस्तर किया हुआ है। मुल्तान अनेक विभिन्न नामो से प्रसिद्ध है परन्तु यह सभी नाम विष्णु अथवा सूर्य से सम्बन्धित हैं। इस दुर्ग के किसी समय के प्रसिद्ध मन्दिर मे सूर्य की पूजा की जाती थी। अब्बुरेहान ने कश्यपपुर, हसपुर, भागपुर, साम्भपुर, नामो का उल्लेख किया है और इस सूची मे मैं प्रह्लादपुर तथा अधिष्ठान के नाम जोड देना चाहता हूं। जनता की प्रथाओ के अनुसार कश्यपपुर का निर्माण कश्यप ने करवाया था जो १२ अदित्यो एवम् दैत्यो का पिता था। यह अदित्य अथवा सूर्य देवता अदिति के पुत्र थे जबकि दैत्य दिति के पुत्र थे। उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकश्यप नाम का दैत्य था जो विष्णु के सर्व व्यापी होने के तथ्य को स्वीकार न करने के कारण सम्पूर्ण भारत मे प्रसिद्ध है। जिसके कारण नरसिंह अवतार हुआ था। उसका उत्तराधिकारी उसका अधिक प्रसिद्ध पुत्र एव विष्णु का उत्साही पुजारी प्रह्लाद था जिसके नाम पर नगर का नाम प्रह्लादपुर रखा गया था। उसका प्रपौत्र बाण, जिसे बाणासुर कहा जाता था कृष्ण का असफल विरोधी था जिसने (कृष्ण) मुल्तान पर अधिकार कर लिया था। यहाँ कृष्ण के पुत्र साम्ब ने मित्रवन की वृक्षवाटिका में

(१) यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि सीखी दरवाजा के समीप दीवार को गिराने पर मुझे वह दोनों गोले प्राप्त हुए थे जिन्हे १०० पौण्ड की प्रसिद्ध तोप से फेंका गया था। इस तोप का प्रयोग सिखों के भङ्गी मिस्सल ने इस शताब्दी के प्रारम्भ काल मे मुल्तान के विरुद्ध किया था। यह दोनो गोले ७ फुट मोटी ईंटों की दीवार के पार चले गये थे तथा दोनों ही एक दूसरे से केवल ३ फुट के भीतर थे।

शरण ली थी एवम् मित्र अथवा सर्य की उपासना से उसका कोढ़ जाता रहा था। तत्पश्चात् उसने अधिष्ठान अर्थात् "प्रथम पूजा स्थान" नामक मन्दिर में मित्र की स्वर्ण मूर्ति बनवाई थी और इस प्रकार साम्ब द्वारा प्रारंभ की गई सूर्य की पूजा मुल्तान के स्थान पर वर्तमान समय तक प्रचलित है।

कृष्ण के पुत्र साम्ब की कथा का उल्लेख भविष्य पुराण में मिलता है और चूँकि इस पुराण मे मित्रवन को चन्द्रभाग अथवा चेनाब नदी के तट पर दिखाया गया है अतः यह ग्रन्थ अपेक्षाकृत पश्चात्वर्ती समय में लिखा गया है जब मुलतान के समीप पुरानी रावी के प्रवाहित रहने की सभी स्मृतियाँ लुप्त हो चुकी थीं। फिर भी अन्य ग्रन्थो से हम जानते हैं कि मुल्तान के स्थान पर सूर्य की पूजा अधिक प्राचीन समय से प्रचलित है। सातवी शताब्दी मे ह्वेनसांग ने अत्यधिक सुसज्जित देवता की स्वर्ण मूर्ति सहित एक सुन्दर मन्दिर को देखा था जिसमें भारत के सभी भागो के राजा भेंट भेजा करते थे। अतः प्रारम्भिक अरब विजेताओ मे यह स्थान "स्वर्ण मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध था तथा मसूदी ने इस बात को पुष्टि की है कि एल मुल्तान का अर्थ "स्वर्ण की चरागाहे" था। ह्वेनसांग ने इसे म्यू-लो सान पो कहा है जो श्री एम विविन डी सेन्ट मार्टिन के अनुसार मूलस्थान,पुर का अनुवाद है। स्वय जनसाधारण मे यह स्थान मूल-स्थान नाम से प्रचलित है जो अबुरिहान द्वारा उद्धृत मून-तान के स्वरूप से मिलता है जिसे एक काश्मीरी लेखक से लिया गया था। मूल का अर्थ है "जड अथवा उत्पत्ति" तथा बोल चाल की भाषा मे थान का अर्थ है "स्थान अथवा पूजा गृह।" इस प्रकार मूल-स्थान का अर्थ है "मूल का मन्दिर" जिसे (मूल को) मैं सूर्य का विशिष्ट नाम समझता हूँ। अमरकोश में सूर्य का एक नाम ब्रधन दिया गया है जो मूल का पर्यायवाची शब्द है। अतः ब्रधन को लेटिन के रडिक्स अथवा रेडियस से सम्बंधित किया जा सकता है परन्तु रडिक्स न केवल मूल उत्पत्ति अथवा जड़ का संकेत करता है वरन् एक विशेष जड़-मूली का प्रतिनिधित्व भी करता है। इसी प्रकार मूल, उत्पत्ति अथवा जड़ और मूलक, मूली का संकेत करते हैं। सूर्य की किरण एवं मूलो का परस्पर सम्बन्ध दोनों की आकृति मे समानता में निहित है अतः रेडियस अथवा मूल शब्दों का प्रयोग एक चक्के की सीखचियों के लिए भी किया जाता है। विल्सन का कथन है कि मूल-स्थान का अर्थ है "स्वर्ग, आकाश, अन्तरिक्ष, वायुमण्डल, परमात्मा" और इनमें प्रत्येक नाम आकाशीय अन्तरिक्ष के अधिष्ठाता के रूप मे सूर्य के लिये प्रयोग किया जा सकता है। इन्हीं कारणों से मेरा अनुमान है कि "मूल किरणों के देवता के रूप में सूर्य को केवल एक विशिष्ट उपाधि है तथा मूलस्थानपुर का अर्थ केवल "सूर्य मन्दिर वाला नगर" है। भाग तथा हंस सूर्य के दो सर्व ज्ञात नाम है अतः भागपुर एवम् हंसपुर मुल्तान के पर्यायवाची शब्द हैं। प्राचीनतम नाम कश्यपपुर अथवा सामान्य उच्चारणा-नुसार कश्यपुर बताया जाता है जिसे मैं हेकायटस के कसपापुरोस तथा हिरोदतस के

कस्पातुरोस और साथ ही साथ टालमी के कश्पीरा के अनुरूप समझता हूँ। अन्तिम नगर को रहुडिस अथवा रावी के निचले जलमार्ग पर सन्दोभाग अथवा चन्द्रभाग के साथ अपने सङ्गम स्थान से ठीक ऊपर एक मोड़ पर अवस्थित बताया गया है। अतः कश्पीरा की स्थिति कश्यपपुर अथवा मुल्तान की स्थिति से ठीक-ठीक मिल जाती है जो रावी के पुराने तट के उस बिन्दु पर अवस्थित है जहाँ यह नदी दक्षिण पूर्व से पूर्व की ओर मुड़ जाती है। यह अनुरूपता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि कश्पीरेई की सीमाओं में जिसकी सीमायें काश्मीर से मथुरा तक विस्तृत थीं मुल्तान अथवा कश्पीरा ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी के मध्य में पञ्जाब का मुख्य नगर था। परन्तु सातवीं शताब्दी मे इसे मूलस्थान अथवा मुल्तान का नाम प्राप्त हो चुका था और अबुरिहान के समय तक अरब लेखकों को यही एक मात्र नाम ज्ञात था। संस्कृत का ज्ञान होने के कारण अबु-रिहान को स्थानीय साहित्य मे झांकने का अवसर प्राप्त हुआ और इसी साहित्य से उसने उपर्युक्त नामों मे कुछ नाम प्राप्त किये थे। भविष्यपुराण मे अदयस्थान अथवा "प्रथम मन्दिर" नाम सूर्य के मूल मन्दिर को दिया गया था जिसे कृष्ण के पुत्र साम्ब ने बनवाया था परन्तु अदया सम्भवतः आदित्य अथवा सूर्य का अपभ्रन्श है जिसे सामान्यतः अदित अथवा एत लिखा जाता है जैसा कि अदित्यबार अथवा रविवार के लिये अदितवार अथवा एतवार मे किया गया है। बिला-दूरी ने इस मूर्ति को हज़रत अयूब की मूर्ति कहा है और यह आदित्य के स्थान पर अयूब पढ़े जाने की त्रुटि के कारण लिखा गया है। प्रह्लादपुर अथवा पह्लादपुर नरसिंह अवतार के मन्दिर से सम्बन्धित है जिसे आज भी पह्लादपुरी कहा जाता है। बर्न्स जिस समय मुल्तान मे था उस समय यह मन्दिर इस नगर का मुख्य मन्दिर था परन्तु इसकी छत जनवरी १८४६ के घेरे मे बारूद के भण्डार में आग लग जाने के कारण उड़ गई थी और आज तक इसका पुनर्निर्माण नहीं कराया गया है। यह मन्दिर दुर्ग के उत्तर-पश्चिमी कोण पर बहावल के मकबरे के समीप है। सूर्य का प्रसिद्ध मन्दिर दुर्ग के मध्य मे था परन्तु औरङ्गजेब के समय मे इसे तोड़कर इसके स्थान पर जामा-ए-मस्जिद का निर्माण करवाया गया था। यही मस्जिद सिक्खों का बारूद भण्डार थी जिसे १८४६ मे उड़ा दिया गया था।

कश्यपपुर को टालमी के कस्पीरा अनुरूप स्वीकार करने से मैं यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि मुल्तान ईसवी काल द्वितीय शताब्दी के मध्य भाग मे रावी के तट पर अव्यथित था। दुर्भाग्यवश ह्वेनसांग ने नदी का कोई उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसकी यात्रा के कुछ समय पश्चात् सिंध के चच्च नामक ब्राह्मण राजा ने मुल्तान पर आक्रमण किया तथा इस पर अधिकार कर लिया था और उसके आक्रमण के विस्तृत विवरण से पता चलता है कि रावी सातवीं शताब्दी के मध्य भाग में भी इसकी दीवारों के नीचे बहती थी। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय व्यास नदी

मुल्तान के पूर्व एवम् दक्षिण में स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित थी। सिन्ध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार चच ब्यास नदी के दक्षिणी तट पर पाभिया अथवा बहोया तक बढ़ा था और वहाँ से वह मुल्तान के पूर्व में कुछ ही दूरी पर रावी नदी के तट पर अवस्थित सुकह अथवा सिक्का तक बढ़ गया था। इस स्थान के सुरक्षा सैनिकों ने शीघ्र ही इसे त्याग दिया और मुल्तान की ओर हट कर रावी नदी के तट पर चच का सामना करने के उद्देश्य से राजा बज्हर से मिल गये। एक भीषण युद्ध पश्चात् मुल्तानी चच द्वारा पराजित हुए और अपने दुर्ग में चले गये जिसने एक दीर्घकालीन घेरे के पश्चात् सन्धि वार्ता के परिणाम स्वरूप आत्म समपर्ण किया।

चच के आक्रमण के संक्षिप्त उल्लेख से हम मल्ली की राजधानी के विरुद्ध सिकन्दर के अभियान को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे। अपने अन्तिम उल्लेख में मैंने उसे सुदृढ़ ब्राह्मण नगर मे छोडा था जिसे मैं मुल्तान के उत्तर पूर्व में ३४ मील की दूरी पर तथा तुलम्बा से आने वाले उच्च मार्ग पर अवस्थित अटारी के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। यहाँ मैं एरियन के विवरण को पुनः उद्धृत करूँगा। "अपनी सेनाओं को ताजा करने के लिए एक दिन ठहरने के पश्चात् उसने अपनी यात्रा का रुख उसी राष्ट्र के अन्य निवासियो की ओर किया जिन्होंने उसकी सूचना के अनुसार अपने नगरों को त्याग दिया था तथा मरुभूमि मे चले गये थे। अन्य एक दिन के विश्राम के पश्चात् उसने पाईथन तथा घुड़सवारो के नेता दिमिट्रियस को अपनी सम्पूर्ण सेनाओं एवं पैदल सेना की एक टुकड़ी के साथ तुरन्त नदी की ओर वापिस जाने की आज्ञा दी। इसी समय में उसने सेनाओ को मल्लो की राजधानी के विरुद्ध भेजा जहाँ, उसको सूचना दी गई थी कि अन्य नगरो के अनेक निवासी अधिक सुरक्षा के लिए भाग कर आ गये थे।" यहाँ हम देखते है कि सिकन्दर ने ब्राह्मणो के नगर से राजधानी तक केवल दो यात्राएं की थी जो अटारा तथा मुल्तान के मध्य ३४ मील की दूरी से अधिक अच्छी तरह मिलता है। मल्ली अथवा माली के मुख्य नगर को ढूढते समय हमें यह याद रखना चाहिए कि मुल्तान सदैव निचले पञ्जाब की राजधानी रहा है तथा यह अन्य किसी स्थान की अपेक्षा आकार मे चौगुणा है एवं निश्चित ही देश के इस भाग का सबसे सुदृढ़ दुर्ग है। यह सभी गुण मल्लो के मुख्य नगर में भी थे। यह देश की राजधानी थी, यहाँ एरियन के अनुसार पचास हजार सैनिक अथवा सुरक्षा सैनिकों की सबसे बड़ी संख्या थी और इसी कारण यह सबसे बड़ा स्थान था और अन्त में, यह स्थान सबसे सुदृढ स्थान रहा होगा क्योंकि एरियन ने लिखा है कि अन्य नगरों के निवासी "अपनी अधिक सुरक्षा हेतु" भाग कर इस नगर में आ गये थे। इन कारणों से मैं पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ कि मल्ली की राजधानी का नगर आधुनिक मुल्तान था परन्तु जैसे-जैसे हम एरियन के विवरण को पढ़ते जायँगे उपर्युक्त अनुरूपता की अधिक पुष्टि होती जाएगी।

सिकन्दर के समीप आने पर भारतीय सैनिक अपने नगर के बाहर आ गये तथा "हाईड्राओटीज़ नदी को पार कर उन्होंने नदी के तट पर अपनी सेनाओं को खड़ा कर दिया जो अधिक ढालुआ एवं दुर्गम था। उनका विचार था कि इस प्रकार वह उसके मार्ग को अवरुद्ध कर देंगे········। जब वह वहाँ पहुँचा एवं उसने शत्रु की सेनाओं को सामने तट पर खड़े देखा तो उसने बिना विलम्ब किए अपने साथ लाई गई घुड़सवार सेना सहित नदी में प्रवेश किया।" प्रारम्भ मे भारतीय सैनिक पीछे हट गये, "परन्तु जब उन्होंने यह अनुमान लगाया कि उनका पीछा करने वाली सेना घुड़सवार सेना की एक टुकड़ी है तो वह पुनः पीछे मुड़ आए और संख्या मे ५० हजार होने के कारण उन्होंने उसका सामना करने का निश्चय किया।" इस विवरण से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर पूर्व की ओर से मुल्तान की ओर बढ़ा होगा तथा चच्च के समान ही उसका बढ़ाव देश के प्राकृतिक भू-भाग द्वारा निर्धारित रहा होगा। अब, मुल्तान से ऊपर पुरानी रावी का मार्ग १८ मील तक ठीक पश्चिम में है और इसके परिणामस्वरूप सिकन्दर की यात्रा उसे सुकह अथवा सिक्का के दुर्ग तक ले गई होगी जो मुल्तान के पूर्व मे कुछ ही दूर पर रावी के तट पर अवस्थित था। इस बिन्दु से आगे एक ही विवरण दोनों विजेताओ की प्रगति का उल्लेख करेगा। रावी के पूर्वी तट का नगर इसके सैनिको द्वारा त्याग दिया था। जो नदी के पार चले गये हैं जहाँ उन्होंने पड़ाव तथा युद्ध किया था और पराजित हो जाने पर उन्होंने दुर्ग में शरण ली थी। सुकह दुर्ग वर्तमान मारीसीतल के समीप किसी स्थान पर रहा होगा जो मुल्तान के २३ मील पूर्व में रावी के पुराने तट पर अवस्थित है।

राजधानी पर आक्रमण के समय सिकन्दर को गहरी चोट लगी थी तथा उसके सैनिकों ने न वृद्धों को छोड़ा, न स्त्रियो को और न बच्चों को ही। प्रत्येक जीव को उन्होंने तलवार के घाट उतार दिया। डिवोडोरस एवं कर्टियस ने इस नगर को प्राक्ष्रुकाय लोगों का नगर कहा है परन्तु एरियन ने इस विचार का विशेष रूप से खण्डन किया है "क्योंकि यह नगर" उसके कथनानुसार, "मल्लियों का नगर था तथा उन्होंने ही सिकन्दर को घायल किया था।" वस्तुतः मल्ली ओक्षुद्रकायों की सेनाओ के साथ मिलने एव सिकन्दर के साथ युद्ध करने का विचार रखते थे परन्तु शुष्क एवं ऊसर प्रदेश से होकर सिकन्दर के तीव्र एव अचानक आक्रमण ने शत्रु सेनाओ को मिलने नही दिया और इस प्रकार वह एक दूसरे की सहायता नहीं कर सके।" स्ट्रैबो ने भी लिखा है कि सिकन्दर मल्लियों के नगर पर अधिकार करते समय घायल हुआ था।

जिस समय सिकन्दर ने मल्ली के विरुद्ध अपना अभियान आरम्भ किया था उस समय उसने हेफायशियन की सेना के मुख्य भाग सहित पाँच दिन पूर्व आगे भेज दिया था और उसे अकिसीनीज़ तथा हाईड्राओटीज़ के सङ्गम पर उसके पहुँचने तक प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी। तदानुसार मल्ली की राजधानी पर अधिकार कर लेने के पश्चात्

"जितना शीघ्र उसका स्वास्थ्य उसका साथ दे सका उसने स्वयं को हाइड्राओटीज् नदी के तट तक ले जाये जाने की आज्ञा दी और तत्पश्चात् नदी मार्ग द्वारा पड़ाव तक ले जाए जाने की आज्ञा दी जो हाईड्राओटीज् तथा अकिसीनीज् के सङ्गम के समीप था, जहाँ हेफायशियन सेना का तथा नियरकस जल सेना का नेतृत्व कर रहा था।" यहाँ उसने ओक्षुड्काय एवम् मल्लो के राजदूतो का सम्मान किया जो मित्रता करने के लिए उपस्थित हुए थे। तत्पश्चात् वह अकिसीनीज् के मार्ग से सिन्धु नदी से इसके सङ्गम स्थान तक गया जहाँ उसने, "परडीकस के आने तक अपनी नौकाओ के बेडे को रोके रखा। जो अपने मार्ग मे भारत की स्वतन्त्र जातिओ मे अवस्तानी जाति का दमन करने के पश्चात् अपनी सेना सहित वहाँ पहुँचा था।"

सातवी शताब्दी के मध्य मे चच्च द्वारा मुल्तान पर अधिकार किये जाने के समय रावी नदी दुर्ग की दीवारो के नीचे प्रवाहित थी परन्तु ७१३ ई० मे जिस समय मुहम्मद बिन कासिम ने इस दुर्ग पर घेरा डाला था तो बिलदूरी के कथनानुसार, 'नगर की जलपूर्ति, नदी से निकली एक नहर द्वारा होती थी (एम रीबाड ने नदी का नाम नही लिखा है।) मुहम्मद ने इस नहर को काट दिया और प्यास से पीड़ित निवासियो ने इच्छानुसार आत्म-समर्पण कर दिया। शस्त्र धारण करने योग्य सभी व्यक्तियो का बध कर दिया गया और मन्दिर के ६००० पुजारियो सहित स्त्रियो एव बच्चो को दास बना लिया गया।" कहा जाता है कि एक देश द्रोही ने मुहम्मद को यह नहर दिखाई थी। मैं इस विवरण को एक प्रमाण स्वरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि रावी का मुख्य प्रवाह अपने पुराने मार्ग से हट चुका था परन्तु यह पूर्णतय: असम्भव है कि जल की कमी के कारण मुल्तान को आत्म-समर्पण करने पर बाध्य होना पड़ा हो। मैं यह बतला चुका हूँ कि रावी की एक शाखा मुल्तान के दुर्ग एव नगर के मध्य से होकर जाती थी जहाँ अधिकांश समय में लेशमात्र मिट्टी हटाने से जल प्राप्त किया जा सकता है और कुछ मिनटों की साधारण खुदाई से यहाँ हर समय जल प्राप्त किया जा सकता है। कहा जाता है कि इदरिसी के समय भी नगर का भू-भाग एक छोटी नदी द्वारा सींचा जाता था और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि रावी की कोई शाखा मुल्तान से होकर प्रवाहित रही होगी। यद्यपि आत्म-समर्पण के सम्बन्ध में बिलदूरी का विवरण निश्चित ही त्रुटिपूर्ण है फिर भी मैं यह विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि अन्य सभी परिस्थितियाँ पूर्णतय: सत्य हो सकती है। अत: जब रावी का मुख्य प्रवाह मुल्तान से दूर हो गया तो भी यह नगर जिसके दुर्गोन्मुख भाग मे दीवारें नही बनाई गई थी—नदी के पुराने मार्ग से पास दुर्ग तक बनी नवीन दीवारो से सुरक्षित किया गया होगा। इस नवीन दीवारों में नहर अथवा रावी की शाखा जो कुछ भी यह रही हो को प्रवाहित रखने के लिए स्थान छोड़ा गया होगा। जो आधुनिक काल समान रहे होंगे। इदरिसी ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि मुल्तान की रक्षा एक दुर्ग द्वारा की गई थी जिसके

चार द्वार थे तथा जिसके चारों ओर खाईं थी। अतः मेरा अनुमान है कि मुम्मद बिन कासिम ने नगर में प्रवाहित जल धारा को अन्य मार्ग में मोड़ देने से मुल्तान पर अधिकार कर लिया था, ठीक उसी प्रकार जैसे साईरस ने बेबीलोन पर अधिकार किया था। इस प्रकार वह नदी के सूखे मार्ग से वह नगर मे प्रवेश कर सकता था और तत्पश्चात् यह प्रायः सम्भव है कि जल के अभाव के कारण दुर्ग को आत्म-समर्पण करना पड़ा हो। आजकल इस दुर्ग मे अनेक कुएँ हैं परन्तु उनमे केवल एक कुआँ ही प्राचीन बताया जाता है और एक कुआं ५००० सैनिको के एक छोटे दल की जलपूर्ति के लिये भी अपर्याप्त है।

कहरोर

कहरोर का प्राचीन नगर मुल्तान के दक्षिण पूर्व में ५० मील की दूरी पर तथा बहावलपुर से २० मील उत्तर-पूर्व में पुरानी व्यास नदी के तट पर अवस्थित है। इसका उल्लेख उन नगरो मे एक नगर के रूप में किया जाता है जो सातवीं शताब्दी के मध्य मे मुल्तान पर अधिकार किये जाने के पश्चात् चच को समर्पित कर दिये गये थे। परन्तु कहरोर की ख्याति ७९ ई० मे विक्रमादित्य तथा शकों के मध्य महान युद्ध का स्थान होने के कारण है। अबु-रिहान ने इसे मुल्तान तथा लोनी दुर्ग के मध्य अवस्थित बताया है। अन्तिम नाम सम्भवतः कहरोर से ४४ मील पूर्व दक्षिण-पूर्व तथा मुल्तान के ७० मील पूर्व दक्षिण-पूर्व में सतलज नदी के पुराने मार्ग के समीप अवस्थित एक प्राचीन नगर लुधान के लिये लिखा गया है। अतः इसकी स्थिति मुल्तान एव लुधान के मध्य में है जैसा कि अबु रिहान ने लिखा है।

उछ

उछ का प्राचीन नगर मुल्तान के दक्षिण दक्षिण पश्चिम में ७० मील की दूरी पर तथा मिठानकोट के स्थान पर सिन्धु नदी के साथ पचन्द के वर्तमान सङ्गम स्थान से ४५ मील उत्तर पूर्व मे पचनद के पूर्वी तट पर अवस्थित है। सिन्धु नदी के मार्ग मे यह परिवर्तन विल्फोर्ड के सर्वेक्षक मिर्जा मुगल बेग के समय मे हुआ था जिसने १७८६ ई० से १७९६ तक पञ्जाब एव काबुल का सर्वेक्षण किया था और इस भाग का सर्वेक्षण १७८७-८ मे किया गया था। नाला पुरान के नाम से पुराना मार्ग अब भी जीवित है। संस्कृत एव हिन्दी दोनो मे ही उच्च का अर्थ है ऊँचा, उन्नत अतः उच्च नगर ऊंचे स्थान पर अवस्थित किसी नगर का एक सामान्य नाम है। इस प्रकार हमे दिल्ली के ४० मील दक्षिण पूर्व मे काली नदी के ऊँचे तट पर अवस्थित ऊँचा गाँव का नाम प्राप्त होता है जिसे मुसलमानो ने बुलन्दशहर कहा है। एक अन्य उच्च झेलम तथा चेनाब के सङ्गम स्थान के पश्चिम में एक टीले पर मिलता है तथा एक टीले पर ही अवस्थित तीसरा उच्छ हमारे वर्तमान विवरण का विषय है। बर्नस के अनुसार उच्छ तीन

विशिष्ट नगरों का बना हुआ है जो एक दूसरे से कुछ हजार गज़ों की दूरी पर है तथा प्रत्येक नगर ईंटों की दीवारों से घिरा हुआ है। यह सभी अब जर्जर अवस्था में है। मसोन ने केवल दो विभिन्न नगरों का उल्लेख किया है परन्तु जन साधारण का अपना कथन यह है कि किसी समय यहाँ उच्च नगर नाम के सात विभिन्न नगर थे। मुगलबेग के मानचित्र में उच्छ के सामने टिप्पणी दी गई है, "जिसमें सात विशिष्ट ग्राम है।" मसोन के अनुसार उच्छ मुख्य रूप से "पूर्ववर्ती नगरों के अवशेषों के कारण प्रसिद्ध है जो अधिक विस्तृत थे तथा जिनसे इस स्थान की पूर्वकालीन समृद्धि की पुष्टि होती है।" बर्नस के अनुसार उच्छ एक टीले पर अवस्थित है जो भवनों के अवशेषों से बना हुआ है। यह विचार निश्चित ही सही है क्योंकि यह नगर बारम्बार नष्ट हुआ है एवं इसका पुनर्निर्माण किया गया है। ६३१ हिजरी अथवा १५२४-२५ ई० में हुसेन शाह अरगुन द्वारा इस स्थान के अन्तिम महान् घेरे के पश्चात् उच्छ की दीवारों को भूमि सात कर दिया गया था एवं इसके द्वार तथा अन्य सामग्री नाव द्वारा भक्खर ले जाई गई थी। पञ्जाब की नदियों के पुराने सङ्गम स्थान पर अवस्थित होने के कारण यह स्थान प्राचीनतम समय से महत्वपूर्ण स्थान बन गया होगा। तदनुसार हमें एरियन से ज्ञात होता है कि सिकन्दर ने "दो नदियो के सङ्गम स्थान पर एक नगर के निर्माण की आज्ञा दी। उसका विचार था कि इस स्थिति के लाभो के कारण यह नगर समृद्ध एव जन-पूर्ण हो जायेगा।" सम्भवतः यह वही नगर है जिसका रशीदद्दीन ने सिकन्दर के पश्चात् सिन्ध के शासक काफन्द के पुत्र आयन्द के अधीन सिन्ध के चार राज्यो मे एक राज्य की राजधानी के रूप मे उल्लेख किया है। उसने इस स्थान को असकालन्द-उसह कहा है जो अलेकजैन्ड्रिया-उच्च अथवा उस्सा का सरल भ्रष्ट स्वरूप है। यूनानियो ने उच्च को सम्भवतः उत्साह लिखा था। मेरा भी विचार है कि उच्छ चच्च नामा का इस-कन्दर अथवा सिकन्दिया रहा होगा जिसे मुल्तान पर आक्रमण के समय चच्च ने अपने अधिकार मे कर लिया था। मुस्लिम अधिकार के पश्चात् इस स्थान का उल्लेख इसके स्थानीय नाम उच्च से किया गया है। महमूद गजनवी एव मुहम्मद गोरी ने इस स्थान पर अधिकार कर लिया था तथा नासुरुद्दीन कुबाचा के अधीन यह अपर सिन्ध का मुख्य नगर था। कुछ समय पश्चात यह मुल्तान के स्वतन्त्र राज्य का एक भाग था जिसकी स्थापना तैमूर के आक्रमण के पश्चात फैली अराजकता के समय में हुई थी। १५२४ ई० में सिन्ध के शाह हुसेन अथवा हसन अरगुन ने इस पर अधिकार कर लिया था और जैसा कि मैं उल्लेख कर चुका हूँ इसकी दीवारों को भूमिसात कर दिया गया था परन्तु मुल्तान पर अधिकार के पश्चात हुसेन ने उच्छ के पुनर्निर्माण की आज्ञा दी और अपनी तत्कालीन विजय को सुरक्षित रखने के लिए एक विशाल सेना वहाँ छोड़ गया। अकबर के शासन काल में उच्छ को स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। अबुल फजल ने इसे मुल्तान के विभिन्न जिलों में सम्मिलित किया है।

कर्टियस ने पञ्जाब की नदियों के संगम स्थान को सम्बकाय अथवा सबकाय से तथा दिवोडोरस ने इसे सम्बस्ताय जाति का प्रदेश कहा है। एरियन ने कम से कम इस नाम से इनका उल्लेख नहीं किया है परन्तु मेरा विचार है कि ओसदी जिन्होंने नदियो के संगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी वह इसी जाति के लोग थे। य : भी सम्भव है कि अवस्तानी जिन्हें परडिक्कस ने पराजित किया था इसी जाति से सम्बन्ध रखते थे। परडिक्कस को सिकन्दर ने रावी के पूर्व मे भेजा था जहाँ उसने एक नगर पर अधिकार किया था जिसे मैं हडप्पा के अनुरूप बता चुका हूँ। मेरा अनुमान है कि उसका अभियान दीर्घ-कालीन रहा गोगा क्योकि सिकन्दर को-जिसकी गतिविधियाँ उसके घायल हो जाने के कारण शिथिल पड गई थी-नदियो के सगम स्थान पर उसकी प्रतीक्षा हेतु रूकने पर बाध्य होना पडा था। अतः यह अत्यधिक सम्भव प्रतीत होता है कि उसने सतलज के तट पर अजुधान तथा यूनानी पताका फहराई हो जहाँ से वह इसी मार्ग से साथ-साथ लुधान मैलसी, कहरोर तथा लोधरान होते हुए उछ के स्थान पर सिकन्दर के पडाव तक गया होगा। इस मार्ग मे उसे जोहिया राजपूतो का सामना करना पडा होगा जो आदि काल से अजुधान से उछ तक सतलज नदी के दोनों तटो पर बसे हुए हैं। अतः मेरा विचार है कि अबस्तानी जिन्हे परडिक्कस ने पराजित किया था उन्हें जोहिया राजपूत स्वीकार किया जा सकता है। मुल्तान के आस-पास के प्रदेश को अब भी जोहिया बार अथवा यौद्धेयावार कहा जाता है।

जोहिया राजपूत, लङ्गवीर अथवा लकवीर, माधोवीर अथवा माघेरा तथा अदमवीर अथवा अदमेरा नामक तीन जातियो मे विभाजित है। सम्बकाय भी तीन शाखाओ में विभाजित प्रतीत होते हैं जो एक स्वतन्त्र भाँति के लोग थे तथा जिन्होने एक शासक की अनुपस्थिति मे यूनानियो का सामना करने के लिए तीन सैनिक अधिकारियों को अपना नेता स्वीकार किया था। अब जोहिया जोढीया का सक्षित रूप है जिसे सस्कृत में यौद्धेय कहा जाता है और इस जाति की मुद्रायें इसी काल की प्रथम शताब्दी से सम्बन्वित है जिनसे ज्ञात होता है कि यौद्धय उस समय भी तीन जातियों में विभक्त थे। यह मुद्रायें तीन प्रकार की हैं प्रथम मुद्रा में केवल जय यौद्धेय गनस्य लिखा गया है जिसका अर्थ है विजयी यौद्धय जाति की मुद्रा।" द्वितीय श्रेणी की मुद्रा मे द्वि तथा त्रि लिखा गया है जो मेरे विचार में द्वितीयास्य तथा तृतीयास्य अर्थात् द्वितोय तथा तृतीय का सक्षिप्त स्वरूप समझता हूँ। जिसका प्रयोग यौद्धेयों की द्वितोय एव तृतीय जाति की मुद्राओ के लिए किया गया था। चूँकि मुद्रायें सतलज के पूर्व मे दीपालपुर, सतगढ़, अजुधान, कहरोर तथा मुल्तान और पूर्व मे भटनेर, अभोर, सिरसा, हाँसी, पानीपत तथा सोनपत मे प्राप्त होती है अतः यह प्रायः निश्चित है कि यह मुद्रायें जोहिया जाति की मुद्रायें थी जो इस समय सतलज के दोनो किनारों पर बसे हुए हैं तथा जो अकबर के समय तक सिरसा में पाये जाते थे। इलाहाबाद के स्थान पर

समुद्रगुप्त के शिलालेख में यौद्धय आदि का उल्लेख मिलता है और इससे पूर्व पाणिनी द्वारा जूनागढ़ में रुद्र दाम के शिला लेखो में इसका उल्लेख किया गया है। यह महान् व्याकरणाचार्य निश्चित ही चन्द्रगुप्त मौर्य से पूर्व हुआ है। यौद्धेय के सम्बन्ध में उसके उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह सिकन्दर के समय से पूर्व जानी मानी जाति थी। रुद्र दामा के शिलालेख में जहाँ यौद्धेयों का दमन करने का गर्व पूर्ण उल्लेख किया गया है यह स्पष्ट हो जाता है कि इस शक्तिशाली जाति की पताका सुदूर दक्षिण तक फहराई होगी अन्यथा सौराष्ट्र के राजकुमारों से उनका सामना नही हो सकता था। इन तथ्यो से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर के समय मे जोहिया राजपूतों का अधिकार क्षेत्र सम्भवतः भटनेर तथा पाकपट्टन से उच्छ एव भक्कर के मध्य सब्जकोट तक विस्तृत रहा होगा।

अब मैं उन सभी जातियों के नामो पर विचार करूँगा जिन्होने पञ्जाब की नदियो के सगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। कर्टियस के अनुसार उन्हे सम्बकाय अथवा सब्रकाय कहा जाता था। क्रोसियस ने उन्हें सबगाय कहा है तथा दिवोडोरस जिसने उन्हे नदी के पूर्वी तट का निवासी कहा है उसके अनुसार इस जाति को अम्बस्ताय कहा जाता था। यह शक्तिशाली लोग थे जो साहस एव सख्या मे भारत की जातियो मे अद्वितीय थे। इनके सेना मे ६०००० पैदल सैनिक, ६००० घोडे एव ५०० रथ थे। इनकी सैनिक ख्याति के कारण यह सम्भावित प्रतीत होता है कि यूनानियो ने इनके स्वभावनुसार इनका उल्लेख किया होगा। यौद्धेय का अर्थ है "योद्धा अथवा सैनिक" अतः मेरा अनुमान है कि इसका वास्तविक यूनानी नाम सम्कृत समवाग्रो के स्थान पर सम्ब्रबाय रहा होगा जो तीन जातियो की सयुंक्त सेना के लिये उपयुक्त उपाधि रही हागी। इस प्रस्ताव की पृष्टि मे मैं इस तथ्य का उल्लेख कर सकता हूँ कि जिस प्रदेश की राजधानी अब बीकानेर है उसे बागड़देस अथवा बागड़ी अथवा योद्धाओ का देश कहा जाता था जिनके नेता का नाम बागडी शव था। (१) भट्टी का अर्थ भी योद्धा अथवा सैनिक है। अतः वर्तमान समय में हमे तीन ऐसी जातियाँ मिलतो है जो स्वय को 'योद्धा' कहा करतो हैं तथा जो सतलज के पूर्वी प्रदेश में बहुमत मे हैं। यह जातियाँ इस प्रकार हैं—नदी के साथ-साथ निवास करने वाले यौद्धेय बीकानेर के बागडी तथा जैसलमेर के भट्टी। यह सभी चन्द्रवंशी होने का दावा करते हैं और यदि साम्ब्रागी का मेरा प्रस्तावित अर्थ सही है तो यह सम्भव है कि यह नाम यौद्धेयो की तीन जातियो के स्थान पर इन तीन जातियो के लिये प्रयोग किया गया हो।

(१) यह सूचना मुझे बीकानेर की सीमा मे भटनेर के प्रसिद्ध दुर्ग के स्थान पर प्राप्त हुई थी। निश्चित ही यह नाम जहाँगीर के समय जितना पुराना है क्योंकि चैट-र्लिन टेरी ने बीकानेर को 'बकरों का मुख्य नगर' कहा है।

फिर भी मेरा विचार है कि सतलज के तट पर बसे रहने के कारण एवं अपनी असं-दिग्ध प्राचीनता के कारण यौद्धेय जाति का दावा ठोस है। मैं अजुधान अथवा अयोधा-नम् अर्थात् 'युद्ध-क्षेत्र' की स्थापना का श्रेय इन्हें देता हूँ जो प्रत्यक्ष रूप से उनके निजी नाम यौद्धेय अथवा अजुधिया अर्थात् 'योद्धा' से सम्बन्धित है। सम्भवतः इस नाम का अन्तिम स्वरूप एरियन के ओस्सदी में सुरक्षित है जिन्होंने पञ्जाब की नदियों के संगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। अतः एरियन की ओस्सदी जाति दियोडोरस की सम्बस्ताय तथा कर्टियस की सम्ब्रकाय जाति थी जिन्होंने एक ही स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी।

———

पश्चिमी भारत

ह्वेनसांग के अनुसार पश्चिमी भारत सिन्ध, गुज्जर तथा बल्लभी नामक तीन विशाल राज्यो में विभाजित था। प्रथम राज्य के अन्तर्गत डेल्टा एवं कच्छ द्वीप सहित पञ्जाब से समुद्र तक सिन्धु नदी की सम्पूर्ण घाटी सम्मिलित थी। द्वितीय राज्य में पश्चिमी राजपूताना तथा भारतीय मरुस्थल सम्मिलित थे तथा तीसरे राज्य मे तटीय क्षेत्र के कुछ भाग सहित गुजरात का पठार सम्मिलित था।

सिन्ध

सातवी शताब्दी मे सिन्ध चार प्रमुख भागो मे बटा हुआ था जिन्हे मैं अधिक स्पष्ट रूप से दिखाने के उद्देश्य से उनको भौगौलिक स्थिति अर्थात् ऊपरी सिन्ध, मध्य सिन्ध, निचला सिन्ध एव कच्छ, के क्रमानुसार दिखाऊंगा। यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपर सिन्ध के राजा के अधीन एक ही राज्य का भाग था। यह राजा ६४१ ई० मे ह्वेनसांग की यात्रा के समय स्यू तो-लो अथवा शूद्र था। कुछ समय पश्चात चच के समय में मन्त्री बुद्धिमान ने राजा को सूचना दी थी कि सम्पूर्ण प्रदेश पूर्ववर्ती काल में चार जिलो मे विभाजित था। प्रत्येक जिला अपने ही शासक के अधीन था जो चच के पूर्ववर्ती राजा की सार्व भौमिकता को स्वीकार करते थे इससे भी कुछ समय उपरान्त सिन्ध को कफन्द के पुत्र अयन्स के समय मे चार प्रमुख भागो मे विभाजित बनाया गया है। कफन्द सिकन्दर महान के कुछ ही समय पश्चात सिन्ध का शासक था। यह चारो जिले जोर असकलन्दुस, सामिद तथा लोहाना थे और जैसे-जैसे इनका उल्लेख ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित खण्डो मे मिलता है इन सभी पर भी उसी समय विचार किया जायेगा।

अपर सिन्ध

अपर (ऊपरी) सिन्ध का अकेला राज्य जिसे सामान्य रूप से सिरो अर्थात "शिर अथवा ऊपरी" खण्ड कहा जाता है व्यास में ७००० ली अथवा ११६७ मील था और यदि पश्चिम में कच्छ गण्डाव के सम्पूर्ण क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाये तो यह आकडे बहुत अधिक नही हैं। इसमे सन्देह नही कि शक्तिशाली शासन के अधीन ऐसा ही रहा होगा और चच के पूर्ववर्ती शासक निश्चित ही शक्तिशाली थे। इस विचार धारा के अनुसार अपर सिन्ध मे कच्छ गण्डाव काहन शिकारपुर तथा लरकाना, सिन्धु,

के पश्चिम में तथा इसके पूर्व सबजलपुर तथा खैरपुर के वर्तमान जिले सम्मिलित रहे होंगे। अतः सीमान्त रेखा की लम्बाई, उत्तर में ३४० मील, पश्चिम में २१० मील, पूर्व में १८० मील तथा दक्षिण में २६० मील अथवा कुल मिलाकर २०३० मील रही होगी। यह आंकडे ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ो के अधिक समीप है।

सातवीं शताब्दी मे प्रान्त की राजधानी का नाम पी-चेन-पो-पू-लो था जिसके अनुवाद स्वरूप एम जुलीन ने इसे विचवापुर कहा है। एम विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने यह प्रस्तावित किया है कि इसका सस्कृत नाम विचालपुर अथवा 'मध्य सिन्ध' का नगर था। परन्तु सिन्धी एव पञ्जाबी का विच एवम् हिन्दी का बीच सस्कृत से नहीं लिये गये हैं। सस्कृत मे समान बात को व्यक्त करने के लिये मध्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। यदि ह्वेनसाग स्थानीय भाषा का अनुसरण करता तो उसका नाम हिन्दी के आधार पर बीचवापुर अथवा 'मध्य नगर' पढ़ जाता परन्तु ह्वेनसांग ने सदैव संस्कृत स्वरूप का प्रयोग किया है अतः मेरा विचार है कि हमे उसके पी-चेन-पो-पू-लो के मूलस्वरूप के लिये शुद्ध सस्कृत स्वरूप की खोज करनी चाहिये। अब, हमे प्रयाओं से एव साथ ही साथ स्थानीय इतिहासकारों से पता चलता है कि ह्वेनसांग की यात्रा से पूर्व एव पश्चात सिन्ध की राजधानी अलोर थी। अतः यह नवीन नाम किसी प्राचीन नगर का तनिक परिवर्तित नाम रहा होगा न कि द्वितीय राजधानी का हिन्दुओं के समय मे विशाल नगरों को अनेक नाम दिये जाने की प्रथा थी जैसा कि हम मुल्तान के सबध मे देख चुके है। इनमे कुछ नाम केवल कविता सम्बन्धी विशेषण है—उदाहरणार्थ पाटलीपुत्र के लिये कुसुमपुर तथा नरवर के लिये पद्मपुर लिखा गया है। वाराणसी अथवा बनारस आदि कुछ नाम निर्देशक विशेषण के रूप मे रखे गये थे। यह नाम काशी नगर के लिये यह दर्शाने के लिये रखा गया था कि यह वरण तथा असी नाम की छोटी नदियो के मध्य मे अवस्थित था। इसी प्रकार एक सर्व प्रसिद्ध कथा के स्थान के रूप मे कन्नोज को कान्य कुब्ज 'कुबड़ी कन्या' कहा जाता था। नामों की भिन्नता का अर्थ यह नही है कि नवीन राजधानी बनवाई गई थी। यह पुराने नगर की नवीन उपाधि भी हो सकती है अथवा यह किसी पुराने नाम का पुनरावृत्ति हो सकती है जिसे अस्थाई रूप से त्याग दिया गया था। यह सत्य है कि सिन्ध के इतिहासकारो ने अलोर के किसी अन्य नाम का उल्लेख नही किया परन्तु ह्वेनसाग के समय में अलोर ही राजधानी थी अतः यह प्राय: निश्चित प्रतीत होता है कि इसका पी-चेन-पो-पू-लो इसी नगर का केवल एक अन्य नाम था।

यह महत्व पूर्ण है कि इस स्थान की अनुरूपता को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाये क्योकि तीर्थयात्री ने राजधानी को सिन्धु नदी के पश्चिम में दिखाया है जबकि अलोर अथवा अरोर के वर्तमान अवशेष नदी के पूर्व मे हैं। परन्तु यही भिन्नता

इसकी अनुरूपता के शुद्ध होने की पुष्टि करती है क्योंकि सिन्ध नदी पूर्व काल में अलोर के पूर्व में पुराने मार्ग से प्रवाहित थी जिसे अब नारा कहा जाता है। जल मार्ग में परिवर्तन राजा दाहिर के समय अर्थात ह्वेनसांग की यात्रा के लगभग ५० वर्ष पश्चात हुआ था। स्थानीय इतिहासकार राजा दाहिर की धूर्तता को अलोर से सिन्धु नदी के हट जाने के कारण मानते हैं परन्तु पञ्जाब की सभी नदियाँ जिनका प्रवाह उत्तर से दक्षिण की ओर है, धीरे-धीरे पश्चिम की ओर दबाव डालती है और पश्चिम की ओर यह दबाव पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर निरन्तर चक्कर काटने का स्वभाविक परिणाम है जिसके कारण इन नदियों का जल पश्चिमी तट की ओर अधिक दबाव डालता है। (१) प्रारम्भ मे सिन्धु नदी अलोर श्रेणी के पूर्व में बहती थी। परन्तु धीरे-धीरे इसका जल पश्चिम की ओर बढ़ता गया और अन्त मे नदी रोरी की पर्वत श्रेणियो के उत्तरी छोर से मुड गई और रोरी एवम् भक्कर के मध्य चूने की पहाड़ियो से अपना मार्ग बना लिया। चूंकि नदी के मार्ग का परिवर्तन राजा दाहिर के शासन काल के प्रारम्भ मे हुआ बताया जाता है अतः यह परिवर्तन ६८० ई० मे उसके सिहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय पश्चात् हुआ होगा क्योंकि इससे केवल ३० वर्ष पश्चात् मुहम्मद बिन कासिम को अलोर जाने के लिये सिन्धु नदी को पार करना पड़ा था। अतः यह निश्चित है कि नदी ७११ ई० से पूर्व ही अपने वर्तमान मार्ग मे स्थाई हो गई थी।

सिन्धु नदी का पुराना मार्ग आज भी नारा नाम से प्रख्यात है और अलोर के खण्डहरो से कच्छ के रन तक इसके जल मार्ग का सर्वेक्षण किया जा चुका है। अलोर से जकराओ लगभग १०० माल की दूरी तक इसका प्रवाह प्रायः ठीक दक्षिण की ओर है। इस स्थान पर यह नदी अनेक शाखाओ मे विभाजित हो जाती है और प्रत्येक शाखा को भिन्न-भिन्न नाम दिया गया है। सबसे पूर्वी शाखा जिसे नारा का नाम प्राप्त है, किप्रा तथा उम्रकोट के दक्षिण पूर्व मे बहता है जिसके समीप यह दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ कर वङ्ग बाजार तथा रामक बाजार तक जाकर वहाँ कच्छ के विशाल रन म लुप्त हो जाता है। सबसे पश्चिमी शाखा को पुराना कहा जाता है और यह ब्राह्मनाबाद तथा नसोरपुर के खण्डहरो से होकर दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम मे हैदराबाद

(१) वह सभी नदियाँ जिनका प्रवाह उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव से भूमध्य रेखा की ओर है धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ती हैं जबकि भूमध्य रेखा से उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव की ओर प्रवाहित नदियों का झुकाव पूर्व की ओर रहता है। यह विरोधी प्रभाव भूमि की ध्रुव एवम् भूमध्य रेखा सम्बन्धी गति की उसी भिन्नता का परिणाम है जिसके कारण आयन वृतो से भूमध्य रेखा की ओर निरन्तर बहने वाली वायु का उत्थान होता है।

तक चली जाती है जिसके नीचे यह पुनः दो शाखाओ मे विभाजित हो जाती है। इनमें एक शाखा दक्षिण पश्चिम की ओर मुड जाती है तथा इसका जल हैदराबाद से १५ मील नीचे तथा जरक से १२ मील ऊपर वर्तमान नदी मे गिरता है। गुनी नाम की दूसरी शाखा दक्षिण-पूर्व को ओर मुडती है तथा रोमक बाजार से ऊपर नारा मे मिल जाती है। पुराना एवम् नारा के बीच कम से कम दो अन्य शाखाएँ है जो जकराओ के नीचे शाखाओ मे विभाजित हो जाती है परन्तु इनका जलमार्ग केवल आंशिक रूप से ज्ञात है। अलोर से जकराओं तक पुराना नारा का उत्तरी भाग शुष्क एवं रेतीला है जिसमे समय-समय पर सिन्ध नदी की बाढ का जल भर जाता है। उद्गम स्थान से जामीजो तक यह शाखा पश्चिम की ओर से एलार की पहाड़ियो से निरन्तर घिरी हुई है और यह प्रायः २०० फुट से ३०० फुट तक चौडी एवम् २० फुट गहरी है। जामीजो से जकराओ तक, जहाँ यह शाखा ६०० फुट चौडी तथा १२ फुट गहरी है वहाँ नारा के दोनो ओर निचला रेतीली पहाड़ियो की चौड़ी श्रेणियाँ है। जकराओ से नीचे पश्चिमी तट की रेतीली पहाड़ियाँ अचानक समाप्त हो जाती है तथा बाढ़ के जल से बने समतल पर फैल कर नारा दो मुख्य शाखाओ म विभाजित हो जाता है और जैसे-जेसे यह शाखाएँ आगे बढ़ती जाती है इनका पाट चौडा होता जाता है और गहराई कम हो जाती है और अन्त मे पश्चिमी शाखाएँ ठोस भूमि म, एवम् पूर्वी शाखाएँ दल-दलो के निरन्तर समूह मे लुप्त हो जाती है। परन्तु हाला एव किप्रा के नीचे पुनः प्रगट हो जाती है और इनका प्रवाह जारी रहता है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

ऊपरी सिन्ध मे उल्लेखनीय प्राचीन स्थान इस प्रकार है :—अलोर, रोरी, भक्खर तथा लरकाना के समीप महोर्त। सिकन्दर, चच, मुहम्मद बिन कासिम तथा हुसेनशाह अरगुन के सैनिक अभियानो मे अन्य अनेक स्थानो का उल्लेख मिलता है परन्तु इन स्थानो के बीच की दूरी का उल्लेख न होने के कारण उनकी स्थितियो को पहचानना कठिन है, विशेषतः जबकि नामो मे निरन्तर परिवर्तन हुए है। सिकन्दर के सैनिक अभियानो मे हमे मस्सनाए, सोग्डी, मुसिकानी तथा प्रायस्टी के नामो का उल्लेख मिलता है। इन सभी स्थानो को निश्चित ही ऊपरी सिन्ध मे देखा जाना चाहिए। अब मैं इन्हे पहचानने का प्रयत्न करूँगा।

मस्सनाए तथा सोड्राए अथवा सोग्डी

पञ्जाब की नदियो के संगम स्थान को छोड़ने के पश्चात् सिकन्दर ने सिन्धु नदी के मार्ग से सोग्डी के राज्य मे प्रवेश किया, जहाँ एरियन के अनुसार, "उसने एक अन्य नगर का निर्माण करवाया था।" दिवोडोरस ने इन्ही लोगो का एक भिन्न नाम के अन्तर्गत उल्लेख किया है :—"नदी के मार्ग से अपनी यात्रा को जारी रखते समय नदी के दोनो तटो के निवासियो सोड्राए एव मस्सनाए जातियो ने उसकी अधीनता स्वीकार

कर ली एवं उसने एक अन्य सिकन्द्रिया की स्थापना की जहां उसने १०००० निवासी रखे थे।" कर्टियस ने यद्यपि इनके नामों का उल्लेख नहीं किया है फिर भी इन्हीं लोगों का उल्लेख इस प्रकार किया है :—"चौथे दिन वह अन्य राष्ट्रों में पहुँचा जहाँ उसने सिकन्द्रिया नामक एक नगर का निर्माण करवाया।" इन उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि एरियन के सोग्डी तथा दिवोडरस के सोड्राय एक ही जाति के लोग है यद्यपि मि० टाड ने प्रथम नाम को सोढा राजपूतों के अनुरूप तथा वाक्स ने द्वितीय नाम को नीच शूद्रों के अनुरूप स्वीकार किया है। सोढा राजपूत जो परमार राजपूतों की एक शाखा है उमरकोट के समीप सिन्ध के दक्षिणी पूर्वी जिले मे बसे हुए है परन्तु एम, मुरडो जो अत्यन्त विश्वसनीय निरीक्षक है के अनुसार इस बात मे विश्वास करने के अच्छे कारण प्रस्तुत है कि किसी समय सिन्धु नदी के तट पर अलार के उत्तर तक सिन्धु नदी के तटों के विशाल क्षेत्र पर इस जाति का अधिकार था। सोढा राजपूतों के पूर्ववर्ती अधिकार क्षेत्र को इस सीमा को स्वीकार करते समय मैं आंशिक रूप से अबुल फज़ल के इस कथन से प्रभावित हुआ हूँ कि अकबर के शासन काल मे भक्खर से उमरकोट तक सम्पूर्ण ... मे सोढा एवं झरेजा लोग रहा करते थे। आंशिक रूप से यह विश्वास भी है कि दिवोडारस के मस्सनाय लोग टालमी के मुसरनी हैं जिनका नाम मिठानकोट के नीचे सिन्धु नदी के पश्चिम मे मुज़रका जिले मे आज भी सुरक्षित है। टालमी ने मुसरना नामक जिले का उल्लेख भी किया है जिसे उसने अस्कन नाम की एक छोटी नदी के उत्तर मे सिन्धु नदी की एक छोटी शाखा पर अवस्थित बताया है। अतः मुसरना नाम की शाखा कहान नामक छोटी नदी होगी जो पुलाजी तथा शाहपुर से होकर खान गढ़ अथवा जेकोबाबाद तक चली जाती है तथा मुसरना शाहपुर नगर हो सकता है जो शिकारपुर के उत्थान से कुछ समय पूर्व कुछ महत्वपूर्ण स्थान था। "आस-पास के प्रदेश मे जो अब निर्जन है अधिक विस्तार तक कृषि के चिह्न प्राप्त होते हैं।" सोग्डी अथवा सोड्राय को मैं स्योराय के निवासियों के अनुरूप समझूँगा जिसे हुसेन-शाह अरघुन ने भक्खर से मुल्तान जाते समय अपने अधिकार मे कर लिया था। १५२५ ई० मे उसके समय इसे "उस प्रदेश के सुदृढ़तम दुर्ग के रूप मे" बताया गया है। तथापि यहाँ के सैनिकों ने इसे त्याग दिया तथा विजयी आक्रमणकारी ने इसकी दीवारों को मिट्टी मे मिला देने की आज्ञा दे दी थी। इसकी वास्तविक स्थिति अज्ञात है परन्तु सम्भवतः यह सबज़ल-कोट तथा छोटा अहमदपुर के मध्य फाज़िलपुर के समीप था जहाँ मसोन को यह सूचना प्राप्त हुई थी कि वहाँ किसी समय एक महत्वपूर्ण नगर था तथा "इससे सम्बन्धित एवं संख्या में ३६० कुओं को उस समय भी जङ्गलों मे देखा जा सकता था।" अब, पुराने मानचित्र में इसी स्थान पर अर्थात सब्ज़लकोट के लगभग ८ मील उत्तर पूर्व मे Sirwahi सिरवाही नाम का एक गाँव अङ्कित किया गया है जो सम्भवतः सिन्धी इतिहास के स्योराई का प्रतिनिधि हो सकता है। यह

सीधी रेखा से उच्छ से ६६ मील नीचे तथा अलोर से ८५ मील ऊपर अथवा दोनों के लगभग मध्य में पड़ता है। जल मार्ग से उच्छ से उसकी दूरी एक तिहाई अधिक हो जायेगी अर्थात १२० मील से कम नहीं होगी और यह दूरी कर्टियस के इस कथन का समर्थन करती है कि सिकन्दर चौथे दिन इस स्थान पर पहुँचा था। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह अनुरूपतायें पूर्णतयः सन्तोषजनक नहीं हैं परन्तु जब हम सिन्धु नदी के मार्ग मे हुए अनेक परिवर्तनों एव इसके तट पर अवस्थित नगरों के नामों मे हुए बारम्बार परिवर्तनो की ओर ध्यान देते हैं तो सम्भवतः उपर्युक्त अनुरूपतायें उतनी ही शुद्ध हैं जितनी शुद्ध उन्हे वर्तमान समय मे बनाया जा सकता है। एरियन द्वारा सुरक्षित एक तथ्य फाजिलका के समीप प्राचीन स्थान को सोग्डी नगर के अनुरूप स्वीकार किये जाने के पक्ष मे हैं। तथ्य यह है कि इसी स्थान पर सिकन्दर ने क्रेटरस को सेना के मुख्य भाग एवं सभी हाथियों सहित अरकोटी तथा ड्रगी की सीमाओ के मार्ग से भेजा था। अब गण्डाव तथा बोलन दर्रे के मार्ग से पश्चिम की ओर सिन्धु नदी को पार करने का सर्वाधिक प्रचलित घाट बाये तट पर फजिलपुर तथा दाहिने तट पर कसमोर के मध्य पड़ता है। और चूंकि घाट अथवा नदी को पार करने के स्थान सदैव सड़क की स्थिति को निर्धारित करते हैं अतः मेरा अनुमान है कि क्रेटरस ने अरकोसिया तथा दरङ्गियाना की ओर अपनी लम्बी यात्रा को इसी स्थान से आरम्भ किया होगा। जो सिधु नदी से एक विशाल सेना के पश्चिम की ओर प्रस्थान करने के लिए सबसे उत्तम स्थान है। फिर भी यह सम्भव प्रतीत होता है कि मुशिकनस के विद्रोह के कारण क्रेटरस को कुछ समय तक रुकना पड़ा हो क्योंकि एरियन ने सिकन्दर द्वारा सिन्दोमना के समीप ब्राह्मण नगर पर अधिकार करने के पश्चात् पुनः उसके प्रस्थान का उल्लेख किया है।

स्थानीय इतिहासकारो और साथ ही साथ प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियो ने मुल्तान तथा अलोर के बीच भाटिया नामक एक सुदृढ़ दुर्ग को अवस्थित बताया है जिसे इसकी स्थिति को देखते हुए उस नगर के अनुरूप समझा जा सकता है, जिसे सिकन्दर ने सोग्डी राज्य मे निर्मित करवाया था क्योंकि यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि देश के इस समतल भू-भाग मे अधिक लाभकारी स्थान थे। दुर्भाग्यवश विभिन्न लेखकों ने नाम को विभिन्न रूप से लिखा है। इस प्रकार पोस्टनस ने इसे पाया, बाहिया तथा भाहिया, सर हैनरी इलियट ने इसे पाबिया, बाटिया तथा भाटिया कहा है जबकि ब्राउन ने इसे बहाटिया कहा है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह तलहटी का स्थान है जहाँ जाम जानर ने सिन्ध नदी को पार किया था और सम्भवतः माटिला अथवा महाटिला भी यही स्थान था जो सातवीं शताब्दी में सिन्ध के छः विशाल दुर्गों मे एक था।

फरिश्ता ने भाटिया को एक अति सुदृढ़ स्थान के रूप मे बताया है जो एक उन्नत दीवार एव गहरी चौड़ी खाईं से सुरक्षित बनाया गया था। ३९३ हिजरी, अथवा

१००३ ई० में महमूद गजनी ने इस पर अधिकार कर लिया था। इस आक्रमण में अधिक देर तक दुर्ग की रक्षा करने के पश्चात् यहाँ का राजा बज्जर अथवा बाजी-राय मारा गया था। लूट मे महमूद को कम से कम २८० हाथी प्राप्त हुए थे। यह हिन्दू शासक की समृद्धि एवं शक्ति का सर्वाधिक ठोस प्रमाण है।

मुशीकानी अलोर

सोग्ढी अथवा सोड्राए की सीमाओं से सिकन्दर ने सिन्धु नदी के मार्ग से मुशीकानस नामक राजा की राजधानी तक अपनी यात्रा जारी रखी। स्ट्रैबो, दिवोडोरस तथा एरियन के अनुसार यह स्थान मुसिकनस की राजधानी थी जबकि कर्टियस के अनुसार यह मुसिकानी नाम के लोगो की राजधानी थी। एरियन से हमे पता चलता है कि सिकन्दर को इस राज्य के सम्बन्ध मे यह सूचना दी गई थी कि "यह राज्य भारत के सभी राज्यो मे सर्वाधिक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण है" तथा स्ट्रैबो से हमे ओनेसोक्रीटस का विवरण प्राप्त होता है कि "देश मे प्रत्येक वस्तु प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न होती थी" जिससे यह पता चलता है कि स्वय यूनानी इस स्थान की उपज को देखकर आश्चर्य चकित हो गये थे। अब, यह विवरण केवल ऊपरी सिन्ध के समृद्धशाली तथा शक्तिशाली राज्य के लिए हो सकते हैं। अलोर इस राज्य की कई वर्षों से जानी-मानी राजधानी थी। जब दूरियो का उल्लेख नही किया गया है तथा नामो मे भिन्नता है ऐसी स्थिति मे एक सामान्य विवरण से किसी स्थान की स्थिति को निर्धारित करना कठिन है जब तक कि स्थान अथवा निर्माण कार्यों के सम्बन्ध मे कुछ विशेषताएँ अथवा अन्य बातो का ज्ञान न हो जो इसकी अनुरूपता को सिद्ध कर सकते है। वतमान उदाहरण मे हमारे निर्देशन हेतु इस सामान्य विवरण को छोड़ अन्य कोई तथ्य प्रस्तुत नही है कि मुसिकनस का राज्य, "सम्पूर्ण भारत मे सर्वाधिक समृद्धशाली एव जनपूर्ण था।" परन्तु सिन्ध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तको एव जन-श्रुतियाँ इस कथन मे सहमत है कि अलोर देश की प्राचीनतम राजधानी थी अतः यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यह मुसिकनस की राजधानी थी। अन्यथा यह प्रसिद्ध नगर सिकन्दर के इतिहासकारो के ध्यान से पूर्णतः हट जाएगा जो यदि असम्भव नही तो अत्यन्त असम्भावित है। प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियो से हमे ज्ञात है कि अलोर का प्रदेश समृद्ध एवं उपजाऊ था। यह सभी भूगोग शास्त्री इस स्थान की प्रशसा मे एक मत थे। अलोर के खडहर चूने के पत्थर की पहाड़ियों की निचली श्रेणी के रिक्त स्थान के दक्षिण मे अवस्थित हैं। यह श्रेणी भक्खर से दक्षिण की ओर लगभग २० मील तक विस्तृत है और अन्त मे यह रेतीली पहाड़ियो की चौड़ी पक्तियों में लुप्त हो जाती है जो नगर अथवा सिन्धु नदी के पुराने मार्ग को पश्चिम की ओर से घेरे हुए है। किसी समय सिन्धु नदी की एक शाखा इस रिक्त स्थान से होकर बहा करती थी जो नगर को

उत्तर पश्चिम की ओर से सुरक्षित रखती थी। उत्तर-पूर्व में यह नदी की एक अन्य शाखा से सुरक्षित थी जो दूसरी शाखा से तीन मील की दूरी तक प्रवाहित थी। ६८० ई० में राजा दाहिर के समय दूसरी शाखा सम्भवतः सिन्धु नदी का मुख्य मार्ग थी जो प्राचीन नार के अपने मूल मार्ग से धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ती चली गई थी। स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार अन्तिम परिवर्तन भक्खर एवं रोरी के मध्य पहाड़ियो की श्रेणी के उत्तरी छोर से एक नहर निकाले जाने के कारण शीघ्र हो गया।

अलोर का वास्तविक नाम पूर्णतः निश्चित नही है। वर्तमान समय में सामान्य उच्चारण के अनुसार इसे अरोर कहा जाता है परन्तु यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इसका मूल नाम रोरा था तथा प्रारम्भिक व्यञ्जन अरबी के उपसर्ग अल से लिया गया है क्योंकि बिलदूरी, इदरिमी तथा अन्य अरब लेखकों ने इसे अलोर लिखा है। पड़ोस के रोरी नगर के नाम से उपर्युक्त शब्द व्युत्पत्ति शब्द का समर्थन होता है क्योंकि नामो की इस प्रकार नकल करना भारत की एक सामान्य प्रथा है। अतः रोरा तथा रोरी का अर्थ होगा बड़ा तथा छोटा रोरा। सस्कृत मे इस शब्द का कोई अर्थ नही है परन्तु हिन्दी मे "शोर, चिल्लाहट, गर्जन" तथा 'ख्याति' के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। अतः यह सम्भव है कि नगर का पूरा नाम रोरापुर अथवा रोरानगर अर्थात् "प्रसिद्ध नगर" रहा होगा। अलोर के खण्डहरों के दो मील दक्षिण-पश्चिम में पहाड़ियो के अधोभाग पर अवस्थित एक गांव को दिए गये नाम अभिजानू से मुझे उपर्युक्त अर्थ को प्रस्तावित करने का ध्यान हुआ था। अभिजान सस्कृत में 'ख्याति' के लिए प्रयुक्त किया जाता है और ह्वेनसाग के पी-चेन-पो-पू-लो से इसका सम्बन्ध असम्भावित नही है जिसे प्रारम्भ मे ओ अक्षर जोड देने से अभिजानवपुर पढा जा सकता है। मेरे विचार मे यह सम्भव है कि अलोर टालमी का बिनागरा रहा होगा क्योंकि इसे सिन्ध नदी के तट पर ओसकना के पूर्व की ओर दिखाया गया है जो एरियन तथा कर्टियस का ओक्सीकनस प्रतीत होता है। टालमी द्वारा दिया गया नाम बिनाशरा सम्भवतः चीनी स्वरूप का विपरीत पाठ है क्योंकि पुनो अथवा पुरा नागरा के समान है तथा पीचिन पो प्रारम्भिक अक्षर बी का पूर्ण स्वरूप हो सकता है।

प्रत्यक्ष रूप से मुसिकनस का नगर कुछ महत्व-पूर्ण स्थान था क्योंकि एरियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने "क्रेटरस को नगर मे एक दुर्ग का निर्माण करवाने की आज्ञा दी थी और वह स्वयं इस कार्य को पूर्ण होते देखने के लिए रुका था। यह कार्य पूर्ण हो जाने के पश्चात् उसने वहाँ पर एक सुदृढ सेना छोड दी थी क्योंकि यह दुर्ग पड़ोसी राज्यों को अपने नियन्त्रण एव अधिकार में रखने के लिए अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता था।" इसमें सन्देह नही कि अलोर की स्थापना मूलरूप से इसी कारण की गई थी और यह नगर इस स्थान से नदी के हट जाने के समय तक जनपूर्ण रहा। उस समय भक्खर के सुदृढ़ दुर्ग ने इसका स्थान ले लिया।

प्रोएस्ति-पोर्टीकनस, अथवा ओक्सीकनस

मुसिकनस की राजधानी से सिकन्दर ने अपनी नौकाओं के अपने बेडे को सिन्धु नदी में नीचे की ओर जाने की आज्ञा दी थी जब कि, एरियन के अनुसार, वह स्वयं ओक्सीकनस नाम के पडोसी राजा के विरुद्ध बढ़ा तथा पहले ही आक्रमण में उसके दो मुख्य नगरों पर अधिकार कर लिया। कर्टियस ने ओक्सीकनस को प्रोएस्ति नामक लोगों का राजा कहा है तथा उसका कथन है कि सिकन्दर ने तीन दिन के घेरे के पश्चात् उसके मुख्य नगर पर अधिकार किया था। डिवोरस तथा स्ट्रैबो ने राजा को पोर्टीकनस कहा है। अब, इन विभिन्न विवरणों से सम्भावना का सकेत मिलता है कि यह नाम नगर का नाम था जिसे ऊँचा गाम अथवा पोर्टागाम के रूप मे इसकी ऊँचाई के सकेत के आधार पर केवल "उन्नत नगर" समझा जा सकता है। कर्टियस द्वारा इसके दुर्ग के दो बुर्जों के गिरने से हुई "भयानक गडगड़ाहट" के उल्लेख से प्रतीत होता है कि यह स्थान सामान्य ऊँचाई से अधिक ऊँचा रहा होगा अत. मैं इसे लरकाना से १० मील घार नदी के तट पर अवस्थित महोरता के विशाल टीले के अनुरूप समझूँगा। मसोन ने 'मैहोता नामक एक विशाल टीले पर अवस्थित एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहरों" के रूप मे इसका उल्लेख किया है। सर्वेक्षकों ने इस नाम को महोरद्धा लिखा है जो सम्भवत: महा + उर्द + ग्राम अथवा "विशाल उन्नत नगर" के स्थान पर महोर्द के लिए लिखा गया है। और शुद्ध सस्कृत रूप मे इसके आधुनिक नाम होने की सम्भावना नहीं है। मुझे उपर्युक्त अनुरूपता, न केवल नामों की अति समानता के विवरण से वरन् सिन्धु नदी के पुराने मार्ग के सम्बन्ध मे एलोर तथा महोंटा की अपेक्षाकृत स्थितियों के विवरण मे भी अधिक सम्भावित प्रतीत होती है। वर्तमान समय मे महोंटा नदी के कुछ ही मीलों के भीतर है परन्तु सिकन्दर के समय मे, जब सिन्धु नदी नारा के मार्ग से प्रवाहित थी, नदी का निकटतम बिन्दु अलोर था जहाँ से महोरता दक्षिण पश्चिम मे ४५ को दूरी पर था। अत: सिकन्दर को विवश होकर अपना नौकाओं का बेडा छोड देना पडा एवं उसे ओक्सीकनस के विरुद्ध जाना पडा। महोर्ता का स्थान सदैव व्यापारिक एवं राजनैतिक रूप में अधिक महत्त्व का स्थान रहा होगा क्योंकि यह सिन्ध से कच्छ गडाव के मार्ग से कन्धार जाने वाली प्रधान सडक पर नियन्त्रण रखता था। इसे त्याग दिए जाने के समय से इन्हीं लाभों के कारण महार्ता के १० मील पश्चिम मे एक छोटी नदी पर अवस्थित लरकाना को सिन्ध के सर्वाधिक समृद्धशाली स्थानों में एक स्थान बना दिया है। घार नाम की छोटी नदी केलात के समीप निकलती है तथा मूल एवं गंडाव दर्रे को सम्पूर्ण लम्बाई का चक्कर लगाती है और अब यह नदी इन दर्रों के नीचे मरुस्थल मे लुप्त हो गई है परन्तु इसके मार्ग को आज भी पहचाना जा सकता है। तथा यह नदी सिन्ध की सीमाओं पर पुनः प्रगट

होती है तथा लरकाना एवं महोर्ता से होती हुई सिन्धु नदी मे गिरती है। एक शक्ति-शाली एव न्याययुक्त शासक, जो प्राप्त जल के उचित विवरण को लागू कर सकता था, के अधीन घार नदी का तटीय प्रदेश पूर्व काल मे सिन्ध का सर्वाधिक उपजाऊ जिला रहा होगा।

मि० विलसन के अनुसार कर्टियस द्वारा दिया गया नाम प्रोएस्ति मरुभूमि के थलों अथवा मरुद्यान के निवासियो के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। उसने प्रस्थ अथवा प्रस्थल को थल के संस्कृत स्वरूप स्थल से निए जाने का उल्लेख किया है। पश्चिमी भारत मे किसी भी मरुद्यान के लिए सामान्य रूप से थल शब्द का प्रयोग किया जाता है। चूंकि यह नाम साधारण प्रोएस्ति है अतः मेरा विचार है कि इसे प्रस्थ से सम्बन्धित किया जाना चाहिए जिसे समतल भूमि के किसी भी स्पष्ट टुकड़े के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है अतः सहेवान तथा गडाव के पड़ोसी पर्वतीय जिलों के विप-रीत लरकाना के समीप समतल प्रदेश के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जा सकता है फिर भी यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इसे टालमी के पिसका से सम्बन्धित रहा हो जिसे उसने एक छोटी नदी के निचले मार्ग पर अवस्थित बताया है। यह नदी ओस्कन से होकर सिन्धु नदी मे गिरती है। अब, ओस्कन प्रायः निश्चित ही एरियन तथा कर्टियस का आक्सीकनस है क्योकि न केवल दोनो नाम पूर्णतः एक रूप है वरन् सिन्धु नदी के पश्चिम मे एक छोटी नदी पर ओस्कन की भीतरी स्थिति ठीक-ठीक महोर्ता की स्थिति से मिलती है जिसे मैं ओक्सीकनस के अनुरूप दिखा चुका हूँ। मेरा यह भी विचार है कि टालमी का बदाना जो छोटी नदी के ठीक उत्तर मे पड़ता है आधुनिक गंडाव रहा होगा क्योकि ब एवं ग अक्षर मे निरन्तर अदला-बदला होती रही है। प्रारम्भिक अरब लेखकों की पुस्तकों मे इसे सदैव कण्डाबिल कहा गया है।

मध्य सिन्ध

मध्य सिन्ध का राज्य जो सामान्य रूप से विचालो अथवा "मध्य भूमि" के रूप मे ज्ञात है, को ह्वेनसाग ने परिधि में २५०० ली अथवा ४१७ मील बताया है। इन छोटे आंकड़ो के अनुसार यह प्रान्त सिवान के आधुनिक जिले हैदराबाद के उत्तरी भाग तथा उमरकोट तक सीमित रहा होगा। इन सीमाओ में उत्तरी एवं दक्षिणी सीमाएं १६० मील लम्बी तथा पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाएँ लगभग ४५ मील थी अथवा कुल मिलाकर इसकी परिधि ४१० मील से कम नही थी। ओ-फान-च-नाम मुख्य नगर ऊपरी सिन्ध की राजधानी से ७०० ली अथवा ११७ मील तथा निचले सिन्ध की राज-धानी पित्तसिल से ५० मील की दूरी पर थी। चूंकि प्रथम नगर अलोर था तथा द्वितीय नगर प्रायः निश्चित ही पुत्तल्मियो का पट्टल अथवा हैदराबाद था अतः लिखित दूरियों

के अनुसार ओ-फान-च की स्थिति बम्भर-का तूल अथवा 'व्वस बुर्ज' अथवा साधारण बम्भर नामक प्राचीन नगर के खण्डहरों के समीप निश्चित होगी। जन प्रथाओं के अनुसार यह नगर किसी समय ब्रह्मनवाम अथवा ब्राह्मणाबाद के प्रसिद्ध नगर का स्थान था अतः ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित ओफानचा अथवा अवन्दा राज्य मध्य सिन्ध के प्रान्त से मिलता है जिसे आजकल विचालो कहा जाता है।

वर्तमान समय मे सेहवान, हाला, हैदराबाद तथा उमरकोट सिन्ध के उपर्युक्त खण्ड के मुख्य स्थान हैं। मध्य काल मे हिन्दू शासन के अन्तर्गत सदुसान ब्राह्मण अथवा ब्राह्मवा तथा निरुनकोट विशाल नगर थे परन्तु जैसा कि मै अभी दिखाने का प्रयत्न करूँगा निरुनकोट सम्भवतः आधुनिक हैदराबाद तथा प्राचीन पटाला था। अतः इसे निचले सिन्ध अथवा लार प्रान्त मे सम्मिलित करना अधिक उचित होगा। ब्राह्मवा के समीप प्रारम्भिक मुसलमानो ने मसूर की स्थापना की थी जो उनके राज्यपालो ने निवास स्थान के रूप मे प्रान्त की वास्तविक राजधानी का निर्माण किया था, शीघ्र ही यह नगर सम्पूर्ण सिन्ध का सबसे बड़ा नगर बन गया। सिकन्दर के समय मे सिन्दोमान तथा ब्राह्मणो के एक नगर का उल्लेख किया गया है जिसे दिवोडोरस ने हरमतेलया नाम दिया है अब मैं सबसे उत्तरी स्थान से शुरू करते हुए इन स्थानो का विस्तृत विवरण करूँगा।

सिन्दोमान-अथवा सेहवान

ओक्सीकनस के नगर से सिकन्दर अपनी सेनाओ को सम्बस के विरुद्ध ले गया जिसे उसने पहले भारतीय पर्वतो का गर्वनर घोषित किया था।" राजा ने सिन्दोमान नामक अपनी राजधानी को त्याग दिया जिसे, एरियन के अनुसार सम्बस के मित्रो एवं घरेलू गृह सम्बन्धियो ने सिकन्दर को समर्पित कर दिया। ये सभी धन एव हाथियों के उपहार सहित सिकन्दर से मिलने आये थे। कर्टियस ने राजा को सबुस कहा है परन्तु उसने राजधानी के नाम का उल्लेख नही किया। उसने केवल इतना लिखा है कि सिकन्दर ने "अनेक नगरो द्वारा अधीनता स्वीकार कर लिये जाने के पश्चात् सुदृढ़तम नगर को सुरंगे बना कर अधिकार मे कर लिया था।" दिवोडोरस द्वारा दिए गये विवरण मे भी राजधानी के नाम का उल्लेख नही किया है परन्तु उसका कथन है कि सम्बस ३० हाथियो सहित अधिक दूरी तक पीछे हट गया था। स्ट्रेबों ने विस्तृत विवरण दिए बिना राजा सबस तथा उसकी राजधानी सिन्दोमान का उल्लेख किया है। केवल कर्टियस ने यह लिखा है कि सिकन्दर राजा के सुदृढ़तम नगर पर अधिकार करने के पश्चात् नावों के अपने बेड़े में वापिस आ गया था। अतः यह नगर भारत से कुछ दूरी पर रहा होगा। मैं भारत के इस भाग के प्राचीन भूगोल के पिछले सभी लेखको से सिन्दोमान को सेहवान के अनुरूप स्वीकार करने पर सहमत हूँ। इसका आंशिक कारण नामों की समानता है एवं आंशिक रूप से लक्की पर्वतों से समीपता के

कारण है। इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं हो सकता क्योंकि विशाल टीला जो किसी समय एक विशाल दुर्ग था मुख्य रूप से पहाड़ियों की लम्बी श्रेणी के छोर पर एक चट्टान पर सदियों से एकत्रित ध्वस्त भवनों के खण्डहरों से बना हुआ है। डी ला होस्टे ने १२०० फुट लम्बे, ७५० फुट चौड़े तथा ८० ऊँचे गोल टीले के रूप में इसका उल्लेख किया है। परन्तु मैंने जब १८२५ ई० में इसे देखा था तो मुझे यह आकार में चौकोर प्रतीत हुआ और मेरे विचार से यह बर्न्स के अनुमान से कुछ अधिक बड़ा एवं अधिक ऊँचा था। उस समय यह सिन्ध नदी की मुख्य शाखा पर अवस्थित था परन्तु नदी के मार्ग में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं और सभी पुराने मानचित्रों में इसे सिन्धु नदी की पश्चिमी शाखा पर अवस्थित दिखाया गया है। फिर भी प्राचीन समय में, जब नदी, नारा की पूर्वी शाखा में प्रवाहित थी, मेहवान, जकराव के स्थान पर इसके निकटतम बिन्दु से ६५ मील से कम दूरी पर नहीं था। जनराव के स्थान पर नारा, गेनोली पहाड़ियों को छोड़ देता है। वर्तमान समय में मेहवान नगर की जलपूर्ति पूर्णतयः सिन्धु नदी से होती है। जो न केवल नगर के पूर्वी सीमा पर बहती है वरन् अराल नामक एक छोटी शाखा के रूप में इसकी उत्तरी सीमा के साथ-साथ ही बहती है। यह शाखा विशाल चूर झील से निकलती है जिसकी जल पूर्ति दूसरे नारा अथवा सिन्धु नदी की विशाल पश्चिमी शाखा से होती है। चूंकि जल की प्राप्ति के बिना इस स्थान का बस जाना सम्भव नहीं था अतः यह निश्चित है कि मानचूर झील सिन्धु नदी के मार्ग में परिवर्तन से काफी समय पूर्व अवस्थित थी। मध्य में इसकी अपार गहराई को देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक प्राकृतिक गड्ढा है और चूंकि इस समय भी इस झील का जल दो छोटी नदियों द्वारा एकत्रित होता है जो दक्षिण में हाला की पर्वतों से निकलती है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह झील मेहवान की दीवारों तक विस्तृत रही होगी परन्तु पश्चिमी नारा की बाढ़ से सिन्धु नदी तक एक अन्य मार्ग बन गया था और इस प्रकार इस झील का स्तर स्थाई रूप से नीचे हो गया। झील में मछलियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मछलियों के कारण ही इसका नाम मानचूर पड़ा है क्योंकि मनचूर संस्कृत मत्स्य तथा हिन्दी मच्छ अथवा मछली का केवल परिवर्तित स्वरूप है अतः मेरा विचार है कि मनचर केवल मच्छीवार नाम अथवा मछलियों वाली झील का संक्षिप्त नाम रहा होगा।

एक विशाल झील के समीप उन्नत एकान्त चट्टान पर अवस्थित होने एवं खाद्यान्न एवं जल की प्रचुर उपलब्धि के कारण बनी अनुकूल स्थिति से सेहवान ने निश्चित ही सिन्ध के प्रारम्भिक निवासियों का ध्यान आकर्षित किया होगा। तदनुसार हम देखते हैं कि सभी लेखकों ने प्राचीन समय से इस स्थान के बसे होने के तथ्य को स्वीकार किया है। इस प्रकार एम० मुरडो का कथन है, "सेहवान असंदिग्ध रूप से अति प्राचीन स्थान है, सम्भवतः अलोर अथवा ब्राह्मन से भी अधिक प्राचीन है।" वर्तमान नाम

सीविस्तान का संक्षिप्त रूप बताया जाता है जिसे यहाँ के निवासियों सीवी अथवा सबी के नाम पर सीविस्तान कहा जाता था। परन्तु सभी प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने इस नाम को कुछ भिन्न रूप से लिखा है। उदाहरणार्थ सदुस्तान अथवा सदुमान अथवा शारूसान। इनमें प्रथम दो नाम यूनानी सिन्दोमान अक्षर से मिलते हैं। अतः मैं सीविस्तान के नाम को हिन्दुओ द्वारा भगवान शिव के नाम से सम्बन्धित स्थान बनाये जाने की आधुनिक बातो को अस्वीकार करता हूँ। यूनानियो का सिन्दो एवं प्रारम्भिक मुसलमानों का सदु देश के संस्कृत नाम सिन्धु अथवा इसके निवासियो का सैन्धव अथवा सैन्धु की ओर सकेत करते हैं। अतः उनके दुर्ग अथवा उनकी राजधानी को सैन्धवास्थान अथवा सिन्धुस्थान कहा जाता होगा जो नासिका सम्बन्धी स्वर लोप के कारण अरब भूगोल शास्त्रियो का सदुस्तान बन गया होगा। इसी ढङ्ग से विलमन ने यूनानी सिन्दामना को "सस्कृत के स्वीकृत शब्द सिन्दुमान अर्थात् 'सिन्ध के अधिकारी' से लिया है।" फिर भी मैं यूनानी नाम के सैन्धवा-वानम अथवा सैन्धुवान अर्थात् "सैन्धवों के निवासस्थान से सम्बन्धित स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

आश्चर्य है कि टालमी ने सेहवान जैसे उल्लेखनीय स्थान का किसी भी पहचान योग्य नाम के अन्तर्गत उल्लेख नही किया है। यदि हम प्राचीन समय के मुहाने के सर्वाधिक सम्भावित मुख्य स्थान के रूप मे हैदराबाद को स्वीकार कर लें तो टालमी के सीड्रास को जो सिन्धु नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है सम्भवतः हैदराबाद मे १२ मील ऊपर भटाली के प्राचीन स्थान से तथा पैसीपेडा का सेहवान के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। मेरा विचार है कि टालमी के ओसकन की ओक्सीकनस अथवा सिकन्दर के पोर्टीकनस तथा आधुनिक समय के महोर्टा नामक विशाल टीले मे अनुरूपता प्रायः निश्चित है। यदि ऐसा है तो पिस्का अथवा पसिपेदा सेहवान रहा होगा।

ह्वेनसांग ने सेहवान का उल्लेख नही किया है परन्तु सिन्ध के स्थानीय इतिहास मे इस नगर को ७११ ई० मे मुहम्मद बिन-कासिम द्वारा अधिकृत नगर के रूप मे उल्लेख किया गया है। ग्यारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे महमूद गजनी ने पुनः इस पर अधिकार कर लिया था और मुस्लिम शासन के अधीन यह स्थान सिन्ध के सर्वाधिक समृद्ध स्थानों मे सम्मिलित हुआ प्रतीत होता है। वर्तमान समय मे यह अति जर्जर अवस्था में है परन्तु इसकी स्थिति इतनी अनुकूल है कि किसी भी समय इसका निर्जन हो जाना सम्भव नही है।

ब्रह्माना अथवा ब्रह्मानाबाद

सिन्दोमना से सिकन्दर "वापिस नदी की ओर गया जहाँ उसने अपनी नौकाओं के बेडे का प्रतीक्षा करने की आज्ञा दे रखी थी तत्पश्चात् नदी के मार्ग मे नीचे की ओर जाते हुए चौथे दिन वह एक ऐसे नगर में पहुँचा जिससे होकर एक सडक साबस ने

राज्य की ओर जाती थी।" जिस समय सिकन्दर ने अलोर (मुसिकनस की राजधानी) के स्थान पर ओक्सीकनस के विरुद्ध प्रस्थान करने के विचार से अपनी नौकाओं के बेड़े को छोड़ा था उस समय वह सिन्दोमना की ओर जाने का विचार नहीं रखता था क्योंकि अधीनता स्वीकार कर लेने के पश्चात् राजा सम्बस को सिन्धु नदी के साथ-साथ पर्वतीय जिलों का क्षत्रप नियुक्त किया गया था। अतः उसने अपनी नौकाओं के बेड़े को नदी के किसी ऐसे स्थान पर प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी होगी जो ओक्सीकनस की राजधानी से अधिक दूर नहीं था। इस स्थान को मैं कटोर तथा ताजल के नीचे पुराने नारा पर अवस्थित मरिजा-दण्ड के समीप किसी स्थान पर निश्चित करूँगा क्योंकि मोर्टा जिसे मैं ओक्सीकनस के मुख्य नगर के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ, अलोर तथा कटोर से समान दूरी पर है। तत्पश्चात् नदी के मार्ग से नीचे जाते हुये वह चौथे दिन एक ऐसे नगर में पहुँचा था जिससे होकर एक सड़क सम्बस के राज्य की ओर जाती थी। मरिजादण्ड अर्थात उस बिन्दु से जहाँ मेरे विचार में सिकन्दर पुनः अपने बेड़े पर आ गया था। ब्रह्माना अथवा ब्राह्मनाबाद के ध्वस्त नगर की दूरी स्थल मार्ग द्वारा सीधी रेखा से ६० मील अथवा जल मार्ग से ६० मील है चूँकि इस दूरी को चार दिनों में सरलता पूर्वक तय किया जा सकता था अतः मेरा निष्कर्ष है कि ब्राह्माना ब्राह्मणों का वास्तविक नगर था जिसका सिकन्दर के इतिहासकारों ने उल्लेख किया था। इस नगर के राजा ने पहले सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु यहाँ के निवासियों ने उसकी सहायता करने से इन्कार कर दिया और उन्होंने नगर के द्वारों को बन्द कर लिया। एक गहरी चाल से उन्हें नगर के बाहर आने पर उत्साहित किया गया और तत्पश्चात हुए युद्ध में टालमी को विष से बुझे खड्ग से कन्धे में गम्भीर चोट आई। टालमी की चोट के उल्लेख से हमें इस नगर को हरमतेलिया के अनुरूप स्वीकार करने में सहायता मिलती है। जिसे दिवोडोरस ने, "नदी पर ब्राह्मणों का अन्तिम नगर" कहा है। अब, हरमतेलिया ब्रह्मथल अथवा ब्राह्मना स्थल का केवल कोमल उच्चारण है। जैसे यूनानियों का हरमीज़ (कामदेव) भारतीयों के ब्रह्मा अथवा आदि देवता के स्वरूप है परन्तु ब्राह्मना, नगर का प्राचीन हिन्दू नाम था जिसे मुसलमानों में ब्रह्मना-बाद कहा था। अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि सिकन्दर द्वारा अधिकृत ब्राह्मणों का नगर नाम एवं स्थिति में ब्राह्मनाबाद के विशाल नगर से मिलता है।

दुर्भाग्यवश सिन्दोमना के अधिकार के पश्चात् एरियन द्वारा दिया गया विवरण अति संक्षिप्त है। उसके शब्द इस प्रकार हैं—"उसने एक ऐसे नगर पर आक्रमण किया एवं अधिकार कर लिया, जिसने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था। विद्रोह का अभियोग लगा कर उसने उन सभी ब्राह्मणों का वध करवा दिया जो उसके चंगुल में फँस गये थे।" यह विवरण दिवोडोरस के कथन से जिसने लिखा है कि, सिकन्दर, "विद्रोह का परिपालन करने वाले सभी व्यक्तियों को दण्ड देने पर सन्तुष्ट

था तथा अन्य सभी को उसने क्षमा कर दिया था।" इन तीन विवरणों की तुलना करने से मेरा अनुमान है कि हरमतेलिया अथवा ब्राह्मना मुसिकनस के राज्य में था क्योंकि कर्टियस का कथन है कि नगर के राजा ने पहले सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी जबकि एरियन का कथन है कि उसने विद्रोह कर दिया था तथा दिवोडोरस ने यह जोड़ दिया है कि सिकन्दर ने विद्रोह का प्रतिपादन करने वालों को दण्ड दिया था। अब, यह सभी तथ्य मुसिकनस से सम्बन्धित है जिसने सर्व-प्रथम अधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु बाद मे विद्रोह कर दिया था और अन्त मे उसका वध करवा दिया गया "तथा उसके साथ ही उन सभी ब्राह्मणो का भी वध हुआ जिन्होंने उसे विद्रोह करने की प्रेरणा दी थी।" यह अनरूपता महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह पता चलता है कि मुसिकनस का राज्य पश्चिमी पर्वतो के अन्तर्गत ओक्सीकनस तथा सम्बुस के दो बाह्य जिलो को छोड़ मुहाने तक सिन्धु नदी के सम्पूर्ण घाट में विस्तृत था। उसके राज्य का विस्तार जन साधारण द्वारा सिकन्दर को दी गई इस सूचना को व्याख्या करता है कि मुसिकनस का राज्य "सम्पूर्ण भारत मे सर्वाधिक समृद्धि शाली एव जनपूर्ण था।" इससे यह भी पता चलता है कि सम्बस किस कारण मुसिकनस से शत्रुता रखता था क्योंकि मुसिकनस के राज्य की दक्षिणी सीमाएं पश्चिम मे सम्बस के राज्य से घिरी हुई थी। जस्टिन ने उस नगर के राजा को अम्बीगेर कहा है जहाँ टालमो एक विष मे बुझे तीर से घायल हुआ था। सम्भवतः मुसिकाती के शासक मुसिकानस का यह वास्तविक नाम था जिसके राज्य मे ब्राह्मना नगर अवस्थित था।

खेद है कि टालमी द्वारा सुरक्षित किसी भी नाम को निश्चित रूप से ब्राह्मणों के इस नगर क अनुरूप नही बताया जा सकता। परवाली स्थिति एव आंशिक रूप से नाम मे इससे मिलता है क्योंकि प्रथम दो अक्षर, पर्व, बरम से अधिक भिन्न नहीं है तथा अन्तिम अक्षर अलि ब्रह्मथल, केथल अथवा हरमतेलिया का प्रतिनिधित्व हो सकता है। टालमी के समय के पश्चात मुस्लिम विजय के समय तक लगभग ६ शताब्दियो के समय मे ब्राह्मनानगर के सम्बन्ध मे हमे कोई सूचना नही मिलती। फिर भी सिन्ध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों से हमें ज्ञात होता है कि ब्राह्मना सिन्ध के उन चार प्रान्तों मे एक प्रान्त का मुख्य नगर था जिनमें ५०७ ई० से ६४२ ई० तक रैस राज्य घराने के अधीन सिन्ध विभाजित था तथा यह नगर ६८० ई० में दाहिर के राज्यारोहण के समय तक प्रान्त का मुख्य नगर बना रहा। दाहिर ने सिन्धु नदी द्वारा अलोर के विनाश के पश्चात इसे अपनी राजधानी बनाया था। ६४१ ई० मे ह्वेनसांग ने सिन्ध की यात्रा की थी और उसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। उसने राज्य को चार जिलों में विभाजित पाया था जिन्हें भिन्न-भिन्न दिखाने के लिए मैं ऊपरी सिन्ध, मध्य सिन्ध, निचला सिन्ध तथा कच्छ के नाम दे चुका हूँ। प्रथम भाग का उल्लेख मैं अलोर के अपने विवरण में दे चुका हूँ। द्वितीय, ओ-फान-च को मैंने अभी ब्रह्मनाबाद के अनुरूप बताया

है। एम० जुलीन में चीनी अक्षर का अनुवाद अवन्द के रूप में किया है जिसके लिए समान अक्षर ढूंढ़ना अति कठिन है परन्तु मुझे सन्देह है कि यह केवल ब्राह्मना के नाम का परिवर्तित स्वरूप है क्योंकि इस शब्द का बाहमना, बहमना, बाभना, बाबना बाभना आदि विभिन्न ढङ्ग से उच्चारण किया जाता है। मन्सूर के सम्बन्ध मे लिखते समय इब्न हाऊकल ने लिखा है कि सिन्धी इसे बामा-वान कहा करते थे जिसे इदरसी ने बदल कर मीरमान लिखा है। हम जानते हैं कि मानसूर ब्राह्मना के अधिक समीप था। परन्तु सिन्ध के स्थानों की सूची मे इदरसी ने मन्सूर के पश्चात् बन्दन अथवा कन्दन का नाम लिखा है जिसे मैं बामनवा अथवा सिन्धियों के उच्चारणानुसार बामनवा तथा बनवा का भिन्न उच्चारण समझता हूँ। चीनी अक्षर फान-जो ब्रह्मा का सर्व ज्ञात अनुवाद है और इससे इस विचार की पुष्टि होती है कि अवन्द बहमनवा अथवा ब्राह्मनाबाद का आंशिक रूप से परिवर्तित रूप है।

मुस्लिम विजय के कुछ ही समय पश्चात् ब्राहमना का स्थान मन्सूरा ने ले लिया था जिसे, बिलदूरी के अनुसार सिन्ध के विजेता मुहम्मद बिन कासिम के पुत्र अमरू ने स्थापित करवाया था तथा द्वितीय अब्बासीदो खलीफ अल मन्सूर जिसने ७५३ से ७७४ ई० तक शासन किया था, के नाम पर इस नगर का नाम रखा गया था परन्तु मसूदी के अनुसार इसकी स्थापना जमहूर द्वारा की गई थी जो अन्तिम खलीफा के समय ७४४ से ७४६ ई० तक सिन्ध का गवर्नर था। उसने अपने पिता मन्सूर के नाम पर नगर का नाम रखा था। यह नवीन नगर ब्राह्मनाबाद के इतने समीप बनवाया गया था कि इब्न होऊकल, अब्बु रेहान तथा इदरसी, सभी ने एक ही स्थान के रूप मे इसका उल्लेख किया है। इब्न हाऊकल के शब्द इस प्रकार है, "मन्सूरा, जिसे सिन्धी भाषा मे बामावान कहा जाता है।" अब्बुरेहान का कथन है कि प्रारम्भ मे इसे बहमनवा तथा तत्पश्चात् हमनाबाद कहा जाता था जिसे हम प्रारम्भ मे ब अक्षर के जोड देने से बहमनाबाद पढ़ सकते है। यह अक्षर किसी कारणवश लुप्त हो गया होगा। यह नगर मिहरान अथवा सिन्धु नदी की पूर्वी शाखा पर अवस्थित था तथा १ मील लम्बा तथा उतना ही चौड़ा अथवा परिधि मे प्रायः चार मील था। विभिन्न स्थानों की ओर जाने वाले मार्गों पर यात्रा मे व्यतीत दिनों से इसकी स्थिति को हाला के पड़ोस मे निश्चित किया जा सकता है। मुल्तान से यह १२ दिन की दूरी पर था। सेहवान के मार्ग से कंदाबिल तक ८ दिन की दूरी पर तथा मन्हाबारी के मार्ग से डेबल तक ६ दिन की यात्रा पर था, स्वयं मन्हाबारी मन्सूरा से ४ दिन की यात्रा पर था अतः यह नगर मुल्तान से सिन्धु नदी के मुहाने तक की दो तिहाई दूरी पर अथवा हाला के समान समानान्तर स्थिति मे अवस्थित था।

अब, इसी स्थान पर श्री बेलासिस ने एक विशाल नगर के खण्डहर की खोज की है। इस नगर के सम्बन्ध मे अपनी जानकारी के लिए हम उनके उत्साह एवम्

प्रतिभा के आभारी हैं। यह खण्डहर हैदराबाद के ४७ मील उत्तर पूर्व में, हाला के २८ मील पूर्व अथवा पूर्व-उत्तर पूर्व मे तथा पूर्वी नारा के २० मील पश्चिम मे सिन्धु नदी के पुराने तट पर अवस्थित है। यह स्थान बम्भरा का-थूल अथवा "ध्वस्त बुर्ज" के रूप मे जाना जाता है क्योकि यहाँ की एक मात्र भवन ईटो का टूटा हुआ बुर्ज है। श्री बेलासिस के अनुसार इस स्थान का वर्तमान रूप इस प्रकार है "खण्डहरो का एक विस्तृत समूह जो अपने भवनो के मूल आकार के अनुसार आकार मे भिन्न-भिन्न है।" बच्चो को घुमाने के लिए प्रयोग मे लाई जाने वाली गाड़ी के माप के अनुसार इसकी परिधि ४ मील से कुछ गज कम है परन्तु बम्भरा-का-थूल के विशाल टीले के अतिरिक्त लगभग डेढ़ मील की दूरी पर "इसके अन्तिम राजा का निवास स्थान एवम् दोलोर का ध्वस्त एवम् विशिष्ट नगर है तथा अन्य दिशा मे पाँच मील की दूरी पर देपुर नामक ध्वस्त नगर है जो राजा के प्रधान मन्त्री का निवास-स्थान था तथा इन नगरो के मध्य उपनगरो के खण्डहर है जो मीलो तक खुले प्रदेश मे दूर-दूर तक फैले हुए है। बम्भरा-का-थूल का विशाल टीला "पूर्णतयः मिट्टी की प्राचीर से घिरा हुआ है जिस पर अनेक कगूर तथा बुर्ज बने हुए है।" अकबर के समय मे इस मोर्चा बन्दी के अनेक अवशेष प्राप्त थे। अब्बुलफजल का कथन है कि "इस मोर्चा बन्दी मे १४० बुर्ज था। (१) जो एक दूसरे से एक तनाब की दूरी पर थे। तनाब माप करने की एक रस्सी थी जिसे सम्राट अकबर ने लोहे की जन्जीरो द्वारा जोड़े बम्बुओ के स्थान पर परिवर्तित करने की आज्ञा दी। इसकी लम्बाई ६० इलाही गज था जिससे ३० इञ्च की दर से तनाब की लम्बाई १५० फुट प्राप्त होता है। तथा इस लम्बाई को १४० से गुणा करने पर नगर की परिधि २१००० फुट अथवा लगभग ४ मील हो जाती है। स्मरण रहे कि इब्न हाऊकल ने मन्सूरा को एक मील वर्गाकार अथवा परिधि मे चार मील बताया है तथा श्री बेलासिस ने बम्भरा-का-थूल की परिधि को ४ मील से कुछ गज कम बताया है। आकार की पूर्ण समानता एवम् स्थिति की समीप समानता, जिसका मै उल्लेख कर चुका हू, के कारण मेरा निष्कर्ष है कि बम्भरा-का-थूल का विशाल टीला सिन्ध के अरब गवर्नर की राजधानी मन्सूरा के ध्वस्त नगर का प्रतिनिधि है। अतः ब्राह्मना अथवा ब्राह्मनाबाद का हिन्दू नगर दिलूरा नामक खण्डहरो के टील के पड़ोस मे देखा जाना चाहिए जो विशाल टीले से केवल डेढ़ मील की दूरी पर है।

खण्डहरो की खोज करने वाले श्री बिलासिस के विशाल टीलो को स्वय ब्राह्मना-

---

(१) आइने अकबरी मे बुर्जों की सख्या १४०० बताई गई है जिससे नगर की परिधि ४० मील हो जायगी। प्रतिलिपि मे इसकी सख्या १४० दी गई है। इलाही गज में ४१½ सिकन्दरी तनका हुआ करते थे और क्योकि ६२ सिकन्द्रियो की औसतन चौड़ाई ७२·३४ इञ्च थी अतः इलाही गज की लम्बाई ३०.०२½ इञ्च रही होगी।

बाद के अनुरूप बताया है परन्तु इस सम्बन्ध में श्री थामस ने उचित आपत्ति की है। उनका कथन है कि खुदाई के बीच प्राप्त अनेकानेक मध्यकालीन मुद्राओ मे, "हिन्दू मुद्राओं की सख्या सीमित है और यह भी अन्य प्रान्तो की मुद्राये प्रतीत होती हैं जिनमें न कोई उल्लेखनीय समानता है न किसी युग विशेष का संकेत करती है।" स्थानीय मुद्राओ मे पूर्ण रुपेण सिन्ध के अरब गवर्नरो की मुद्राओ के नमूने हैं। जिनके पार्श्व मे मनसूरा का नाम खुदा हुआ है और जहां तक मुझे ज्ञान है एक भी ऐसी मुद्रा नही है जिसे सिन्ध के किसी हिन्दू राजा से सम्बन्धित किया जा सके। अतः खेद है कि श्री बिलासिस ने दिलूरा के छोटे टीले की अधिक खोज नही की जिससे सम्भवतः इसकी उच्च प्राचीनता का कोई सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त किया जा सकता।

स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तको एवम् जनश्रुतियो के अनुसार ब्राह्मनाबाद का विनाश दिलू राय नामक इसके शासक की धूर्तता के परिणामस्वरूप भूकम्प से हुआ था। इस शासक का समय सन्देहपूर्ण है। एम० मुदेरो ने इसे १४० हिजरी अथवा ७५७ ई० कहा है जब दिलू का बन्धु छोटा भाई मक्का की तीर्थ यात्रोपरान्त वापस आया था। परन्तु दसवी शताब्दी क प्रारम्भ मे जब मसूदी एवम् इब्न हौकल ने मनसूरा की यात्रा की थी यह उस समय भी समृद्धशाली नगर था अतः यह स्पष्ट है यह भूकम्प ६५० ई० से पूर्व नही आया था। दिलू एवम् छोटा भाई को ब्राह्मनाबाद के राय अथवा शासक अमोर का पुत्र बताया जाता है परन्तु यह विश्वास करना कठिन है कि मनसूरा म अरब शासन के समय ब्राह्मनाबाद मे कोई हिन्दू शासक था। तथ्य यह है कि पञ्जाब तथा साथ ही साथ सिन्ध के सभी प्राचीन नगरो के सम्बन्ध मे एक ही चिरपरिचित कथा बताई जाती है। शोरकोट, हड़प्पा तथा अटारा तथा साथ ही साथ अलार ब्राह्मना तथा बम्भूरा सभी को उनके शासको के पाप कर्मों के परिणाम स्वरूप ध्वस्त हुआ बताया जाता है। परन्तु तुलम्बा के सम्बन्ध मे भी इसी कथा का उल्लेख किया जाता है और हम जानते हैं कि यह कथा झूठी है क्योंकि मैं इसके विनाश के वास्तविक कारण अर्थात् रावी द्वारा इस स्थान से हट जाने का उल्लेख कर चुका हूँ। श्री बिलासिस की खोज से यह स्पष्ट हो चुका है कि ब्राह्मना का विनाश भूकम्प के कारण हुआ था। मानव हड्डियाँ "मुख्य रूप से द्वार पर प्राप्त हुई थी। लगता है कि वह भागने की चेष्टा कर रहे थे। अन्य हड्डियां भवनो के भीतर कोनो पर मिली है। कुछ शव सीधे खड़े थे कुछ लेटे हुये थे जिनके चेहरे,, भूमि की ओर थे। कुछ एक बैठी अवस्था मे ही दब गये थे। निश्चित ही नगर का विनाश अग्नि से नही हुआ था क्योंकि श्री रिचर्डसन ने लिखा है कि उन्हे कोयले अथवा जली हुई लकड़ी के चिह्न नही मिले और न ही प्राचीन दीवारों पर अग्नि के चिन्ह थे। इसके विपरीत उन्हें भी कमरों के कोनों मे दबी हुई मानव हड्डियाँ प्राप्त हुई थी। लगता है कि अपने भवनो को अपने ही ऊपर गिरते देखकर भयभीत निवासी कमरो के कोनो मे इकट्ठा हो गये थे तथा मलबे में दब गये थे। श्री

रिचर्डसन ने एक ऐसी ईंट उठाई थी जिसकी "नोक झोपड़ी में घुस गई थी तथा निकाले जाने पर हड्डी का टुकड़ा साथ आ गया था।" उनका निष्कर्ष श्री बिलासिस के समान है अर्थात "नगर का विनाश प्राकृति की भयानक भूकम्प के कारण हुआ था।"

बम्भरा-की-थूल में प्राप्त प्राचीन मुद्रायें, नगर के प्रसिद्ध सस्थापक, मनसूर के पुत्र, जम्हूर के समय से मसूदी के समकालोन उमर के समय तक सिन्ध के अरब शासकों से सम्बन्धित हैं। अतः सम्पूर्ण समय अर्थात् ७५० ई० से ६४० ई० अथवा कुछ समय पश्चात् तक यह स्थान बसा हुआ था।

यह मेरे उस कथन से ठीक-ठीक मिलता है जिसके सम्बन्ध मे मैं पहले लिख चुका हूँ कि दसवी शताब्दी के प्रथम आधे भाग मे मसूदी तथा इब्नहौकल की यात्रा के समय नगर समृद्ध अवस्था मे था अतः मैं इसके विनाश का समय उस शताब्दी के द्वितीय अर्धभाग मे समझता हूँ तथा यह ६७० ई० से पूर्व नहीं हुआ था। यह सत्य है कि अगली शताब्दी के प्रारम्भ मे अब्बुरेहान ने मन्सूरा का उल्लेख किया है तथा इससे भी कुछ समय पश्चात् इदरीसी कजविनी तथा रशीदुद्दीन ने इसका उल्लेख किया है परन्तु अन्तिम तीनो लेखक केवल ग्रन्थ संग्रहकर्ता थे तथा उनके विवरण तदानुसार पूर्व काल से सम्बन्ध रखते हैं फिर भी अब्बुरेहान मूल लेखक है और चूँकि भारतीय भाषाओं के ज्ञान के कारण उसे शुद्ध सूचनाएं प्राप्त करने की विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी अतः उसकी साक्षी यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि मन्सूरा उसके समय में बसा हुआ था। सिन्ध की मार्ग सूचना के सम्बन्ध में लिखते समय उसने कहा है, "एरोर से बाड़-मनवा जिसे एल मन्सूरा भी कहा जाता है २० परसङ्ग की दूरी है तत्पश्चात् नदी के मुहाने पर लोहरानी तक ३० परसङ्ग है।" अतः मन्सूरा उस समय बसा हुआ था जब अब्बुरेहान ने १०३१ ई० के लगभग अपनी पुस्तक लिखी थी परन्तु महमूद गजनी के आक्रमणो मे केवल एक लेखक ने इनका उल्लेख किया अतः यह प्रायः निश्चित है कि यह एक विशाल दुर्ग तथा देश की राजधानी के रूप में नही जाना जाता था अन्यथा वह लोभी एवम् लेटेरा विजेता इसके धन की ओर आकर्षित होता। यह सम्भव है कि अधिकांश निवासी जो महान् विरत्ति से बच गये थे अपनी दबी हुई सम्पत्ति को ढूंढने के लिए ध्वस्त नगर में वापिस आ गये हो तथा यह भी सम्भव है कि उनमें अधिकांश ने पुराने स्थानों पर अपने भवनो का पुनः निर्माण करवाया हो परन्तु नगर की दीवारें गिर चुकी थी तथा नगर सुरक्षित नहीं था। नदी धीरे-धीरे दूर चली गई थी तथा यहाँ जल का अभाव था तथा यह स्थान कुल मिलाकर इतनी अधिक जर्जर अवस्था में था कि ४१६ हिजरी अथवा १०२५ ई० में जब सोमनाथ का विजेता सिन्ध से होकर वापिस गया तो मन्सूरा की लूट उसे उसके सीधे मार्ग से हट जाने को प्रेरणा देने के

लिए पर्याप्त न थी। अतः प्राचीन राजधानी को यात्रा किए बिना अथवा उसकी ओर ध्यान दिये बिना वह सहवान के मार्ग से गजनी वापिस चला गया। यदि हम इब्न-अथीर के एक मात्र कथन की स्वीकार कर लें कि इस अवसर पर महमूद ने मन्सूरा में मुस्लिम गवर्नर की नियुक्ति की थी तो उपर्युक्त कथन मे सन्देह किया जा सकता है।

निचला सिन्ध अथवा लार

ह्वेनसांग ने पित्तसिला के जिले अथवा निचले सिन्ध की परिधि का ३००० ली अथवा ५०० मील बताया है जो सिन्धु नदी के पूर्व मे उमरकोट के मरुस्थल तक तथा पश्चिम ने कुमारी मोन्ज के पर्वतो तक नदी के दोनो ओर विस्तृत छोटे प्रदेश सहित हैदराबाद से समुद्र तक सिन्धु नदी तक मुहाने के आकार से ठीक-ठीक मिलता है। इन सीमाओ मे भीतर निचले सिन्ध के आंकडे इस प्रकार हैं। पश्चिमी पर्वतो से उमरकोट के पड़ोस तक १६० मील, उसी स्थान से कुमारी मोन्ज तक ८५ मील; कुमारी-मोन्ज से सिन्धु नदी को कोरी मुहाने तक १३५ मील; तथा कोरी मुहाने से उमरकोट तक १४० मील अथवा कुल मिलाकर ५२० मील। इस भूमि मे जिसे रेतीलो एवम् नमक युक्त कहा गया है अन्न एवम् सब्जियाँ प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न होती है परन्तु फल एवम् फूल कम मात्रा मे उत्पन्न होते हैं और यह कथन वर्तमान समय तक मुहाने के सम्बन्ध मे सत्य है।

सिकन्दर के समय मे मुहाने का एक मात्र उल्लेखनीय स्थान पटाला कहा जाता है कि अपनी नौकाओं के बेडे को चलाने के लिये वायु की प्रतीक्षा करते हुए निचले सिन्ध मे निवास के लम्बे समय मे उसने अनेक नगरो की स्थापना की थी। दुर्भाग्यवश इतिहासकारो ने इन स्थानो के नामो का उल्लेख नही किया है। केवल जस्टिन ने लिखा है कि सिन्धु तक अपनी वापसी के समय उसने बरसी नामक नगर का निर्माण करवाया था। अब मैं इसी का उल्लेख करूँगा। टालमी ने बारबरा, सोसीकाना, बोनिस तथा कोलक आदि अनेक स्थानो के नामो को सुरक्षित रखा है। प्रथम नाम सम्भवतः पैरीप्लस के बरबारकी, एमपोरियम तथा जस्टिन के बरसी के समान है। पैरीप्लस के लेखक के समय मे निचले सिन्ध की राजधानी मिन्नागरा थी। जहाँ विदेशी व्यापारी बरबारकी से नदी के मार्ग से पहुँच सकते थे। सातवीं शताब्दी के मध्य में ह्वेनसांग ने केवल पित्तसिला अथवा पटाला का उल्लेख किया है परन्तु आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे मुहम्मद बिन कासिम के अभियान के इतिहासकारों ने हमारी अल्प सूची मे देबल तथा निरनकोट के नाम जोड दिए हैं। दसवीं शताब्दी मे अरब भूगोग शास्त्रियो ने इस सूची मे वृद्धि की है। उन्होने मनहातारा अथवा मनहाबारी को सिन्धु नदी के पश्चिम मे देबल से दो दिन की यात्रा पर उस स्थान पर दिखाया है जहाँ देबल से आने वाली सड़क नदी के पार जाती है। अब मैं इन स्थानों का उत्तर से पश्चिम,

उनको स्थिति के अनुसार मुहाने के सिरे पर पटाला से प्रारम्भ कर उल्लेख करूंगा।

पटाला, निरनकोट

एम मुर्डो, मसोन, बर्टन तथा ईस्टविक के एक मत साक्षी के अनुसार निरनकोट को हैदराबाद के स्थान पर निश्चित किया गया है। केवल सर हैनरी इलियट ने इसे जरक के स्थान पर दिखाया है क्योकि उनका विचार है कि यह स्थान स्थानीय इतिहासकारो के विवरण से अधिक मिलता है, परन्तु चूंकि हैदराबाद नगर का आधुनिक नाम है जिसे जन साधारण अब भी निरनकोट के रूप में जानते हैं अतः निरून अथवा अरब इतिहासकारों तथा भूगोल शास्त्रियों के निरुनकोट के अनुरूप स्वीकार करने मे कोई सन्देह नही प्रतीत होगा। अब्बुलफेदा ने इसकी स्थिति को देबल से २५ परसग तथा मसूरा से १५ परसङ्ग की दूरी पर बताया है जो इस्तरवरी तथा इब्न हौकल के अपेक्षाकृत कम निश्चित कथनों से मिलता है। जिन्होंने केवल इतना कहा है कि यह देबल तथा मंसूरा के बीच, परन्तु अन्तिम नगर के अधिक समीप है। यह नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था तथा अच्छे मोर्चाबन्द परन्तु छोटे नगर के रूप मे इसका उल्लेख किया गया है जिसमें वृक्षों की संख्या कम थी। अब, हैदराबाद ब्राह्मनाबाद अथवा मसूरा के ध्वस्त नगर से ४७ मील तथा लारी-बन्दर से ८५ मील की दूरी है जिसे मैं प्राचीन देबल के सर्वाधिक सम्भावित स्थान के रूप में दिखाने का प्रयत्न करूंगा। जबकि जरक ब्राह्मणाबाद से ७४ मील तथा लारी-बन्दर से केवल ६० मील की दूरी पर था। अतः हैदराबाद की स्थिति जरक की अपेक्षा लिखित दूरियों से अधिक मिलती है। वर्तमान समय मे सिन्धु नदी की मुख्य शाखा हैदराबाद के पश्चिम मे बहती है परन्तु हम जानते हैं कि फुलेली अथवा पूर्वी शाखा पूर्व काल में मुख्य नदी थी। एम मुर्डो के अनुसार हैद नदी के हैदराबाद से पश्चिम की ओर चले जाने की घटना १००० हिजरी अथवा १५९२ ई० के पूर्व से पहले हुई होगी तथा यह परिवर्तन नासिरपुर के ह्रास के समय से मिलती है जिसकी स्थापना केवल ७५१ हिजरी अथवा १३५० ई० में हुई थी। चूंकि अब्बुलफजल ने थट्टा प्रान्त के एक उपखण्ड के मुख्य स्थान के रूप मे नासिर पुर का उल्लेख किया है अतः सिन्धु की मुख्य शाखा अकबर के शासन काल के प्रारम्भिक समय तक हैदराबाद के निरनकोट के पूर्व में प्रवाहित रही होगी।

निरूनकोट एक पहाडी पर अवस्थित है तथा इसके पडोस में एक झील थी जिसमें मुहम्मद कासिम का बेड़ा आ सकता था। सर हैनरी इलियट ने प्रथम को सिन्धु नदी के पश्चिम जरक की पहाड़ियों तथा द्वितीय को जरक के दक्षिण में हेलाई के समीप किंजूर झील के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु किंजूर झील सिन्धु नदी से सम्बन्धित नहीं है अतः सिन्धु नदी के मार्ग से बेड़े के ले जाए जाने के लिए इसका प्रयोग नही किया जा सकता था अतः निरनकोट के प्रतिनिधि के रूप में हैदराबाद की अपेक्षा

जरक को प्राप्त कथित लाभ समाप्त हो जाता है। सर हैनरी ने स्वीकार किया है "कि इसकी स्थिति का निर्धारण मुख्य रूप से अन्य स्थानों पर निर्भर करता है जिन्हें विवाद-ग्रस्त नगरों विशेषतयः देबल तथा मन्सूरा से सम्बन्धित किया जाता है।" प्रथम नगर को उन्होंने करांची से तथा अन्तिम नगर को हैदराबाद के अनुरूप स्वीकार किया है तथा इन्हीं के अनुसार ही वह निरनकोट को जरक के स्थान पर निश्चित करने के लिए बाध्य हैं। परन्तु 'सिन्ध में अरबों के परिशिष्ट' लिखने के पश्चात् श्री बिलासिस ने उसी स्थान पर बम्भरा-का-थूल नामक प्राचीन नगर की खोज की है जिसे काफी समय पूर्व एम मुर्डो ने ब्राहमनाबाद के स्थान के रूप में माना था। मंसूरा तथा ब्राहमणाबाद के प्रसिद्ध नगरों के स्थान से इसकी अनुरूपता के कारण हैदराबाद अथवा प्राचीन निरनकोट, बिलदूरी तथा चच्चनामा के निरून कोट के प्रतिनिधि के रूप मे रह जाता है। बम्भर-का-थूल से इसकी ४७ मील की दूरी तथा लारी बन्दर से ८५ मील की दूरी अब्दुलफिदा के १५ तथा २५ परसंगो से प्रायः ठीक ठीक मिल जाती है। यह भी पहाड़ी पर अवस्थित है अतः स्थान एवं नाम दोनो में यह निरनकोट से मिलता है। गजा नामक पहाड़ी १½ मील लम्बी ७०० गज चौड़ी है और इसकी ऊँचाई ८० फुट है। वर्तमान दुर्ग ११८२ हिजरी अथवा १७६८ ई० मे मीर गुलाम शाह द्वारा बनवाया गया था। पहाडी का लगभग एक तिहाई भाग, पश्चिमी छोर पर दुर्ग से घिरा हुआ है। मध्य भाग, मुख्य सडक तथा नगर के घने भवनो से तथा उत्तरी भाग मकबरो से घिरा हुआ है।

६४१ ई० मे जब चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग ने सिन्ध की यात्रा को थी वह कच्छ की राजधानी कोटेश्वर से ११७ मील ठीक उत्तर की ओर पी-तो-शी-लो तक गया था। तत्पश्चात् वह ३०० ली अथवा ५० मील उत्तर पूर्व की ओर ओ-फान च तक गया था जिसे मैं ब्राहमणाबाद के अनुरूप बता चुका हूँ। एम० जुलीन ने चीनी अक्षर को पित्तशिला पढा है परन्तु मैं इसे पाटशिला अथवा "चिपटी चट्टान" पढ़ने का इच्छुक हूँ। जो उस लम्बी समतल एवं खुली पहाडी का सही विवरण देता है जहाँ हैदराबाद अवस्थित है। यह नाम पातालपुर का स्मरण दिलाता है जो बर्टन के अनुसार हैदराबाद अथवा निरनकोट का प्राचीन नाम था और चूंकि यह नगर कोटेसर से ठीक १२० मील उत्तर मे तथा ब्राहमणाबाद के ४७ मील दक्षिण पश्चिम में है अतः मुझे इसे चीनी तीर्थयात्री के पित्तसिला के अनुरूप स्वीकार करने मे कोई संकोच नहीं है। पहाड़ी का आकार भी जो १½ मील लम्बा तथा ७०० गज चौडा अथवा परिधि मे ३ मील है, पित्तशिला के आकड़ो से अधिक समीप है। ह्वेनसांग के अनुसार पित्तशिला की परिधि २० ली अथवा ३½ मील थी।

पातालपुर तथा पाटशिला के नामो से इस सम्भावना का संकेत मिलता है कि हैदराबाद सिकन्दर के इतिहासकारो का पटाला हो सकता है जिसे उन्होने एक मत

से मुहाने के सिरे के समीप बताया है। अब, मुहाने का वर्तमान सिरा हैदराबाद से १२ मील ऊपरी मट्टारी के पुराने नगर के स्थान पर है जहाँ फुलेली सिन्धु नदी की मुख्य शाखा से अलग होती है। परन्तु प्राचीन काल में जब मुख्य नदी जिसे अब पुराना कहा जाता है अलोर तथा ब्राह्मणाबाद से होकर निरूनकोट तक जाती थी उस समय सिन्धु की शाखाओ के भिन्न-भिन्न होने का प्रथम स्थान या तो स्वयं हैदराबाद मे था जहाँ से मियानी से होते हुए त्रिकाल तक एक शाखा जाती थी अथवा यह स्थान इससे १५ मील दक्षिण पश्चिम में था जहाँ अब फुलेली गुनी शाखा को दक्षिण की ओर ढकेल देती है तथा यह स्वयं पश्चिम दिशा मे प्रवाहित होकर त्रिकाल के स्थान पर वर्तमान सिन्धु नदी मे मिल जाती है। अतः प्राचीन मुहाने का मुख्य सिरा या तो हैदराबाद मे था अथवा इससे १५ मील दक्षिण पूर्व मे, जहाँ गुनी अथवा सिन्धु की पूर्वी शाखा फुलेली अथवा पश्चिमी शाखा से अलग होती है।

अब पटाला की स्थिति को अनेक स्वतन्त्र आंकड़ों के आधार पर निश्चित किया जा सकता है :—

प्रथम—टालमी के अनुसार मुहाने का सिरा ओस्कन तथा लोनीबारे ओस्टियम नामक सिन्धु के पूर्वी मुहाने के ठीक मध्य मे था इससे पटाला की स्थिति हैदराबाद के स्थान पर निश्चित होती है जो ओक्सीकनस की राजधानी अर्थात् लरकाना के समीप महोर्टा तथा कोरी अथवा सिन्धु नदी के पूर्वी मुहाने से समान दूरी पर है। कोरी लोनी नदी अथवा लोनी बारे ओस्टियम का मुहाना भी है।

द्वितीय—अरिस्टोबूलस सिन्धु के मुहाने को १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील आंका था। निर्यकस ने इसे १८०० स्टेडिया तथा ओनिसिक्रीटस ने २००० स्टेडिया आका था। परन्तु पश्चिम में घार मुहाने से लेकर पूर्व में कोरी मुहाने तक वास्तविक तटीय लम्बाई १२० मील से अधिक नहीं है। हम अन्य लेखकों की अतिशयोक्तिपूर्ण संख्याओं की अपेक्षा अरिस्टोबूलस के अनुमान को अपना सकते हैं और चूंकि ओनिसिक्रीटस ने लिखा है कि मुहाने के तीनो किनारे समान लम्बाई के थे अतः सागर से पटाला की दूरी को १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील से १२५ मील स्वीकार किया जा सकता है। अब, घारा अथवा सिन्धु नदी के पश्चिमी मुहाने से हैदराबाद की दूरी ११० मील है तथा कोरी अथवा पूर्वी मुहाने से १३५ मील और यह दोनो दूरियाँ मुहाने के वास्तविक दूरी से समीप समानता रखती है। यह आंकड़े ओनिसिक्रीटस के विवरण का समर्थन करते हैं कि मुहाने से समभुज त्रिकोण बनता है। परिणाम स्वरूप पटाला नगर जो मुहाने के सिरे पर अथवा इसके समीप था प्रायः निश्चित रूप से वर्तमान हैदराबाद के अनुरूप समझा जा सकता है।

तृतीय—एरियन तथा कर्टियस के विवरणों की तुलना से प्रतीत होता है कि ब्राह्मणा अथवा ब्राह्मणों के नगर के स्थान पर पटाला के राजा ने सिकन्दर की अधी-

नता स्वीकार कर ली थी परन्तु सिन्धु नदी में नीचे की ओर तीन दिन की यात्रा के पश्चात् सिकन्दर को सूचना मिली कि भारतीय शासक अपना देश त्याग कर मरु भूमि की ओर भाग गया है। सिकन्दर ने तुरन्त पटाला की ओर प्रस्थान किया। अब, सीधे स्थल मार्ग से ब्राह्मणाबाद से हैदराबाद की दूरी ४७ मील है परन्तु सिन्धु नदी का पुराना मार्ग नसीरपुर के मार्ग से घुमावदार रास्ते से जाता है अतः नदी तट के साथ-साथ बना मार्ग जिसे सेना ने निश्चित रूप से अनुसरण किया होगा ५५ मील से कम नही है जबकि जल मार्ग से इसकी दूरी ८० मील रही होगी। स्थल मार्ग से १० अथवा १२ मील की सामान्य दर से अथवा जल मार्ग से १८ अथवा २० मील की दर से प्रथम तीन दिनो मे सिकन्दर स्थल मार्ग से हैदराबाद के १६ मील तथा जल मार्ग से २६ मील के भीतर पहुँच गया होगा और इस दूरी को उसने चौथे दिन की निरन्तर यात्रा के पश्चात् सरलता पूर्वक पूरा कर लिया होगा। पटाला से नदी की पश्चिमी शाखा के मार्ग से वह ४०० स्टेडिया अथवा ४६ मील दूर गया था जब उसके नव-सेना नायको ने सर्व प्रथम सागरीय वायु का अनुमान लगाया। मेरा विश्वास है कि यह स्थान जरक था जो स्थल मार्ग से हैदराबाद से ३० मील तथा जल मार्ग से ४५ मील अथवा ४०० स्टेडिया की दूरी पर था। यहाँ पर सिकन्दर ने मार्ग दर्शको की सहायता प्राप्त की तथा अधिक उत्साह के साथ यात्रा को जारी रखते हुए तीसरे दिन ज्वार भाटे के कारण उसे समुद्र की समीपता का ज्ञान हुआ। चूँकि सिन्धु नदी मे ज्वार भाटा समुद्र से ६० मील के पश्चात् नही देखा जाता अतः मेरा निष्कर्ष है कि सिकन्दर उस समय नदी की पश्चिमी शाखा घाट पर अवस्थित बाम्भरा नामक स्थान पर पहुँचा होगा जो समुद्र से स्थल मार्ग से ३५ मील तथा जल मार्ग से लगभग ५० मील की दूरी पर है। जरक से इसकी दूरी स्थल मार्ग द्वारा ५० मील तथा जल मार्ग से ७५ मील है जिसे नौकाओ के बेडे ने तीन दिन मे सरलता पूर्वक पूरा कर लिया होगा। उपर्युक्त तथ्यो से यह स्पष्ट है कि पटाला समुद्र से काफी दूरी पर रहा होगा अर्थात् ज्वार भाटे से पहुँच की दूरी तथा तीन दिन की यात्रा एवं ४०० स्टेडिया दूर रहा होगा। स्थल मार्ग से यह दूरियाँ क्रमशः ३३ मील ५० मील तथा ३० अर्थात् कुल मिला कर ११३ मील है। जो अरिस्टोबूलस के १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील के माप से प्रायः ठीक-ठीक मिलती है।

चूँकि उपर्युक्त तीनो स्वतन्त्र विचार धाराएँ पटाला के सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि के रूप मे एक ही स्थान की ओर संकेत करती हैं और चूँकि सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने इसे पतशिल कहा है तथा यह स्थान आज भी पाटलपुर के नाम से जाना जाता है। अतः मेरा विचार है कि हैदराबाद को प्राचीन पटाला के अनुरूप स्वीकार करने के लिए अधिक ठोस कारण उपस्थित हैं।

सिन्धु नदी के सम्बन्ध में अपने विवरण में एरियन ने लिखा है कि, "यह नदी

अपने दो मुहानों के द्वारा एक त्रिभुजाकार आकार बनाती है जो मिश्र के मुहाने से किसी प्रकार कम नहीं है जिसे भारतीय भाषा में पाटला कहा जाता है।" चूंकि यह कथन निर्यकस के विवरण पर आधारित है जिसे सिन्ध में लम्बी अवधि तक रहने के कारण जन-साधारण से बातचीत करने के प्रचुर अवसर प्राप्त हुए थे। अतः हम इसे तत्कालीन सिन्धियों के सामान्य विश्वास के रूप मे स्वीकार कर सकते हैं। अतः मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि यह नाम सिन्धु नदी के पूर्वी एवं पश्चिमी शाखाओं के मध्य प्रान्त के "तुरही" आकार के कारण पाटला अर्थात् "तुरही फून" से लिया गया है क्योंकि यह दोनो शाखाएँ जैसे-जैसे समुद्र के समीप होती हैं यह तुरही के मुँह के समान बाहर की ओर फैलती जाती है।

मैं इस प्राचीन नगर के स्थान पर यह विचार विमर्श एक अन्य नगर के उल्लेख किए बिना समाप्त नहीं कर सकता जिसका परस्पर विरोधी विवरण निरूनकोट से भ्रम पूर्वक सम्बन्धित प्रतीत होता है। यह नाम इस्तखरी का पिरूज, इब्नहौकल का कन्नाजबर, इद्रीसी का फिरबुज है। इस्तखरी के अनुसार पिरूज देबल से चार दिन की यात्रा पर तथा मेहाबारी से दो दिन की यात्रा पर था जो स्वयं देबल से दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था। इब्नहाऊकल तथा इदरीसी इस बात पर सहमत हैं कि कन्नजबर तथा फिरबुज़ की ओर आने वाली सडक मनहाबारी अथवा मनजाबारी से होकर जाती है जो देबल से दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था। परन्तु उन्होंने देबल के पश्चात् सम्पूर्ण दूरी को चार की अपेक्षा १४ दिन बताया है। अब, इब्नहौकल तथा इदरीसी ने अपने नगर को मेकरान मे बताया है। १४ दिन की कथित दूरी के कारण उन्हें उपर्युक्त स्थिति को स्वीकार करने के लिए प्रायः बाध्य होना पड़ा था जबकि प्रथम दो दिन की यात्रा मेकरान की विपरीत दिशा में पड़ती है। यदि हम देबल से चार दिन की संक्षिप्त दूरी को स्वीकार कर ले जिसे तीन भूगोल शास्त्रियों में प्रथम भूगोल शास्त्री इस्तखरी ने बताया है तो उनके अज्ञात नगर की स्थिति निरनकोट की स्थिति से ठीक-ठीक मिल जाएगी। मैं देबल को लारी बन्दर के समीप एक प्राचीन नगर, तथा मनहाबारी को थट्टा के अनुरूप समझूंगा जो लारी बन्दर तथा हैदराबाद के प्रायः मध्य में अवस्थित है। अब, इब्नहौकल ने विशेष रूप से लिखा है कि मनजाबारी "मेरान के पश्चिम मे अवस्थित था तथा वहाँ कोई भी व्यक्ति जो देबल से मनसूरा की ओर जाता उसे नदी को पार करना पड़ा होगा क्योंकि अन्तिम नगर मनजाबारी के विपरीत था।" इस संक्षिप्त विवरण से पता चलता है कि मनजाबारी सिन्धु नदी की पश्चिमी शाखा पर अवस्थित था अतः निरनकोट तथा साथ ही साथ पिरूज़ अथवा कन्नजबर अथवा फिरबुज़ की ओर आने वाली मुख्य सड़क पर अवस्थित था। अतः मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि प्रथम नाम जो मनहाबारी से सम्बन्धित किया गया है सम्भवतः इसका

प्रयोग निरून के लिए किया गया है तथा अन्य दोनों नाम निरूनकोट के लिये प्रयोग में लाए गये हैं क्योंकि मूल अरबी स्वरूप में इन्हें प्रायः समान रूप से लिखा जाता था। परन्तु मेकरान निश्चित ही लगभग समान नाम का एक स्थान था क्योंकि बिलादूरी ने लिखा है कि देबाल के विरुद्ध जाते सबय मुहम्मद कासिम ने मेकरान में फिजबुन पर अधिकार कर लिया था। (१) इब्नहौकल के कन्नजबर तथा इदरीसी के फिरबुज से इस्लाम की तुलना करने पर मैं यह सम्भव समझता हूँ कि यह नाम पंजगूर के लिए लिखा गया होगा जैसा कि एम० रिनाड ने प्रस्तावित किया है। १४ दिन की यात्रा इस स्थान की स्थिति से भली प्रकार मिल जाएगी।

जरक

जरक का छोटा नगर हैदराबाद तथा थट्टा के मध्य सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर प्रमुख स्थान पर अवस्थित है। जरक विचालो अथवा मध्य सिन्ध तथा लार अथवा निचले सिन्ध की वर्तमान सीमा है। निचने सिन्ध की सीमाओं को हैदराबाद तक विस्तृत स्वीकार करना पड़ा है ताकि यूनानियो का पटाला तथा चीनी तीर्थ यात्री के पितशिला को इसमें सम्मिलित किया जा सके। सम्भवतः यह खोर अथवा अलखोर नामक छोटा परन्तु जनपूर्ण नगर का स्थान है जिसे इदरिसी ने मनहाबारी तथा फिर बुज अर्थात् थट्टा तथा निरनकोट के मध्य बताया है। जरक से तीन मील नीचे खण्डहरो से ढकी एक अन्य निचली पहाड़ी है जिसे जन-साधारण काफिर कोट कहा करते है तथा राजा मनझीरा से इसे सम्बन्धित बतलाते हैं। मुख्य खण्डहर एक वर्गाकार कमरा है जिसे समान दूरी पर बने चौकोर खम्भों से सजाया गया है। इसे एक मन्दिर के अवशेष समझा जाता है। इन खण्डहरो में बौद्ध मूर्तियो के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए थे तथा पहाड़ी से कुछ दूरी पर प्राचीन भारतीय लिपि मे कुछ शिला लेख प्राप्त हुए हैं जिनमे मैं केवल पुत्रस तथा भग्वतस शब्द एवम् भिन्न भागो मे कुछ अन्य शब्द पढ़ सका हूँ परन्तु यह सभी इस बात के प्रमाण हैं कि शिला लेख एव अन्य खण्डहर बौद्ध कालीन हैं।

मीननगर, मनहाबारी अथवा थट्टा

थट्टा नगर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट से तीन मील, सटा हुआ नदी की मुख्य धारा से बागर अथवा पश्चिमी शाखा के अलग होने के स्थान से ४ मील ऊपर, एक निचली दलदल वाली घाटी मे अवस्थित है। मि० लिटल वुड ने लिखा है कि "कूड़े का ढेर" जिस पर भवन खड़े किये गये हैं घाटी के स्तर से थोड़ा ऊपर उठ गया है।

(१) सर हेनरी इलियट ने इस्तखरी द्वारा दिये गये नाम को कनजबून कहा है जिसे मुसलमान लेखको ने फिरियून पढ़ा है। इन भिन्नताओ का सर्वाधिक सम्भावित उत्तर, निरून एवम् मेकरान की राजधानी के नामों के द्विविधात्मक अरबी स्वरूप में देखा जा सकता है।

१६६६ ई० में कैप्टन हैमिल्टन ने इस स्थान की यात्रा की थी जिन्होंने इसे सिन्धु नदी से २ मील दूर एक खुले मैदान मे अवस्थित बताया है। अतः यह अत्यधिक सम्भव है कि यह नगर मूल रूप से नदी तट पर अवस्थित था। परन्तु यह नदी धीरे-धीरे नगर से दूर चली गई। इसके नाम से भी इसी निष्कर्ष का संकेत मिलता है क्योकि थट्टा का अर्थ है "नदी तट अथवा समुद्र तट।" अतः नगर थट्टा जो इस स्थान का सामान्य नाम है, का अर्थ इस प्रकार होगा, "नदी तट पर अवस्थित नगर।" इसकी तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। परन्तु एम० मुरडो जिनका कथन सामान्य रूप से अधिक शुद्ध है, का कथन है कि इसकी स्थापना ९०० हिजरी अथवा १४९५ ई० मे सिन्ध के शासक अथवा जाम निजामुद्दीन नन्दा ने करवाई थी। उसके समय से पूर्व निचले सिन्ध का मुख्य नगर सम्मा जाति की राजधानी सामी नगर था जो थट्टा के स्थान से ३ मील उत्तर पश्चिम मे एक उठते हुए मैदान मे अवस्थित है। एम० मुरडो का कथन है कि इसकी स्थापना दिल्ली के अलाउद्दीन के समय मे हुई थी जिसने ६९५ से ७१५ हिजरी अथवा १२९५ ई० से १३१५ ई० तक शासन किया था। कल्यानकोट अथवा तुगलकाबाद का विशाल दुर्ग इससे पुराना है जो थट्टा के ४ मील दक्षिण पश्चिम में चूने के पत्थरो की पहाडी पर अवस्थित है। इसका दूसरा नाम गाज़ीबेग तुगलक से लिया गया है जो अलाउद्दीन के शासनकाल के अन्तिम भाग में, चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुल्तान तथा सिन्ध का गवर्नर था।

थट्टा के स्थान को आधुनिक स्वीकार किया जाता है परन्तु सामी नगर कल्याण कोट के स्थानो को अत्यन्त प्राचीन बताया जाता है। जन साधारण का यह विश्वास निस्सन्देह सही है क्योकि मुहाने के सिरे पर अवस्थित होने के कारण यह सम्पूर्ण नदी पर नियम नियन्त्रण रखता है जबकि पर्वतीय दुर्ग सुरक्षा प्रदान करता है। लैफ्टीनेन्ट वुड ने टिप्पणी की है कि थट्टा का स्थान व्यापारिक उद्देश्यों के लिए अत्यन्त लाभ-पूर्ण है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि प्राचीनतम समय से इसके पड़ोस में बाजार रहा हा। "परन्तु" उसने उचित रूप से यह जोड़ दिया है कि "क्योकि मुहाने का सिरा एक निश्चित बिन्दु नही है अतः नदी के परिवर्तन के साथ-साथ इस नगर के स्थान में भी परिवर्तन हुआ होगा।" स्वभाविक है कि स्थान के परिवर्तन में, नामों मे भी परिवर्तन हुआ होगा अतः मेरा विश्वास है कि थट्टा अरब भूगोल शास्त्रियों के मनहाबारी तथा पैरीप्लस के लेखक के मनि नगर का वास्तविक स्थान था।

सभी लेखको ने मनहाबरी को देबल से दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित बताया है। अब, थट्टा इसी स्थान पर अवस्थित है जो लारी बन्दर से दो दिन की यात्रा पर अथवा ४० मील की दूरी पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। आगे चल कर मैं बताऊंगा कि लारी बन्दर प्रायः निश्चित रूप से देबल के प्रसिद्ध नगर के कुछ ही मीलों के भीतर था। मनहाबारी के

नाम को मेहाबारी तथा मण्डाबारी आदि भिन्न रूप से लिखा गया है जिसके लिए मैं प्रस्ताव करूंगा कि इसे हम सम्भवतः मण्डाब.री अथवा मण्डावरी अर्थात् "मण्डजाति का नगर" पढ़ सकते है। ठीक उसी प्रकार जैसे सामी नगर को "सम्मा जाति का नगर" कहा जाता है। नाम की मूल व्युत्पत्ति इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि मण्ड जाति ईसा काल के प्रारम्भ मे अधिक संख्या में निचले सिन्ध में बसी हुई है। इदरिसी ने मण्ड जाति को बहुसंख्यक एवं वीर जाति कहा है जो सिन्धु तथा भारत की सीमाओं पर मरुस्थल में बसी हुई है तथा यह जाति उत्तर मे अलोर तक, पश्चिम में मेकरान था तथा पूर्व मे ममेहेल (अथवा उमरकोट) तक फैली हुई है। इब्न हौकल ने लिखा है कि "मण्ड जाति के लोग मुल्तान की सीमाओं से समुद्र तक मिहरान के तट पर तथा मेकरान तथा फामहल (अथवा उमरकोट) के बीच मरु भूमि में बसे हुए हैं। उनके पास अनेक पशु एवम् चरागाहे थी तथा उनकी जनसंख्या अधिक थी।" इस समय से पूर्व ही रशीदुद्दीन ने इन्हे सिन्ध का निवासी कहा है। उसके विवरण के अनुसार नोहा के पुत्र हाम के दो वंशज मेद तथा जट, महाभारत के समय से पूर्व सिन्ध के निवासियो के पूर्वज थे। यह नाम मेर, मेड, मण्ड आदि भिन्न भिन्न रूप मे लिखा गया है और यह सभी नाम वर्तमान समय मे भी मिलते हैं। इन नामो के साथ मैं मिन्द नाम जोड़ दूंगा जो मसूदी द्वारा दिये गये नाम का स्वरूप है। पहले ही मैं इस जाति को प्राचीन लेखको के मेदी तथा मण्ड्रेनो के अनुरूप बता चुका हूँ और चूंकि उनके नाम केवल ईसवी काल उत्तरी भारत में पाये जाते हैं अतः मेरा निष्कर्ष है कि मण्ड्रेनो तथा ओक्सस के इयाटी जिन्हें प्लिनी ने एक साथ जोड़ दिया है सकाय इण्डो सीथियन रहे होंगे जो पञ्जाब एवं सिन्ध में बसे हुए थे तथा जिन्होंने प्रारम्भिक मुसलमान लेख के मण्ड एवं जाट नाम से सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में सिन्धु नदी की सम्पूर्ण घाटी पर अधिकार कर रखा था।

यह दिखाने के लिए कि नाम के विभिन्न स्वरूप केवल उच्चारण के स्वभाविक परिवर्तन मात्र है, मैं शाहपुर तथा झेलम जिलों के दो विशाल मानचित्रों का उल्लेख कर सकता हूं जो अन्तिम कुछ वर्षों मे भारत के महा सर्वेक्षक द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। अन्तिम मानचित्र में जलालपुर से ६ मील ऊपर झेलम नदी पर अवस्थित एक गाँव का नाम मेरिआला लिखा गया है तथा प्रथम मानचित्र में इसे मण्डिआली लिखा गया है। अब्बुलफजल ने इसी स्थान को मेराली कहा है जबकि फरिश्ता ने इसका नाम मेरिआला बताया है। अन्त मे विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगलबेग ने इसे मण्डिआला लिखा है जो मुझे दो विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त नाम से मिलता है जबकि जनरल कोट के मानचित्र में इसे मामरिआला लिखा गया है।

मैं मीन नगर अथवा "मीन का नगर" को इन्ही लोगो से सम्बन्धित बताऊंगा। मीन नगर ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी में निचले सिन्ध की राजधानी थी। खरक्ष

के इसी डोर की सूची में सकसटीन अथवा सिजसतान के नगरों में एक नगर के रूप में बताए जाने के कारण हम जानते हैं कि मीन एक सीथियन नाम था। सिन्ध में इस नाम की उपस्थिति सीथियनों की उपस्थिति को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त है परन्तु निम्न उल्लेख से सीथियनों एवं उपर्युक्त नाम का सम्बन्ध असंदिग्ध हो जाता है कि मीन नगर के शासक विरोधी पार्थियन जो परस्पर एक दूसरे को पदच्युत किया करते थे। यह पार्थियन ओक्षस के दहाए तिथियन थे जिन्होने सिन्धु नदी की घाटी को इण्डोसीथिया का नाम दिया था तथा जिनकी पारस्परिक शत्रुता प्रारम्भिक मुसलमानों के मेड तथा जाटो की शत्रुता मे अनुरूपता की ओर संकेत करती है।

मीन नगर का वास्तविक स्थान अज्ञात है तथा इसके स्थान के निर्धारण का प्रयत्न करने मे हमारी सहायता बहुत कम आकड़े उपस्थित है। चूंकि टालमी जिसने द्वितीय शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग मे लिखा है, इसका उल्लेख नही किया है। अतः मेरा अनुमान है कि या तो राजधानी को उस समय तक नवीन नाम नहीं दिया गया था अतः यह अधिक सम्भव है कि टालमी ने केवल पुराने नाम का उल्लेख किया है। यदि मैं मीन नगर अथवा "मीन का नगर" को मण्डाबारी अथवा "मण्ड जाति के स्थान" के अनुरूप स्वीकार करने में सही मार्ग पर हूँ तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि विशाल इण्डो-सीथियन राजधानी थट्टा में थी। इदरिसी ने मनहाबाद को एक निचले समतल पर अवस्थित तथा उद्यानो एवं बहते जल से घिरा हुआ नगर कहा है। केप्टन हमिल्टन ने थट्टा का इसी प्रकार उल्लेख किया है। उसका कथन है कि "यह नगर खुले मैदान मे अवस्थित है तथा इन लोगों ने नगर में जल लाने के लिए तथा अपने उद्यानो के प्रयोग के लिए नदी से नहरें निकाल रखी थी।" पैरीप्लस के लेखक के अनुसार व्यापारिक जहाज बारबारी के विक्रायलय पर रुका करते थे जहाँ समान उतार लिया जाता था तथा नदी मार्ग से राजधानी को भेजा जाता था। ठीक इसी प्रकार आधुनिक समय में समुद्री जहाज लारी बन्दर पर रुकते हैं जबकि व्यापारी अपना सामान स्थल अथवा जल मार्ग से थट्टा तक ले जाते हैं। मीन नगर की स्थिति का इतना स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि इसकी स्थिति के निर्धारण में इस उल्लेख से कोई सहायता नही मिलती। यदि यह थट्टा के स्थान पर था, जैसा कि मेरा विचार है, उस स्थिति मे इसे टालमी के साओसीकना के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। जिसे मैं सूसीग्राम अथवा "सूजाति का नगर" समझूंगा। उपर्युक्त शब्द व्युत्पति इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि मण्ड अथवा मेड, सु अथवा अबार के विशाल जाति की शाखा थे जिन्होने एक नाम दजला फरात नदी के मुहाने पर सुसिआना को तथा दूसरा नाम सिन्धु नदी के मुहाने पर अबोरिया को दिया था। फिर भी मुझे यह उल्लेख करना चाहिए कि एम० मुरडो के अनुसार "मिन्न नगर बारहवीं शताब्दी में मुल्तान का एक आश्रित नगर था तथा अग्री जाति के एक शासक तथा सिकन्दर के वंशज के

अधिकार में था। यह लोहाना दरिया पर अवस्थित था जो बहमना से अधिक दूर नहीं है तथा उस परगना में है जिसे अब शहदादपुर कहा जाता है।" यह सन्देहास्पद स्थिति है कि पोस्टन अथवा इलियट ने इस उल्लेख को प्रमाणित नहीं किया है। अन्तिम लेखक जिसने अपनी पुस्तक तोहफात-उल-किराम का निरन्तर उल्लेख किया है, ने उपर्युक्त उल्लेख को एम० मुडरो से लिया है। इस विवरण मे मैं य. जोड सकता हूँ कि अग्री एक सर्व प्रसिद्ध निचली जाति है जो नमक के उत्पादन में नियुक्त है अतः मैं यह स्वीकार करने का इच्छुक नहीं हूँ कि यह छोटा स्थान इण्डोसीथिया की विशाल राजधानी से किसी रूप मे सम्बन्धित हो सकता है। इसके विपरीत मै मीन नगर के नाम को केवल मीन का नगर समझता हूँ।

बरबारीके-विक्रयालय अथवा बम्भूरा

बम्भोरा अथवा बम्भूरा का ध्वस्त नगर घार खाडी के सिरे पर बसा हुआ है जिसे "स्थानीय व्यक्ति सिन्ध की प्राचीनतम बन्दरगाह का स्थान समझते हैं।" 'अब मकानों, बुर्जों एवं दीवारो' के खण्डहरो को छोड अन्य कुछ शेष नहीं है परन्तु दसवीं शताब्दी के लगभग बम्भूरा बम्भो राजा नामक एक शासक की राजधानी थी। जन साधारण की प्रथाओ के अनुसार सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा किसी समय बम्भूरा से होकर बहती थी। कहा जाता है कि यह शाखा थट्टा से कुछ ऊपर मुख्य नदी से अलग हो जाती थी। एम० मुडरो ने इस तथ्य के लिए तबकात-ए अकबरी को उधृत किया है कि अकबर के शासन काल मे यह शाखा थट्टा के पश्चिम से बहा करती थी। इसी तथ्य के लिए सर हेनरी इलियट ने एन-को को उधृत किया है जो अनेक वर्षों तक थट्टा मे अङ्ग्रेज रेजोडेन्ट थे। १८०० ई० मे लिखते हुए एन को ने कहा है कि "नदी के उस विचित्र परिवर्तन से जो थट्टा से कुछ ऊपर पिछले २५ वर्षों मे हुआ है वह नगर छोटे मुहाने के कोण से बाहर चला गया है जहाँ यह पूर्ववर्ती समय मे बिलोचिस्तान की पहाड़ियो की ओर मुख्य भूमि पर अवस्थित था।" उपर्युक्त कथनों से ऐसा प्रतीत होता है कि घार नदी अन्तिम शताब्दी के द्वितीय अर्ध भाग तक सिन्धु नदी को सबसे पश्चिमी शाखा थी परन्तु एम० मुडरो के अनुार इससे काफी समय पूर्व यह नदी नौकाओ के लिए अनुपयुक्त हो गई थी क्योंकि १२५० ई० के लगभग नदी के सूख जाने के कारण बम्भर तथा देवल दोनों त्याग दिए गए थे। मेरी निजी पूछ-ताछ से इसी तिथि का पता चलता है क्योंकि देबल उस समय बसा हुआ था जब ख्वजिम के जल्लुलदीन ने १२२१ ई० मे सिन्ध पर आक्रमण किया था तथा १३३३ ई० में यहाँ केवल खण्डहर थे जब इब्नबतूता लारी बन्दर गया था जिसने सिन्धु नदी को विशाल बन्दरगाह के रूप मे देबल का स्थान ले लिया था।

एम० मुडरो ने स्थानीय लेखको को उदधृत कर यह प्रदर्शित किया है कि सिन्धु

नदी की उपर्युक्त पश्चिमी शाखा सागार नदी कहलाती थी और उसका विचार है कि इसे टालमी की सागपा ओस्टियम के अनुरूप समझा जा सकता है। जो उसके समय में सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा थी। अतः यह प्रायः सम्भव है कि एम मुरडो का अनुमान सत्य हो कि सिन्धु नदी को यह वही शाखा थी जिससे सिकन्दर ने यात्रा को थी। फिर भी नवीन मानचित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि घट्टा तथा धारा के मध्य इस नदी से एक अन्य शाखा निकल कर बाईं ओर मुड गई थी जो २० मील तक दूसरी शाखा के समान्तर बहती थी। तत्पश्चात् यह शाखा दक्षिण की ओर मुड कर लारी बन्दर से कुछ नीचे नदी की मुख्य धारा से मिल जाती थी। अब यही शाखा बम्भूरा के २ अथवा ३ मील दक्षिण मे बहती है। अतः नदी के पिटी, फुग्डी, क्यार तथा सिटियानी मुहानों से इस नगर मे पहुँचा जा सकता था। अतः मैं बम्बूरा नगर को न केवल बरके नगर के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ जिसे अपनी वापसी के समय सिकन्दर ने बनवाया था वरन् मैं इसे टालमी के बरबारी तथा पैरीप्लस के लेखक के बरबारी के एम्पोरियम के अनुरूप भी समझता हूँ। अन्तिम लेखक ने अपने समय मे सिन्धु नदी की केवल मध्य शाखा को बरबारीके के स्थान तक व्यापारिक नौकाओ को उपयुक्त बताया है। अन्य सभी छः शाखायें संकीर्ण एवं छिछली थीं। इस कथन से प्रतीत होता है कि २०० वर्ष ईसा से पूर्व घार नदी का जल कम होना शुरू हो गया था। टालमी ने नदो के मध्य मुहाने को जो उस समय नौकाओं के प्रवेश के लिये उपयुक्त था खारीफोन पोसोटियम कहा है। इस नाम को मैं आधुनिक समय की क्यार नदो के अनुरूप समझूंगा जो ठीक उस स्थान तक चली जाती है जहाँ घार की दक्षिणी शाखा लारी बन्दर के समीप मुख्य नदी से मिल जाती है।

उपर्युक्त विचार विमर्श से मेरा निष्कर्ष है कि घार की उत्तरी शाखा सिंधु की पश्चिमी शाखा थी जिसमे सिकन्दर एव नियरकस ने नौकाओं द्वारा यात्रा की थी तथा २०० ई० से पूर्व इसका जल अधिक दक्षिण की ओर एक अन्य शाखा अर्थात् दक्षिणी घार मे चला गया जो लारी बन्दर से कुछ नीचे सिन्धु नदी की मुख्य धारा में मिल जाती है। पैरीप्लस के लेखक के समय मे व्यापारी जहाज नदी की इसी शाखा से हो कर बरबारीके नक जाते थे जहाँ इनका सामान उतार लिया जाता था तथा नौकाओं मे लाद कर देश की राजधानी मीन नगर तक ले जाया जाता था। परन्तु कुछ समय पश्चात् यह शाखा भी इस व्यापार के लिये अनुपयुक्त हो गई। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे जब अरबों ने सिन्ध पर आक्रमण किया उस समय देबल सिन्धु नदी का मुख्य बन्दरगाह बन चुका था तथा इसने बम्भूरा अथवा प्राचीन बारबरीके का स्थान पूरी तरह ले लिया था। परन्तु यद्यपि घार नदी व्यापारिक नौकाओं के लिये उपयोगी नही रही फिर भी इसका जल १३ वी शताब्दी तक प्राचीन नगर से होकर गुजरता था। ततपश्चात ऐसा प्रतीत होता है कि यह नदी पूर्णयतः सूख गई थी।

देबल सिन्धी अथवा देबल

देबल का प्रसिद्ध बन्दरगाह, अथवा सिन्धु नदी के मध्य कालीन व्यापारिक सामान के बिक्री का स्थान अभी तक अनिश्चित है। अब्बुलफजल तथा पश्चात्वर्ती मुस्लिम लेखकों ने देबल को थट्टा से मिला दिया है परन्तु उनके लिखने के समय देबल बसा हुआ नहीं था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि वह सभी लेखकों को देबल थट्टा के नाम से भ्रम हो गया था जो (नाम) प्रायः थट्टा के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मणा अथवा ब्राह्मणाबाद को देबल कांगड़ा कहा जाता था तथा देबल के प्रसिद्ध बन्दरगाह को देबल सिन्धी का नाम दिया गया था परन्तु दीवल अथवा देबल का साधारण अर्थ एक मन्दिर है। अतः देबल सिन्धी का अर्थ सिन्धियों के नगर अथवा उसके समीप अवस्थित मन्दिर रहा होगा। मेजर बरटन ने लिखा है कि थट्टा के दुशालों को अब भी शाल-ए-देबाली कहा जाता है। परन्तु इससे केवल यह सिद्ध होता है कि देबल वह स्थान था जहाँ व्यापारी थट्टा की शालें प्राप्त किया करते थे। ठीक इसी प्रकार मुल्तानी मट्टी का नाम उस स्थान से लिया गया है जहाँ से व्यापारियों को यह वस्तु उपलब्ध होती थी क्योंकि यह मिट्टी वस्तुतः डेरा गाजीखाँन से आगे सिन्धु नदी के पश्चिम मे पहाड़ियों मे पाई जाती है। इसी प्रकार भारतीय स्याही के नाम को भारत से लिया गया है जहाँ व्यापारियों ने इसे सर्वप्रथम प्राप्त किया था। यद्यपि अब यह सर्व ज्ञात है कि इसका उत्पादन चीन मे होता है। सर हेनरी इलियट, जो सिन्ध के भूगोल के सम्बन्ध मे अन्तिम अनुवेक्षक हैं, ने देबल को कराची के स्थान पर बताया है परन्तु उन्होने स्वीकार किया है कि "कराची के पश्चात्" लारी बन्दर "द्वितीय सर्वाधिक सम्भावित स्थान है।" परन्तु मैं श्री क्रो के विचार को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि देबल कराची तथा थट्टा के मध्य किसी स्थान पर अवस्थित था। उनका विचार विशेष महत्व रखता है क्यों है एम० मुरबो तथा इलियट ने स्वीकार किया है कि "स्थानीय अनुवेक्षक के रूप में पर्याप्त अवसर प्राप्त होने के कारण उनका विचार संतुलित था।" सर हेनरी ने इस तथ्य के लिए चचनामा उद्धृत किया है कि "विपत्ति के समय सिरनदीप के जहाज देबल के किनारे तक लाये जाते थे। वह यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि यह बन्दरगाह समुद्र के समीप रही होगी वहाँ तङ्गामरा जाति के समुद्री डाकू जो कराची से लारी बन्दर के समुद्र तट पर बसे हुए थे ने उन पर आक्रमण किया था। इस कथन से पता चलता है कि यदि देबल को कराची अथवा लारी बन्दर के अनुरूप स्वीकार नहीं किया जा सकता तो उसे इन दोनों स्थानों के बीच किसी स्थान पर देखा जाना चाहिए।

कराची के पक्ष मे सर हेनरी इलियट ने बिलदूरी को उधृत किया है जिसने लिखा है कि १५ हिज़री अथवा सन् ६३६ ई० मे हाकिम ने अपने भाई मुगीर को तेबल की खाड़ी में अभियान पर भेजा था परन्तु जैसे लेआनस नगर लेआन की खाड़ी के तट पर

नहीं है उसी प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि देबल, देबल की खाडी के तट पर था। वस्तुतः इब्न-खुर्दादबे ने इसे मेहरान के मुहाने से दो फर्सांख की दूरी पर बताया है जिसे मसूदी ने अधिक बढा कर दो दिन की यात्रा की दूरी पर बताया है। चूंकि देबल सिन्धु नदी पर अवस्थित था अतः इसे कराची के अनुरूप स्वीकार नहीं किया जा सकता जो नदी के मुहाने से दूर समुद्र तट पर बसा हुआ है। हमारे सभी लेखक इस कथन में सहमत हैं कि यह नगर मेहरान अर्थात नदी की मुख्य धारा अथवा बघार के पश्चिम में था जो लारी बन्दर से होकर बहती है तथा पिट्टी, फुण्डी क्यारी तथा पिन्टयानी नामक अनेक भिन्न मुहानों से होकर समुद्र मे गिरती है। परन्तु एम० मुरडो ने भी यह प्रदर्शित करने के लिए स्थानीय लेखकों को उधृत किया है कि यह सिन्धु नदी की सागारा शाखा पर अवस्थित था जो बम्भूरा से होकर बहती था। इन विवरणों के अनुसार देबल घार नदी को दक्षिणी शाखा अथवा सागारा शाखा के सगम से कुछ नीचे बघार नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित रहा होगा। अतः इसकी स्थिति को अनुमानतः स्थान पर निश्चित किया जा सकता है जो लारी बन्दर से ५ मील उत्तर में, बम्भूरा से १: मील दक्षिण पश्चिम मे तथा नदी के पिट्टी पिन्टयानी मुहानो से लगभग ३० मील दूर है। यह स्थिति सर हेनरी इलियट द्वारा उद्धृत अन्य शर्तों का भी पालन करती है कि देबल तगामारा जाति के डाकुओं के प्रदेश में कराची अथवा लारी बन्दर के मध्य मे था। यह श्री क्रो द्वारा दिये गये स्थान से भी सहमत है जिन्होंने इसे कराची तथा थट्टा के मध्य बताया है जो नदी के मार्ग का अनुसरण करते हुए प्रदेश का ठीक-ठीक विवरण है क्योंकि देबल मुहाने की एक दूसरे को काटती हुई नदियों के मध्य अवस्थित था।

दुर्भाग्यवश मुहाने के इस भाग की सूक्ष्म खोज नहीं हुई है और मै एक प्राचीन नगर के खण्डहरो के सम्बन्ध में अपनी अज्ञानता का यही कारण समझता हूँ। यह प्राचीन नगर १३३३ ई० मे इब्नबतूता द्वारा उसी स्थान पर देखा गया था जो स्थान मैंने देबल के लिए चुना है। चूकि इसका कथन अधिक महत्वपूर्ण है अतः मैं उसे पूर्ण रूपेण उधृत करूँगा—"तत्पश्चात् मैं सिन्ध के मार्ग से लाहरी नगर तक गया जो हिन्द महासागर के तट पर उस स्थान पर अवस्थित है जहाँ सिन्ध समुद्र मे गिरती है। यहाँ एक विशाल बन्दरगाह है जहाँ इरान, यमन तथा अन्य स्थानों के जहाज आकर रुकते हैं। इस नगर से कुछ मीलो की दूरी पर एक अन्य नगर के खण्डहर प्राप्त है जहाँ मानव तथा पशुओं के आकार के पत्थर प्रचुर संख्या मे मिलते है। इस स्थान के जन साधारण का विचार है कि उनके इतिहासकारो के विचारानुसार इस स्थान पर पूर्ववर्ती समय में एक नगर था जिसके अधिकांश निवासी इतने नीच थे कि भगवान ने उन्हें, उनके पशुओ को, उनकी जडी बूटियो को एवम् उनके बीजों तक को पत्थर बना दिया और वस्तुतः बीच के आकार के पत्थर यहाँ प्रायः असंख्य मात्रा में हैं।" मानव एवं पशुओं

के आकार के पत्थरो सहित नगर के विशाल खण्डहरो को मैं देबल के किसी समय महान बिक्री का केन्द्र का खण्डहर समझता हूँ। एम० मुरडो के अनुसार देबल के निवासी लारी बन्दर मे चले गये तथा कैप्टन हेमिल्टन के अनुसार लारी बन्दर में बिलूचियों तथा मकरानियों से व्यापारियो की सुरक्षा के लिए 'पत्थरों का एक विशाल दुर्ग' था। मेरा विचार है कि यह कहना उचित एवं न्याय सङ्गत होगा कि देबल को छोड़ कर जाने वाले निवासी अपने प्राचीन नगर की सामग्री को नवीन नगर निर्माण हेतु ले गये होंगे अतः लारी बन्दर के दुर्ग के पत्थर देबल के निर्जन नगर से लाये गये होंगे। जिसके खण्डहरो ने १३३३ ई० मे इब्नबतूता को अपनी ओर आकर्षित किया था।

इब्नबतूता के इस कथन को मैं 'अरेबियन नाइट मे एक भारतीय नगर के विचित्र विवरण से सम्बन्धित करूँगा। यह विवरण जोबेदा की कहानी मे मिलता है। इस कहानी के अनुसार यह स्त्री बसोरा के बन्दरगाह से चली थी तथा २० दिन की यात्रा के पश्चात् भारत मे एक विशाल नगर के बन्दरगाह पर रुकी थी जहाँ उतरने पर उसने देखा कि वहाँ का राजा रानी तथा अन्य सभी निवासी पत्थर बन गये थे। केवल एक व्यक्ति इस परिवर्तन से बच गया था जो राजा का पुत्र था जिसे उसकी आया ने एक मुसलमान के रूप में उसका पालन किया था। यह आया स्वय एक मुसलमानी दासी थी। अब यह कथा सिन्ध के स्थानीय इतिहासकारो के राजा दिलू तथा उसके बन्धु छोटा की कथा से मिलती है जिसके अनुसार छोटा मुसलमान बन गया था तथा राजा की धूर्तता के कारण ब्राह्मना नगर के भूकम्प मे नष्ट हो जाने पर केवल छोटा जीवित बचा था। चूंकि पञ्जाब एवम् सिन्ध के सभी मुख्य नगरो के खण्डहरो के लिये एक ही कथा की बारम्बार पुनरावृत्ति होती है अतः 'अरेबियन नाइट' की कथा के स्थान को उचित रूप से सिन्ध मे दिखाया जा सकता है तथा चूँकि देबल ही समुद्र तट का एक मात्र विशाल नगर था तथा बिक्री का मुख्य केन्द्र भी था जहाँ मुस्लिम व्यापारी व्यापार किया करते थे अतः मुझे यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यही वह भारतीय नगर रहा होगा जहाँ जोबेदा ने सभी निवासियों को पत्थरो के रूप में देखा था।

एम० मुरडो के अनुसार ब्राह्मना नगर का विनाश १४० हिजरी अथवा ७५७ ई० में हुआ था और चूंकि जोबेदा की कहानी को खलीफा हारूँ उल रशीद के समय से सम्बन्धित किया जाता है जिसने ७८६ ई० से ८०६ ई० तक शासन किया था अतः दोनो कथाओं को अनुरूप समझने मे तिथि सम्बन्धी कठिनाई नही है।

देबल को सिन्धु नदी पर अवस्थित दिबाल अथवा दिबाल सिन्धी के नाम से सिन्धु नदी की मुख्य शाखा अथवा बघार नदी पर निश्चित किया जा सकता है। कैप्टन हेमिल्टन से हमे पता चलता है कि यह लारी बन्दर के समीप था। उनका कथन है कि सिन्धी नदी "सिन्धु नदी की केवल एक छोटी शाखा है और उस प्रदेश में इसका यह

नाम लुप्त हो गया है जिसे यह इतना जल प्रदान करती है तथा अब इसे दीबेली अथवा सात मुखोंवाली कहा जाता है।" इस कथन से पता चलता है कि लारी बन्दर की ओर जाने वाली सिन्धु नदी की शाखा को हेमिल्टन की यात्रा के समय अर्थात १६६६ ई० तक दीबाली कहा जाता था। यही सिन्धु नदी की पिटी शाखा थी, यह अनुमान मैं इसके दूसरे नाम सिन्धी से लगाता हूँ जिसे मैं टालमी की सिनथोन ओस्टियम अथवा पश्चिम की ओर से नदी का दूसरा मुहाना समझता हूँ। चूँकि पिटी बघार नदी का एक मुहाना है अतः यह स्थिति पिछले सभी लेखकों की एकमत साक्षी के आधार पर दी गई इसकी स्थिति से मिलती है।

हेमिल्टन के लिखने के समय से स्वयं लारी बन्दर निर्जन हो चुका है तथा मुहाने के पश्चिमी अर्द्ध भाग की आधुनिक बन्दरगाह धाराज है जो लारी बन्दर से केवल कुछ मील पूर्व में है।

कच्छ

सातवी शताब्दी मे सिन्ध का चौथा प्रान्त कच्छ था तथा अकबर के समय मे भी यह सिन्ध का भाग था। ह्वेनसांग ने इसे सिन्ध की राजधानी जो उस समय सिन्धु नदी पर भक्खर के समीप अलोर में थी-से १६०० ली अथवा २६७ मील की दूरी पर अवस्थित बताया है। यह अन्य स्थान पर दिये गये विवरण से मिलता है जिसके अनुसार इसका मार्ग इस प्रकार था—अलोर से ब्राह्मना तक, ७०० ली दक्षिण तत्पश्चात पितशिला तक ३०० ली दक्षिण पश्चिम तथा वहाँ से कच्छ तक ७०० ली दक्षिण की ओर। इस प्रकार कुल दूरी १६५० ली थी। परन्तु इसकी सामान्य दिशा दक्षिण पश्चिम के स्थान पर दक्षिण है जो कच्छ की वास्तविक स्थिति से मिलती है। प्रान्त को ओ-तियेन-पो-ची-लो कहा गया है जिसे एम० जुलीन ने अध्यावकीला अथवा अत्यनवाकेला बना दिया है परन्तु उसके लिये उन्होंने अथवा एम विवीन डो सेन्ट मर्टिन ने सम्कृत के पर्यायवाची शब्द का उल्लेख नही किया है फिर भी मेरा विचार है कि यह शब्द औडम्बतीरा अथवा औडम्बर के लिये लिखा गया है। यह नाम प्रोफेसर लासेन के कच्छ निवासियो को दिया है। वे प्लिनी के औडम्बरे हैं परन्तु वर्तमान समय में इस नाम का कोई चिन्ह नही मिलता।

इस प्रान्त की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील बताई गई है और यदि इनके उत्तर मे नगर पार करके सम्पूर्ण जिले को इसमें सम्मिलित न किया जाये तो उपर्युक्त परिधि अत्यधिक है। सम्भवतः यह जिला इसमें सम्मिलित था क्योंकि इस प्रदेश को सदैव कच्छ का भाग समझा गया है और अब भी यह इसी से सम्बन्धित है। इसकी उत्तरी सीमा को उमरकोट से लेकर माऊण्ट आबू तक विस्तृत स्वीकार

कर लेने से सीमा की सम्पूर्ण लम्बाई ७०० मील से कुछ अधिक होगी। की त्सी-शी-फा-लो नामक राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। एम० जुलीन ने इस नाम को खजिस्वरा तथा प्रोफेसर लासेन ने इस कच्छेश्वरा बना दिया है। परन्तु चूँकि चीनी अक्षर त्सी मस्तिष्क सम्बन्धी त का प्रतिनिधित्व करता है अतः मेरा विचार है कि त्सी का समान अर्थ होगा। अतः मैं इस नाम को कोटीश्वरा पढ़ूँगा जो कच्छ के पश्चिमी तट पर एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। इसकी स्थिति के सम्बन्ध मे तीर्थ यात्री के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि इसने इसी स्थान का उल्लेख किया है जिसे सिन्धु नदी तथा महा सागर के समीप प्रदेश की पश्चिमी सामा कहा जाता है। यह विवरण पवित्र कोटेसर की स्थिति का सर्वोचित विवरण है जो कच्छ की पश्चिमी सीमा पर सिन्धु नदी की कोरी शाखा के तट पर तथा हिन्द महा-सागर के समीप अवस्थित है। निम्न कथन से उपर्युक्त अनुरूपता की पुष्टि होती है कि नगर के मध्य मे शिव का प्रसिद्ध शिवालय था। इस स्थान का नाम कोटि+ईश्वर अथवा "एक करोड़ ईश्वर" से लिया गया है तथा छोटे लिङ्गम पत्थरो से सम्बन्धित है जो इस स्थान पर प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। ईश्वर, शिव का सर्व प्रसिद्ध नाम है तथा लिंगम् उनका चिन्ह है।

एम० विवीन डी सेन्ट-मार्टिन ने इस राजधानी का कराची के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु अलोर से इसकी दूरी १३०० ली अथवा २१७ मील से अधिक नही है जबकि इस नाम का केवल प्रथम अक्षर चीनी अनुवाद से मिलता है। ह्वेनसांग ने नीचे एव नम वायु वाले प्रदेश के ऊपर मे इसका उल्लेख किया है तथा इसकी भूमि को नमक युक्त कहा है। यह विवरण कच्छ की निचली भूमि तथा नमक के मरुस्थल अथवा रन (संस्कृत का इरिना) के विवरण से ठीक-ठीक मिलता है। कच्छ का अर्थ है कीचड अथवा दलदल तथा इस प्रान्त का लगभग आधा भाग नमक का मरुस्थल है। परन्तु कराची की शुष्क एवं रेतीली भूमि के लिये यह विवरण अशुद्ध है। कोटेसर के ठीक दक्षिण मे अनेक मीलो तक विस्तृत एक विशाल दलदल भी है।

सिन्धु के पश्चिमी जिले

सभी प्राचीन लेखक अरबी अथवा अरबोटोय तथा ओरिटोय अथवा होरिटोय नामक दो जङ्गली जातियो को निचली सिन्धु नदी के पश्चिम दिखाने में सहमत हैं। यह दोनो जातियाँ मूल रूप से भारतीय प्रतीत होती है। एरियन ने अरबी जाति के प्रदेश को पश्चिम मे "भारत का अन्तिम भाग" कहा है तथा स्ट्रैबो ने भी इसे "भारत का भाग' कहा है परन्तु दोनों ने ओरिटाय को सम्मिलित नहीं किया है। कर्टियस ने होरिटाय को भारत मे सम्मिलित किया है जबकि दियोडोरस का कथन है कि वह भारतीयो से मिलते-जुलते थे तथा एरियन ने स्वीकार किया है कि ओरिटाय-जो देश के भीतरी भागो मे बसे हुए थे तथा उनके कपड़े भारतीयो के ढङ्ग के कपड़े होते थे तथा

उन्हीं के समान अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते थे परन्तु उनकी भाषा एवम् रीति रिवाज भिन्न थे।" फिर भी सातवीं शताब्दी मे कहीं अधिक योग्य लेखक चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने उनकी भाषा एवं रीति-रिवाजों को भारतीयों के समान बताया है। उसके अनुसार लङ्ग की-लो जो कच्छ मे कोटेसर से २००० ली अथवा ३३३ मील पश्चिम मे था—के निवासियों के रीति-रिवाज कच्छ के निवासियों से भिन्नते थे तथा उनकी लिपि भारतीय लिपि से समीप समानता रखती थी जबकि उनकी भाषा भारतीयों की भाषा से कुछ भिन्न थी। इन्ही कारणों से मेरा विचार है कि ओरिटाय तथा अरबीटाय प्रदेश को उचित रूप से भारत की भूगोलिक सीमाओ में सम्मिलित किया जा सकता है यद्यपि यह प्रदेश ऐतिहासिक काल मे इसकी राजनीतिक सीमाओं से बाहर रहे हैं। ईसवा पूर्व की छठी शताब्दी के समय मे भी यह डारियस हाईस्टस्पीज के आश्रित थे तथा १२ शताब्दियों पश्चात् ह्वेनसांग को यात्रा के समय यह ईरान के अधीन थे। परन्तु उनका भारतीय मूल स्वरूप असंदिग्ध है जैसा कि ओरिटाय के सम्बन्ध में लिखते समय मैं दिखाने का प्रयत्न करूंगा।

अरबी अथवा अरबीटोय

एरियन के अरबो, कर्टियस के अरबिटोय, टालमी के अरबिटी, डियोडोरस के अम्ब्रोटोय तथा स्ट्रैबो के अरबीज् हैं। कहा जाता है कि यह नाम अराबीज्, अरबीज् अथवा अराबियस नदी से प्राप्त हुआ था जो उनकी सीमाओं में प्रवाहित थी तथा उनकी सीमाओ को ओरिटाय की सीमाओं से अलग करती थी। सिकन्दर की यात्राओं के विस्तृत विवरण को नियर्कस की डायरी से तुलना करने पर यह निश्चित हो जाता है कि यह सीमान्त नदी पुराली नदी थी जो लास के वर्तमान जिले से होकर सोनमियानी की खाड़ी में गिरती है। कर्टियस के अनुसार सिकन्दर पटाला से ६ दिनों की यात्रा के पश्चात अरबोटोय की पूर्वी सीमा पर तथा अन्य पाँच दिनों की यात्रा के बाद उनकी पश्चिमी सीमा पर पहुँचा था। अब, हैद्राबाद से कराची तक की दूरी ११४ मील है तथा कराची से सोनमियानी तक ५० मील। प्रथम देरी सैनिकों द्वारा सामान्यतः ६ दिनों में तथा अन्तिम दूरी चार अथवा पाँच दिनों मे पूरी का जाती है। अतः कराची अरबीटोय की पूर्वी सीमा पर रहा होगा और उन सभी अन्वेषकों की सामान्य अनुमति से स्वीकार किया गया है जिन्होने टालमी के कोलक को क्रोकोल के रेतीले टापू के अनुरूप स्वीकार किया है जहाँ नियर्कस को अपने जहाजी बेड़े सहित रुकना पड़ा था। क्रोकोल कराची की खाड़ी में एक छोटा टापू है और इसे अरबी प्रदेश से दूर बताया गया है। यह सिन्धु नदी के पश्चिमी मुहाने से १५० स्टेडिया अथवा १७½ मील या जो कराची तथा घार नदी के मुहाने की तुलनात्मक स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है। ऐसी हालत में हमें उचित रूप से स्वीकार करना होगा कि वर्तमान तटीय रेखा सिकन्दर के समय से व्यतीत हुई पिछली इक्कीस शताब्दियों में ५ अथवा ६ मील आगे बढ़

गई है। इस अनुरूपता की इस तथ्य से पुष्टि होती है कि "वह जिला जिसमें कराची अवस्थित है आज तक कर कल्ल कहलाता है।"

क्रोकोल छोड़ने पर निर्यकस की दाहिनी ओर इरोस पर्वत (मनोरा) तथा उसके बायें एक नीचा समतल टापू था। कराची के बन्दरगाह मे प्रवेश करते समय की वस्तु-स्थिति का यह सही-सही उल्लेख है। मार्ग मे अनेक छोटे-छोटे स्थानो पर रुकने के पश्चात् निर्यकस मोरोनटोबर पहुँचा जिसे जन साधारण "स्त्रियो का स्वर्ग' कहा करते थे। इस स्थान से उसने अरेबियस नदी के मुहाने तक ७० स्टेडिया तथा १५० स्टेडिया अथवा कुल मिला कर २२ मील की दो यात्राये की। अरेबियस नदी अरेबी तथा ओरिटाय जातियो के राज्यो के बीच सीमा थी। मोरोनटोबार के नाम को मैं मूआरी के अनुरूप समझता जो नाम रास मुआरी अथवा मोंज अन्तरीप अथवा पर्वतों की पब्ब श्रेणी के अन्तिम बिन्दु को दिया जाता है। बार अथवा बारी का अर्थ है जहाजो के रुकने का स्थान अथवा बन्दरगाह तथा मोरोनटा प्रत्यक्ष रूप से फारसी के मर्द अर्थात् पुरुष से सम्बन्धित है जिसका स्त्रीलिंग महरिन काश्मीरी भाषा मे आज भी सुरक्षित है। इस बन्दरगाह को मोंज अन्तरीप तथा सोनमियानी के मध्य देखा जाना चाहिये परन्तु इसकी निश्चित स्थिति निर्धारित नही की जा सकती। एरियन द्वारा निर्यकस की यात्राओ के विवरण से दी गई दूरियो से मैं इसे बहार नामक एक छोटी नदी के मुहाने पर निर्धारित करने का इच्छुक हूँ। यह पहाड़ी नदी है जो मोंज अन्तरीप तथा सोनमियानी के लगभग मध्य मे समुद्र मे गिरती है। यदि मूआरी को मोरोनटोबार का संक्षिप्त स्वरूप समझने का मेरा विचार ठीक है तो अन्तरीप को निश्चित ही पड़ोसी बन्दरगाह से नाम मिला होगा। अरेबियस के मुहाने पर निर्यकस को पुराली के मुहाने पर आधुनिक सोनमियानी की खाडी के समान एक विशाल एव सुरक्षित, बन्दरगाह मिला था जिसे पोट्टिङ्गर ने "जल की अति सौम्य सतह" कहा है "जहाँ-बडे से बड़ा जहाज लङ्गर डाल सकता है।"

ओरिटोय, अथवा होरिटोय

अरेबियस नदी को पार करने के बाद सिकन्दर ने एक मरुस्थल से होकर सम्पूर्ण रात्रि की यात्रा की थी तथा प्रातः काल उसने एक जनपूर्ण प्रदेश मे प्रवेश किया। तत्पश्चात् एक छोटी नदी पर पहुँच कर उसने अपना पड़ाव डाल दिया तथा फायशियन के अधीन मुख्य सेना के आने की प्रतीक्षा करने लगा। एरियन का कथन है कि इस सेना के आने पर सिकन्दर "देश के भीतर अधिक दूरी तक जाकर एक छोटे गाँव तक पहुँच गया जो ओरिटोय की राजधानी को अपेक्षा अधिक लाभदायक था। इसका नाम रम्बाकिया तथा सिकन्दर इसकी स्थिति से इतना प्रसन्न हुआ एव यह अनुमान लगाते हुए कि यह एक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण नगर बन जायेगा उसने हेफायशियन को इसकी सुरक्षा का भार सौंप दिया।" सिकन्दर के आगमन पर

ओरिटोय जाति ने विजेता की अधीनता स्वीकार कर ली जिसने अपोलोफनीज को उनका गवर्नर नियुक्त किया तथा लियोनाटस को एक विशाल सेना देकर, नौकाओं के बेड़े सहित निर्यकस के आगमन की प्रतीक्षा करने एवं नवीन नगर के निवासियों की रक्षा करने के लिए नियुक्त किया। सिकन्दर के प्रस्थान के कुछ ही समय पश्चात ओरिटोय जाति ने यूनानियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा नये गवर्नर अपोलोफनीज का बध कर दिया परन्तु अकेले ल्योनाटस ने उन्हें पराजित किया तथा उनके सभी नेता मार डाले गये। निर्यकस ने इस पराजय के स्थान को अरेबियस तथा टोमेरस नदियों के मध्य तट पर अवस्थित कोकला पर दिखाया है। प्लिनी ने अन्तिम नदी को टोनबेरोज कहा है तथा उसका कथन है कि इसके आस-पास के प्रदेश में अच्छी कृषि होती थी।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर मैं ओरिटाय अथवा होरिटाय अथवा न्योटेरिटोय—जैसा कि दिवोडोरस ने उन्हें नाम दिया है—जाति को अघोर नदी के निवासियों के अनुरूप समझूंगा जिन्हें कण्ठ स्वर को दबाकर यूनानी अगोरिटाय अथवा एओरिटाय कहा करते होंगे। होरिटाय के प्रथम अक्षर मे इसके चिह्न आज भी सुरक्षित है। नदी के तल मे कीचड़ की अनेक परतें हैं जिन्हे अनादि काल से रामचन्द्र की-कूप अथवा 'रामचन्द्र का कुआँ' कहा जाता है। इस स्थान पर दो प्राकृतिक कन्दरायें हैं। एक काली को समर्पित है दूसरी हिङ्गुलाज अथवा हिंगूला देवी अर्थात "रक्तवर्ण देवी" को समर्पित की गई है। अन्तिम नाम काली का दूसरा स्वरूप है। परन्तु अघोर घाटी मे तीर्थ यात्रा का मुख्य स्थान 'राम' से सम्बन्धित है। तीर्थ यात्री राम बाग मे एकत्रित होते हैं क्योंकि राम एवम् सीता को इसी बिन्दु से यात्रा आरम्भ करते बताया गया है। तत्पश्चात यात्री गोरख तालाब तक जाते हैं जहाँ राम ने विश्राम किया था तथा वहाँ से टोंगभेरा तथा उस स्थान तक जाते हैं जहाँ राम को सेना सहित हिंगुलाज तक पहुँचने में असफलता के कारण बाध्य होकर वापस आना पड़ा था। रामबाग को मैं एरियन के रम्बाकिया, तथा तुङ्गभेरा को टालमी की टोनबरोस नदी एवम् एरियन की टोमेरस नदी के अनुरूप स्वीकार करूंगा। अतः रम्बाकिया के स्थान पर हमें सिकन्दर द्वारा स्थापित नगर को ढूंढना चाहिये जिसे पूरा करने के लिये ल्योनाटस को वहाँ छोड़ा गया था। यह सम्भव प्रतीत होता है कि यही वह नगर है जिसका उल्लेख बाईजनटियम के स्टेफनस ने "मेलने की खाड़ी के समीप सोलहवें सिकन्दरिया" के रूप में किया है। निर्यकस ने ओरिटाय जाति की पश्चिमी सीमा को मलना नामक स्थान पर दिखाया है जिसे मैं अघोर नदी से लगभग २० मील पश्चिम में वर्तमान समय की मालान अन्तरीप अथवा रास मालान के पूर्व में मलन की खाड़ी के अनुरूप समझता हूँ। कर्टियस तथा दिवोडोरस दोनों ने इस नगर की स्थापना का उल्लेख किया है परन्तु उन्होंने इसके नाम का उल्लेख नहीं किया। फिर भी दिवोडोरस ने लिखा है कि इसका

निर्माण समुद्र के सवीप परन्तु ज्वार भाटे की पहुँच से दूर अधिक अनुकूल स्थान पर कराया गया था।

सिन्धु नदी के पश्चिम में इतनी दूरी पर एवम् सिकन्दर के समय में रामबाग के नाम की उपस्थिति अत्यधिक रुचिपूर्ण एवम् महत्वपूर्ण है क्योंकि इनसे न केवल प्राचीन काल में हिन्दू प्रभाव के विस्तार का पता चलता है परन्तु राम की कथा के अत्यधिक प्राचीन होने का पता भी चलता है। यह अत्यन्त असम्भावित है कि हिन्दू प्रभाव के ह्रास के पश्चात किसी स्थान के इस प्रकार का नाम दिया गया हो। बौद्ध धर्म के चरमोत्कर्ष के समय सिन्धु नदी के पश्चिम में अनेक प्रान्तों ने भारतीय धर्म स्वीकार कर लिया। जिससे यहाँ के निवासियों के रहन-सहन के ढङ्ग एवम् इनकी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा होगा। परन्तु सिकन्दर का अभियान बौद्ध धर्म के विस्तार से पूर्व हुआ था अतः रम्बाकिया के प्राचीन नाम को मैं केवल डरियस हाईस्पीज के पूर्ववर्ती समय से सम्बन्धित कर सकता हूँ।

ह्वेनसांग ने इन जिलों का उल्लेख लांग-की-लो के सामान्य नाम के अन्तर्गत किया है जिसे एम० जुलीन ने लङ्कला कहा है। परन्तु एम० डी सेन्ट मार्टिन ने इसे लङ्ग जाति से सम्बन्धित बताया है परन्तु यह अत्यन्त सन्देहस्पद है कि यह प्राचीन नाम रहा हो। विष्णु पुराण से उधृत अन्य नाम लङ्गलस, जांगलस का केवल परिवर्तन स्वरूप है जो प्रायः निश्चित रूप से शुद्ध स्वरूप है क्योंकि इसके तुरन्त बाद कुरु जांगलस का उल्लेख किया गया है। ह्वेनसांग ने राजधानी लांग की लो को कच्छ में कोटेश्वर से २००० ली अथवा ३३३ मील पश्चिम में बताया है परन्तु चूँकि इस दिकांश से यह स्थान हिन्द महासागर के मध्य में चला जायगा अतः इसकी वास्तविक दिशा उत्तर-पश्चिम होगी। अब, यह अन्तिम दिशा एवम् दूरी लाकोरियान के विशाल ध्वस्त नगर की स्थिति से मिलती है जिसे मसोन ने खोजदार तथा किलात के मध्य देखा था। पुराने मानचित्रों में इस नाम को केवल लाकूरा लिखा गया है जो मुझे चीनी नाम लांग की-लो अथवा लांकरा का उचित रूप से प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रतीत होता है। मसोन ने ध्वस्त मोर्चाबन्दी को "अपनी भव्यता एवम् ठोसपन के लिये तथा निर्माण कार्य में प्रत्यक्ष कौशल के लिये उल्लेखनीय कहा है।" इन खण्डहरों के विस्तार एवम् महत्व को देखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह एक विशाल नगर के अवशेष हैं जो पूर्ववर्ती काल में देश की राजधानी थी। चीनी तीर्थ यात्री ने प्रान्त को अनेक ली लम्बा एवम् चौड़ा कहा है। अतः यह स्पष्ट है कि यह प्रान्त जहाँ तक सम्भव है बलूचिस्तान के आधुनिक जिले के समान था। जिसकी वर्तमान राजधानी किलात लाकूरा से केवल ६० मील उत्तर में है। सातवीं शताब्दी में राजधानी को सू-न्यू-ली-शी-फा-लो कहा जाता था तथा इसकी परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। एम० जुलीन ने चीनी अक्षरों को सुनुरिस्वरा कहा है परन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई

अनुवाद भी नहीं किया है। परन्तु चूंकि ह्वेनसांग ने नगर के मध्य में शिव के भव्य मन्दिर का उल्लेख किया है अतः मेरा अनुमान है कि चीनी अनुवाद शम्भुरीश्वरा के लिये किया गया होगा जो "देवाधिदेव" के रूप में शिव की सर्व ज्ञात उपाधि है। यह स्वीकार कर लेने से कि उपर्युक्त नाम उचित रूप से मन्दिर से सम्बन्धित है, अन्य नाम लांग-की-लो, अथवा लाकरा को राजधानी तथा प्रान्त दोनों के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

गुर्जर

ह्वेनसांग ने पश्चिमी भारत के द्वितीय राज्य, क्यू-ची-लो अथवा गुर्जर को बलभी से १८०० ली अथवा ३०० मील उत्तर में तथा उज्जैन से २८०० ली अथवा ४६७ मील उत्तर पश्चिम मे बताया है। राजधानी को पी-लो-मी-लो अथवा बालमेर कहा जाता था जो बलभी के खण्डहरो मे ठीक ३०० मील उत्तर में है। उज्जैन से सीधी रेखा पर यह ३५० मील से अधिक नहीं है परन्तु वास्तविक मार्ग दूरी ४०० तथा ५०० मील के बीच है क्योकि यात्री का उत्तर में अजमेर से होकर अथवा दक्षिण में अनलवार मे होकर अरावली पर्वतो का चक्कर काटना पडता है। इस राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। अतः बीकानेर जैसलमेर तथा जोधपुर की वर्तमान रियासतों का अधिकांश भाग इसमे सम्मिलित रहा होगा। इसकी सीमाओं को केवल अनुमानतः बताया जा सकता है, जो इस प्रकार है। उत्तर में बलर अथवा सिरदरकोट से फ़ुनफ़ुनू तक लगभग १३० मील पूर्व मे फ़ुनफ़ुनू से आबू पर्वत के समीप तक २५० मील, दक्षिण में आबू से उमरकोट के समीप तक १७० मील तथा पश्चिम मे उमरकोट से बलर तक ३१० मील। इन आंकड़ो से कुल परिधि ८६० मील बनती है जो ह्वेनसांग के आंकड़ो के समीप है जितना उचित रूप से उनसे आशा की जा सकती है।

सभी प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने जुज़ अथवा जुज्र नामक राज्य का उल्लेख किया है जो अपनी स्थिति ह्वेनसांग के क्यू-ची-लो के समान प्रतीत होता है। देश का नाम कुछ अंशों तक सन्देहस्पद है क्योंकि बिना नुकत्तो के अरबी शब्दो को हरज़ हज़र तथा खरज़ तथर बजर और साथ ही साथ जरज अथवा जुज्र पढ़ा जा सकता है। परन्तु भाग्यवश इसकी स्थिति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है जिसे अनेक समान परिस्थितियों के आधार पर राजपूताना निर्धारित किया गया है। इस प्रकार ८५१ ई० में व्यापारी सुलेमान ने लिखा है कि हरज़ एक ओर ताफेक अथवा ताकिन से घिरा हुआ था जिसे मैं पहले ही पञ्जाब का पुराना नाम बता चुका हूँ। यहाँ चाँदी की खानें थीं एवम् यह राज्य भारत के अन्य सभी राज्यों की अपेक्षा घुड़सवारों की एक विशाल सेना एकत्रित कर सकता था। यह सभी बातें निश्चित रूप से राजपूताना

की ओर संकेत करती है जो पञ्जाब के दक्षिण पूर्व में है, जहाँ भारत की एक मात्र ज्ञात चाँदी की खान है तथा जो घुड़सवारों की विशाल सेनाओं के लिये सदैव प्रसिद्ध रहा है।

इब्न खुरदादबेह के अनुसार जिसकी मृत्यु ६१२ ई० में हुई थी—हजर में तातारिया दिरहेम प्रचलित थे तथा इब्नहौकल के अनुसार जिसने ६७७ ई० में लिखा था—यह दिरहेम गान्धार राज्य में भी प्रचलित थे जिसमें उस समय पञ्जाब सम्मिलित था। सुलेमान ने बल्हर अथवा वर्तमान गुजरात राज्य के सम्बन्ध में इसी बात का उल्लेख किया है तथा घटनावश हमें पता चलता है कि यही दिरहेम सिन्ध मे भी प्रचलित थे क्योंकि १०७ हिजरी अथवा ७२५ ई० मे राज्यकोष में कम से कम एक करोड़ अस्सी लाख तातारिया दिरहेम थे। इन मुद्राओं का मूल्य भिन्न-भिन्न रूप से १¼ से १½ दिरहेम अथवा तोल के अनुसार ५४ से ७२ ग्रेन बताया गया है। इन बातों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तातारिया दिरहेम चाँदी की मुद्रा है जो सामान्यतः इण्डो ससानियन के नाम से जानी जाती थी क्योंकि इन मुद्राओं में भारतीय अक्षरों को ससानियन अक्षरों से जोड़ दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्व प्रथम इन्हें सीथियन एवम् तातार शासकों ने प्रचलित किया था—जिन्होंने काबुल एवम् उत्तर पश्चिमी भारत पर राज्य किया था—क्योंकि यह मुद्रायें काबुल की सम्पूर्ण घाटी पञ्जाब तथा साथ ही साथ सिन्ध राजपूताना एवम् गुजरात में पाई जाती है। कर्नल स्ट्रेसी के नमूने मुख्य रूप से अन्तिम दो देशों से लिये गये थे जबकि मेरे निजी नमूने उन सभी देशों से प्राप्त किये गये हैं। वजन मे ये मुद्रायें ५० से ६८ ग्रेन हैं तथा समय के अनुसार यह पाँचवीं अथवा छठी शताब्दी से महमूद गजनी के समय तक की मुद्रायें हैं। ये मुद्रायें प्रायः काबुल के ब्राह्मण शासकों के सिक्कों के साथ-साथ मिलती है। यह बात मसूदी के कथन से मिलती है कि तातारिया दिरहेम अन्य मुद्राओं के साथ साथ प्रचलित थे जिन्हें गान्धार मे मुद्रित किया जाता था। अन्तिम मुद्रा को मैं काबुल के ब्राह्मण राजाओं की चाँदी की मुद्रा समझता हूँ जिन्होंने ८५० ई० के लगभग अथवा मसूदी के कुछ समय पूर्व राज्यारम्भ किया था तथा जो ६१५ ई० से ६५६ ई० तक अपनी चरमावस्था मे थे। मैंने अरावली पर्वतों से पूर्व मध्य भारत में एवं ऊपरी दोआब में इण्डो ससानियन मुद्रायें अथवा तातार दिरहेम प्राप्त किये थे परन्तु इन प्रान्तों में इन मुद्राओं का अत्यधिक अभाव है क्योंकि मध्य युग में उत्तरी भारत की सामान्य मुद्रा वराह थी जिस पर विष्णु के अवतार की मूर्ति अङ्कित थी एवं जिसका वजन ५५ से ६५ ग्रेन था। मुद्राओं के निरीक्षण में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जहाँ तक सम्भव है पश्चिमी राजपूताना उस राज्य का प्रतिनिधित्व करता है जिसे प्रारम्भिक भूगोल शास्त्रियों ने हजर अथवा जुज्र का नाम दिया था।

इब्न खुरदादबेह को उधृत करते हुए इदरिसी ने लिखा है कि जुज्र अथवा हुज्र

राजा की वंशानुगत उपाधि थी और साथ ही साथ देश का नाम था। इस कथन से कुच को गुच्छ अथवा गुजर के अनुरूप स्वीकार करने के मेरे अनुमान की पुष्टि होती है। गुजर अधिक संख्या वाली जाति है जिसका नाम उत्तर पश्चिमी भारत एवं पंजाब के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों से सम्बन्धित किया गया है और गुजरात के विशाल पठार से इसे विशेष रूप से सम्बन्धित किया गया है। यह ज्ञात नहीं है कि इस विशाल पठार को यह नाम सर्व प्रथम कब दिया गया था। प्रारम्भिक समय में इसे सौराष्ट्र कहा जाता था जिसे टालमी ने सुराष्ट्रेन कहा है और ८१२ ई० तक इस प्रदेश का यही नाम रहा है जैसा कि बड़ोदा में प्राप्त ताम्र पत्रालेख से हमे ज्ञात होता है। सौराष्ट्र के राजाओं के इस लेख में गुज्जर का दो बार स्वतन्त्र राज्य के रूप में उल्लेख किया गया है। ७५० ई० के लगभग सौराष्ट्र के राजा इन्द्र ने गुज्जर राजा पर विजय प्राप्त की थी परन्तु पुन: वह सिंहासनारूढ़ हो गया एवं लगभग ८०० ई० मे इन्द्र के पुत्र कर्क ने गुज्जर राजा के विरुद्ध मालवा के शासक की सहायता की थी। इन कथनों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि ६४० ई० मे ह्वेनसांग की यात्रा से लगभग दो शताब्दियों के बाद भी गुज्जर, सौराष्ट्र से पूर्णतय: भिन्न स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली राज्य था। इनसे इस बात का पता भी चलता है कि गुजर राज्य मालवा एवं सौराष्ट्र के समीप था और इस स्थिति के कारण राजपूताना से इसकी अनुरूपता स्पष्ट हो जाती है जैसा कि मैं ह्वेनसांग द्वारा दिये गये विवरण के आधार पर पहले निश्चित कर चुका हूँ।

कहा जाता है कि सातवीं शताब्दी में यहाँ का राजा एक त्सा-ती-ली, अथवा क्षत्रिय था परन्तु दो शताब्दी पूर्व निश्चित ही गुरजर अथवा गुज्जर राज परिवार महाराष्ट्र के उत्तर मे शासन कर रहा था क्योंकि हमें पैठन के चालुक्य राजा तथा बिन नाम के किसी प्रदेश के एक गुरजर राजा के लेख प्राप्त हैं जिनमें एक ही व्यक्ति को भूमि प्रदान किये जाने का वर्णन किया गया है। प्रोफेसर डाउसन ने इन लेखों का अनुवाद किया है तथा उन्होंने इसको तिथि को विक्रमादित्य के समय से सम्बन्धित किया है परन्तु छठी शताब्दी से पूर्व इस काल के प्रयोग के किसी विश्वासनीय उदाहरण के अभाव मे मुझे इन प्रारम्भिक लेखों में उपर्युक्त विचार को नही अपनाना चाहिये। इसके विपरीत शक सम्वत् का उल्लेख चालुक्य राजा पुलकेसी के लेखो में तथा ज्योतिषाचार्य आर्य भट्ट एव वराह मिहिर की पुस्तकों में मिलता है। पुलकेसी का लेख शक सम्वत् ४११ अथवा ४८९ ई० में लिखा गया है जिससे मेरा निष्कर्ष है कि पूर्ववर्ती चालुक्य राजकुमार विजय का विवरण जिसे ३९४ मे लिखा गया है—इसी काल से सम्बन्धित था। अत: गुर्जर राजकुमार का समकालीन वर्णन जिसे शक सम्वत् ३८० तथा ३८५ में लिखा गया था—ईसवी काल की पाँचवी शताब्दी के मध्य से सम्बन्धित रहा होगा उपर्युक्त सभी ताम्र पत्रालेख अहमदाबाद के समीप खैरा में प्राप्त हुए थे। गुर्जर राजा के प्रथम लेख में किन्हीं ब्राह्मणों को भूमि दिये जाने का उल्लेख

है "जो जम्बुसार नगर छोड़ने के पश्चात् अक्रूरेश्वर जिले में सम्मिलित सिरशापद्रक नामक ग्राम में बस गये थे।" पाँच वर्ष पश्चात् इन्हीं ब्राह्मण का उल्लेख इस प्रकार किया गया है "जिन्हें जम्बुसार नगर में निवास करना है।" तदनुसार चालुक्य लेख में जिसे उपर्युक्त लेख से ६ वर्ष पश्चात लिखा गया था इन्हें वस्तुतः जम्बुसार नगर का निवासी बताया गया है। निश्चित ही यह नगर खम्बेय तथा बड़ोच के मध्य अवस्थित जम्बोसिर नगर है और चूंकि यह महाराष्ट्र के चालुक्य राजाओं के अधीन था अतः गुर्जर राज्य खम्बेय के उत्तर मे अर्थात राजपूताना में रहा होगा जहाँ इसे मैं ह्वेनसांग एव अन्य स्वतन्त्र प्रमाणों के आधार पर दिखा चुका हूँ।

बलभद्र अथवा बलभी

बल्लभियो के प्रसिद्ध नगर के खण्डहरो को मि० टाड ने गुजरात के पठार की पूर्वी दिशा में भाव नगर के समीप ढूंढा था। पाँचवी शताब्दी के एक लेख मे इस देश को "बलभद्र का सुन्दर राज्य" कहा गया है परन्तु स्थानीय इतिहास एवं जन साधारण की प्रथाओं मे यह प्रदेश सामान्यतः बलभी के नाम से ज्ञात है। यही नाम ह्वेनसाग के समय में प्रचलित था जिसने इसे फा-ला-पी अथवा बलभी राज्य कहा है। परन्तु प्राचीन काल मे गुजरात का पठार केवल सौराष्ट्र नाम से ज्ञात था और महाभारत एव पुराणों में इसी नाम के अन्तर्गत इस प्रदेश का उल्लेख किया गया है। टालमी तथा पेरीप्लस के लेखक ने इसे सूराष्ट्रेनो कहा है तथा प्लिनी ने सुआरटराटोय के भ्रष्ट नाम अथवा बरेटटोय नाम के अन्तर्गत इन्ही लोगों की ओर सकेत किया है। इसे मैं सुरटोय पढ़ने का प्रस्ताव करूँगा। देश के नाम में परिवर्तन का संकेत राजा कर्क के एक शिलालेख मे मिलता है जिसमे शक सम्वत् ७३४ अथवा ८१२ ई० की तिथि दी गई है। राजा कर्क के दूरवर्ती पूर्वज गोविन्द को स्वराष्ट्र राज्य का सस्थापक कहा जाता है। जिसने जर्जर अवस्था के कारण सौ-राज्य की विशिष्ट उपाधि को दी थो।" कर्क के पिता को लाटेश्वर का राजा कहा जाता है जिससे उसका राज्य बलभी राज्य के अनुरूप होने का पता चलता है क्योंकि ह्वेनसांग ने लिखा है कि बलभी को पी-लो-लो अथवा उत्तरी लार भी कहा जाता था जो संस्कृत लाट का सामान्य उच्चारण है। चूंकि कर्क, गोविन्द के वंशजों में केवल पाँचवी पीढ़ी से था अतः पुराने राज घराने के यह प्रतिनिधियो द्वारा सौराज्य अथवा सोराष्ट्र नाम को सातवीं शताब्दी के मध्य से पूर्व पुनर्जीवित नही कर सकते थे। उपर्युक्त प्राप्त आंकडो की तुलना करने से मेरा निष्कर्ष है कि सौराष्ट्र का प्राचीन नाम ३१९ ई० में लुप्त हो गया था जब बलभियों ने साह राज्य के उत्तराधिकारियों का स्थान ले लिया था तथा जूनागढ़ के स्थान पर बलभी ने राजधानी का स्थान ले लिया था। अबूरेहान के अनुसार ३१९ ई० मे बलभी काल का प्रारम्भ गुप्त जाति के ह्रास का संकेत करता है। जिनकी मुद्रायें

अधिक संख्या में गुजरात में पाई जाती हैं। अतः उपर्युक्त तिथि को कुछ निश्चित रूप से बलभी परिवार की स्थापना की तिथि स्वीकार किया जा सकता है और सम्भवतः इसे उनके बलभी नगर की स्थापना की तिथि भी स्वीकार किया जा सकता है।

स्थानीय इतिहास एवं प्रथाओं के अनुसार सम्वत ५८० में बलभी पर आक्रमण हुआ था एवं इसका विनाश हो गया था। इस तिथि को यदि विक्रम सम्वत स्वीकार किया जाये तो यह ५२३ ई० के समान है और यदि इसे शक सम्वत स्वीकार किया जाये तो ६५८ ई० के समान है। कर्नल टाड ने इसे विक्रम सम्वत स्वीकार किया है परन्तु चूँकि ह्वेनसांग ने ६४० ई० में बलभी की यात्रा की थी अतः उपर्युक्त तिथि को शक सम्वत से सम्बन्धित स्वीकार किया जाना चाहिये। यदि यह तिथि सही है तो बलभी पर आक्रमण एवं अधिकार को बडोदा में प्राप्त ताम्रपत्रालेख के राजा गोविन्द से सम्बन्धित किया जा सकता है जिसके सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने पुराने परिवार के राज्य को पुनर्जीवित किया था एवं सौराष्ट्र के पूर्ववर्ती राज्य के प्राचीन नाम को भी पुनर्जीवित किया था। चूँकि वह राजा कर्क के पितामह का पितामह था और चूँकि राजा कर्क ने ८१२ ई० में शासन कर रहा था अतः उसका निजी सिंहासनारोहण सातवीं शताब्दी के तीसरे पक्ष अर्थात ६५० एवं ६७५ ई० के मध्य हुआ होगा जो स्थानीय इतिहासकारों द्वारा बलभी के विनाश एवं गुजरात के पठार में बलभियों की प्रभुसत्ता के लुप्त होने की दी गई तिथि से मिलती है।

बलभी से निष्कासित होने के एक शताब्दी पश्चात, बलभियों के बप्पा अथवा वप्पक नामक प्रतिनिधि ने चित्तौड़ के स्थान पर नवीन राज्य की स्थापना की एवं उसके पुत्र गुहिल अथवा गुहादित्य ने अपनी जाति को गुहिलावत अथवा गुहिलोट नाम दिया था जिन नामों से वह अब भी जाने जाते हैं। लगभग उसी समय चौरा जाति के बन राजा नामक नेता ने आबू पर्वत से लगभग ७० मील दक्षिण पश्चिम में सरस्वती के तट पर एक नगर की स्थापना की जिसे अनलवार पट्टन कहा जाता था एवं जो शीघ्र ही पश्चिमी भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान बन गया। कुछ समय पूर्व, अथवा लगभग ७२० ई० में पठार के पहलवा राजकुमार कृष्ण ने इलापुर के दुर्ग का निर्माण करवाया था और ताम्रलेख के अनुसार इसके सौन्दर्य से देवता भी चकित रह गये थे। इस दुर्ग में उसने अर्द्ध-चन्द्र से सुसज्जित शिव की मूर्ति की स्थापना की थी। इस सूचना के आधार पर मैं इलापुर को सोमनाथ के प्रसिद्ध नगर के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ जिसे पठार की राजधानी के रूप में प्रायः "पट्टन का प्राचीन नगर मुख्य भूमि के" उभड़े भाग पर अवस्थित है "जो वेरावल की छोटी बन्दरगाह एवं खाड़ी का दक्षिणी छोर बनाता है।" इस नाम को मैं इलापुर अथवा इलावर के समान समझता हूँ जो भारत में प्रचलित सामान्य उलट फेर के कारण

इरावल बन गया होगा। इस प्रकार नर-सिंह से रा-सी बन गया है एवं रनोड को रनोट के साथ-साथ लिखा जाता है परन्तु प्राचीन वारूल से आधुनिक इलूर अथवा अलोरा के परिवर्तन में हमें अधिक उल्लेखनीय उदाहारण प्राप्त है। अब, पट्टन सोमनाथ शिव मन्दिर के लिये प्रसिद्ध था जिसमे सोमनाथ अथवा "चन्द्रमा के देवता" के रूप मे अर्द्धच द्रा सहित देवता की मूर्ति सुसज्जित थी। अतः यह विशिष्ट नाम नगर के स्थान पर मन्दिर का नाम रहा होगा और मेरा निष्कर्ष है कि यह नगर आधुनिक वेरावल के स्थान पर इलापुर अथवा एरावल रहा होगा।

सोमनाथ का प्राप्त सर्व प्रथम वर्णन हमे महमूद गजनी के सफल आक्रमणों के संक्षिप्त विवरण मे मिलता है। फरिश्ता के अनुसार सोमनाथ का दुर्ग बन्द नगर "एक सकीर्ण पठार पर अवस्थित था जिसके तीन ओर सागर था।" यह राजा का निवास स्थान था तथा नहरवाल (अनलवार का परिवर्तित नाम) उस समय "गुजरात का केवल सीमान्त नगर था।' यह स्थानीय इतिहास मे मिलता है जिनमे अनलवार के चौरा राज परिवार की अन्तिम तिथि शक सम्बत ६६८ अथवा ९४१ ई० बताई गई है जब चालुक्य राजा मूरा ने प्रभु सत्ता सम्भाल ली थी और वह सोमनाथ एवं अनलवार का सर्वोच्च शासक बन गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद के समय के पश्चात सोमनाथ को इसके शासकों ने अनलवार के पक्ष मे त्याग दिया था जिसे मुहम्मद गौरी एवं उसके उत्तराधिकारी ऐबेग के समय मे गुजरात की राजधानी कहा गया है। ६९७ हिजरी से १२९७ ई० तक यह देश की राजधानी थी जब अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी की सेना ने देश पर आक्रमण किया था और नहरवाल अथवा अनलवार पर अधिकार कर लेने के पश्चात इस प्रान्त को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया था।

इन सभी आक्रमणों के समय फरिश्ता ने पठार एवं इसके उत्तरी प्रदेश को गुजरात के आधुनिक नाम को संज्ञा दी है। अबुरिहान ने इस नाम का उल्लेख नहीं किया है यद्यपि उसने अनलवार तथा सोमनाथ दोनों का उल्लेख किया है। यह नाम सर्व प्रथम रशीदुद्दीन की मोजमल-उत्त-तवारीख में मिलता है जिसने १३१० ई० में अर्थात दिल्ली के मुस्लिम सुल्तान द्वारा इस प्रदेश पर अधिकार किये जाने के १३ वर्षोंपरान्त लिखा था। मैं दिखला चुका हूँ कि ह्वेनसांग के समय में गुरजर नाम पश्चिमी राजपूताना तक सीमित था तथा ८१२ ई० में भी यह सौराष्ट्र से भिन्न प्रदेश था जब वर्क राजा ने भूमि दान का विवरण लिखवाया था। इस तिथि एव १३१० ईसवी मे पाँच शताब्दियों का अन्तर है जिस काल में हमें किसी भी समकालीन पुस्तक अथवा लेख मे गुजरात का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु मेरा सन्देह है कि पठार की दिशा में गुज्जर जाति की गतिविधि, दिल्ली, कन्नौज एवं अजमेर पर मुसलमानों की स्थायी विजय से सम्बन्धित रही होगी जिन्होंने चौहान एव राठौर राजपूतों को उत्तरी राज-

पूताना एवं ऊपरी दोआब से निकालकर दक्षिण की ओर खदेड़ दिया था। हम जानते हैं कि राठौर राजपूतों ने सम्वत १२८३ अथवा १२२६ ई० में बालमेर के पूर्व पाली पर अधिकार कर लिया था। राठौर राजपूतों के आगमन से गुज्जरों की अधिकांश संख्या दक्षिण में अनलवार पट्टन एवं इडर की ओर जाने पर बाध्य हुई होगी। वस्तुतः गोहिलों के सम्बन्ध में यही स्थिति थी जो राठौर जाति द्वारा मारवाड़ से निकाले जाने के पश्चात पठार के पूर्वी छोर पर बस गये थे एवं इसे गोहिलवाड का नाम प्रदान किया था। अकबर के समय में गुज्जर निश्चित रूप से पठार में प्रवेश नहीं किये थे क्योंकि अबुल फजल ने सूरात सिरकार में बसी तत्कालीन जातियों में इनका उल्लेख नहीं किया। परन्तु वर्तमान समय में भी पठार में गुज्जर जाति अधिक संख्या में नहीं है अतः इतने बड़े प्रान्त को उनका नाम दिये जाने के अन्य कारण ढूँढने चाहिये जिसे उन्होंने पूर्णतयः अधिकृत नहीं किया था।

गुर्जर प्रान्त के अपने विवरण में मैं गुर्जर जाति के राजाओं के प्राचीन लेख का उल्लेख कर चुका हूँ। इस लेख से हमें ज्ञात होता है कि शक सम्वत ३८० अथवा ४५८ ई० में गुज्जरों ने अपनी विजय पताका दक्षिण में नर्बदा तट तक फहराई थी। उस वर्ष एवं तदोपरान्त ४६३ ई० में उनके राजा श्री दत्त कुमाली ने किन्हीं ब्राह्मणों को जम्बुसार के समीप अक्ररेश्वर जिले में भूमि प्रदान की थी। इस जिले को मैं भड़ौच के विपरात नर्बदा के दक्षिणी तट पर अवस्थित अकलेश्वर समझता हूँ। परन्तु सम्वत ३९४ अथवा ४७२ ई० से पूर्व ही गुज्जर उत्तर में कम से कम खम्बाय की दूरी तक पीछे खदेड़ दिये गये थे क्योंकि चालुक्य राजाओं ने इन्हीं ब्राह्मणों को जम्बुसार नगर में भूमि प्रदान की थी जो भड़ौच एवं खम्बाय के मध्य में अवस्थित है। अतः यह निश्चत है कि गुज्जरों ने ईसा काल की पाँचवीं शताब्दी के समय से पठार से उत्तरी प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु दो शताब्दियों के पश्चात वह अपना अधिकार खो चुके थे क्योंकि ह्वेनसांग ने गुर्जर सिंहासन पर एक क्षत्रिय राजा का उल्लेख किया है फिर भी गुजर जाति आबू पर्वत के पश्चिमी एवं दक्षिणी प्रदेश की जनसंख्या का अधिकांश भाग बनी रही होगी और चूँकि अलाउद्दीन के अधीन प्रथम मुस्लिम विजेता अलफ खाँ ने गुर्जर प्रदेश के मध्य नहरवार अथवा अनहलवार में अपना मुख्यालय स्थापित किया था अतः मैं मेरे विचार में यह सम्भव है कि दिल्ली सल्तनत के इस नये प्रान्त के लिये सर्व प्रथम गुजरात नाम का प्रयोग किया गया था और चूंकि सौराष्ट्र का पठार प्रान्त का एक भाग था अतः इसे भी उसी सामान्य नाम के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया गया। अतः मैं पठार तक गुजरात नाम के विस्तार को जातिगत नाम के स्थान पर राजनैतिक सुविधा समझता हूँ। हेमिल्टन ने लिखा है कि मालवा एवं खानदेश के अधिकाश भाग को पहले गुजरात कहा जाता था और मार्को पोलो ने इस कथन की पुष्टि की है। उसने पठार—जिसे उसने सोमेनाट (सोमनाथ) कहा है—

एवं गुजरात के राज्य को भिन्न-भिन्न बतलाया है। उसने उपर्युक्त राज्य को थाना के उत्तर में अर्थात भड़ौच तथा सूरत के समीप तट पर अवस्थित बताया है। पठार के आदि वासियो को वर्तमान समय मे भी गुजरात का नाम ज्ञात नही है वह अपने प्रदेश को सूरत तथा काठियावाड़ कहते है अन्तिम नाम कुछ समय पूर्व मराठों से मिला था।

ह्वेनसांग ने बलभी की राजधानी की परिधि को ३० ली अथवा ५ मील कहा है। इसके खण्डहरो की सर्वप्रथम खोज मि० टाड ने की थी। यद्यपि वह वहाँ नही गये थे। अब डाक्टर निकलसन वहाँ जा चुके हैं एवं उनके अनुसार यह खण्डहर भाव नगर के १८ मील पश्चिम-उत्तर-पश्चिम मे ताले ग्राम के समीप अवस्थित हैं। यह खण्डहर आज भी वमिलपुर के नाम से ज्ञात है, जो बलभी अथवा बलभीपुर का तनिक परिवर्तित स्वरूप है। यह खण्डहर काफी दूर-दूर तक फैले हुए हैं परन्तु ईंटो के असमान्य विशाल आकार को छोड़ इनके सम्बन्ध मे कोई उल्लेखनीय बात नही है। लगता है कि अकबर के समय मे ये खण्डहर अधिक महत्वपूर्ण थे क्योंकि अबुलफजल को सूचना मिली थी कि "सिरोज पर्वतों के अधोभाग पर एक विशाल नगर है जो यद्यपि अनुकूल स्थिति में अवस्थित है परन्तु इसका जीर्णोधार नही किया जा रहा है। माबिदचिन तथा घोगा की बन्दरगाह इस पर आश्रित है।" घोगा की समीपता इस ध्वस्त नगर को बलभी के वर्तमान खण्डहरों के अनुरूप सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। बलभी के खण्डहर घोगा से केवल २० मील की दूरी पर हैं।

सातवीं शताब्दी मे ह्वेनसांग ने बलभी राज्य की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील कहा है और यदि हम इस राज्य में समीपस्त तट पर अवस्थित भड़ौच तथा सूरत के जिले, और साथ ही साथ सौराष्ट्र के सम्पूर्ण पठार को सम्मिलित करें तो उपर्युक्त आंकड़े वास्तिविक आंकड़ों के समीप हैं। परन्तु तीर्थ-यात्री की यात्राओं के विवरण का यह भाग प्रायः अशुद्ध तथा त्रुटि पूर्ण है। अतः उसकी त्रुटिओं को शुद्ध करने एवं उसकी भूल को सुधारने के लिए अपनी सूक्ष्म बुद्धि पर विश्वास करना चाहिए। इस प्रकार भड़ौच के अपने विवरण में ह्वेनसांग ने हमें यह बताने में यह भूल की है कि क्या यह भिन्न एवं स्वतन्त्र राज्य था अथवा बलभी मालवा अथवा महाराष्ट्र आदि अपने शक्तिशाली पड़ोसियों में किसी का आश्रित था परन्तु सामान्य रूप से यह प्रदेश पठार से सम्बन्धित रहा है। अतः मेरा अनुमान है कि यह प्रदेश सातवीं शताब्दी में बलभियो के विशाल राज्य के अधीन था। टालमी के अनुसार बरीगाजा लारीके राज्य का भाग था जो ह्वेनसांग के समय में बलभी राज्य का दूसरा नाम था। इब्नहौकल के अनुसार दसवी शताब्दी में यह प्रदेश बलभी राज्य के अधीन था जिनकी राजधानी अनलवारा थी। परन्तु चूँकि यह नगर ह्वेनसांग की यात्रा के एक सौ वर्ष पश्चात तक स्थापित नहीं हुआ था अत. मेरा निष्कर्ष है कि सातवीं शताब्दी में भड़ौच बलभियों के प्रसिद्ध राज्य का भाग रहा होगा। इसकी सीमाओं में उपर्युक्त क्षेत्रों के

जोड़ दिए जाने से बलभी राज्य की सीमान्त परिधि, जहाँ तक सम्भव है लगभग १०००
मील रही होगी।

सौराष्ट्र

ह्वेनसांग के अनुसार सु-ला-चा अथवा सूरत प्रान्त बलभी राज्य का आश्रित था। इसकी राजधानी बलभी के पश्चिम में ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर यू-चेन-त, अथवा उज्जन्ता पर्वत के अधोभाग पर अवस्थित थी। यह संस्कृत उज्जयन्त का पाली स्वरूप है जो गिरिनार पहाड़ियों का केवल दूसरा नाम है। यह पहाड़ियाँ जूनागढ के पुराने नगर से ऊपर उठती हैं। उज्जन्त का नाम गिरिनार में प्राप्त रुद्र दाम तथा सिकन्दरगुप्त के लेखों में दिया गया है। यद्यपि अनुवादकों ने इस महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख करने में भूल की थी। इस प्रसिद्ध पहाड़ी के उल्लेख से सौराष्ट्र की राजधानी की स्थिति जूनागढ़ अथवा यवनगढ़ में निश्चित होती है जो बलभी से ८७ मील पश्चिम में अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित स्थान के अत्यधिक समीप है। यह विवरण पोस्टन्स के विवरण से मिलता है। जिन्होंने १८३३ ई० में पहाड़ी को "सेव के वृक्षों के घने जङ्गल से" ढका हुआ देखा था। उन्होंने अधोभाग पर अनेक खण्डहर देखे थे जिनमें समतल छतों वाले छोटे कमरे थे जिनकी छतों को वर्गाकार स्तम्भों का सहारा दिया गया था।"

सूरत का नाम पठार के इस भाग में आज भी ज्ञात है। परन्तु यह एक तुलनात्मक छोटे प्रदेश तक सीमित है जो गुजरात के दस खण्डों में एक है। परन्तु अकबर के समय में यह नाम पठार के दक्षिणी अथवा बड़े अर्धभाग को दिया गया था जो अबुलफजल के अनुसार घोगा बन्दरगाह से अमरराय बन्दरगाह तक तथा सिरधर से दियू बन्दरगाह तक विस्तृत था। जिले के नाम को टैरी ने भी सुरक्षित रखा है जिन्हें उपर्युक्त सूचनायें जहाँगीर के दरबार में प्राप्त हुई थी। उनके विवरण के अनुसार सौरेट के मुख्य नगर को जनगर अर्थात जवनगढ़ अथवा जोनागढ़ कहा जाता था। यह प्रान्त छोटा, परन्तु अधिक समृद्धशाली था तथा इसके दक्षिण में समुद्र था। उस समय भी यह प्रान्त गुजरात के सम्मिलित प्रतीत नहीं होता क्योंकि टैरी ने इसे गुजरात के ऊपर की ओर बताया है।

सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने लिखा है कि सूरत अथवा सौराष्ट्र की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी तथा पश्चिम में इसकी सीमा मो-ही नदी थी। इस नदी को सदा मालवा की माही नदी के अनुरूप स्वीकार किया गया है जो खम्बात की खाड़ी में गिरती है (१) इस अनुरूपता को शुद्ध स्वीकार करने से ह्वेनसांग के समय में

(१) चूँकि मही नदी गुजरात के उत्तर पूर्व है अतः हमें या तो पूर्व पढ़ना चाहिए अथवा यह स्वीकार करना चाहिए कि तीर्थ यात्री ने नदी के पश्चिमी तट का उल्लेख किया है।

सूरत प्रान्त मे बलभी नगर सहित सम्पूर्ण पठार सम्मिलित था। तीर्थ यात्री द्वारा सीमान्त सम्बन्धी आंकड़ो से इस कथन की पुष्टि होती है। यह आंकड़े कच्छ के छोटे रन से खम्बात तक खीचो रेखा के दक्षिण पश्चिम मे सम्पूर्ण पठार की सीमान्त दूरी से पूर्णयतः सहमत हैं। बलभी की प्रसिद्धि के होते हुए भी ६४० ई० तक सम्पूर्ण पठार को सूरत के प्राचीन नाम से पुकारा जाता था।

भड़ौच अथवा बरीगाजा

सातवीं शताब्दी मे पो-लू-की-चो-पो अथवा बरुकचवा के जिले की परिधि २४०० से २५०० ली अथवा ४०० से ४१७ मील थी तथा इसका मुख्य नगर नाई-मो-यो अथवा नर्बदा नदी के तट पर एव समुद्र के समीप था। इन आंकड़ों से राजधानी को ब्राह्मणो द्वारा लिखित संस्कृत नाम भृगु, कच्छ अथवा प्राचीन लेखों के भाचु कच्छ के अन्तर्गत भडौच के सर्व ज्ञात तटीय नगर के अनुरूप सरलता पूर्वक स्वीकार किया जा सकता है। भाद-कच्छ नाम प्रायः अधिक प्रचलित था क्योंकि टालमी तथा पैरीप्लस के लेखक ने इसे अक्षरशः सुरक्षित रखा है। ह्वेनसाग के आंकडो से जिले की सीमाओ को प्रायः उत्तर मे माही नदी से दक्षिण मे दामान तक तथा पश्चिम कैम्बे की खाडी से पूर्व मे साइयादी पर्वतो तक विस्तृत बताया जा सकता है।

ह्वेनसाग की पुस्तक के अनुसार भडौच अथवा बलभी दक्षिणी भारत मे थे तथा सौराष्ट्र पश्चिमी भारत मे, एव उज्जैन मध्य भारत में था। मैं इस कथन को ह्वेनसाग की उन अनेक त्रुटियो मे सम्मिलित करता हूँ जिनके कारण पश्चिमी भारत मे सम्बन्ध में उसका विवरण ब्रह्म पूर्ण बन गया है अतः मैं बलभी एवं भडौच दोनो को पश्चिमी भारत का अङ्ग बनाऊँगा क्योंकि वह दोनों सौराष्ट्र के विशाल प्रान्त के भाग हैं। पैरीप्लस के लेखक से इस कथन की पुष्टि होती है जिसने लिखा है कि बरि-गाजा से नीचे तट दक्षिण को ओर मुड जाता है जहाँ इस प्रदेश को दखिनाबादेज् कहा गया है क्योंकि स्थानीय जनता दक्षिण को दखनाओस कहा करते हैं।

मध्य भारत

चानो नार्थ यात्री के अनुसार मध्य भारत का विशाल खण्ड सतलज से गङ्गा के मुहाने के सिरे तक तथा हिमालय से नर्बदा एवं महानदियो तक विस्तृत था। इसमे गङ्गा के मुहाने अथवा बङ्गाल को छोड भारत के अन्य सभी समृद्ध एवं सर्वाधिक जन-पूर्ण जिले सम्मिलित थे। सातवी शताब्दी मे भारत के सत्तर विभिन्न राज्यो मे कम से कम ३७ अथवा आधे से कुछ अधिक राज्य मध्य भारत मे थे। ह्वेनसाग ने इन सभी जिलो की यात्रा की थी तथा इन विभिन्न राज्यो का पश्चिम से पूर्व निम्न क्रम मे वर्णन करने मे मैं उसके पद चिह्नो का अनुसरण करूँगा .—

(१) थानेश्वर
(२) बैराट
(३) स्रुघना
(४) मडावर
(५) ब्रह्मपुर
(६) गोबसाना
(७) अहिक्षत्र
(८) पिलोसना
(९) सङ्किसा
(१०) मथुरा
(११) कन्नौज
(१२) अयूतो
(१३) ह्यामुख
(१४) प्रयाग
(१५) कोशाम्बी
(१६) कुसपुरा
(१७) वैसाख
(१८) स्रावस्ती (श्रावस्ती)
(१९) कपिला
(२०) कुशीनगर
(२२) वराणमी
(२२) योद्धापतीपुरा
(२३) वैशाल
(२४) व्रिजी
(२५) नेपाल
(२६) मगध
(२७) हिरण्य पर्वत
(२८) चम्पा
(२९) कान्कजोल
(३०) पौण्ड्र वर्धन
(३१) जझोती
(३२) महेश्वरपुर
(३३) उज्जैन
(३४) मालवा
(३५) खेडा अथवा खेड़ा
(३६) अनन्दपुर
(३७) वडारी अथवा इडर

थानेश्वर

सातवीं शताब्दी में सा-ता-नी-शी-फा-लो अथवा थानेश्वर एक भिन्न राज्य की राजधानी थी। यह राज्य परिधि में ७००० ली अथवा ११६७ मील था। इस राज्य के किसी राजा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु यह कन्नौज के हर्ष-वर्धन का आश्रित राज्य था जो उस समय मध्य भारत का सर्वोच्च शासक था। ह्वेनसांग द्वारा दिये गये अधिक आंकड़ों से मेरा अनुमान है कि यह जिला सतलज से गङ्गा तक विस्तृत रहा होगा। इसकी उत्तरी सीमा को सतलज नदी पर हरी की पट्टन से गङ्गा नदी के समीप मुजफर नगर तक खींची गई सीधी रेखा कहा जा सकता है तथा इसकी दक्षिणी सीमा सतलज पर पाक पट्टन के समीप से भटनेर एव नारनोल के मार्ग से गङ्गा नदी पर अनूपशहर तक अनियमित रेखा बताई जा सकती है। इन सीमाओ के भीतर इसकी सीमान्त रेखा लगभग ६०० मील हो जाती है जो तीर्थ-यात्री द्वारा बताई सीमा से एक चौथाई कम है। परन्तु यह निश्चित है कि अधिकांश सीमा सम्बन्धी आकडे अति-शयोक्ति पूर्ण है क्योंकि इनकी दूरियो का केवल अनुमान लगाया जा सकता था और अधिकांश व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्ति अपने देश के आकार का बढा-चढा कर बताने की होती है। त्रुटि का अन्य कारण ह्वेनसांग के निजी उल्लेख मे अपर्याप्त सूचनाये है। इस विवरण मे प्रत्येक ३७ जिलो को एक विशिष्ट एवं भिन्न राज्य कहा गया है जबकि यह प्रायः निश्चित है कि इनमे अनेक छोटे राज्यों को बडे राज्यो की सीमओ मे सम्मिलित समझा जाना चाहिये। इस प्रकार मेरा विश्वास है कि गोविसना एवं अहिछत्र के छोटे जिले मदावर राज्य के भाग रहे होंगे, गङ्गा दोआब मे अयूतो, हयामुख, कोशाम्बी एवं प्रयाग के जिले कन्नौज मे, कुशीनगर, कपिला मे तथा बडरी तथा खेडा के जिले मालवा मे सम्मिलित रहे होंगे। मेरा विश्वास है कि कुछ उदाह-हरणो मे सैकड़ा के स्थान पर हजार लिखा गया है। मैं गङ्गा दोआब के निचले एव छोटे जिलो का विशेष उल्लेख करता हूँ। प्रयाग अथवा इलाहाबाद को परिधि मे ५००० ली अथवा ८३३ मील कहा गया है एवं कोशाम्बी को-जो इलाहाबाद से केवल ३० मील की दूरी पर है परिधि मे ६००० ली अथवा १००० मील कहा गया है। इन दोनो उदाहरणो मे मै ५०० ली अथवा ८३ मोल तथा ६०० ली० अथवा १०० मील पढूंगा जो इन छोटे खण्डो के वास्तविक आकार से मिल जायेगा। यह पूर्णतः निश्चित है कि के जिले अधिक बडे नही हो सकते थे क्योंकि यह अन्य सर्व-ज्ञात जिलों से पूर्णतः घिरे हुए हैं। त्रुटि के उपर्युक्त कारणो मे किसी भी कारण को सुधारने से मेरा विचार है कि ह्वेनसाग के आकडे शुद्ध आकडो से अधिक भिन्न नही हैं।

थानेश्वर नगर मे प्राचीन ध्वस्त दुर्ग सम्मिलित है जो शिर पर १२००० फुट वर्गाकार है। पूर्व के एक टीले पर आधुनिक नगर है एवं पश्चिम में एक अन्य टीले

पर बबरी नाम का उपनगर है। कुल मिला कर तीनों टीले पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बाई में एक मील तक एवं चौड़ाई में औसतन २००० फुट में फैले हुए हैं। इन आंकडो से इसकी परिधि १४००० फुट अथवा २$\frac{2}{3}$ मील से कुछ कम बनती है जो ह्वेनसांग द्वारा २० ली अथवा ३$\frac{1}{3}$ मील के आंकड़ो से कुछ कम है। परन्तु ईटो के वर्तमान अवशेषों मे और साथ ही साथ स्वयं जन साधारण के कथनों से इतना निश्चित है कि मुसलमानो के आगमन से पूर्व वर्तमान नगर एव झील-जिसे अब दर्रा कहा जाता है—के मध्य का सम्पूर्ण भाग प्राचीन नगर का भाग रहा होगा। इस क्षेत्र के भीतर जहाँ तक सम्भव है मूल नगर चारो ओर एक मील का वर्ग रहा होगा जिससे इसका परिधि चार मील अथवा चीनी-तीर्थ यात्री के आकडो से कुछ अधिक हो जाती है। प्रथाओ के अनुसार पांडवो से पाँच शताब्दी पूर्व के वंशज राजा दलीप ने इस दुर्ग का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि इसके ५२ बुर्ज थे जिनमे कुछ एक के अवशेष वर्तमान काल में मिलते है। पश्चिम की ओर मिट्टी की प्राचीरें सड़क से ६० फुट ऊंची उठ जाती है परन्तु भीतर का अधिकांश भाग ४० फुट से अधिक नही है। सम्पूर्ण टीला विशाल ईंटो के टुकडो से ढँका हुआ है पन्रतु तीन कुओं को छोड अधिक प्राचीन अवशेष नही हैं।

कहा जाता है कि थानेसर अथवा स्थानेश्वर का नाम या तो ईश्वर अथवा महादेव के स्थान से लिया गया है अथवा स्थानों तथा ईश्वर के नामो के सङ्गम से अथवा स्थानो एव सर अर्थात् झील, से लिया गया है। यह नगर भारत के प्राचीनतम एवम् सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थानों में गिना जाता है परन्तु इस नाम के अन्तर्गत इसका सर्व प्रथम निश्चित उल्लेख ६३४ ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने किया है। यद्यपि यह अधिक सम्भव है कि टालमी ने बतन-केसर के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसे हमे संस्कृत के स्थानेश्वर के स्थान पर सम्भवतः स्तानेसर पढ़ना चाहिए। परन्तु यह स्थान महादेव क मन्दिर की अपेक्षा पांडवो के इतिहास से सम्बन्धित होने के कारण अधिक प्रसिद्ध था। क्योकि भारत मे महादेव की पूजा महाभारत के वीरो के समय की अपेक्षा नवीन है। थानेसर के आस-पास सरस्वती तथा द्रिशदवती नदियों के बीच सम्पूर्ण प्रदेश कुरुक्षेत्र अर्थात् "कुरु की भूमि" के नाम से ज्ञात है। कहा जाता है कि कुरु ने नगर के दक्षिण में विशाल पवित्र झील के तट पर सन्यास लिया था। इस झील को ब्रह्मासर, रामाहृद, वायु अथवा वायु-सर तथा पवन-सर आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। प्रथम नाम ब्रह्मा से सम्बन्धित है क्योंकि उन्होंने इसके तट पर बलि चढ़ाई थी। दूसरा नाम परशुराम से लिया गया है जिन्होंने इस स्थान पर क्षत्रियों का रक्त बहाया था। अन्तिम दोनो नाम कुरु के सन्यासी जीवन काल में इस स्थान पर आनन्दकारी वायु के कारण वायु देव से लिये गये हैं। अधिकांश तीर्थ यात्रियों के लिये यह झील आकर्षण का केन्द्र है परन्तु इसके चारों ओर कई मीलो तक सम्पूर्ण प्रदेश

पवित्र माना जाता है तथा कौरवों, पाडवो एवं अन्य प्राचीन वीरों से सम्बन्धित अनेक पवित्र स्थान निश्चित ही अधिक हैं। सर्व साधारण के विश्वासानुसार इनकी संख्या ३६० है परन्तु कुरुक्षेत्र महातम्य की सूची १८० तक सीमित है जिनमें आधे अथवा ६१ स्थान पवित्र सरस्वती नदी के उत्तर की ओर हैं। परन्तु पुण्ड्र के स्थान पर नागहृद, बस्थली में वैशस्थल, बालू मे पराशर तीर्थ तथा नरान के समीप सग्गा के स्थान पर विष्णु तीर्थ आदि महत्वपूर्ण स्थानो को उपर्युक्त सूची में स्थान नही दिया गया है। अतः मैं यह विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि जन साधारण की संख्या ३६० अतिशयोक्तिपूर्ण नही हो सकती।

कुरुक्षेत्र के चक्र अथवा जिले को धर्म क्षेत्र भी कहा जाता है जो प्रत्यक्ष रूप मे ह्वेनसाग का सौभाग्य स्थान है। उसके समय मे तीर्थ की परिक्रमा २०० ली तक सीमित थी जो ४० ली बराबर ४ कोस के भारतीय योजन की उसकी निजी दर से २० कोस के समान है। परन्तु अकबर के समय मे यह परिक्रमा बढ कर ४० कोस हो गई थी और मेरी यात्रा के समय इसका विस्तार ४० कोस था। यह परिक्रमा सर्व ज्ञात थी एवं श्री बोरिङ्ग ने भी इसका उल्लेख किया है। ७ अथवा ८ मील बराबर एक योजन की दर से ह्वेनसांग द्वारा बताई गई परिधि ३५ अथवा ४० मील से अधिक नही हो सकती परन्तु १½ मील बराबर पादशाही कोस की सामान्य दर से अबुलफजल द्वारा कथित परिधि ५३ मील से कम नही हो सकती और सर एच० इलियट द्वारा अकबरी कोस को २½ मील के समान स्वीकार करने से उपर्युक्त परिधि १०० मील से अधिक हो जायेगी। फिर भी तीर्थ यात्री की संख्याओं को बदलकर ४०० ली अथवा १० योजन पढ़ने से—जो ४० कोस अथवा ८० मील के बराबर है—अथवा अबुल-फजल के ४० कोस को २ मील की सामान्य भारतीय दर के अनुसार इन विभिन्न कथनो को समान बनाया जा सकता है। मैं स्वय तीर्थ यात्री की संख्याओ मे उपर्युक्त संशोधन करने की आवश्यकता समझता हूँ क्योकि उसकी सीमित परिधि मे न केवल सरस्वती पर अवस्थित पृथुदक अथवा पिहोआ, तथा कौशिकी सङ्गम अर्थात कौशिकी एव द्रिश्दावती नदियो के सङ्गम स्थान पर अवस्थित समान रूप से महत्वपूर्ण स्थल बाहर रह जाये वरन् द्रिश्दावती नदी भी वस्तुतः इस परिधि मे सम्मिलित नही होगी जबकि वामन पुराण मे इसे विशेष रूप से पवित्र भूमि की सीमाओ मे दिखाया गया है—

दीर्घ क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे दीर्घ सत्रन्तयेरे,
नुदयास्तीरे द्दश्दवत्याह पुन्यय: सुचिरोधश:।

"वह अपने गुणो के कारण पवित्र मानी जाने वाली द्दश्दवती के तट पर कुरु क्षेत्र के विशाल क्षेत्र मे सत्रन्त की महान बलि दे रहे है।" महाभारत के वायु पुराण में भी पवित्र भूमि की दक्षिणी सीमा के रूप मे इसका विशेष उल्लेख किया गया है।

दक्षिनेना सरस्वतया दृशदवत्युत्तरेन च:,
ये वसन्ती कुरुक्षेत्रे ते वसन्ती तृवृशतपे ।

"सरस्वती से दक्षिण में एवं दृशदवती के उत्तर कुरु क्षेत्र के निवासी स्वर्ग में निवास कर रहे हैं।" इस कथनों से यह निश्चित है कि कुरु क्षेत्र की पवित्र भूमि ह्वेन-सांग के समय में दृशदवती तक विस्तृत रही हो अतः इस क्षेत्र की परिधि को २०० ली अथवा २० कोस बताने में त्रुटि हुई है।

महाभारत में एक अन्य स्थान पर पवित्र भूमि की सीमाओं को अधिक स्पष्ट रूप से लिखा गया है तथा मचकनुका के मध्य प्रदेश को कुरु क्षेत्र, समन्तपञ्चक तथा पितामह (ब्रह्मा) की उत्तरी वेदी कहा जाता है। चूँकि ब्रह्मावेदी का नाम ब्रह्मावर्त्त के समान है अतः पवित्र भूमि को दृशदवती के तट तक विस्तृत स्वीकार करने के लिए हम मनु की निम्न साक्षी का उल्लेख कर सकते हैं।

सरस्वती दृशदवत्यौरदेव: नुवयोर यदन्तरम,
तत देव:निर्मितम-देशन ब्रह्मावर्त्तन प्रचकशते।

"अर्थात देवताओ द्वारा निर्मित प्रदेश-जो सरस्वती एवं दृशदवती नदियो के मध्य है—ब्रह्मवर्त्त कहलाता है।"

कुरु क्षेत्र का महान सरोवर पूर्व से पश्चिम ३५४६ फुट लम्बा एवं १६०० फुट चौडा है। अबु-रिहान जिसने वराह मिहिर की साक्षी के आधार है पर लिखा है—का कथन है कि चन्द्र ग्रहण के समय अन्य सभी सरोवरो का जल थानेसर के सरोवर मे आ जाता है जिससे चन्द्र ग्रहण के समय तीर्थ यात्री एक ही समय मे अन्य सभी सरोवरो मे स्नान का पुण्य प्राप्त कर सके।

वराह मिहिर का उपर्युक्त विवरण हमे ५०० ई० तक पीछे ले जाता है जब थानेसर का पवित्र सरोवर पूर्णतः भरा हुआ था। परन्तु पौराणिक कथाओ मे सरावर को पाण्डवो के समय से भी प्राचीन कहा गया है। इसी के तट पर कौरवो एव पाण्डवो के सयुक्त पूर्वज कुरु ने तपस्या की थी। इसी स्थान पर परशुराम ने क्षत्रियों का वध किया था और इसी स्थान पर ही अपसरा उर्वशी को खो देने के पश्चात कुरु ने "कमल के फूलो से सुसज्जित सरोवर में स्वर्ग की अप्सराओ के संग क्रीड़ा करते समय" कुरु क्षेत्र के स्थान पर अपनी दिव्य पत्नी को प्राप्त किया था। परन्तु अश्व के सिर वाले बन्धन अथवा दधीच की कथा पाण्डवों की कथा से अधिक प्राचीन है क्योंकि यह कथा ऋग्वेद से सम्बन्धित है। "इन्द्र ने अपनी अस्थियो द्वारा नौ वृत्रो का ६० बार बध किया था" टीकाकारों ने इसे इस कथन द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि इन्द्र का बज्र अश्व-शिर से बना था जिसे अश्विनियो ने शिर विहीन दधयन्च को दिया था जिससे वह उन्हे अपनी विद्या सिखा सके। कथा के अनुसार दधयन्च अपने जीवन काल मे असुरों के लिए भय का कारण बना हुआ था। जो उसकी मृत्यु के

पश्चात् वृद्धि करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल गये। तत् पश्चात, "इन्द्र ने उसकी खोज करते हुए पता लगाया कि उसके अवशेष शेष हैं अथवा नही। उसे सूचना दी गई कि अश्व का सिर जीवित है परन्तु उसका स्थान अज्ञात है। इसकी खोज की गई और इसे कुरुक्षेत्र के बाह्य भाग में सरिनावत सरोवर में प्राप्त किया गया।" मेरा अनुमान है कि यह कुरुक्षेत्र के विशाल सरोवर का केवल अन्य नाम है और परिणाम स्वरूप यह भी विश्वास है कि यह पवित्र सरोवर ऋगवेद के समान प्राचीन है। मैं इसे सम्भावित समझता हूँ कि चक्र तीर्थ अथवा वह स्थान जहाँ विष्णु ने भीष्म को मारने के लिए अपना चक्र उठाया था। वह स्थान रहा होगा जहाँ इन्द्र ने वृत्रो का वध किया था और वह अस्थियाँ जिन्हे बाद मे पांडवो से सम्बन्धित किया है सम्भवतः प्राचीन कथा के वृत्रों की अस्थियाँ थी। इस प्रस्ताव के पक्ष मे मैं यह उल्लेख करूंगा कि चक्र-तीर्थ अस्थि पुर अथवा "अस्थियों के स्थान" के समीप है। ६३४ ई० मे चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसाग को यह अस्थियाँ दिखाई गई थी। जिसने लिखा है कि वे अत्याधिक बड़े आकार की थी। इन अस्थियो के सम्बन्ध मे मेरे सभी प्रयत्न असफल रहे परन्तु अस्थि-पुर स्थान को अब भी औऊजस घाट के समीप नगर के पश्चिम मे समतल भूमि में दिखाया जाता है।

पिट्टोआ अथवा पृथु दक

पिट्टोआ का प्राचीन नगर थानेसर के १४ मील पश्चिम मे सरस्वती के दक्षिणी तट पर स्थित है। इस स्थान का नाम प्रसिद्ध प्रथु चक्रवर्ती से मिला था जिसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि वह प्रथम व्यक्ति था जिसे राजा की उपाधि प्राप्त हुई थी। विष्णु पुराण के अनुसार उसके जन्म के समय "सभी जीव प्रसन्न हुए थे।" क्योंकि उसका जन्म सम्पूर्ण पृथ्वी पर पहली तत्कालीन अराजकता को समाप्त करने के लिए हुआ था। इसी पुराण मे सरस्वती में स्नान करने से राजा बेन के कोढ़ समाप्त होने की कथा का उल्लेख भी किया गया है। उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र पृथु ने सामान्य श्राद्ध किया तथा मृत्यु के १२ दिन तक उन्होने सरस्वती के तट पर आगन्तुकों को जल पिलाया अतः इस स्थान को पृथुदक अथवा पृथु का सरोवर, नाम दिया गया और उसी स्थान पर पृथु द्वारा बनवाए गए नगर को उसी नाम से पुकारा गया। पृथुदक के स्मा-रक को कुरु क्षेत्र महात्मय मे स्थान प्राप्त है और आज भी तीर्थ यात्री इस स्थान पर आते हैं।

अमीन

थानेसर के पाँच मील दक्षिण-दक्षिण पूर्व मे अमीन नाम एक विशाल एवम् उन्नत टीला है जिसे ब्राह्मणो अभिमन्यु खेड़ा अथवा अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के टीले का संक्षिप्त स्वरूप समझते हैं। इस स्थान को चक्रव्यूह का नाम भी दिया गया है क्योंकि

पाण्डवों ने कौरवों से अपने अन्तिम युद्ध से पूर्व अपनी सेनाओं को इसी स्थान पर एकत्रित किया था। इस स्थान पर अभिमन्यु जयद्रथ द्वारा मारा गया था जो स्वयं दूसरे दिन अर्जुन द्वारा मारा गया था। कहा जाता है कि इसी स्थान पर अदिति ने पुत्र प्राप्ति हेतु सन्यासी रूप मे तपस्या की थी और तद्नुसार इसी स्थान पर उसने सूर्य को जन्म दिया था। यह टीला उत्तर से पश्चिम लम्बाई में २००० फुट तथा चौड़ाई मे ८०० फुट है और इसकी ऊँचाई २५ से ३० फुट है। शिखर पर अमीन नामक एक छोटा गाँव है जिसमे गौड़ ब्राह्मणों का निवास है। यहाँ पर अदिति का एक मन्दिर है तथा पूर्व में सूर्य कुण्ड एवं पश्चिम में सूर्य का मन्दिर है। कहा जाता है कि सूर्य कुंड वही स्थान है जहाँ सूर्य का जन्म हुआ था और तदानुसार पुत्र की इच्छुक समस्त स्त्रियाँ रविवार के दिन अदिति के मन्दिर मे पूजा करती है और तत्पश्चात सूर्य कुंड मे स्नान करती हैं।

बैराट

ह्वेनसांग के अनुसार पो-लो-ये-तो-लो राज्य-जिसे एम० रेनाड ने पारयात्र अथवा बैराट के अनुसार स्वीकार किया है, की राजधानी मथुरा के पश्चिम मे ५०० ली अथवा ८३$\frac{1}{3}$ मील की दूरी पर एवं शी-तो-तू लो अर्थात सतद्रु अथवा सतलज राज्य के दक्षिण पश्चिम मे ८०० ली अथवा १३३$\frac{1}{3}$ मील की दूरी पर अवस्थित था। मथुरा से दिकाश एवं दूरी ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित नगर के रूप में मत्स्य की राजधानी बैराट की ओर असन्दिग्ध रूप से संकेत करते हैं। यद्यपि तीर्थ-यात्री द्वारा दूरी की अपेक्षा यह स्थान कुलू के दक्षिण मे १०० मील से अधिक दूरी पर है। परन्तु उत्तरी भारत मे सतद्रु की मध्यवर्ती स्थिति के अपने विवरण में उपर्युक्त त्रुटि का उल्लेख कर चुका हूँ।

महमूद के समकालीन अबुरिहान ने करजात की राजाधानी नरान को मथुरा के पश्चिम मे २८ परसांग की दूरी पर दिखाया है। (१) जिससे परसांग को ३$\frac{1}{2}$ मील के समान स्वीकार करने पर ६८ मील अथवा ह्वेनसांग के आकड़ो से १४ मील अधिक हो जाएगी। परन्तु चूंकि विभिन्न मुस्लिम इतिहासकारो के विवरणों में करजात की राजधानी नरान एवं बैराट की राजधानी नरायन के अनुरूप होने में कोई सन्देह नही रहा अत मथुरा से कथित दूरियो में भिन्नता का कोई महत्व नहीं रह जाता। अबुरिहान के अनुसार मुसलमान नरान अथवा बजान को नारायन कहा करते थे और यह नाम इस समय भी स्वयं बैराट के १० मील उत्तर पूर्व में अवस्थित नगर नारायन पुर में सुरक्षित है। अबुरिहान ने मथुरा से नरान तक दो विभिन्न मार्गों का उल्लेख किया है। प्रथम सीधा मार्ग मथुरा से होते हुए ५६ परसांग अथवा १६६ मील है जबकि

(१) रिनाड की पुस्तक के अनुवादक ने इसे बजान लिखा है परन्तु सर एच० एम० इलियट ने इसके शुद्ध स्वरूप नरान का उल्लेख किया है।

जमुना के दक्षिण मे दूसरा मार्ग ८८ परसांग अथवा ३०८ मील है। अन्तिम मार्ग के मध्यवर्ती पड़ाव इस प्रकार है। प्रथम ८०, १८ परसांग अथवा ६३ मील, द्वितीय, सकीना, परसांग, अथवा ८६½ मील, तृतीय, जन्दर, १८ परसांग, अथवा ६३ मील, चतुर्थ, रजौरी, १५ अथवा १७ परसांग, ५४ अथवा ५६½ मील, तथा पञ्चम बजान अथवा नरान, २० परसांग अथवा ७० मील। चूँकि प्रथम पड़ाव की दिशा विशेष रूप से कन्नौज के दक्षिण पश्चिम मे दिखाई गई है इसे इटावा के ६ मील दक्षिण में तथा कन्नौज से लगभग ६३ मील दक्षिण पश्चिम में यमुना के तट पर असाई घाट के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। द्वितीय पड़ाव का नाम सहिना लिखा गया है जिसे साधारण अदला बदली से मैं सुहनिया पढ़ने का प्रस्ताव करता हूँ जो ग्वालियर के २५ मील उत्तर मे अवस्थित एक अत्यधिक विशाल एवं प्रसिद्ध ध्वस्त नगर का नाम है। असाई घाट से इसकी दूरी लगभग ५६ मील है। तृतीय पड़ाव जिसे एम० रेनाड ने जन्दर कहा है एव सर हैनरी इलियट ने चन्द्र कहा है—को मैं हिडन समझता हूँ। चम्बल नदी पर सेत्री घाट के मार्ग से सोहानिया से इसकी दूरी लगभग ७० मील है। रजोरी नामक चतुर्थ पड़ाव इसी नाम के अन्तर्गत मछेरी के १२ मील दक्षिण पश्चिम मे अथवा हिडन से लगभग ५० मील उत्तर पश्चिम मे है। तत्पश्चात् नारायनपुर तथा बैराट तक यह मार्ग अलवर अथवा मछेरी की पहाडियो से गुजरता है। जिसके कारण इसकी दूरी का ठीक निश्चय करना कठिन हो जाता है। पत्थर पर छपे मानचित्र की प्रतिलिपि ८ ८ मील बराबर एक इञ्च की दर से आकने पर मै इसकी दूरी को ६० मील समझता हूँ जो अबुरिहान के विवरण के २० परसाग अथवा ७० मील से पर्याप्त रूप से समीप है।

अबुरिहान की अन्य यात्राओ के विवरण के अनुसार नरान मेवाड मे चित्तौड़ से २५ मील उत्तर मे था, मुल्तान के पूर्व मे ५० परसांग एव अनहलवार के उत्तर पूर्व में ६० परसाग की दूरी पर था। बैराट से इन स्थानो के दिकांश पर्याप्त रूप से शुद्ध है परन्तु इनकी दूरी ½ भाग मे कुछ अधिक कम है। चित्तौड तक २५ परसांग की प्रथम दूरी के लिए मैं ६५ परसांग अथवा २२७ मील पढ़ने का प्रस्ताव करूँगा जबकि सैनिक अधिकारियो द्वारा अङ्कित वास्तविक मार्ग दूरी २१७¾ मील है। चूँकि रशीदुद्दीन द्वारा दिए गए अबुरहान के विवरण मे चित्तौड की दूरी नही दी गई है। अतः यह सम्भव है कि तारीख ए हिन्द की मूल प्रतिलिपि मे कोई त्रुटि अथवा भूल रही होगी। मुल्तान तक ५० परसांग की त्रुटि पूर्ण दूरी को इस आधार पर क्षमा किया जा सकता है कि एक सेना के लिए मरुस्थल के सीधे मार्ग मे जाना प्राय: असम्भव था अत: इस दूरी का केवल अनुमान लगाया गया था। मेरा विचार है कि अनहलवार की कथित ६० परसांग की दूरी चित्तौड से सम्बन्धित होनी चाहिए। जो बैराट तथा अनहलवार के मध्य मे है। इन सभी विभिन्न यात्राओ की सूचियों की तुलना करने पर मुझे कर-

जात अथवा गुजरात की राजधानी बजान अथवा अरान को बैराट अथवा वेराट की राजधानी नारायनपुर के अनुरूप स्वीकार करने मे संकोच नही है। फरिश्ता ने बैराट को, डौ के अनुसार किबरात अथवा ब्रिग्स के अनुसार केरात लिखा है यह दोनों नाम बैराट अथवा विराट के अशुद्ध स्वरूप हैं। मुसलमानों ने बैराट अथवा विराट को इसी प्रकार लिखा होगा।

मत्स्य की राजधानी विराट दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्त से १२ वर्ष के वनवास के समय पञ्च पांडवो के निवास स्थान के रूप में हिन्दू प्रथाओं में प्रसिद्ध है। यह प्रदेश जनता के शौर्य के लिए भी प्रसिद्ध था क्योंकि मनु का निर्देश है कि सेना का अग्रिम भाग "इन्द्रप्रस्त के समीप कुरु क्षेत्र, मत्स्य अथवा विराट, पांचाल अथवा कान्य कुब्ज तथा मथुरा जिले सूरसेन नामक स्थान पर जन्म लेने वाले व्यक्तियों" से बना होना चाहिए। नगर के उत्तर में लगभग एक मील की दूरी पर एक लम्बी निचली पहाडी के शिखर पर भीम के निवास को दिखाया जाता है। यह पहाड़ी निचली श्रेणी के ककरीले बिलौरी पत्थरो के विशाल समूहो से बनी हुई हैं जो समय एवं ऋतु के कारण घिस गये हैं एवं वाह्य ओर से गोलाकार बन गये हैं। इनमें कुछेक पत्थर अन्दर की ओर कट गये हैं और मिट्टी से पुती छोटी पत्थर की दीवारो के मध्य से इन कटे पत्थरो का निवास स्थान के रूप मे बदल दिया गया है। भीम गुफा इसी प्रकार एक लटकती बडी चट्टान के साथ पत्थरो की दीवार जोड कर बनाई गई है। इस चट्टान का व्यास ६० फुट है इसी की ऊँचाई ५ फुट है। कहा जाता है कि इसी प्रकार के परन्तु छोटे कमरे भीम के भ्राताओ के निवास स्थान थे। कुछ ब्राह्मणो ने इस स्थान पर अधिकार कर रखा है जो तीर्थ यात्रियो द्वारा दी गई दानपुण्य की आमदनी से बसर करने का दावा करते है परन्तु उनकी समृद्ध स्थिति को देखते हुए उनका उपर्युक्त कथन असत्य प्रतीत होता है। भीम गुफा से कुछ नीचे गड्ढे मे वर्षा ऋतु का जल एकत्रित करने के लिये एक कुआं बनाया गया है और एक दरार से पत्थर निकाल कर १५ फुट लम्बा, ५ फुट चौड़ा एवं १० फुट गहरा सरोवर बनाया गया है परन्तु १० नवम्बर को मेरी यात्रा के दिन यह तालाब पूर्णतय: सूखा हुआ था।

बैराट नगर निचली नङ्गी लाल पहाडियो से घिरी एक गोलाकार घाटी मे बसा हुआ है। ये पहाड़ियां काफी समय से ताँबे की अपनी खानों के लिए प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त नगर दिल्ली से १०५ मील दक्षिण पश्चिम मे एवं जयपुर से ४१ मील उत्तर मे है। घाटी का मुख्य प्रवेश मार्ग उत्तर पश्चिम में एक छोटी नदी के साथ-साथ है जो बान गङ्गा की मुख्य सहायक नदियों मे गिनी जाती है। इस घाटी का व्यास २½ मील है एवं इसकी परिधि ७½ मील मे ८ मील है। यहाँ की मिट्टी प्राय: अच्छी है तथा वृक्ष और विशेषतय: झाड़ियाँ उत्तम एवं प्रचुर है। बैराट खण्डहरों के टीले पर अवस्थिति है जो एक मील लम्बा एवं आधा मील चौड़ा है। इसकी परिधि १½ मील से

कुछ अधिक है परन्तु वर्तमान नगर इस टीले के केवल ⅓ भाग पर बसा हुआ है। आस-पास के खेत बर्तनों के टुकड़ों एवं प्राचीन ताम्र मलवे से ढँका हुआ है और घाटी का सामान्य रङ्ग ताँबे के समान लाल है। कहा जाता है कि ३०० वर्ष पूर्व अकबर के दीर्घ कालीन एवं समृद्धशाली शासन काल में बसने से पूर्व बैराट नगर नाम का प्राचीन नगर अनेक शताब्दियों तक जनविहीन था। अकबर के समय यह नगर निश्चित रूप से बसा हुआ था क्योंकि अबुल फजल ने आईन-ए-अकबरी मे ताँबे की लाभकारी खानो से युक्त नगर के रूप में इसका उल्लेख किया है। कहा जाता है कि नगर से पूर्व मे आधे मील की दूरी पर एवम् पहाड़ी से ठीक नीचे विशाल टीले प्राचीन नगर के भाग थे। परन्तु उसकी स्थिति एवम् आकृति से मैं इसे किसी विशाल धार्मिक संस्था के अवशेष समझने का इच्छुक हूँ। वर्तमान खण्डहरों मे केवल पत्थरों की बनी नीवें दिखाई देती हैं क्योंकि सभी चकोर पत्थर आधुनिक नगर के भवनों के निर्माण में लगा दिए गये हैं।

बैराट के भवनों की संख्या १४०० बताई जाती है जिनमें ६०० गृह गौड ब्राह्मणो के हैं, ४०० अग्रवाल बनियों के, २०० मीनो के, एव शेष २०० अन्य विभिन्न जातियों से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक मकान में ५ व्यक्तियों की सामान्य दर से बैराट को जन संख्या ७००० रही होगी।

बैराट का ऐतिहासिक उल्लेख ६३४ ई० मे चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने किया है। उसके अनुसार राजधानी की परिधि १४, १५ ली अथवा प्रायः २½ मील थी जो प्राचीन टीले के आकार से ठीक-ठीक मिलती है जिस पर वर्तमान नगर बसा हुआ है। यहाँ की जनता वीर एवम् निडर थी और उनका राजा जो फी-शी, वैश्य अथवा बैस राजपूत था—युद्ध मे साहस एवम् कौशल के लिए प्रसिद्ध था। इस स्थान पर इस समय भी आठ बौद्ध मठ थे परन्तु वह सभी जर्जर अवस्था में थे एव भिक्षुओं की संख्या कम थी। विभिन्न जातियो के ब्राह्मण जिनकी संख्या १००० थी—१२ मन्दिरो के स्वामी थे परन्तु उनके शिष्य की संख्या अधिक थी क्योंकि अधिकांश जन संख्या धर्म विरोधी थी। ह्वेनसांग द्वारा नगर के बताये गये विस्तार को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि नगर की जनसंख्या वर्तमान जनसंख्या से कम से कम चार गुणा अधिक अथवा ३०,००० रही होगी जिसका एक चौथाई भाग बुद्ध का अनुयायी रहा होगा। मैंने उपर्युक्त संख्या को इस तथ्य से प्राप्त किया है कि बौद्ध मठों में प्रायः १०० भिक्षु रहा करते थे जबकि बैराट के मठ जर्जर बताये जाते थे अतः प्रत्येक मठ मे भिक्षुओं की संख्या ५० से ४०० अथवा कुल अधिक नही हो सकती थी। परन्तु प्रत्येक बौद्ध भिक्षु भिक्षा से अपना निर्वाह करता था अतः प्रत्येक भिक्षु की सहायतार्थ तीन परिवारों की दर से बौद्ध परिवारों की संख्या १२०० से कम नहीं रही होगी। इस प्रकार ४०० भिक्षुओं के अतिरिक्त बौद्ध धर्मावलम्बियों की संख्या ६००० रही होगी।

बैराट का दूसरा ऐतिहासिक उल्लेख महमूद गजनी के समय में मिलता है जिसने ४०८ हिजरी अथवा १००६ ईसवी मे देश पर आक्रमण किया था जब राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली थी। परन्तु उसके अधीनता स्वीकार कर लेने का कोई महत्त्व नहीं रहा क्योंकि हिजरी ४०४ अथवा १०१४ ईसवी की बसन्त ऋतु में उसके देश पर पुनः आक्रमण हुआ एवं एक भयानक युद्ध के पश्चात हिन्दू पराजित हुए थे। अबु-रिहान के अनुसार नगर को ध्वस्त कर दिया गया एवं जनसाधारण देश के भीतरी भागों में चले गये। फरिश्ता के अनुसार यह आक्रमण ४१३ हिजरी अथवा १०२२ ईसवी मे हुआ था। जब राजा ने यह सूचना मिलने पर कि बैराट तथा नारायन के दो पर्वतीय प्रदेशों के निवासी मूर्ति पूजक का अनुसरण कर रहे है उन्हे मुस्लिम धर्म स्वीकार करने पर बाध्य करने का निश्चय किया। अमीर अली ने इस स्थान पर अधिकार कर खूब लूटा था और कहा जाता है कि नारायन के स्थान पर उसे एक शिला-लेख प्राप्त हुआ था जिसमे लिखा था कि नारायण का मन्दिर ४०,००० वर्ष पूर्व बनवाया गया था। चूँकि समकालीन इतिहासकार उतबी ने भी इस शिला लेख का उल्लेख किया है अतः हम शिला लेख की खोज के तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं जिसे तत्कालीन ब्राह्मण पढ़ने में असमर्थ थे। मेरे विचार मे यह अत्यधिक सम्भव है कि उपर्युक्त शिला लेख अशोक का प्रसिद्ध शिला-लेख था जिसे बाद मे मेजर बर्ट ने बैराट की एक पहाड़ी के शिखर पर प्राप्त किया था और जो अब कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी के अजायब घर की शोभा बढ़ा रहा है।

सातवी शताब्दी मे बैराट राज्य की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी। यह राज्य भेड़ो एवं बैलो के लिए प्रख्यात था परन्तु फलो एवं फूलो की उपज कम थी। आज भी बैराट के दक्षिण जयपुर की यही स्थिति है जो दिल्ली एव आगरा के महान मुस्लिम नगरो एव उनकी अङ्गरेजी सेनाओं के लिए अधिकांश भेड़े प्रदान करता है। अतः जयपुर राज्य की वर्तमान सीमाये बैराट राज्य की सीमा में सम्मिलित रही होगी। इसकी सीमाओ को ठीक-ठीक निर्धारित नही किया जा सकता। परन्तु उन्हे उचित रूप से उत्तर मे झुन्झुनू से कोट कासिम तक ७० मील पश्चिम में झुन्झुनू से अजमेर तक, १२० मील, दक्षिण मे अजमेर से बनास तथा चम्बल के सङ्गम तक, १५० मील, तथा पूर्व में सङ्गम स्थान कोट कासिम तक १५० मील, अथवा कुल मिला कर ४६० मील निश्चित किया जा सकता है।

सूचना

थानेसर छोड़ने के पश्चात ह्वेनसांग सर्व प्रथम १०० ली अथवा १६⅔ मील दक्षिण क्यू-हाईन-चा अथवा गोकन्तन मठ तक गया था। अभी तक इस मठ की पहचान नहीं की जा सकी परन्तु सम्भवतः यह बैयस्थली एवं निसङ्ग के मध्य अवस्थित

गुनान मठ है जो थानेसर से १७ मील दक्षिण-दक्षिण पश्चिम मे है। मैं इस मठ का उल्लेख करने के लिये बाध्य हूँ क्योंकि यह है ह्वेनसांग ने सू लूकिन-ना अथवा स्रुघ्न तक ४०० ली अथवा ६६⅔ मील की दूसरी यात्रा इसी स्थान से प्रारम्भ की थी। इस प्रकार थानेसर तथा स्रुघना के मध्य की दूरी ५० मील बनती है। अब सुघ, वह स्थान जिसे मैं स्रुघना को राजधानी के अनुरूप स्वीकार करने का प्रस्ताव रखना चाहता हूँ। थानेसर से केवल ३८ अथवा ४० मील की दूरी पर है परन्तु चूँकि यह नाम में पूर्णतः एवं अन्य बातों में समान्यतः मिलता है अतः मुझे विश्वास है कि ह्वेनसांग के आंकड़े अशुद्ध हैं यद्यपि उन आंकड़ों के लिये सम्भावित शुद्धि प्रस्तुत करने में असमर्थ हूँ। गोकन्य मठ से वास्तविक दूरी लगभग ५० मील है।

देश का संस्कृत नाम स्रुघ्न है जो बोलचाल की भाषा में सुघन तथा सुघ बन जाता है। वर्तमान समय मे इसे इसी नाम से पुकारा जाता है। मेरी खोज के सभी स्थानो मे सुघ गाँव सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ऊँची भूमि के उभड़े त्रिभुजाकार भाग पर बसा हुआ है और तीन ओर से यमुना के पुराने पार से घिरा हुआ है। इस पार को अब पश्चिमी यमुना नहर कहा जाता है। उत्तर एवं पश्चिमी की ओर से यह दो गहरी खाइयो के कारण सुरक्षित है जिससे सम्पूर्ण स्थान सुदृढ रक्षा पक्ति का काम दे सके जो पश्चिम को छोड अन्य सभी ओर से प्राकृतिक रूप से सुरक्षित है। आकार मे यह प्राय. त्रिभुजाकार है जिसके प्रत्येक कोण पर एक सुदृढ़ दुर्ग बना हुआ है। उत्तरी दुर्ग के स्थान पर अब दयालगढ़ नामक गाँव एवं दुर्ग बना हुआ है। दक्षिण पूर्वी दुर्ग के स्थान पर मण्डलपुर गाँव बसा हुआ है और दक्षिणी-पश्चिमी कोण निर्जन है। प्रत्येक दुग १५०० फुट लम्बा एव १००० फुट चोड़ा है और इन्हे एक साथ मिलाने वाला कोण का प्रत्येक किनारा आधे मील से कुछ अधिक लम्बा है। पूर्वी किनारा ४००० फुट एव दक्षिण पश्चिमी किनारे ?०० फुट लम्बा है। इस स्थान की सम्पूर्ण परिधि २२००० फुट अथवा ४ मील से कुछ अधिक है और इस प्रकार यह परिधि ह्वेनसाग द्वारा दी गई ३⅓ की परिधि से काफी बडी है। परन्तु चूँकि उत्तरी दुर्ग राहर नाना नामक एक गहरी रेतीली खाई के कारण मुख्य स्थान से अलग है यह सम्भव है कि तीर्थ यात्री की यात्रा के समय यह दुर्ग निर्जन रहा हो। इस प्रकार इस स्थान की परिधि कम हो कर १६००० फुट अथवा ३⅓ मील से अधिक रह जायेगी और तीर्थयात्री के आकडो के समीप आ जयेगी। इसकी पश्चिमी किनारे पर सुघ का छोटा गाँव है तथा दयाल गढ के ठीक उत्तर में बूरिया का छोटा नगर बसा हुआ है। मेरी यात्रा के समय बसे हुए घर इस प्रकार थे—पाण्डलपुर १००, सुघ १२५, दयाल गढ़ १५०, तथा बूरिया ३५०० अथवा कुल मिलाकर ३८७५ घर लगभग २०,००० प्राणी रहा करते थे।

सुघ के सम्बन्ध में जन-साधारण में कोई विशेष प्रथा प्रचलित नहीं है परन्तु मांडर अथवा माडलपुर के सम्बन्ध मे उनका कथन है कि पूर्ववर्ती समय में यह नगर १२ कोस मे फैला हुआ था तथा पश्चिम मे जगाधरी एवं चनेटी तथा उत्तर में बूरिया अथवा दयालगढ़ इसमे सम्मिलित थे । चूँकि जगाधरी पश्चिम की ओर तीन मील की दूरी पर अवस्थित है, यह सम्भव नहीं है कि नगर इतनी दूरी तक विस्तृत रहा हो परन्तु हम उचित रूप से स्वीकार कर सकते हैं कि समृद्ध निवासियों के उद्यान एवं ग्रीष्म कालीन निवास स्थान किसी समय सम्भवतः उस दूरी तक विस्तृत रहे हो । उत्तर-पश्चिम मे दा मील की दूरी पर अवस्थित चनेटी में प्राचीन मुद्रायें अधिक संख्या मे मिलती है । परन्तु अब यह मध्यवर्ती लम्बे खुले प्रदेश के कारण बूरिया तथा दयालगढ से पूर्णतः अलग है । सुघ माडलपुर तथा बूरिया मे एक ही प्रकार की मुद्राये प्राप्त है । यह मुद्राये चौहानो की छोटी दिलियात से लेकर दिल्ली के तोमर राजाओ की चाँदी एव ताँबे की वर्गाकार मुद्राओ तक सभी युगो की मुद्राये सम्मिलित है । अन्तिम मुद्रा निश्चित रूप से ५०० ईसवी पूर्व मे बौद्ध धर्म के उत्थान के समय जितनी प्राचीन है और सम्भवतः यह मुद्रा १००० ईसवी पूर्व मे उत्तरी भारत की सामान्य मुद्रा थी । इस स्थान की प्राचीनता के पक्ष मे उपर्युक्त असंदिग्ध प्रमाण के कारण मुझे सुघ को प्राचीन स्रुघन के अनुरूप स्वीकार करने मे कोई सकोच नहीं है । स्थान का महत्व इस तथ्य से दिखाया जा सकता है कि यह स्थान गङ्गा के दुआब से मिराट, सहारनपुर तथा अम्बाला से होते हुए अपर पञ्जाब की ओर जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग पर अवस्थित है एव यमुना के मार्ग पर नियन्त्रण रखता है । महमूद गजनी कन्नौज के आक्रमण के पश्चात् इसी मार्ग से वापिस गया था । तैमूर हरिद्वार मे लूट-पाट के अपने अभियान के पश्चात् इसी मार्ग से वापिस गया था तथा बाबर ने दिल्ली विजय के समय इसी मार्ग का अनुसरण किया था ।

ह्वेनसाग के अनुसार स्रुघना राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी । पूर्व मे गङ्गा तक तथा उत्तर में उन्नत पर्वत श्रेणियों तक इसका विस्तार था जब कि यमुना इस राज्य के मध्य से प्रवाहित थी । इन तथ्यो से ऐसा प्रतीत होता है कि स्रुघना राज्य में गिरि एवं गङ्गा नदियो के मध्य सिमोर तथा गढ़वाल के पर्वतीय राज्य तथा मैदानो मे अम्बाला एवं सहारनपुर के जिलो के कुछ भाग सम्मिलित थे । परन्तु इस प्रदेश की परिधि ५०० मील से अधिक नहीं बनती जो ह्वेनसाग के आकडो से केवल आधी है । इस त्रुटि को मैं मानचित्र पर सीधे मार्ग एवम् पर्वतीय प्रदेश के वास्तविक मार्ग दूरी मे भिन्नता के कारण समझता हूँ । इससे सीमान्त रेखा लगभग ½ भाग बढ़ जायेगी तथा सम्पूर्ण परिधि ७५० मील हो जायेगी जो तीर्थ यात्री के अनुमान मे अभी भी काफी कम है । परन्तु यमुना तथा गङ्गा के मध्य की दूरी मे उसका कथन निश्चित रूप से त्रुटि पूर्ण है । तीर्थ यात्री के अनुसार यह दूरी पहाड़ियो के अधोभाग मे

लेकर दिल्ली तक दोनों नदियों के बीच समान्तर वास्तविक दूरी अर्थात् ३०० ली अथवा ५० मील के स्थान पर ८०० ली अथवा १३३ मील थी। चूंकि यह सम्भव है कि यही त्रुटि उत्तरी सीमा की दूरियों में भी समान अतिश्योक्ति के कारण दुगुनी हो गई थी। अतः इसकी शुद्धि महत्वपूर्ण है क्योंकि दुगुनी त्रुटि १६७ मील हो जाती है। इस त्रुटि को शुद्ध करने पर स्रुघन की परिधि ह्वेनसाग के अनुमान के अनुसार केवल ८३३ मील होगी जो सम्भावित आंकडों से ८३ मील भिन्न है।

मडावर

स्रुघन से तीर्थ यात्री मो-ती-पू लो अथवा मदीपुर गया था जिसे एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने पश्चिमी रुहेल खण्ड में बिजनौर के समीप मण्डावर नामक एक विशाल नगर के अनुरूप स्वीकार किया है। मैं पहले समान अनुरूपता का वर्णन कर चुका हूँ और अब मैं इस स्थान के व्यक्तिगत निरीक्षण के पश्चात उपर्युक्त अनुरूपता की पुष्टि करने में समर्थ हूँ। नगर का नाम मानचित्र के मुण्डोर के स्थान पर मडावर लिखा गया है। इस स्थान के चौधरी एवं कानूनगो जोहरीलाल के अनुसार मडावर सम्बत् ११७१ अथवा १११४ ई० मे निर्जन स्थान था। जब उसके पूर्वज द्वारकादास जो अग्रवाल बनिया थे करतारमल के साथ मेरठ जिले के मोरारो स्थान से वहाँ आए थे एवम् प्राचीन टीले पर बस गये थे। मडावर के आधुनिक नगर मे ७००० निवासी हैं तथा यह नगर ¾ मील से अधिक लम्बा एवम् आधा मील चौडा है। परन्तु प्राचीन टीला जो प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है, आधे मील के वर्ग से अधिक नही है। इसकी सामान्य ऊंचाई शेष नगर के स्तर से १० फुट ऊंची है और विशाल ईंटें यहाँ प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हैं जो प्राचीनता का निश्चित चिह्न है। टीले के मध्य मे ३०० फुट वर्गाकार एक ध्वस्त दुर्ग था, जिसकी ऊँचाई शेष नगर के स्तर से ६ से ७ फुट थी। उत्तर पूर्व मे दुर्ग से लगभग एक मील की दूरी तक एक अन्य टीले पर मडिया नामक गाँव है तथा दोनो के बीच कूण्डताल नामक एक विशाल सरोवर है जो छोटे-छोटे अनेक टीलो से घिरा हुआ है। इन टीलों को भवनो के अवशेष कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल रूप से यह दोनो स्थान लगभग १½ मील लम्बे, १ मील चौड़े अथवा परिधि मे ३½ मील बडे एक विशाल नगर के भाग थे। यह आकड़े ह्वेनसांग द्वारा दिए गये २० ली अथवा ३⅓ मील के माप से मिलते हैं।

यह सम्भव प्रतीत होता है कि मडावर को-जनता-जैसा कि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने बताया है मैगस्थनीज के मथाए लोग हो सकते हैं जो इरीनीसिस के तट पर निवास करते थे। यदि ऐसा है तो वह नदी मालनी रही होगी। यह सत्य है कि यह केवल एक छोटी नदी है परन्तु मालनी के तट पर ही एक पवित्र गुफा में शकुन्तला का पालन-पोषण हुआ था और इसी नदी के साथ-साथ वह हस्तिनापुर में

दुष्म (दुष्यन्त) के दरबार में गई थी। जब तक जल मे कमल के फूल उतरेंगे तथा जब-जब चकवा नदी के तट पर अपनी प्रियत्तमा को पुकारेगा, छोटी मालनी कालीदास के काव्य में जीवित रहेगी।

ह्वेनसांग के अनुसार मडीपुर राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। परन्तु जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ इस अनुमान मे पड़ोस के गोविस्ना तथा अहिच्छत्र राज्य सम्मिलित रहे होगे क्योकि यह दोनो भी रोहेल खण्ड मे हैं तथा इतनी कम दूरी पर हैं कि गङ्गा तथा रामगङ्गा के मध्यवर्ती क्षेत्र तक सीमित रहने से अकेला मडीपुर एक अति छोटा जिला रहा होगा क्योकि इस क्षेत्र की परिधि २५० मील से अधिक नही थी। परन्तु अभी प्रस्तावित विस्तृत सीमाओ जिनमे हरिद्वार से कन्नौज तक गङ्गा के पूर्व एव खैरीगढ़ के समीप घावरा के तट तक सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित है—के अनुसार भी इस स्थान की परिधि ६५० से ७०० मील से अधिक नही हो सकती। अब भी यह परिधि अधिक छोटी है परन्तु उत्तर में पर्वतीय सीमा मे मानचित्र के सीधे माप एव वास्तविक मार्ग दूरी मे भिन्नता का ध्यान मे रखते हुए मेरा विचार है कि वास्तविक परिधि ८५० मील से कम नही हो सकती। मडावर का राजा एक स्यू-तो-लो अथवा शूद्र था जो देवो की पूजा करता था तथा बौद्ध धर्म के प्रति उसकी रुचि नही थी चूंकि गोविस्ना तथा अहिच्छत्र शासक विहीन थे। अतः मेरा अनुमान है कि वह मडावर के आश्रित थे तथा ह्वेनसांग द्वारा लिखित सीमाओ की परिधि सम्पूर्ण राज्य की राजनैतिक सीमायें थी न कि जिला विशेष की।

मायापुर तथा हरिद्वार

ह्वेनसाग ने मो-यू-लो अथवा मयूर नगर को मडावर की उत्तर पश्चिमी सीमा पर एवं गङ्गा के पूर्वी तट पर अवस्थित बताया है। नगर से कुछ दूरी पर 'गङ्गा द्वार' नामक एक महान मन्दिर था जिसके भीतर एक सरोवर था जिसकी जलपूर्ति पवित्र नदी से एक नहर द्वारा होती थी। गङ्गा द्वार जो हरिद्वार का प्राचीन नाम था—की समीपता से प्रतीत है कि मयूर, गङ्गा नहर के सिरे पर मायापुर का तत्कालीन ध्वस्त स्थान रहा होगा। परन्तु अब यह दोनों स्थान ह्वेनसांग द्वारा कथित पूर्वी तट के स्थान पर पश्चिमी तट पर अवस्थित हैं। उसका यह उल्लेख है कि यह स्थान मडावर की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अवस्थित थे, उपर्युक्त स्थिति की ओर संकेत करता प्रतीत होता है क्योंकि यदि वह गङ्गा के पश्चिमी तट पर रहे होते तो उचित रूप से उन्हें स्रुघन की उत्तर-पूर्वी सीमा पर दिखाया जाता है। मैंने सावधानी के साथ इस क्षेत्र का निरीक्षण किया था और मैं समझता हूँ कि किसी पूर्ववर्ती समय में गङ्गा मायापुर तथा कखल से ज्वालापुर तक पश्चिम दिशा में प्रवाहित रही होगी। फिर भी गङ्गा द्वार मन्दिर एवं पहाड़ियों के मध्यवर्ती क्षेत्र में नदी के पुराने मार्ग का कोई चिह्न नहीं मिलता परन्तु चूंकि इस स्थान पर अब हरिद्वार नगर के भवन बन गये हैं अतः यह

प्राय: सम्भव है कि किसी समय यहाँ नदी रही हो जिसे धीरे-धीरे भर दिया गया हो एवम् जहाँ भवन बना दिये गये हो। अतः कोई ऐसी भौतिक बाधा नहीं थी जो नदी को पश्चिमी दिशा मे प्रवाहित होने मे रोक सकती थी अतः हमें या तो ह्वेनसांग के कथन को स्वीकार कर लेना चाहिये अथवा इस विकल्प को स्वीकार कर लेना चाहिये कि ह्वेनसाग ने मयूर तथा गङ्गाद्वार को गङ्गा के पूर्व दिखाने मे त्रुटि की थी।

शिव एवम् विष्णु के पुजारियो मे इस बात पर मत भेद है कि कौन से देवता से गङ्गा की उत्पत्ति हुई थी। विष्णु पुरान मे कहा गया है कि गङ्गा की उत्पत्ति "विष्णु के वाम पद की ऐडो के बडे नाखुन मे हुई थी" तथा वैष्णव अपने विश्वास की सत्यता के असदिग्ध साक्षी के रूप मे गर्व-पूर्वक हरि-की-चरण अथवा हीरा की पैरी वर्तमान हरि की पैडी की ओर सकेत करते है। दूसरी ओर शिव के अनुयाइयों का कथन है कि इस स्थान का वास्तविक नाम हर द्वार है हरि द्वार नही। विष्णु पुराण मे यह स्वीकार किया गया है कि अलक नन्दा (अथवा गङ्गा की पूर्वी शाखा) "शिव के जटा से निकली थी।" परन्तु उपर्युक्त विचार धारा के होते हुए भी मैं विश्वास करने का उच्छुक हूँ कि हरि द्वार अथवा हर द्वार आधुनिक नाम है तथा गङ्गा द्वार मन्दिर के समीप पुराने नगर का नाम मायापुर था। ह्वेनसांग ने इसे वस्तुतः मो-यू-लो अथवा मयूर कहा है परन्तु हरिद्वार तथा कनखल के मध्य प्राचीन ध्वस्त नगर को अब भी मायापुर कहा जाता है तथा जन साधारण नाम की मूलोत्पत्ति के कारण स्वरूप माया देवी के पुराने मन्दिर की ओर सकेत करते हैं। फिर भी यह प्राय: सम्भव है कि नगर को मयूरपुर भी कहा जाता हो क्योकि आस-पास के वनो मे सहस्रो मयूर हैं जिनकी कर्कश शब्द ध्वनि मैं प्रातः एवम् सायङ्काल दोनो समय सुना करता हूँ।

ह्वेनसांग ने नगर को परिधि मे २० ली अथवा ३½ मील एवम् अधिक जन-पूर्ण कहा है। यह विवरण कुछ लोगो द्वारा मुझे दिखाए गए मायापुर के प्राचीन नगर के विस्तार से प्रायः समीपता रखता है। प्राचीन नगर के चिह्न एक छोटी नदी से लेकर—जो सर्वनाथ के आधुनिक मन्दिर के समीप गङ्गा से मिलती है—नहर के किनारे राजा बेन के प्राचीन दुर्ग तक ७५०० फुट की दूरी मे विस्तृत है। इसकी चौड़ाई अस-मान है परन्तु दक्षिणी छोर पर इसकी चौडाई ३००० फुट से अधिक नही हो सकती तथा उत्तरी छोर पर जहाँ शिवालिका पहाडियाँ नदी के समीप आ जाती है यह चौडाई सकुचित होकर १००० फुट रह जाती है। इन आंकडो से इसकी परिधि १६०० फुट अथवा ३½ मील से अधिक हो जाती है। इन सीमाओ के भीतर राजा दुर्ग मे सम्बन्धित ७५० फुट वर्गाकार एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहर एवम् टूटी हुई ईटों से ढंके हुए अनेक उन्नत टीले हैं जिनमे सबमे बडा एवम् सर्वाधिक उत्कृष्ट टीला नहर पर बने पुल के समीप है। यहाँ नारायण शिला, माया देवी एवम् भैरव के तीन प्राचीन मन्दिर भी हैं। सर्वनाथ मन्दिर से २००० फुट उत्तर-पूर्व मे होने के कारण पैरी (पौड़ी) नामक

प्रसिद्ध घाट उपर्युक्त सीमाओं से बाहर है। इस स्थान की प्राचीनता विशाल ईंटों की विस्तृत नीव जो प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है एवम् मन्दिर के समीप प्राचीन वास्तु-कला के टुकड़ो के कारण असदिग्ध है वरन् सुघ्न के समान प्राचीन मुद्राओ की विभिन्नता के कारण भी इस स्थान को प्राचीनता मे सन्देह नही किया जा सकता। यह मुद्राये यहाँ प्रति वर्ष प्राप्त होती हैं।

हरि द्वार अथवा "विष्णु द्वार" का नाम प्रायः आधुनिक प्रतीत होता है क्योकि अबु-रिहान एवम् रशीदुउद्दीन दोनो ने केवल गङ्गा द्वार का उल्लेख किया है। कालीदास ने मेघदूत मे हरिद्वार का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उसने कनखल का उल्लेख किया है परन्तु चूंकि उसके समकालीन लेखक अमरसिंह ने गङ्गा के पर्यायवाची नाम के रूप मे विष्णु पदी का उल्लेख किया है। अत: यह निश्चित है कि विष्णु के पांव से निकलने की कथा पाँचवी शताब्दी पुरानी है। फिर भी मेरा अनुमान है कि अबु-रिहान के समय तक विष्णुपद के किसी मन्दिर का निर्माण नहीं हुआ था। इसका प्रथम उल्लेख जिसका मुझे ज्ञान है— तैमूर के इतिहासकार शरीफ उद्दीन ने किया था जिसका कथन है कि गङ्गा नदी चौ-पीली दर्रे से होकर पहाडियों से निकलती है। मेरा विचार है कि यह कोह-पैरी अथवा विष्णु के पाँव की पहाड़ी है क्योंकि गङ्गा द्वार मन्दिर के स्थान पर स्नान करने के घाट को पैरी घाट कहा जाता है एवं समीपस्थ पहाड़ो को पैरी पहाड कहा जाता है। अकबर के समय में हरिद्वार का नाम सर्व ज्ञात था क्योंकि अबुल फजल ने "गङ्गा नदी पर माया हरिद्वार" का १८ कोस की लम्बाई तक पवित्र स्थान के रूप में है, उल्लेख किया है। अगले शासन काल में टाम कोरियट ने इस स्थान की यात्रा की थी जिसने चेपलेन टेरी को सूचित किया था कि "सिव की राजधानी हरिद्वार में गङ्गा नदी विशाल चट्टानों से होकर बहती है एव इसकी धारा तीव्र है।" १७९६ ई० में हार्ड विकी इस स्थान पर गया था जिसने इसे पहाड़ियों के अधोभाग पर अवस्थित एक छोटा स्थान कहा है। १८०८ ई० मे रैपर ने एक अत्याधिक अमहत्वपूर्ण स्थान के रूप में इसका उल्लेख किया है जिसमे लगभग १५ फुट चौड़ी एवं १½ फर्लाङ्ग लम्बी केवल एक गली है। अब यह काफी बड़ी है और लम्बाई में ¾ मील है परन्तु अभी भी केवल एक गली है।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि नदी को प-शुई भी कहा जाता था। जिसे एम० जुलीन ने महा-भद्रा के अनुरूप स्वीकार किया है जो गङ्गा के अनेक सर्व ज्ञात नामों मे एक है। उसने इस बात का उल्लेख भी किया है कि इसके जल में स्नान करने से सभी पाप धुल जाते हैं एवम् यदि मृतकों को नदी मे प्रवाह किया जाए तो मृतात्मा अपने पाप कर्मों के कारण निम्न योनि मे पुनर्जन्म के दण्ड से बच जाती है। मैं इसे सुभद्रा पढ़ना चाहूँगा जिसका अर्थ महा भद्रा के समान है क्योंकि टेसियस ने महान भारतीय

नदी का इसी रूप मे उल्लेख किया है। प्लिनी ने टेसियस को उदधृत करते हुए नदी को हाईपोबारस कहा है। दमिश्क के निकोलस ने लगभग इसी प्रकार के शब्द का उल्लेख किया है। अतः मेरा अनुमान है कि टेसियस द्वारा प्राप्त मूल नाम सम्भवतः सुभद्रा था।

ब्रह्मपुर

मडावर छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग ३०० ली अथवा ५० मील की य'त्रोपरान्त पो-लो-कि-मो-पू लो गया था जिसे एम० जुलीन ने उचित रूप से ब्रह्मपुर कहा है। अन्य स्थान पर पो लो ही मो लो लिखा गया है जिस मे सम्भवतः भूल के कारण 'पू' छूट गया है। उत्तरी दिकांश निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि इस दिकाश से तीर्थ यात्री गङ्गा पार जाकर पुनः स्रुघन में वापस पहुँच जाता। अतः हमें इसके स्थान पर उत्तर-पूर्व पढ़ना चाहिये क्योंकि गढ़वाल एवं कुमायूँ के जिले इसी दिशा मे हैं जो किसी समय कटयूरी राज घराने के प्रसिद्ध राज्य के भाग थे। तीर्थ यात्री इसी प्रदेश का उल्लेख करना चाहता था। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि यहाँ ताँबा पाया जाता था जिससे गढ़वाल जिले को धनपुर एवम् पोखरा की सर्व प्रसिद्ध तांबे के खानो का संकेत मिलता है जहाँ प्राचीन समय से ताँबा निकाला जाता है। अब, कटयूरी राजाओ की राजधानी, मडावर से लगभग ८० मील सोधे राम गङ्गा नदी पर लखनपुर वैराट पट्टन मे थी। यदि उपरोक्त माप को मडावर की उत्तर-पूर्वी सीमा पर पहाड़ियो के अधोभाग मे अवस्थित कोट द्वार से लिया जाये तो यह दूरी ह्वेनसाग द्वारा कथित ५० मील की दूरी से मिल जायेगी। फिर भी कथित दिकाश एव दूरी मे त्रुटि का सम्भावित उत्तर के रूप मे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दूरी गोविसना से सम्बन्धित थी जहाँ ह्वेनसाग ब्रह्मपुर की यात्रा के पश्चात् गया था एवम् जो बेराट के उत्तर में ठीक ५० मील की दूरी पर अवस्थित है।

देश के इतिहासानुसार प्राचीन राजधानी थी वैराट पट्टन अथवा लखनपुर थी। क्योंकि कुमायूँ का सोमवशी परिवार एवम् गढवाल का सूर्य-वंशी परिवार का राज्य सम्वत् ७४२ तथा ७४९ मे आरम्भ हुआ था और विक्रम सम्वत् स्वीकार कर लिये जाने की दशा मे भी उपरोक्त तिथियाँ ह्वेनसाग के पश्चात्वर्ती समय से सम्बन्ध रखती है। अतः मेरा अनुमान है कि ब्रह्मपुर, केवल वैराट का दूसरा नाम रहा होगा क्योंकि इस प्रान्त की अन्य सभी राजधानियां अपेक्षाकृत नवीन है। अलकानन्दा नदी पर श्री नगर की स्थापना १४१५ सम्वत्, अथवा १३५८ ई० मे गढ़वाल के राजा अजयपाल ने करवाई थी। साथ ही साथ यह नगर मडावर एवम् वैराट पट्टन से लगभग समान दूरी पर है जब कि गढवाल की अधिक पुरानी राजधानी अधिक दूर है एवम् १२१६ सम्वत् अथवा ११५९ ई० मे इसे राजधानी बनाया गया था। यहाँ की जलवायु कुछ

ठण्डी बताई जाती है और यह बैराट की स्थिति से मिलती है जो समुद्र स्तर से केवल ३३३६ फुट ऊँची है।

ह्वेनसाग ने ब्रह्मपुर राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील बताई है। अतः इसमे अलकनन्दा एवम् करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वती प्रदेश जो अब ब्रिटिश गढ़वाल एवम् कुमायूं के नाम से प्रसिद्ध है—सम्मिलित रहा होगा क्योंकि गोरखो की विजय से पूर्व अन्तिम जिला करनाली नदी तक विस्तृत था। मानचित्र पर इस क्षेत्र की सीमा ५०० से ६०० मील अथवा चीनी तीर्थ-यात्री के अनुमान के अधिक समीप है।

गोविस्ना, अथवा काशीपुर

ह्वेनसाग ने मडावर के दक्षिण-पूर्व मे, ४०० ली अथवा ६७ मील की दूरी पर क्यू-पी शवागना राज्य का उल्लेख किया है जिसे एम० जुलीन ने गोविस्ना कहा है। राजधानी की परिधि १५ ली अथवा २½ मील थी। यह उन्नत स्थान दुर्गम चढाई पर था और तालाबों एवम् सरोवरो से घिरा हुआ था। मडावर से कथित दिकाश एवम् दूरी के अनुसार हमे गोविस्ना को मुरादाबाद के उत्तर मे किसी स्थान पर देखना चाहिए। इस दिशा मे प्राचीनकाल से सम्बन्धित एक मात्र स्थान उज्जैन गाँव के समीप एक पुराना दुर्ग है जो काशीपुर के पूर्व में केवल एक मील की दूरी पर है। मैंने जिस मार्ग का अनुसरण किया था उसके अनुसार कुल दूरी ४४ कोस अथवा ६० मील है। कोस एवम् मील की अपेक्षाकृत दर मैंने बरेली एवम् मुरादाबाद के डाकघरों के मध्य ५६ मील ी कथित दूरी से प्राप्त की है जिसे स्थानीय जनता सदा ४० कोस कहा करती है। काशीपुर का वास्तविक दिकांश दक्षिण पूर्व के स्थान पर पूर्व दक्षिण पूर्व है परन्तु भिन्नता अधिक नही है और चूंकि अहिछत्र के अगामी मार्ग से काशीपुर की स्थिति का स्पष्ट संकेत मिलता है अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि उज्जैन गाँव के समीप प्राचीन दुर्ग गोविस्ना के प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ ह्वेनसांग गया था।

विशप हेबर ने काशीपुर को "हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान कहा है जिसकी स्थापना ५००० वर्ष पूर्व काशी नामक देवता ने करवाई थी।" परन्तु विशप को सूचना देने वालो ने पूर्ण भ्रम मे रखा था क्योंकि यह सर्व ज्ञात है कि यह नगर आधुनिक है। जिसका स्थापना १७१८ ईसवी मे कुमायूं मे चम्पावत के राजा देवी चन्द के एक अनुयायी काशीनाथ ने करवाई थी। प्राचीन दुर्ग को अब उज्जैन कहा जाता है। परन्तु चूंकि यह समीपस्थ गाँव का नाम है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि वास्तविक नाम लुप्त हो चुका है। यह स्थान काशीपुर के बसने से पूर्व अनेक शताब्दियों तक निर्जन रहा है। परन्तु चूंकि तीर्थ यात्री निरन्तर द्रोण सागर के पवित्र सरोवर पर जाते रहे हैं अतः मेरा अनुमान है कि सरोवर के नाम ने धीरे-धीरे दुर्ग के नाम का स्थान ले

लिया था। आधुनिक समय में भी द्रोण सागर का नाम उतना ही प्रचलित है जितना कि काशीपुर का।

उज्जैन का प्राचीन दुर्ग अपने आकार मे विशेष विशेषता रखता है जिसकी तुलना गेटार मे की जा सकती है। पूर्व से पश्चिम इसकी लम्बाई ३००० फुट एवम् इसकी चौडाई १५०० फुट है। इसकी कुछ परिधि ६००० फुट अथवा २ मील से कुछ कम है। ह्वेनसांग ने गोविस्ना को परिधि को १२००० फुट अथवा लगभग २½ मोल बताया है। परन्तु अपने आकडो म उसने दक्षिण दिशा मे खण्डहरो के लम्बे टीने को सम्मिलित कर लिया होगा जो प्रत्यक्ष रूप से प्राचीन उपनगर के अवशेष है। इस टीले को प्राचीन नगर का असदिग्ध भाग स्वीकार कर लेने से खण्डहरो की परिधि ११००० फुट अथवा ह्वेनसाग द्वारा बताई गई परिधि के समीप हो जाती है। अनेक कुछ सरोवर एवम् मछलियो के तालाब इस स्थान को घेरे हुए है। यहाँ के वृक्ष जल के ऊँचे स्तर के कारण विशेष रूप से अच्छे है क्योकि यहाँ जल केवल पाच अथवा छः फुट की गहराई पर निकल आता है। इसी कारण से यहाँ अनेक सरोवर हैं जो सदा जल पूर्ण रहते हैं। इसमें सबसे बडा सरोवर द्रोण सागर है। कहा जाता है कि दुर्ग एवम् सरोवर की स्थापना पाँच पाण्डवो ने अपने गुरु द्रोण के लिए करवाई थी। यह सरोवर केवल ६०० फुट चौडा है परन्तु इसे अत्यधिक पवित्र समझा जाता है और गङ्गा के उद्गम स्थान की ओर जाते हुए तीर्थयात्री प्रायः इस स्थान पर आते है। इसके ऊँचे तट अपेक्षाकृत आधुनिक समय के सती स्मारको से ढँके हुए हैं। दुर्ग की दीवारे बडी-बड़ी ईंटों से बनाई गई हैं जो १५ × २½ इञ्च है। एवम् जो प्राचीनता का निश्चित चिह्न है। खेतों से ऊपर दीवारो की सामान्य ऊँचाई ३० फुट है परन्तु सम्पूर्ण स्थान पूर्णतः जर्जर अवस्था मे है एवम् घने जङ्गलो से ढँका हुआ है। पूर्व को छोड़ अन्य सभी ओर छिछली खाईयाँ हैं। इसका भीतरी भाग असमान हैं परन्तु अधिकाश स्थान आस पास के प्रदेश से २० फुट ऊँचे हैं। मिट्टी की प्राचीरों मे दो निचले मार्ग हैं, एक उत्तर पश्चिम की ओर, दूसरा पश्चिम की ओर। जो अब जङ्गल के प्रवेश द्वार का काम करते हैं। जन साधारण के अनुसार यह दुर्ग के पुराने प्रवेश द्वार थे।

गोविस्ना के जिले की परिधि २००० लो अथवा ३३३ मील थी। किसी राजा का उल्लेख नहीं किया है और जैसा कि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ कि यह प्रदेश सम्भवतः मडावर के राजा के अधीन था। यह स्थान उत्तर मे ब्रह्मपुर, पश्चिम में मडावर तथा दक्षिण एवम् पूर्व में अहिछत्र की सीमाओं से घिरा हुआ था। अतः यह काशीपुर, रामपुर एवम् पोलीभीत के आधुनिक जिलों के समान रहा होगा जो पश्चिम में राम गङ्गा से लेकर, पूर्व मे शारदा अथवा घाघरा तक एवम् दक्षिण में बरेली की दिशा मे फैले हुए हैं। इन सीमाओ के भीतर जिले की परिधि सीधे माप के अनुसार लगभग २०० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ३०० मील से अधिक रही होगी।

अहिछत्र

गोविस्ना से ह्वेनसांग ४०० लो अथवा ६६ मील दक्षिण पूर्व मे अहि-चो-ता-लो अथवा अहिछत्र तक गया था। किसी समय का यह प्रसिद्ध स्थान आज भी अपने प्राचीन नाम को अहिछत्र के रूप में सुरक्षित रखे हुए है। यद्यपि यह अनेक शताब्दियों से निर्जन रहा है। इसका इतिहास १४३० ई० पू० वर्ष पुराना है जिस समय यह उत्तरी पांचाल की राजधानी थो। इसका नाम आहीक्षेत्र एवम् अहिनेत्र लिखा गया है परन्तु सोते समय अदी राजा के सिर पर नाग द्वारा छत्र बनाये जाने की स्थानीय कथा से पता चलता है कि अन्तिम नाम शुद्ध है। कहा जाता है कि इस प्राचीन दुर्ग की स्थापना एक अहीर राजा अदी-ने करवाई थी। द्रोण ने नाग द्वारा अपना फन फैला कर सोये हुए अदी की रक्षा करते देख, उसके राजा होने की भविष्य वाणी की थी। टालमी ने लगभग इसी नाम के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है जिससे सिद्ध होता है कि अदी के नाम से सम्बन्धित कथा कम से कम ईसा काल के प्रारम्भ से सम्बन्ध रखती है। दुर्ग को अदीकोट भी कहा जाता है परन्तु अधिक प्रचलित नाम अहिछत्र है।

महाभारत के अनुसार पांचाल का विशाल राज्य हिमालय पर्वतो से चम्बल नदी तक विस्तृत था। उत्तरी पांचाल अथवा रोहेलखण्ड की राजधानी अही छत्र थी तथा दक्षिण पांचाल अथवा मध्य गङ्गा दोआब की राजधानी, बदायूँ एवम् फर्रुखाबाद के मध्य पुरानी गङ्गा पर अवस्थित काम्पिल्या, अब कम्पिल, थी। महाभारत के युद्ध से कुछ समय पूर्व अथवा लगभग १४३० ई० पू० मे पांचाल के द्रुपद नामक राजा पर पाण्डवो के गुरू द्रोण ने विजय प्राप्त की थी। द्रोण ने उत्तरी पांचाल पर स्वय अधिकार कर लिया परन्तु राज्य का दक्षिणी भाग द्रुपद को वापस कर दिया। उपर्युक्त कथानुसार अहिछत्र का नाम एवम् अदि राजा एवम् सर्प की कथा बौद्ध धर्म के उत्थान से कई शताब्दी पुरानी है।

फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि अपने महान् नेता के सम्मान हेतु बौद्ध धर्मावलम्बियों ने उपर्युक्त कथा को ग्रहण कर लिया एवम् उसमें परिवर्तन किया क्योंकि ह्वेनसांग ने लिखा है कि नगर के बाहर 'नाग हृद' अथवा " र्प सरोवर" था जिसके समीप बुद्ध न सात दिवस तक नाग राज के पक्ष मे प्रचार किया था एवम् इस स्थान पर सम्राट अशोक ने स्तूप बनवाया था। मेरा अनुमान है कि बौद्ध कथा में नाग राज को फन फैला कर बुद्ध पर साया करते दिखाया गया है। मेरा यह विचार भो है कि उपर्युक्त घटना के स्थान पर बनाये गये स्तूप का नाम अहिछत्र "सर्प छत्र" रखा गया होगा। बौद्ध गया में नाग राजा मुचालिन्द के सम्बन्ध मे इसी प्रकार की कथा का उल्लेख किया जाता है। जिसने अपने फैले हुए फन से मार नाम के कुटिल राक्षस से बुद्ध की रक्षा की थी।

ह्वेनसांग द्वारा अहिछत्र का विवरण दुर्भाग्यवश अपर्याप्त है अन्यथा अनेक वर्तमान खण्डहरों को प्रारम्भिक बौद्ध स्थानों के अनुरूप बताया जा सकता था। राजधानी की परिधि १७ अथवा १८ ली अथवा ३ मील से कुछ अधिक थी एवम् प्राकृतिक बाधाओ के कारण सुरक्षित थी। यहाँ १००० भिक्षुओं सहित १२ मठ थे एवम् ब्राह्मणो के ६ मन्दिर थे जहाँ ईश्वर देव (शिव) के उपासको की सख्या ३०० थी। सभी उपासक शरीर पर भभूत लगाये रहते थे। नगर के बाहर सर्प सरोवर के समीप स्तूप का उल्लेख किया जा चुका है। इसके समीप ही उन स्थानो पर चार अन्य स्तूप है जहाँ पिछले चार बुद्ध बैठे थे अथवा चले थे। अहिछत्र के ध्वस्त दुर्ग आकार एवम् स्थिति दोनो मे ह्वेनसांग द्वारा प्राचीन अहिछत्र के वर्णन से इतनी समानता रखता है कि दोनो की अनुरूपता मे किसी प्रकार का सन्देह नही रहता। वर्तमान खडी दीवारों की परिधि १६.४०० फुट अथवा ३½ मील से अधिक है। इसके आकार को असमान त्रिभुज कहा जा सकता है जिसका पश्चिमी किनारा ५६०० लम्बा, उत्तरी किनारा ६४०० लम्बा एवम् सबसे बड़ा दक्षिण पूर्वी किनारा ७४०० फुट लम्बा है। यह दुर्ग राम गङ्गा एवम् गांगन नदियो के मध्य बना हुआ है जिन्हे पार करना कठिन है। प्रथम नदी चौडे रेतीले पार के कारण एवम् अन्तिम नदी विस्तृत खाइयो के कारण दुर्गम है। यह स्थान उत्तर एवम् पूर्व दोनो ओर से पीरिया नाला के कारण दुर्ग है। टूटे-फूटे अति ढलवा तटो एवम् अनेक गहरे गड्ढो के कारण गाडियो के लिए नदी पार करना प्रायः असभव है। इसी कारण बरेली तक बैल गाडियों का मार्ग २३ मील से कम नही है। जबकि पूर्व दिशा मे सीधी रेखा से यह दूरी केवल १८ मील है। वस्तुतः नदी पार करने का एक मात्र मार्ग उत्तर-पश्चिम मे, कटेहरिया राजपूतो की प्राचीन राजधानी लखनोर की ओर से है। अतः "प्राकृतिक बाधाओ" द्वारा सुरक्षित स्थान के रूप मे ह्वेनसांग का वर्णन यथार्थ है। अहिछत्र, एओनला के उत्तर मे केवल सात मील की दूरी पर है परन्तु मार्ग का अन्तिम अर्द्ध भाग गानघन नदी की खाइयो के कारण कठिन बन गया है। एओनला के उत्तर जङ्गलों में इस स्थान पर कटेहरिया राजपूतो ने फिरोज तुगलक के नेतृत्व मे मुसलमानो का सामना किया था।

अहिछत्र का सर्वप्रथम यात्री सर्वेक्षक कैप्टन होडसन था जिसने "अनेक मीलों के घेरे में एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहरों" के रूप मे इस स्थान का उल्लेख किया है। "जिसमे सम्भवतः ३४ प्राचीरे थी एवम् आस-पास के क्षेत्र में "पांडव दुर्ग" "के नाम से ज्ञात है।" मेरे सर्वेक्षणानुसार इस दुर्ग की केवल ३२ प्राचीरे हैं। परन्तु यह प्रायः सम्भव है कि एक अथवा दो प्राचीरो की ओर मेरा ध्यान न गया हो क्योकि मैंने ऐसे अनेक स्थान देखे थे जिनमें कांटेदार जङ्गलो के कारण प्रवेश करना असम्भव था। यह प्राचीरें प्रायः २८ से ३० फुट ऊँची है। केवल पश्चिमी प्राचीरें ३५ फुट ऊँची हैं। दक्षिण पश्चिमी कोण के समीप एक प्राचीर वाह्य मार्ग से ४७ फुट ऊँची है। भीतरी

समूह की सामान्य ऊँचाई १५ से २० फुट है। वर्तमान प्राचीरों में अधिकांश प्राचीन नहीं है क्योंकि लगभग २०० वर्ष पूर्व अली मुहम्मद खाँ ने दिल्ली के सुल्तान द्वारा पीछे ढकेले जाने की सम्भावना से अपनी सुरक्षा हेतु इस दुर्ग को जीवित करने का प्रयत्न किया था। कहा जाता है कि नवीन दीवारें १½ गज मोटी थीं जो दक्षिण पूर्वी दीवार के मेरे माप से मिलती है क्योंकि यह दीवारे ऊपर की ओर २ फुट ६ इञ्च से लेकर ३ फुट, ३ इञ्च मोटी है। जन साधारण के अनुसार अली मुहम्मद ने अपने प्रयत्न मे १ करोड रुपये व्यय किया था परन्तु अधिक व्यय के कारण अन्त में उसे अपना प्रयत्न त्याग देने पर बाध्य होना पडा। मेरा अनुमान है कि उसने मिट्टी की दीवारो एवम् वाह्य दीवारो की मरम्मत एवम् पुर्ननिर्माण पर लगभग १ लाख रुपये व्यय किया होगा। दक्षिण पूर्व मे एक मेहराबदार द्वार है जो मुसलमानो द्वारा बनवाया गया था परन्तु चूँकि उन्होंने नई ईटो का निर्माण नही कराया था अतः निर्माण कार्य पर व्यय केवल श्रमिक के वेतन तक सीमित रहा होगा। मिट्टी की दीवारें कुछ स्थानो पर १८ फुट मोटी हैं जबकि अन्य स्थानों पर १४ से १५ फुट मोटी हैं।

अहिछत्र जिले की परिधि लगभग ३००० ली अथवा ५०० मील थी। इन विस्तृत आकड़ों के कारण मेरा विश्वास है कि इसमे रोहेलखण्ड का उत्तरी अर्द्ध भाग अर्थात् पश्चिम मे पीलीभीत से लेकर पूर्व मे घाघर के समीप खेराबाद तक, उत्तरी पहाडियों एवम् गङ्गा का मध्यवर्ती क्षेत्र सम्मिलित था। सीधे माप से इस क्षेत्र की सीमा ४५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ५० मील है।

पिलोशना

अहिछत्र से ह्वेनसांग दक्षिण दिशा मे २६० से २७० ली अथवा २३ से २५ मील दूर गङ्गा तक गया था। उसने नदी को पार किया एवम् दक्षिण पश्चिम की ओर मुडकर पीलो-शान-ना राज्य मे पहुँच गया। दक्षिण दिशा को यात्रा उसे एओनला एवम् बुदायूँ से होकर बूढ़ो गङ्गा तक ले जाती है जो सहावर के समीप एवम् सोरो से कुछ मील नीचे है। दोनो स्थान ४०० वर्ष पूर्व तक गङ्गा नदी पर अवस्थित थे। चूँकि उसका पश्चातवर्ती मार्ग दक्षिण पश्चिम की ओर बताया जाता है अतः मेरा विश्वास है कि उसने सहावर के समीप गङ्गा नदी को पार किया होगा जो सीधी रेखा पर अहिछत्र से ४२ मील दूर है। अपनी प्रारम्भिक खोज के आधार पर मैं विश्वास करने लगा था कि इस क्षेत्र मे सोरों ही एक मात्र प्राचीन स्थान था और चूंकि ह्वेनसांग ने दक्षिण-पश्चिम की दूरी का उल्लेख नहीं किया है अतः मेरा निष्कर्ष था कि सोरो ही वह स्थान था जिसे ह्वेनसांग ने पी-लो-शान-ना का नाम दिया था। तदनुसार मैं सोरों गया जो निश्चित रूप से अति प्राचीन स्थान है परन्तु मेरा विचार है कि यह तीर्थ यात्री की यात्रा का स्थान नहीं हो सकता। फिर भी अत्रजी खेड़ा के विशाल ध्वस्त

टीले को चीनी तीर्थ यात्री के पी-लो-शान-ना के अनुरूप स्वीकार किये जाने के उचित दावे पर विचार करने से पूर्व मैं सोरों का उल्लेख करूंगा।

सोरों बरेली तथा मथुरा के मध्य मुख्य मार्ग पर गङ्गा नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर अवस्थित है। मूल रूप में इस स्थान को उकल क्षेत्र कहा जाता था परन्तु विष्णु के वराह अवतार द्वारा हिरण्यकश्यप राक्षस के बध के पश्चात इस नाम को बदल कर सुकर क्षेत्र अर्थात् "अच्छे कार्य का क्षेत्र" कर दिया गया। किला अथवा दुर्ग नामक एक ध्वस्त टीला प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है जो उत्तर से दक्षिण एक चौथाई मील लम्बा एवम् इससे कुछ कम चौडा है। यह टीला पुरानी गङ्गा के ऊँचे तट पर अवस्थित है जो २०० वर्ष पूर्व तक इसके ठीक नीचे प्रवाहित थी। आधुनिक नगर टीले के दक्षिणी एवम् अधोभाग पर अवस्थित है और सम्भवतः यहाँ लगभग ५००० निवासी हैं। प्राचीन टीले पर कोई निवास स्थान नहीं है। यहाँ केवल सीता राम जी का मन्दिर एवम् शेख जमाल का मकबरा है। परन्तु यह टीला विशाल आकार की ईंटों के टुकडों से ढँका हुआ है एवम् सभी ओर दीवारों की नीवों के चिह्न देखे जा सकते हैं। कहा जाता है कि यह खण्डहर कई शताब्दियों पूर्व सोरों के राजा सोम दत्त द्वारा निर्मित दुर्ग के खण्डहर हैं। परन्तु इस स्थान पर लोग काफी समय पूर्व बस गये थे और इस स्थान को काल्पनिक राजा वीना चक्रवर्ती से सम्बन्धित बताया जाता है जिसे उत्तरी बिहार, अवध एवम् रोहेलखण्ड की सभी कथाओं मे उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हैं।

अन्त्रजीखेड़ा का विशाल ध्वस्त टीला करसाना के चार मील दक्षिण में एवं जरनैली सड़क पर एटा के आठ मील उत्तर मे काली नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर अवस्थित है। यह सोरों के १५ मील दक्षिण मे एवम् सनकिसा के उत्तर-पश्चिम मे सीधी रेखा पर ४३ मील है परन्तु मार्ग दूरी ४८ अथवा ५० मील से कम नहीं है। आईन-ए-अकबरी मे अन्त्रजी का उल्लेख, सिकन्दरपुर अत्रेजी नाम के अन्तर्गत कन्नौज के एक परगने के रूप मे किया गया है। सिकन्दरपुर— जिसे अब सिकन्द्राबाद कहा जाता है—अन्त्रजी के विपरीत काली नदी के बायें तट पर बसा हुआ है। इससे पता चलता है कि अन्त्रजी, अकबर के समय में बसा हुआ था। परगना को बाद में करसाना कहा जाने लगा था परन्तु वर्तमान समय मे यह सहावर करसाना अथवा केवल सहावर के नाम से ज्ञात है। चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिया गया नाम पी-लो शान-ना है जिसे एम० जुलीन ने बिरसना पढ़ने का प्रस्ताव किया है। १८४८ मे मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि पील एवं कार दोनों हाथी के संस्कृत नाम हैं अतः यह सम्भव था कि पिलोसना एवं करसाना समरूप हों। यह एक विशाल गाँव है जिसे मैं अन्त्रजीखेड़ा के ४ मील उत्तर मे दिखा चुका हूँ। इस अनुरूपता को स्वीकार करने में मुख्य आपत्ति यह है कि करसाना प्रत्यक्ष रूप से अधिक प्राचीन स्थान नहीं है यद्यपि

इसे यदा कदा दयोरा करसावा कहा जाता है जहाँ किसी पूर्ववर्ती समय में महत्वपूर्ण मन्दिर था। फिर भी यह सम्भव है कि करसाना का नाम अन्त्रजी से उसी प्रकार मिला होगा जैसे हम आईन-ए-अकबरी मे सिकन्दरपुर अत्रेजी का नाम देखते हैं। चूँकि करसाना एवं पिलोसना की अनुरूपता केवल अनुमानित है अत: इस विषय पर अधिक अनुमान कर विपत्ति में फँसना व्यर्थ है। ह्वेनसांग द्वारा सनकिसा से दिये गये दिकांश एवं दूरी सिरपुर के आस-पास के क्षेत्र की ओर संकेत करते हैं जिसके समीप पिलकनी अथवा पिलोकूनी नामक गाँव है जो हमारे मानचित्रो का पिलोखूनी है। परन्तु यह अति छोटा स्थान है और यद्यपि यहाँ खेडा अथवा खण्डहरो का टीला है परन्तु मेरे विचार मे किसी भी समय इसकी परिधि ह्वेनसांग द्वारा पिलोसना की बताई गई २ मील की परिधि से एक चौथाई से अधिक नही थी। परन्तु इसके पक्ष मे दो ठोस तथ्य है—प्रथम इसकी स्थिति जो दिकांश एव दूरी दोनो मे ह्वेनसाग के विवरण से मिलती है तथा द्वितीय इसका नाम जो प्राचीन नाम के प्राय. समरूप है क्योकि श को सामान्यत: ख पढा जाता है अत: ह्वेनसाग के पिलोसना को पिलोखना पढ़ा जा सकता है।

अन्त्रजी खेडा को प्राचीन पिलोसना के स्थान के रूप मे प्रस्तावित करने मे मैं इस तथ्य से प्रभावित हुआ हूँ कि देश के इस भाग मे सोरों को छोड यही एक मात्र विशाल प्राचीन स्थान है। सत्य है कि सनकिसा से इसकी दूरी ह्वेनसाग द्वारा बताई गई दूरी से कुछ अधिक है अर्थात् ३३ मील के स्थान पर ४५ मील है परन्तु दिकाश ठीक-ठीक है और यह प्राय: मेरा विचार है कि प्राचीन पीलासना के अनुरूप स्वीकार किये जाने के लिये अन्य सभी स्थानो की अपेक्षा अन्त्रजीखेडा का दावा अधिक ठोस है।

अन्त्रजी को पीलोसना के अनुरूप स्वीकार किये जाने मे केवल एक आपत्ति है अर्थात ह्वेनसाग द्वारा कथित २०० ली अथवा ३३ मील की दूरी एव सीधी रेखा से ४३ मील अथवा सड़क से ४८ अथवा ५० मील की दूरियो मे भिन्नता है। मैं ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरियो में किसी प्रकार की त्रुटि की सम्भावना का उल्लेख कर चुका हूँ परन्तु समान रूप से सम्भावित उत्तर योजन की लम्बाई मे भिन्नता में भी देखा जा सकता है। ह्वेनसांग का कथन है कि उसने ४० चीनी ली को एक योजन के समान स्वीकार किया है परन्तु यदि रोहेल खण्ड का प्राचीन योजन मध्यवर्ती दोआब के योजन से उसी प्रकार भिन्न रहा हो जैसे इनके वर्तमान कोस मे भिन्नता है तो उस दशा मे उसकी दूरी प्रत्येक कोस के पीछे आधा मील एवं प्रत्येक योजन के पीछे २ मील कम होगी क्योंकि रोहेल खण्ड का कोस १½ मील के समान है जबकि मध्यवर्ती दोआब का कोस २ मील के समान है और इस प्रकार अन्तिम कोस लगभग एक तिहाई बडा है। अब, यदि हम ह्वेनसांग की २०० ली अथवा ३३ मील की दूरी मे उपर्युक्त भिन्नता जोड़ दे तो उसकी दूरी ४४ मील हो जायेगी जो मानचित्र पर सीधे माप से मिलती है। फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरियों मे त्रुटि की सम्भावना

पर अधिक विश्वास करने का इच्छुक हूँ क्योंकि मैं देखता हूँ कि सनकिसा एवं कन्नौज के बीच की दूरी भी समान रूप से २०० ली बताई गई है। अब, दोनों दूरियाँ पूर्णतयः समान है—अर्थात सनकिसा अन्त्रजी एवम् कन्नोज के मध्य में है और चूंकि सड़क के साथ मेरे माप द्वारा अन्तिम दूरी ५० मील है अतः पूर्ववर्ती दूरी भी समान होनी चाहिए। अतः मैं इस सम्भावना का प्रस्ताव करूंगा कि इन दोनो दूरियो को २०० ली की कथित दूरी के स्थान पर ३०० ली अथवा ५० मील पढ़ना चाहिए। इस शुद्धि के पक्ष मे मैं पूर्ववर्ती चीनी तीर्थ यात्री फाह्यान की साक्षी को उदधृत करूंगा जिसने सनकिसा से कन्नौज की दूरी को ७ योजन अथवा ४६ मील बताया है। स्वयं ह्वेनसाग ने ४० ली को एक योजन के अनुरूप स्वीकार किया है और इस प्रकार यह दूरी २८० मील होनी चाहिए थी और चूंकि फाह्यान ने आधे योजन को अपने आकड़ो मे सम्मिलित नही किया था अतः हम उपर्युक्त दूरी को आधा योजन अथवा २० ली बढ़ा सकते हैं जिससे कुल दूरी ३०० ली अथवा ५० मील हो जायेगी।

परन्तु वास्तविक दूरी एवम् ह्वेनसाग द्वारा कथित दूरी मे भिन्नता का कुछ भी वास्तविक कारण रहा हो इतना निश्चित है कि सनकिसा कन्नौज एवम् पीलोशना के ठीक मध्य मे था। यदि हम स्थिति की पूर्ण अनुरूपता को इस तथ्य से जोड दे कि ह्वेनसाग द्वारा इङ्गित प्रदेश मे अन्त्रजी ही एक मात्र प्राचीन स्थान है तो हम केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि अन्त्रजी का विशाल ध्वस्त टीला प्राचीन पीलोशना का स्थान है। उपर्युक्त निष्कर्ष की इस तथ्य से पुष्टि होती है कि अन्त्रजी का टीला आकार मे ह्वेनसांग द्वारा पीलोसना के दिये गये आंकडो अर्थात १२ ली अथवा २ मील से मिलता है। यह टीला अधोभाग मे ३२५० फुट चौड़ा है अथवा परिधि मे २ मील से अधिक है। इसका उच्चतम बिन्दु प्रदेश के स्तर से ४४½ फुट ऊँचा है परन्तु दीवारो की नीवो एवम् टूटी हुई ईंटो के ढेर को छोड अन्य अवशेष प्राप्त नही हैं।

कहा जाता है कि पीलोशना को परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी परन्तु यह निश्चय ही बहुत अधिक है। पडोसी जिलो को देखते हुए इसकी सीमाओ को अनुमानतः बुलन्दशहर मे यमुना तट पर फिरोजाबाद तक एवम् गङ्गा तट पर कादिर गंज तक विस्तृत बताया जा सकता है जिससे २५० मील से अधिक परिधि प्राप्त नही हो सकती है।

संकिसा

पीलोशना एव कन्नौज के मध्य अवस्थित संकिशा स्थिति पर विचार किया जा चुका है। चीनी तीर्थ यात्री ने इस स्थान का नाम सेंग-किया-शी लिखा है और वर्तमान संकिसा नाम में चीनी नाम को सुरक्षित रखा गया है और जो अधिक विश्वस्तता से संस्कृत के संकस्या का प्रतिनिधित्व करता है। ह्वेनसांग ने इसे किया पी था अथवा

कपिथा नाम से भी पुकारा है परन्तु इस सम्बन्ध मे मैं कोई चिह्न प्राप्त करने मे असमर्थ रहा। संकिसा बौद्ध धर्म के सर्वाधिक प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में गिना जाता था क्योंकि यह वही स्थान है जहाँ बुद्ध इन्द्र एवं ब्रह्मा सहित स्वर्ण अथवा रत्न की सीढ़ियो से त्रयस्त्रृन्सा स्वर्ग से पृथ्वी पर आये थे। इस विचित्र कथा के अनुसार बुद्ध जन्म के सात दिवासोपरान्त उनकी माता माया की मृत्यु हो गयी थी और वह तुरन्त त्रयस्तृन्सा स्वर्ग अथवा ३३ देवताओ के निवास्थान पर चली गई थी जिनका राजा इन्द्र था। परन्तु चूंकि उसे देवताओ के स्थान पर बुद्ध के नियमो का प्रचार करने का अवसर प्राप्त नही हुआ अतः उसका पवित्र पुत्र त्रयस्तृन्सा स्वर्ग मे आया एव उसने अपनी माता की ओर से तीन मास तक धर्मोपदेश दिया। तत्पश्चात् वह ब्रह्मा एव इन्द्र सहित तीन सीढियो के माध्यम से पृथ्वी पर उतर गये। इन सीढियो मे एक सीढी स्फटिक पदार्थ अथवा बहुमूल्य रत्नो की बनी हुई थी दूसरी सोने एव तीसरी रजत की। फाह्यान के अनुसार बुद्ध सात बहुमूल्य वस्तुओ अर्थात् बहुमूल्य धातु एव रत्नो से बनी सीढी से उतरे थे जबकि ब्रह्मा उनकी दाहिनी ओर चांदी की सीढी से एव इन्द्र वाम पक्ष मे स्वर्ण की सीढी से उतरे थे। परन्तु ह्वेनसाग ने स्वर्ण सीढी स्वय बुद्ध की दी है रजत सीढी ब्रह्मा को एवं स्फटिक धातु की सीढी इन्द्र को जो बुद्ध के दाहिनी एवं बाईं ओर से नीचे आ रहे थे। उस समय अनेक देवता उनके साथ थे और बुद्ध का गुणगान करते हुए चारो ओर पुष्प वर्षा कर रहे थे। यह है उस विचित्र कथा के कुछ अश जिसमे वर्तमान बर्मी जनता उतना ही दृढ़ विश्वास रखती है जितना २१०० वर्ष पूर्व सम्राट अशोक को था अथवा हमारे समय को पाँचवी, छठी एवं सातवी शताब्दियो मे चीनी तीर्थ यात्रियों को था।

सकिसा नाम को सुरक्षित रखने वाला छोटा गाँव खण्डहरों के एक उन्नत टीले पर अवस्थित जो आस-पास के खेतो से ४१ फुट ऊँचा है। यह टीला जिसे किला कहा जाता है, पूर्व से पश्चिम १५०० फुट लम्बा एव १०७० फुट चौड़ा है। उत्तर एव पश्चिम किनारे अति ढलवा है। परन्तु अन्य सभी ओर से इस टीले पर सरलता पूर्वक चढ़ा जा सकता है। दुर्ग के मध्य से ठीक दक्षिण मे १६०० फुट की दूरी पर ईंटो की इमारतों वाला एक टीला है जिसके शिखर पर बिसारी देवी का एक आधुनिक मन्दिर है। यह दुर्ग एवम् मन्दिर के आस पास विभिन्न टीले मिल कर खण्डहरो का एक विशाल समूह बताते हैं जो ३००० फुट लम्बा एवम् २००० फुट चौडा है जिसकी परिधि २ मील है। परन्तु यह सकिसा के प्राचीन नगर का केवल मध्यवर्ती भाग है। यह इस नगर के अन्तर्गत दुर्ग एवम् धार्मिक भवन थे जो पवित्र सीढियो के चारो ओर बने हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नगर मध्यवर्ती टीले के चारो ओर फैला हुआ था एवम् चारों ओर से १८६०० फुट अथवा परिधि मे ३½ मील से अधिक लम्बी मिट्टी की दीवारों से घिरा हुआ था। इस दीवार का अधिकांश भाग खड़ा हुआ है एवम्

इसका आकार नियमित है। पूर्व, उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व को तीन दिशाओं में दीवारों में कटाव-अथवा द्वारा है जिन्हे प्रथानुसार नगर के तीन द्वारों का स्थान बताया जाता है। इस प्रथा के परिणाम स्वरूप जन साधारण पोरखेड़िया गाँव की ओर संकेत करते हैं जो दीवार के दक्षिण पूर्वी कटाव के ठीक बाहर है। परन्तु उपर्युक्त नाम को पोर के स्थन पर पौर कहा जाता है अतः यह नाम द्वार के स्थान पर सीढ़ियों (पौडी) का संकेत करता है। काली अथवा कालिन्द्री नदी दीवार के दक्षिण पश्चिमी कोण से राजघाट से लेकर ककरघाट तक बहती है। राजघाट दीवार से आधा मील दूर है जबकि ककरघाट दीवार की रेखा के दक्षिण मे एक मील से अधिक दूरी पर है।

उत्तर-पूर्व मे तीन चौथाई मील की दूरी पर अगहट नामक एक विशाल टीला है जो ४० फुट ऊँचा एवम् अधोभाग के व्यास मे आधे मील से अधिक है। प्राचीन नगर का नाम अगहट बताया जाता है परन्तु अब एक आधुनिक सराय के नाम पर इसे अगहट सराय कहा जाता है। यह सराय १०८० हिजरी अथवा १६७० ई० मे वर्तमान पठान जमींदार के पूर्वज द्वारा टीले के उत्तर पूर्वी कोण पर बनवाई गई थी। जनसाधारण का कथन है कि इससे पूर्व यह स्थान अनेक शताब्दियों तक निर्जन था परन्तु चूंकि मैं दिल्ली एव जौनपुर के मुसलमान शासकों के ताम्र मुद्राओं की लगभग निरन्तर श्रृङ्खला प्राप्त करने मे सफल हुआ था अतः मेरा अनुमान है कि यह स्थान अधिक समय तक निर्जन नहीं था। यह टीला बड़े आकार की टूटी हुई ईंटों से ढका हुआ है जो अकेले इसकी प्राचीनता का प्रमाण दे सकते हैं और चूंकि इसकी ऊँचाई एव सङ्किसा की ऊँचाई समान है अतः जनसाधारण का यह कथन सम्भवतः सत्य है कि दोनों स्थान एक ही काल मे बनवाये गये थे। दोनो टीलों पर समान ताम्र मुद्राये प्राप्त होती हैं जिन पर किसी प्रकार का लेख अङ्कित नहीं है। इनमे अधिक पुरानी मुद्राये वर्गाकार रजत मुद्रायें है जिन पर विभिन्न चिह्न अङ्कित किये गये हैं तथा अन्य मुद्राये तांबे की वर्गाकार मुद्रायें है जिन्हें सांचे मे ढाला गया है और मेरे विचार में यह सभी मुद्रायें सिकन्दर महान के आक्रमण से पूर्ववर्ती समय की है।

सङ्किसा को रामायण के सगस्या एवम् चीनियों के सेन्ग, किया-शी के अनुरूप स्वीकार करने मे हमे न केवल नामों की पूर्ण समरूपता से समर्थ प्राप्त होता वरन् इसी प्रकार मथुरा, कन्नौज तथा अहिछत्र के तीन सर्व प्रसिद्ध स्थानो से इसकी अपेक्ष कृत स्थिति से भी समर्थन प्राप्त होता है। आकार मे भी यह ह्वेनसांग द्वारा दिए गये आंकड़ो से अधिक समीपता रखता है। चीनी तीर्थ यात्री द्वारा इसकी बताई गई २० ली अथवा ३½ मील की परिधि मेरे आंकड़ों के १८६०० फुट अथवा ३½ मील से कुछ कम है अतः इस बात मे सन्देह नहीं हो सकता कि दोनों स्थान वस्तुतः समान हैं। सङ्किसा के अपने विवरण में ह्वेनसांग ने एक विचित्र तथ्य का उल्लेख किया है कि विशाल मठ के समीप निवास करने वाले ब्राह्मणों की संख्या कई हजार थी। इक

कथन के उदाहरण स्वरूप मैं यह उल्लेख कर सकता हूँ कि जनसाधारण की एक प्रथा है जिसके अनुसार सङ्किसा १८०० से १६०० वर्ष पूर्व निर्जन हो गया था तथा १३०० वर्ष पूर्व अथवा लगभग ५६० ई० में इस स्थान के स्वामी कायथ ने यह स्थान ब्राह्मणों को दे दिया था। उनका यह भी कथन है कि अपेक्षाकृत आधुनिक समय तक पौर खेड़िया गाँव की अधिकांश जनसख्या पूर्णतः ब्राह्मण थी।

कहा जाता है कि सङ्किसा की परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी परन्तु आस-पास के अन्य जिलो को देखते हुए यह परिधि बहुत अधिक है। उत्तर एवं दक्षिण मे गङ्गा तथा यमुना द्वारा वास्तविक एव पश्चिम तथा पूर्व में अन्त्रजी एवं कन्नौज के जिलों द्वारा निर्धारित इसकी वास्तविक सीमाये २२० मील से अधिक नही हो सकती।

मथुरा

सातवी शताब्दी मे मथुरा की प्रसिद्ध नगरी एक विशाल राज्य की राजधानी थी जिसकी परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील बताई गई है। यदि यह अनुमान सही है तो इस प्रान्त में न केवल बैराट तथा अन्त्रजी जिलों का सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा वरन् दक्षिण मे आगरा से आगे नरवा तथा शिवपुरी तक एव पूर्व मे सिन्ध नदी तक बहुत बड़ा क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा। इन सीमाओं के भीतर प्रान्त की परिधि सीधे माप के अनुसार ६५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ७५० माल से अधिक होगी। इसमें भरतपुर खिरौली तथा धौलपुर के छोटे राज्यो एवं ग्वालियर राज्य के उत्तरी अर्धभाग सहित मथुरा का वर्तमान जिला सम्मिलित था। पूर्व मे यह राज्य पूर्व में जिझौटी राज्य से एव दक्षिण मे मालवा से घिरा हुआ था। ह्वेन-सांग ने इन दोनो को भिन्न-भिन्न राज्य बताया है।

सातवीं शताब्दी में नगर की परिधि २० ली अथवा ३⅓ मील थी जो इसके वर्तमान आकार से मिलती है। परन्तु दोनो की स्थिति एक समान नहीं है क्योंकि पूर्व में यमुना के कटाव के कारण नगर का बढाव उत्तर तथा पश्चिम की ओर हुआ है। कहा जाता है कि प्राचीन नगर उत्तर में नबी मस्जिद तथा राजा कंस के दुर्ग से लेकर दक्षिण मे कस टीला तथा टीला सत सिख तक विस्तृत था परन्तु इसका दक्षिणी अर्ध-भाग अब निर्जन है और नबी मस्जिद के उत्तर एव पश्चिम में प्राचीन नगर के बाहर लगभग समान क्षेत्र बस गया है। यह नगर अनेक ऊँचे-ऊँचे टीलो से घिरा हुआ है जिनमें अधिकांश टीलें ईंटो के पुराने भट्टे हैं। परन्तु उनमे अनेक टीले विशाल भवनों के खण्डहर हैं। इन टीलों को खोद-खोद कर ईंटें निकाली गई हैं और अब केवल ईंटों की मिट्टी एवं टुकड़ों के ढेर शेष हैं। मैं विशेष रूप से नगर के तीन मील दक्षिण में जेल के समीप बड़े टीले का उल्लेख करूंगा जो बाह्य रूप से ईंटों एवं खपरेलों के भट्टे का खण्डहर प्रतीत होता था। परन्तु बाह्य रूप से साधारण दिखाई देने वाले टीले से

अब अनेक मूर्तियाँ एवं शिलालेख प्राप्त किए जा चुके हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि यह टीला कम से कम दो बौद्ध मठो का खण्डहर है जो ईसवी काल के प्रारम्भ से सम्बन्धित है।

मथुरा की पवित्र नगरी भारत के प्राचीनतम स्थानो मे गिनी जाती है। यह कृष्ण के इतिहास मे उसके शत्रु राजा कस के गढ़ के रूप में प्रसिद्ध है तथा मैगस्थनीज के आधार पर एरियन ने सूरसेनी की राजधानी के रूप मे इसका उल्लेख किया है। सूरसेन कृष्ण के पितामह थे तथा कृष्ण एव उनके वशज जिन्होंने कस की मृत्यु के पश्चात् मथुरा पर अधिकार कर लिया था। अपने पितामह के नाम से सूरसेन कहलाते थे। एरियन के अनुसार सूरसेनियो के दो महान् नगर थे, मैथोरस तथा क्लिसो-बोरस, तथा नौकाओ के योग्य जोबारेज नदी इन सीमाओ से होकर बहती थी। प्लिनी ने नदी को जोमनीज् अर्थात जमुना कहा है तथा उसका कथन है कि यह नदी मेथोरा तथा क्लिसोंबोरा के नगरो के बीच बहती थी। टालमी ने मोदुरा नाम के अर्न्तगत एक "देवताओ के नगर" अथवा पवित्र नगर के रूप मे केवल मथुरा का उल्लेख किया है।

वृन्दावन

क्लिसोबोरस नगर की पहचान नही हो सकी है परन्तु मेरा विश्वास है कि यह मथुरा के छः मील उत्तर मे वृन्दावन रहा होगा। वृन्दावन का अर्थ है "तुलसी के वृक्षो का कुंज" जो सम्पूर्ण भारत मे कृष्ण एव गोपियो की गोपलीला के स्थान के रूप मे प्रसिद्ध है परन्तु इस स्थान का पूर्ववर्ती नाम कालोवर्त था क्योकि कथा मे बताया गया है कि काली नाग ने यमुना पर लटकते हुए कदम्ब वृक्ष पर अपना स्थान बनाया था। इसी स्थान पर कृष्ण ने उस पर आक्रमण करके मार डाला। क्लिसोबोरा के लेटिन नाम को भिन्न-भिन्न पुस्तको मे करिसोबोरा तथा केरिसो-बारका भी लिखा गया है। अतः मेरा अनु-ान है कि इसका मूल नाम काली सो-बोरका अथवा दो अक्षरो के साधारण परिवर्तन से कालीकोवोर्ता अथवा कालिकावर्त था। प्रेम सागर मे लिखा है कि कृष्ण जब यमुना मे तैर रहे थे तो काली नाग ने उनके विरुद्ध अपना विष उगल दिया था और यमुना मे उपर्युक्त भंवर उसी विष के कारण बना था। अनुमान लगाया जाता है कि दूध पिलाने से सांप का विष बढ़ जाता है और यह पूर्ववर्ती समय मे सर्प पूजा की ओर सकेत करता है। आज भी यदा-कदा सर्प को दूध पिलाया जाता है परन्तु अब यह कार्य केवल सर्प की दैवी शक्ति की परीक्षा लेने के लिये कि ा जाता है। कहा जाता है कि सर्प दूध पीने की आश्चर्य जनक शक्ति रखता है। बताया जाता है कि अन्तिम शताब्दी में बनारस क राजा चेतसिंह ने मथुरा एव वृन्दाबन के दोनो नगरो का सम्पूर्ण दूध कदम्ब वृक्ष मे डाल दिया था और चूंकि जमुना के जल मे परिवर्तन नहीं हुआ अतः काली सर्प की दूध पीने की चमत्कारी शक्ति की पुष्टि हो गई।

कन्नौज

सङ्किसा से ह्वेनसाग २०० ली अथवा ३३ मील उत्तर पश्चिम मे कन्नौज तक गया था। चूँकि दोनों स्थानों की स्थिति सर्व ज्ञात है अत: उपर्युक्त दिकांश एवं दूरी के स्थान पर हमें दक्षिण पूर्व एव ३०० ली अथवा ५० मील पढना चाहिये। दूरी में परिवर्तन के लिए हमे फाह्यान का समर्थन प्राप्त है जिसने इसे ७ योजन अथवा ४६ मील बताया है। कहा जाता है कि सातवी शताब्दी में राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी। जैसा कि मै बता चुका हूँ इस अनुमानित परिधि मे गङ्गा नदी के उत्तर मे छोटे-छोटे जिले एवं निचला गङ्गा दोआब सम्मिलित रहा होगा अन्यथा कन्नौज की सीमाये २०० मील से अधिक नही हो सकती थी। ६६७ मील के ह्वेनसांग के आंकडो को सही कर लेने पर कन्नौज की सम्भावित सीमाओ मे घाघरा नदी पर खैराबाद एवं टांडा तथा यमुना नदी पर इटावा एव इलाहाबाद का सम्पूर्ण मध्यवर्ती प्रदेश सम्मिलित रहा होगा। जिससे इससे परिधि लगभग ६०० मील हो जाएगी।

कन्नौज की महान नगरी जो अनेक सहस्र वर्षों तक उत्तरी भारत की हिन्दू राजधानी थी, के वर्तमान खण्डहर कम एवम् अमहत्वपूर्ण है। १०१६ ईसवी में जब महमूद गजनी कन्नौज पहुँचा उसके इतिहासकारो ने लिखा है कि "वहाँ पर उसने एक नगर को देखा जो आसमान तक सिर उठा रहा था तथा शक्ति एवम् आकार मे उचित रूप से अद्वितीय होने का दावा कर सकता था।" एक शताब्दी पूर्व अथवा ९१५ ईसवी मे मसोदी ने भारत के एक राजा की राजधानी के रूप में कन्नौज का उल्लेख किया था तथा लगभग ९०० ईसवी मे इब्न वहाब के साक्षी के आधार पर "कद्रुजे को गोजर राज्य का एक विशाल नगर" बताया है। इससे अधिक पूर्व काल मे अथवा ६३४ ई० मे हमे चीनी तीर्थ यात्री का विवरण प्राप्त होता है जिसने कन्नौज को २० ली अथवा ३½ मील लम्बा एव ४ अथवा ५ ली अथवा ¾ मील चौडा बताया है। यह नगर सुदृढ़ दीवारो एव गहरी खाईयो से घिरा हुआ था तथा इसके पूर्वी किनारे पर गङ्गा नदी बहती थी। अन्तिम तथ्य को फाह्यान का समर्थन प्राप्त है जिसका कथन है कि नगर हेग अथवा गङ्गा नदी को छू रहा था जब ४०० ईसवी मे उसने इस स्थान की यात्रा की थी। टालमी ने १४० ईसवी मे कन्नौज का उल्लेख किया है परन्तु इस स्थान का प्राचीनतम उल्लेख असदिग्ध रूप से पुराणो की प्राचीन प्रचलित कथाओ मे मिलता है जिसमे कान्य कुब्ज के सस्कृत नाम को कुसनाभ की एक सहस्र पुत्रियो को वायु मुनि द्वारा श्राप दिए जाने की कथा से सम्बन्धित किया गया है।

ह्वेनसांग की यात्रा के समय कन्नौज उत्तरी भारत के सर्वाधिक शक्तिमान शासक राजा हर्ष वर्धन की राजधानी थी। चीनी तीर्थ यात्री ने उसे फी-शी अथवा वैश्य कहा है। परन्तु यह सम्भव प्रतीत होता है कि उसने वैस अथवा बैस राजपूतों के स्थान

पर वैश्य अथवा बैस लिखने की त्रुटि की है जो हिन्दुओ का व्यापारिक वर्ग है अन्यथा मालवा एव बलभी के राजघरानो से हर्ष वर्धन के विवाहिक सम्बन्ध पूर्णतः असम्भव हो जाते। बैस राजपूतो का देश बैसवाड़ लखनऊ के समीप से लेकर कड़ा माणकपुर तक विस्तृत है और इस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिणी अवध उनके प्रदेश मे सम्मिलित था। बैस राजपूत प्रसिद्ध सालिवाहन के वशज होने का दावा करते हैं। जिसकी राजधानी गङ्गा नदी के उत्तरी तट पर दौडियाखेडा बताई जाती है। कन्नौज से समीपता के कारण देहली मे इलाहाबाद तक गङ्गा के सम्पूर्ण दोआब तक उनके पूर्वजों के अधिकार का दावा स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु उनकी वशानुक्रम सूचियाँ अधिक त्रुटिपूर्ण हैं तथा सम्भवतः अधिक अशुद्ध हैं जिनके कारण उनके पूर्वजो को हर्ष-वर्धन के परिवार के राजकुमारो के अनुरूप स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं।

हर्ष वर्धन के शासन काल को ६०७ तथा ६५० ई० के मध्य निश्चित करने मे मुझे निम्न साक्षियो से निर्देशन प्राप्त हुआ है। प्रथम, ह्वेनसांग के स्पष्ट कथन से उस की मृत्यु ६५० ई० मे निश्चित होती है। (१) द्वितीय, हर्ष के जीवन के सम्बन्ध मे लिखते समय तीर्थ यात्री ने लिखा है कि अपने सिंहासनारोहण के समय से निरन्तर साढ़े पाँच वर्षो तक हर्ष युद्धरत रहा था तथा तत्पश्चात् लगभग ३० वर्षो तक उस ने शान्ति पूर्वक शासन किया। ह्वेनसाग ने चीन वापिस जाने पर सम्राट की साक्षी के आधार पर उपर्युक्त कथन को दोहराया है। सम्राट ने उसे सूचित किया था कि उस समय तक वह तीस वर्षों से अधिक शासन कर चुका था तथा तत्कालीन पञ्चवर्षीय सभा ऐसी छटी सभा थी जिसे वह अपने शासन काल मे आयोजित कर चुका था। इन विभिन्न कथनो से यह निश्चित है कि ६४० ई० मे ह्वेनसांग की चीन वापिसी के समय हर्षवर्धन ३० वर्षो से अधिक तथा ३५ वर्षों से कुछ कम समय तक शासन कर चुका था। अतः उसके सिंहासनारोहण को तिथि को ६०५ तथा ६१० ई० के मध्यवर्ती काल में बताया जा सकता है। तृतीय, अब, इसी काल के मध्य ६०७ ई० में, जैसा कि हमें अबुरहान से सूचना मिलती हैं, श्री हर्ष काल का प्रारम्भ हुआ था जो ग्यारवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मथुरा एवं कन्नौज में सुरक्षित था। नाम एवं तिथियों की पूर्ण समानता पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि ६०७ ई० में कन्नौज मे एक सम्राज्य का संस्थापक हर्ष वर्धन था जिसने सातवीं शताब्दी के प्रथम अर्धभाग मे कन्नौज पर शासन किया था।

---

(१) ह्वेनसांग की ऐतिहासिक क्रमानुसार सूची के अन्त के परिशिष्ट मे मैंने इस बात में विश्वास करने के अनेक ठोस प्रमाण प्रस्तुत किए है कि हर्षवर्धन की मृत्यु को वास्तविक तिथि ६४८ ई० थी यह तिथि मा त्वान्-लिन ने चीनी दूत के आधार पर दी थी जो सम्राट की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् भारत में आया था।

प्राचीन कन्नौज के सम्बन्ध मे ह्वेनसांग द्वारा दिए गये उल्लेख की नगर के वर्तमान अवशेषो से तुलना करने से मुझे दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैं किसी भी स्थान को निश्चित रूप से पहचानने में असमर्थ रहा हूँ क्योकि मुसलमानो ने हिन्दू अधिकार के प्रत्येक चिह्न को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया है। जनसाधारण की प्रथाओ के अनुसार प्राचीन नगर उत्तर में राजघाट के समीप हाजी हरमायन की समाधि से लेकर दक्षिण मे तीन मील की दूरी पर मीरन का सराय तक विस्तृत था। कहा जाता है कि पश्चिम मे यह नगर हाजी हरमायन से लगभग तीन मील की दूरी पर अवस्थित कपत्या तथा मकरन्द नगर के दो ग्रामो तक विस्तृत था। पूर्व की ओर इसकी सीमा पुरानी गङ्गा नदी तक थी जिसे जन साधारण छोटी गङ्गा कहा करते है। यद्यपि हमारे मानचित्रो मे इसे काली नदी लिखा गया है। उनका कथन है कि काली अथवा कालिन्दी नदी पूर्व काल मे सगारामपुर अथवा सग्रामपुर के समीप गङ्गा नदी मे मिलती थी परन्तु अनेक सहस्त्र वर्षों पूर्व यह विशाल नदी इस बिन्दु से उत्तर की ओर मुड़ गई जबकि काली नदी इसी मार्ग से निरन्तर बहती रही। चूंकि सग्रामपुर तथा काली नदी के मध्य एक खुला मार्ग बना हुआ है। अतः मुझे विश्वास है कि प्रचलित विवरण शुद्ध है तथा कन्नौज से नीचे संग्रामपुर से मंहदीघाट तक नदी मार्ग यद्यपि मुख्य रूप से अब काली नदी के जल से भरा रहता है, परन्तु मूल रूप से यहाँ गङ्गा की मुख्य धारा थी। अतः फाहियान तथा ह्वेनसांग जिन्होने कन्नौज को गङ्गा नदी के तट पर बताया है, के विवरण को न केवल जन साधारण की प्रथाओं द्वारा पुष्टि होती है वरन् इस तथ्य से भी इसकी पुष्टि होती है कि प्राचीन मार्ग छोटी गङ्गा के नाम से बना हुआ है। कन्नौज का आधुनिक नगर सम्पूर्ण कला अथवा दुर्ग सहित प्राचीन नगर के स्थान के केवल उत्तरी छोर पर बसा हुआ है। इसकी सीमाएँ उत्तर मे हाजी हरमयान की समाधि से, दक्षिण पश्चिम मे ताज-बाज के मकबरे से तथा दक्षिण पूर्व मे मखदूम जहानियाँ के मकबरे से सुनिश्चित हैं। नगर मे, विशेषतयः दुर्ग के भीतरी भवन अधिक फैले हुए है और इस प्रकार यद्यपि नगर एक वर्ग मील मे फैला हुआ है तथापि इसकी जनसख्या १६,००० से अधिक नही है। दुर्ग जो ऊँचे टीले पर पूर्णतयः फैला हुआ है आकार में त्रिभुजाकार है। इसका उत्तरी बिन्दु हाजी हरमयान की समाधि है, दक्षिण पश्चिमी कोण अजयपाल का मन्दिर एवं दक्षिण पूर्वी कोण क्षेम काली बुर्ज नाम विशाल बुर्ज है। प्रत्येक किनारा ४००० फुट लम्बा है। उत्तर पश्चिमी किनारा बिना नाम के सूखे नाले से सुरक्षित है, उत्तर पूर्वी किनारा छोटी गङ्गा से, जबकि दक्षिणी किनारा खाईं से घिरा होगा जो अब नगर की एक मुख्य सड़क है। यह सड़क टीले के अधोभाग के साथ साथ, अजयपाल के मन्दिर से नीचे पुल से लेकर क्षेम काली बुर्ज तक जाती है। उत्तर पूर्वी किनारे पर यह टीला नदी तट

के निचले भू-भाग से ६० तथा ७० फुट ऊँचा उठ जाता है जबकि उत्तर पश्चिम में नाले की ओर इसकी ऊँचाई ४० से ५० फुट तक है। दक्षिणी किनारे पर यह अजय पाल के मन्दिर के ठीक नीचे ३० फुट से अधिक नहीं है परन्तु बाला पीर के मकबरे के नीचे ४० फुट ऊँचा उठ जाता है। इसकी स्थिति सुदृढ़ है और तोप के प्रयोग से पूर्व अपनी ऊँचाई के कारण ही कन्नौज एक सुदृढ एवं महत्वपूर्ण स्थान बन गया होगा। जन साधारण नगर के दो द्वारो की ओर संकेत करते है, एक उत्तर की ओर हाजी हरमयान की समाधि से समीप, दूसरा दक्षिण पूर्व मे क्षेम काली बुर्ज के समीप। चूँकि यह दोनो द्वार नदी की ओर खुलते हैं अतः तीसरा द्वार दक्षिण पश्चिम में स्थल मार्ग की ओर रहा होगा और इसका सर्वाधिक सम्भावित स्थान रङ्ग महल की दीवारो के नीचे एवं अजय पाल के मन्दिर के समीप प्रतीत होता है।

प्रथाओ के अनुसार प्राचीन नगर में ८४ महल थे जिनमे २५ महल वर्तमान नगर की सीमाओ मे अब भी खडे हैं। यदि हम २५ महलो के स्थान को एक वर्ग मील का तीन चौथाई भाग स्वीकार कर ले तो प्राचीन नगर के ८४ महल २½ वर्ग मील मे विस्तृत रहे होंगे। यह आकार ह्वेनसांग द्वारा नगर के बताये गये आकार से मिलता है जिसके अनुसार इसकी लम्बाई २० ली अथवा ३⅓ मील तथा चौडाई ४ अथवा ५ ली अथवा एक वर्ग मील की तीन चौथाई भाग थी। दोनो को मिला कर नगर का क्षेत्र २½ वर्ग मील था। वर्तमान खण्डहरो के स्थान से लगभग यही सीमाये निर्धारित होती हैं। यह खण्डहर कन्नौज मे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त प्राचीन मुद्राओ को प्राप्त करने के मुख्य स्थान है। व्यापारियो के अनुसार प्राचीन मुद्राये दुर्ग के भीतर बालापीर तथा रङ्ग महल मे, दुर्ग के दक्षिण पूर्व मे मखदूम जहानियाँ अथवा मुख्य मार्ग पर मकरन्द नगर मे तथा सिंह भवानी एवं कूटलूपुर के छोटे ग्रामो मे प्राप्त होती हैं। अन्य एक मात्र उत्पादक स्थान कन्नौज के तीन मील दक्षिण पूर्व मे छोटी गङ्गा के तट पर ईंटों से ढका एक प्राचीन टीला बताया जाता है जिसे राजगीर कहा जाता है। इन सभी प्रमाणो पर विचार करने से मुझे यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग के समय का प्राचीन नगर गङ्गा (अब छोटी गङ्गा) नदी के तट पर क्षेत्र, काली बुर्ज तथा हाजी हरमयान से लेकर दक्षिण पश्चिम दिशा मे जरनैली सड़क पर तीन मील दूर मकरन्द नगर तक विस्तृत था जिसकी सामान्य चौड़ाई लगभग एक मील अथवा कुछ कम थी। इन सीमाओ के भीतर वह सभी खण्डहर मिलते है जो किसी समय के प्रसिद्ध नगर कन्नौज के स्थान की ओर संकेत करते हैं।

अयूतों

कन्नौज से आगे दोनो तीर्थ यात्रिओ ने भिन्न मार्गों का अनुसरन किया था। फाहियान सीधे शा-ची (घाघरा के तट पर फैजाबाद के समीप आधुनिक अयोध्या) गया था जबकि ह्वेनसांग गङ्गा के मार्ग का अनुसरन करता हुआ प्रयाग अथवा

इलाहाबाद तक चला गया था। फिर भी दोनों तीर्थ-यात्रियों का प्रथम पड़ाव एक समान प्रतीत होता है। फाहियान का कथन है कि गङ्गा नदी को पार करने के पश्चात् वह तीन योजन अथवा २१ मील दक्षिण की ओर होलीवन तक गया था जहाँ उन स्थानों पर अनेक स्तूप बनवाए गये थे जिन स्थानो से बुद्ध "गये थे, चले थे अथवा बैठे थे।" ह्वेनसांग ने लिखा है कि उसने नवदेव-कुल के नगर तक-जो गङ्गा नदी के पूर्वी तट पर था—१०० ली अथवा लगभग १७ मील की यात्रा की थी तथा ५ ली अथवा लगभग १ मील की दूरी तक नगर के दक्षिण पूर्व मे अशोक का एक स्तूप था जो १०० फुट ऊँचा था। इसके अतिरिक्त यहाँ पिछले चार बुद्धो की स्मृति मे बनवाए गये कुछ अन्य स्मारक थे। मेरे विचार में यह दोनों स्थान सम्भवतः एक समान है तथा यह स्थान इसान नदी के सगम स्थान से ठीक ऊपर तथा नानामऊ घाट के विपरीत नौबतगज के समीप किसी स्थान पर था। परन्तु चूँकि वर्तमान समय मे इस क्षेत्र के आस-पास खण्डहर नही हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह खण्डहर नदी की बाढ़ मे बह गये हैं। इसान के सगम से नीचे गङ्गा नदी के निरीक्षण से उपर्युक्त अनुमान प्रायः निश्चित हो जाता है। प्रारम्भ मे नदी नानामऊ से अनेक मीलो तक ठीक दक्षिण की ओर बहती थी। परन्तु कुछ शताब्दी पूर्व इसने अपना मार्ग बदल दिया। प्रथम ४ अथवा ५ मील तक दक्षिण पूर्व की ओर और तत्पश्चात् समान दूरी तक दक्षिण पश्चिम की ओर, जहाँ यह पुराने मार्ग मे मिल जाती थी। इस प्रकार दोनो धाराओ के मध्य लगभग ६ मील लम्बा एव चार मील लम्बा द्वीप बन गया था। चूँकि ह्वेनसांग के विवरण मे नवदेव कुल को इस द्वीप के इसी स्थान पर दिखाया गया है। अतः मेरा अनुमान है कि नगर एव बौद्ध-मठ, सभी नदी मार्ग के परिवर्तन के कारण बह गये थे।

सभी छोटी दूरियो मे त्रुटि का सम्भावित कारण कोस के स्थान पर योजन में लिखा जाता था। जिससे यह दूरिया चार गुणा अधिक हो गई। यदि नवदेवकुल के सम्बन्ध मे यही त्रुटि की गई थी तो वास्तविक दूरी १७ मील के स्थान पर २५ ली अथवा ४ मील से कुछ अधिक होती। अब, कन्नौज के चार मील दक्षिण पूर्व मे इसी स्थिति मे छोटी गङ्गा के तट पर दयोकली नामक प्रसिद्ध स्थान है जो प्रथम दो अक्षरों नव के छोड़ देने से तीर्थ-यात्री द्वारा दिये गये नाम के समान है।

नव-देव-कुल छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग ६०० ली अथवा १०० मील दक्षिण-पूर्व की ओर गया तथा गङ्गा नदी को पुनः पार करने से आ-यू-तो नामक राजधानी मे पहुँचा था जिसकी परिधि २० ली अथवा ३ मील से अधिक थी।। एम० जुलीन तथा ए० बी० सेन मार्टेन, दोनों ने इस स्थान को राम की प्रसिद्ध राजधानी अयोध्या के अनुरूप प्रसिद्ध स्वीकार किया है। मैं अयूदा के रूप मे नाम के सम्भावित पाठ को स्वीकार करता हूँ। परन्तु मैं घाघरा नदी के साथ-साथ राजधानी को ढूंढने मे उनसे पूर्णतयः असहमत हूँ क्योंकि यह कन्नौज के ठीक पर्व मे है जबकि ह्वेनसाग ने लिखा है

कि उसका मार्ग दक्षिण पूर्व की ओर था। फिर भी यह प्रायः सम्भव है कि तीर्थ यात्री किसी भी बडी नदी, उदाहरणार्थ, घाघरा के लिए गङ्गा के व्यापक नाम को उपाधि के रूप मे प्रयोग किया होगा। परन्तु प्रस्तुत स्थिति में जहाँ दक्षिण पूर्व का कथित दिकाश गङ्गा नदी के मार्ग से मिलता है, मेरे विचार मे यह प्रायः निश्चित है कि गङ्गा नदी ही तीर्थ यात्री द्वारा इङ्गित नदी थी। परन्तु गङ्गा के मार्ग को अपनाने से हमें कन्नौज तथा प्रयाग के दो प्रसिद्ध स्थानों के बीच की दूरी मे अधिकता के रूप में एक भिन्न प्रकार की कठिनाई का सामना करना पडता है। ह्वेनसांग के मार्ग के अनुसार वह सर्व प्रथम १०० ली की दूरी पर नव-देव-कुल गया था। तत्पश्चात् ६०० ली की दूरी पर आयूनों, ३०० ली जल मार्ग से हयामुख तथा अन्त मे ७०० मील की दूरी पर प्रयाग तक गया था। इन सभी दूरियो को मिला कर कुल दूरी १७०० ली अथवा २८३ मील हो जाती है जो वास्तविक दूरी से प्रायः १०० मील अथवा ६०० ली अधिक है। परन्तु चूंकि यात्रा का एक भाग अर्थात ३०० मील अथवा ५० मील जल मार्ग द्वारा पूरा किया गया था। अतः वास्तविक भिन्नता सम्भवतः ८५ मील अथवा ९० मील से अधिक नही रही होगी। यद्यपि यह सदेह-पूर्ण है कि ३०० ली की दूरी नदी मार्ग न होकर स्थल मार्ग की दूरी न रही हो। हमारे उद्देश्य के लिए इतनी जानकारी पर्याप्त है कि ह्वेनसाग के कथित आकडे वास्तविक आकडा स लगभग १०० मील अधिक है। इस त्रुटि का एक मात्र उत्तर यह हो सकता है कि किसी एक सख्या मे परिवर्तन हो गया हो जैसे ६०० ली के स्थान पर ६० ली अथवा ७० मील के स्थान पर ७०० ली। प्रथम संख्या की त्रुटि को स्वीकार करने से कुछ दूरी ५४० ली अथवा ९० मील घट जायेगी जबकि दूसरी सख्या की त्रुटि को स्वीकार करने से इस दूरी मे ६३० ली अथवा १०५ मील की कमी हो जायेगी। इस ढङ्ग को त्रुटि से तीर्थ यात्री द्वारा दी गई दूरी कन्नौज तथा प्रयाग के बीच १८० मील की वास्तविक दूरी से मिल जायेगी।

प्रथम अनुमान को स्वीकार करने से नव-देव-कुल से आयूनो की राजधानी तक ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी केवल ६० ली अथवा १० मील होगी जो उसे स्योराजपुर के प्रायः एक मील उत्तर मे तथा कानपुर के २० मील उत्तर पश्चिम मे काकूपुर नामक प्राचीन नगर के स्थान पर ले जायेगी। पश्चात्वर्ती मार्ग काकूपुर से नाव द्वारा दौण्डिया खेडा तक ठीक ५० मील अथवा ३०० ली रहा होगा। तथा वहाँ से प्रयाग तक १०० मील से अधिक दूरी रही होगी जो तीर्थ-यात्री की ७०० ली अथवा १०० मील की दूरी से मिलती है। द्वितीय अनुमान से पश्चात्वर्ती मार्ग कडा से पापामऊ (फाफामऊ) तक जल मार्ग द्वारा लगभग ५० मील रहा होगा तथा वहाँ से प्रयाग तक स्थल दूरी लगभग ८ मील रही होगी जो प्रस्तावित शुद्धि की ७० ली से मिलती है। अन्तिम अनुमान के पक्ष में यह तथ्य प्रस्तुत किया जा सकता है कि कडा से फाफामऊ

तक दक्षिण पूर्वी विकांश काकूपुर से दौण्डियोखेडा के दक्षिण पूर्वी विकांश की अपेक्षा ह्वेनसांग की कथित पूर्वी दिशा से अधिक मिलता है। फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं प्रथम शुद्धि को अपनाने का अधिक इच्छुक हूँ जिससे अयूतो का मुख्य नगर काकूपुर के स्थान दौण्डियाखेडा पर तथा हयामुख का नगर दौण्डियाखेडा के स्थान पर निश्चित होता है क्योंकि हम जानते है कि अन्तिम नगरी अधिक समय तक बैस राजपूतों की राजधानी थी। मैं आंशिक रूप से इस विचार को एक संदेह के कारण स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि काकूपुर का नाम तिब्बती ग्रन्थो के बागूद अथवा वागूद नागूद नाम से सम्बन्धित हो सकता है। इनके अनुसार शामपक नामक एक शाक्य कपिला से निर्वासित होने पर बागूद चला गया था तथा अपने साथ बुद्ध के कुल केश तथा कटे हुए नाखून ले गया था जिन पर उसने एक चैत्य का निर्माण करवाया था। उसे बागूद का राजा बना दिया गया तथा इस स्मारक को उसका नाम दिया गया (शम्पक स्तूप)। बागूद की स्थिति का संकेत नही दिया गया है परन्तु चूँकि मुझे इसमे मिलते-जुलते अन्य किसी नाम की जानकारी नही है अतः मै यह अनुमान लगाने का इच्छुक हूँ कि यह स्थान सम्भवतः ह्वेनसांग के अयूतो अथवा अयूदा के समान है। दोनो नामो मे उल्लेखनीय समानता है और चूँकि दोनो स्थानो पर बुद्ध के केश एवम् नाखून के अंशो सहित एक-एक स्तूप है अतः मेरा विचार है कि दोनों की अनुरूपता को स्वीकार करने के कुछ ठोस प्रमाण प्राप्त है।

काकूपुर, कन्नौज की जनता मे प्रसिद्ध है जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह नगर किसी समय निजी राजा के अधीन विशाल नगर था। यह बिठूर के ठीक १० मील अथवा ५ कोस उत्तर पश्चिम मे है और दोनो स्थानो के मध्यवर्ती क्षेत्र को 'पञ्च कोसी भीतर उत्पालारण्य कहा जाता है। कहा जाता है कि काकूपुर का ध्वस्त टीला छत्रपुर नामक दुर्ग का अवशेष है जिसे ६०० वर्ष पूर्व राजा छत्र पाल चन्देल ने बनवाया था। काकूपुर मे वशीरेश्वर महादेव तथा द्रोण के पुत्र अश्वस्थामा के मन्दिर हैं जिनके समीप प्रति वर्ष समारोह होता है। इन बातो से इतना स्पष्ट हो जाता है कि यह स्थान पूर्ववर्ती समय मे महत्वपूर्ण रहा होगा जबकि अश्वस्थामा का नाम इसे महाभारत काल से सम्बन्धित करता है।

ह्वेनसाग के अनुसार आयूतो की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी जो सभी सम्भावनाओ से अधिक है और मैं निस्संकोच इसे अस्वीकार करता हूँ। सम्भवतः इसे ५०० ली अथवा ८३ मील पढ़ना चाहिये जिससे इसकी सीमायें काकूपुर तथा कानपुर के मध्यवर्ती क्षेत्र तक सीमित हो जायेगी तथा हयामुख के आगामी जिले के लिये स्थान बन जायेगा।

हयामुख

आयूतो से तीर्थ यात्री गङ्गा नदी के मार्ग से नाव द्वारा ३०० ली अथवा ५०

मील दूर ओ-यी-यू-खी तक गया था जो नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित था। एम० जुलीन ने इस नाम को हयामुख पढ़ा है परन्तु इसे सम्भवतः अयोमुख अथवा "लौह मुख" पढ़ा जा सकता है जो प्राचीन दानवों का एक नाम था। इनमें कोई भी नाम पुराने नगर के स्थान की ओर संकेत नहीं करता है परन्तु यदि अयूनो को दौण्डिया-खेडा के अनुरूप स्वीकार करने का मेरा प्रस्ताव उचित है तो यह निश्चित है कि हया-मुख गङ्गा नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित दौण्डिया खेडा था। ह्वेनसांग के अनुसार नगर की परिधि २० ली अथवा ३ मील थी परन्तु आकार से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि दौण्डियाखेडा किसी भी समय इतना विस्तृत रहा हो। अब भी यहाँ १=५ फुट वर्गाकार ध्वस्त दुर्ग एवम् दो भवनो की दीवारो को देखा जा सकता है जिन्हें राजा एवं रानी का महल बताया जाता है। परन्तु चूंकि यह स्वीकार किया जाता है कि दौण्डियाखेडा बैस राजपूतो की राजधानी थी जिन्होने अवध मे बैसवाड जिले को अपना नाम दिया था, यह निश्चित है कि यह स्थान किसी समय अधिक विस्तृत रहा हो। दोण्डिया अथवा दौण्डिया का अर्थ है "ढोल बजाने वाला" और संभवतः किसी सयासी के लिये प्रयोग मे लाया गया होगा जिसने खेडा अथवा 'टीला' पर अपना निवास स्थान बनाया था और चूंकि टोले के ध्वस्त हो जाने तक यह नाम नहीं दिया गया था अतः नामो की भिन्नता से दौण्डियाखेड़ा को हयामुख के अनुरूप स्वीकार करने मे कोई बाधा खडी नहीं होती।

ह्वेनसांग के अनुसार हयमुख को परिधि २५०० ली अथवा ४१७ मील थी जो सम्भवतः बहुत अधिक है। परन्तु चूंकि दौण्डिया खेड़ा बैस राजपूतों की राजधानी थी अतः मेरा निष्कर्ष है कि जिले मे वर्तमान बैसवाड का सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित रहा होगा जा कानपुर से सलोन तक सई तथा गङ्गा नदियो का मध्यवर्ती क्षेत्र है। परन्तु चूंकि इन सीमाओं के भीतर इसको परिधि केवल २०० मील है यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग के समय मे यह जिला गङ्गा नदी के दक्षिण की ओर विस्तृत था। अतः इसकी सम्भावित सीमायें उत्तर मे गङ्गा एव दक्षिण मे यमुना थीं और इस सम्भावना को टाड का समर्थन प्राप्त है। जिन्होंने बै.वाड को गङ्गा एवं यमुना के मध्यवर्ती दोआब का एक विस्तृत जिला कहा है।

प्रयाग

हयामुख से तीर्थ यात्री ६०० ली अथवा ११६ मील दक्षिण पूर्व मे प्रयाग तक गया था जो गङ्गा एवं यमुना के सङ्गम पर एक तीर्थ स्थान था, एवं जहाँ कुछ शताब्दियो के बाद अकबर ने इलाहाबाद का दुर्ग बनवाया था जिसे शाहजहाँ ने अलाहाबाद का नाम दिया था। ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी एवं दिकांश दौण्डिया खेड़ा से प्रयाग को दूरी एवं दिकांश से ठीक-ठीक मिलता है। गङ्गा के

दक्षिण में निकटतम मार्ग से इसकी दूरी १०४ मील है। परन्तु चूँकि तीर्थ यात्री ने उत्तरी मार्ग का अनुसरण किया था, इसकी दूरी बढ़ कर ११५ अथवा १२० मील रही होगी। उसके अनुसार नगर दो नदियों के सङ्गम स्थान पर एवं एक विशाल रेतीले समतल के पश्चिम मे अवस्थित था। नगर के मध्य में ब्राह्मणों का एक मन्दिर था। जहाँ एक मुद्रा के दान से उतना ही पुण्य प्राप्त होता था जितना अन्य स्थानों पर १००० मुद्राओ के दान से हो सकता है। मन्दिर के मुख्य कक्ष के सम्मुख दूर-दूर तक फैली हुई शाखाओ सहित एक विशाल वृक्ष था जिसे एक नर भक्षी राक्षस का निवासास्थान बताया जाता था। यह वृक्ष उन तीर्थ यात्रियों के अवशेष स्वरूप हड्डियों से घिरा हुआ था जो मन्दिर के सम्मुख अपना जीवन बलिदान करते थे। यह प्रथा आदि काल से चली आ रही थी।

मेरे विचार से इसमे सन्देह नही कि तीर्थ यात्री द्वारा बताया गया प्रसिद्ध वृक्ष सर्व ज्ञात अक्षय वट है जो आज भी इलाहाबाद के स्थान पर पूजा की वस्तु है। यह वृक्ष अब भूमि के नीचे एक छाये हुए आँगन मे है जो पूर्ववर्ती समय में खुला था एवं जो मेरे विश्वासानुसार ह्वेनसांग द्वारा बताए गये मन्दिर का अवशेष है। यह मन्दिर इलाहाबाद दुर्ग के अन्दर एलनबरो बैरकों के पूर्व मे तथा अशोक एवं समुद्र गुप्त के स्तूप के ठीक उत्तर मे अवस्थित है। अतः सातवीं शताब्दी का नगर इसी स्थान पर रहा होगा और यह वृक्ष की वर्तमान स्थिति के अनुरूप है क्योंकि मूल रूप से वृक्ष एवम् मन्दिर दोनों ही प्राकृतिक भूमि स्तर पर रहे होंगे परन्तु मलवे के निरन्तर एकत्रित होने के कारण यह दोनो मिट्टी के नीचे दब गये और अन्त मे मन्दिर का संपूर्ण निचला भाग भूमिगत हो गया। ऊपरी भाग काफी समय पूर्व से हटा दिया गया है तथा अब अक्षय वट देखने के लिये सीढ़ियो से होकर जाना पड़ता है जो छाये हुए एक चकोर आँगन की ओर जाती है। यह आँगन प्रत्यक्ष रूप से पूर्व काल में खुला हुआ था परन्तु पवित्र गूलर वृक्ष के अँधेरे में रखने एवं रहस्य पूर्ण बनाने के लिये पूरी तरह ढँक दिया गया है।

तत्पश्चात् अक्षय वट का उल्लेख रशीदुद्दीन ने जमाओत-तवारीख मे किया है, जिसमे उसने लिखा है कि "पराग का वृक्ष' यमुना एवं गङ्गा के सङ्गम पर अवस्थित है। चूँकि उसने अधिकांश सूचनायें अब्बुरहान से ली थीं। अतः इस उल्लेख की तिथि को सम्भवतः महमूद गजनी के समय से सम्बन्धित किया जा सकता है। सातवीं शताब्दी मे नगर एवं नदियों के सङ्गम स्थान के मध्य एक रेतोला मैदान था जिसकी परिधि दो मील थी और चूँकि अक्षय वट नगर के मध्य मे था, अतः यह सङ्गम स्थान से कम से कम एक मील दूर रहा होगा। परन्तु नौ शताब्दियों पश्चात् अकबर के शासन काल के प्रारम्भ में अब्दुल कादिर ने लिखा है कि "जनसाधारण वृक्ष से नदी

में छलांग लगाया करते थे।" इस कथन से मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग एवम् अकबर के मध्यवर्ती दीर्घ काल मे दोनो नदियों ने धीरे-धीरे सम्पूर्ण विशाल रेतीले मैदान को काट दिया तथा नगर की सीमा तक आ गई जिसमें पवित्र वृक्ष जल के किनारे आ गया। इसमे सन्देह नही कि इससे काफी समय पूर्व यह नगर निर्जन हो चुका था क्योंकि हम जानते है कि अकबर के शासन काल के २१ वें वर्ष अर्थात् ६८२ हिजरी अथवा १५७२ ईसवी मे इलाहाबाद का दुर्ग इसी स्थान पर बनवाया गया था। वस्तुतः प्रयाग नगर के स्थान पर वृक्ष के सम्बन्ध मे अबुरेहान के कथन से मुझे ऐसा यह विश्वास होता है कि नगर उसके समय से काफी समय पूर्व निर्जन हो चुका था। जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि अकबर द्वारा पुनर्निर्माण के समय तक किसी भी मुस्लिम इतिहास मे इसका एक बार भी नही उल्लेख किया गया।

जन साधारण की सामान्य प्रथा के अनुसार प्रयाग का नाम एक ब्राह्मण से लिया गया था जो अकबर के शासन काल में वहाँ रहता था। यह कथा इस प्रकार है कि जब सम्राट दुर्ग का निर्माण करवा रहे थे तो कलाकारो द्वारा सावधानी बरतने के बावजूद नदी की ओर की दीवारें बारम्बार गिर जाती थी। बुद्धिमान व्यक्तियो से विचार निमर्श करने पर अकबर को सूचना दी गई कि दीवारो की नीव को केवल मानव रक्त से सुरक्षित किया जा सकता है। तदोनुपरान्त घोषणा किये जाने पर प्रयाग नामक एक ब्राह्मण ने स्वेच्छा पूर्वक अपना जीवन इस शर्त पर अर्पित किया था कि दुर्ग को उसका नाम दिया जाए। इस निरर्थक कथा से, जिसे अक्षय वट को देखने के लिए आए तीर्थ यात्रियों को बड़े परिश्रम से बताया जाता है कम से कम एक उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करता है कि इन स्थानीय प्रथाओ मे अधिक विश्वास नही करना चाहिए। सातवी शताब्दी मे ह्वेनसांग ने प्रयाग के नाम का उल्लेख किया है और सम्भवतः यह नाम अशोक के शासन काल का जितना पुराना है जिसने लगभग २३५ ई० पूर्व में शिला स्तम्भ का निर्माण करवाया था जबकि सोलहवी शताब्दी के अन्त तक दुर्ग का निर्माण नही हुआ था। ह्वेनसांग के अनुसार प्रयाग जिले की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। परन्तु चूंकि यह जिला चारों ओर से अन्य जिलो से घिरा हुआ था। अतः मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि हमें इसके स्थान पर ५०० ली अथवा ८३ मील पढ़ना चाहिए एवम् जिले को गङ्गा तथा यमुना के संगम स्थान से ऊपर दोआब के छोटे प्रदेश तक सीमित समझना चाहिए।

कोशाम्बी

कोशाम्बी नगर प्राचीन भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थानों मे गिना जाता था एवम् इसका नाम ब्राह्मणों एवम् बौद्ध धर्मावलम्बियो में प्रसिद्ध था। कहा जाता है

कि इसकी स्थापना पुरूरवों के दसवें वन्शज कुसम्भ ने करवाई थी। परन्तु इसकी ख्याति अर्जुन पांडु के आठवें वन्शज चक्र के शासन काल में प्रारम्भ हुई थी जिसने गङ्गा द्वारा हस्तिनापुर को ध्वस्त किए जाने के पश्चात् कोशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था।

हिन्दुओं के प्राचीनतम महाकाव्य रामायण मे कोशाम्बी का उल्लेख किया गया है जिसके सम्बन्ध मे सामान्य धारणा के अनुसार इस काव्य की रचना ईसवी काल से पूर्व की गई थी। कवि कालिदास ने मेघदूत में कोशाम्बी के राजा उदयन की कथा का उल्लेख किया है जहाँ उसने लिखा है कि—

कालिदास ५०० ईसवी के कुछ समय पश्चात् हुआ था। सोमदेव की वृहत् कथा मे उदयन की कथा को पूर्ण विस्तार मे दिया गया है परन्तु लेखक ने दो सतानिको के मध्य वन्शानुक्रम मे त्रुटि की है। अन्त मे कोशाम्बी राज्य अथवा कोसाम्ब मण्डल का उल्लेख कडा के दुर्ग के प्रवेश द्वार मे एक शिलालेख में किया गया है जिसकी तिथि १०६२ सम्वत् अथवा १०३५ ईसवी है, और ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय यह राज्य कन्नोज से स्वतन्त्र था। वत्स-राज की राजधानी कोशाम्बी रत्नावली नामक एक रुचिपूर्ण नाटक का स्थान है जो राजा हर्षदेव के शासनकाल मे लिखा गया था जो सम्भवतः कन्नौज का हर्षवर्धन है क्योकि भूमिका मे एकत्रित व्यक्तियो मे "उसके चरणो मे झुके अनेक राजाओ का उल्लेख किया गया है।" ह्वेनसांग के आधार पर हमे यह ज्ञात है कि उपर्युक्त बात कन्नौज के शासन के सम्बन्ध मे सत्य थी परन्तु जिसे काश्मीर के हर्षदेव के सम्बन्ध मे कोई एक ब्राह्मण भी सत्य नही कह सकता है। अतः इस उल्लेख की तिथि ६०७ तथा ६५० ईसवी के मध्य रही होगी।

परन्तु कोशाम्बी के राजा उदयन का नाम सम्भवतः बौद्ध धर्मावलम्बियो मे बहुत प्रसिद्ध था। महावन्शो मे जिसकी रचना पाँचवी शताब्दी मे की गयी थी बताया गया है कि बौद्ध धर्मावलम्बियो की द्वितीय धार्मिक सभा मे कुछ समय पूर्व पवित्र यश वैशाली से भाग कर कोशाम्बी मे चले गये थे। ललित विस्तार मे जिसका चीनी अनुवाद ७० तथा ७६ ईसवी के मध्य किया गया था अतः जिसकी रचना ईसा काल के प्रारम्भिक समय मे की गई थी। कोशाम्बी के राजा सतानिक के पुत्र उदयन वत्स को बुद्ध के जन्म दिवस पर उत्पन्न हुआ बताया गया है। लङ्का की अन्य पुस्तको में कोशाम्बी को प्राचीन भारत की उन्नीस राजधानियो मे एक राजधानी के रूप में दिखाया गया है। तिब्बतियो मे उदयन वत्स कोशाम्बी के राजा के रूप मे ज्ञात है। रत्नावली में उसे वत्स राज कहा गया है तथा उसकी राजधानी को वत्स पट्टन कहा गया है। अतः यह कोशाम्बी का केवल अन्य नाम है। कहा जाता है कि बुद्ध ने अपने बौद्ध धर्म का छठाँ एवम् नवाँ वर्ष इस प्रसिद्ध नगर में व्यतीत किया था। अन्त में, ह्वेनसांग ने लिखा है कि बुद्ध की लाल चन्दन की काष्ठ प्रतिमा जिसे राजा उदयन ने

बुद्ध के जीवन काल में बनवाया था, राजाओ के प्राचीन महल में एक गुम्बद के नीचे खड़ी थी।

इस महान नगर, पश्चातवर्ती पाण्डु राजकुमारों की राजधानी एवम् बुद्ध की सर्वाधिक पवित्र प्रतिमा के स्थान की स्थिति की असफल खोज की गई है। ब्राह्मणो का सामान्य दावा है कि यह स्थान गङ्गा नदी अथवा इसके समीप था और कड़ा दुर्ग के प्रवेश द्वार पर कोशम्बो मण्डल अथवा कोशम्बी राज्य के नाम की खोज से इस सामान्य विश्वास की पुष्टि होती है यद्यपि प्रयाग अथवा इलाहाबाद से ह्वेनसांग द्वारा कथित दिकांश के अनुसार यमुना पर इस की स्थिति का संकेत मिलता है। जनवरी १८६१ में श्री बेले ने मुझे सूचित किया था कि उसे विश्वास है कि प्राचीन कोशम्बी को इलाहाबाद से लगभग ३० मील ऊपर यमुना नदी पर कोसम नाम के पुराने गाँव में ढूंढा जा सकता है। अगले माह मैं शिक्षा विभाग के बाबू शिव प्रसाद से मिला था जो पुरातत्व विषय मे अधिक रुचि रखते थे और उनसे मुझे यह सूचना प्राप्त हुई कि कोसम्ब अब भी कोशाम्बो नगर के रूप मे ज्ञात है एवम् इस समय भी जैनियो का एक महान तीर्थ स्थान है। तथा केवल एक शताब्दी पूर्व एक विशाल एवम् समृद्ध नगर था। इस सूचना के आधार पर मुझे पूर्ण सन्तोष है कि कोसम्ब ही किसी समय की प्रसिद्ध नगरी कोशाम्बी का स्थान था। फिर भी ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नहीं थे जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता था कि यह नगर यमुना नदी पर अवस्थित था परन्तु प्रमाणो की शृङ्खला मे इस त्रुटि को मैं कुछ ही समय पश्चात् बकुला की विचित्र कथा मे प्राप्त कर सका जिसका हार्डी ने विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है। शिशु बकुला ने कोशाम्बी में जन्म लिया था और जिस समय उसकी माता यमुना मे स्नान कर रही थी, वह, दुर्घटना वश नदी मे गिर गया एवम् एक मछली ने उसे निगल लिया और उसे बनारस ले गई। वहाँ पर यह मछली पकड कर एक स्त्री को बेच दी गई। मछली को काटते समय उसके पेट से जीवित शिशु निकला और स्त्री ने इस शिशु को पुत्र रूप मे ग्रहण कर लिया। अपने शिशु की इस विचित्र रक्षा को सुन कर उसकी वास्तविक माता बनारस गई और शिशु को लौटा दिए जाने की माँग की। यह माँग ठुकरा दी गई तत्पश्चात् इस विषय की राजा को सूचना दी गई जिसने यह निर्णय किया कि दोनों स्त्रियाँ बच्चे की माताएँ हैं। एक जन्म देने के कारण, दूसरी उसकी रक्षा और लालन-पालन करने के कारण। तद्नुसार शिशु का नाम बकुला अर्थात् "दो कुलो" का रखा गया। वह बिना अस्वस्थ्य हुए ६० वर्ष की आयु तक पहुँच गया, जब बुद्ध की शिक्षाओ से उसने धर्म परिवर्तन स्वीकार किया। बुद्ध ने उसे "अपने शिष्यों के उस वर्ग का नेता नियुक्त किया जो रोग मुक्त था। कहा जाता है कि तत्पश्चात अरहट अथवा बोद्ध भिक्षु बनने के बाद ६० वर्षों तक जीवित रहा।

चूँकि बकुला की यह कथा इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि

कोशाम्बी यमुना तट पर अवस्थित थी, अब केवल यह देखना है कि इलाहाबाद से कोसम की दूरी ह्वेनसांग द्वारा प्रयाग एव कोशम्बी की बताई गई दूरी से मिलती है। दुर्भाग्यवश चीनी तीर्थ यात्री की यात्राओ के वर्णन एवं जीवनी मे यह दूरी भिन्न-भिन्न दी गई है। जीवनी मे दी गई दूरी ५० ली है जबकि यात्राओ के विवरण में इसे ५०० ली लिखा गया है। चीन वासी के समय तीर्थ यात्री ने लिखा है कि प्रयाग एवं कोशाम्बी के मध्य उसने विशाल वनों एव नगे मैदानो से होकर सात दिवसीय यात्रा की थी। अब, चूँकि कोसम ग्राम इलाहाबाद के दुर्ग से केवल ३१ मील की दूरी पर है अतः अन्तिम कथन से कोसम एव कोशाम्बी को अनुरूपता की सभी सम्भावनायें लुप्त हो जायेगी। परन्तु आश्चर्य है कि इसी कथन से इनकी अनुरूपता का सर्वाधिक सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त होता है क्योकि बताया जाता है कि सङ्किसा तक तीर्थ यात्री का पश्चातवर्ती मार्ग एक माह मे पूरा किया जा सका था और चूँकि प्रयाग मे सङ्किसा की कुल दूरी केवल २०० मील है अतः तीर्थ यात्री की प्रतिदिन की औसत यात्रा ५½ मील से अधिक नही थी। इस धीमी प्रगति का सर्वाधिक सन्तोषजनक उत्तर इस तथ्य से प्राप्त किया जा सकता है कि प्रयाग से सङ्किसा की यात्रा धार्मिक यात्रा थी जिसका नेतृत्व स्वय कनौज के सम्राट हर्ष वर्धन कर रहे थे और उनके साथ भारतीयों के अपार समूह एव सहस्रो बौद्ध भिक्षुओ के अतिरिक्त कम से कम १८ आश्रित राजा थे। इस गणना के अनुसार प्रयाग से कोशाम्बी की दूरी ३८ मील रही होगी जो वास्तविक मार्ग दूरी से ठीक-ठीक मिलती है। मैंने कोसम जाते हुए इसकी दूरी ३७ मील आंकी थी जबकि अन्य मार्ग से वापसी पर यह दूरी ३५ मील आकी गई थी। ह्वेनसांग की ५० ली एव ५०० ली को भिन्न-भिन्न दूरियों का एक-मात्र सम्भावित उत्तर मेरे विचारानुसार इस तथ्य मे ढूँढा जा सकता है कि चूँकि उसने भारतीय योजन को ४० ली प्रति योजन अथवा १० ली प्रति कोस की दर से चीनी ली मे परिवर्तन किया था अतः उसने १५ कोस के स्थान पर १५० ली लिखा होगा जो कोसम की जनता के सामान्य विश्वासानुसार इलाहाबाद एव कोसम के मध्य वास्तविक दूरी है परन्तु चाहे यह उत्तर शुद्ध है अथवा नही यह पूर्णतयः निश्चित है कि कोसम प्राचीन कोशाम्बी के वास्तविक स्थान पर अवस्थित है क्योकि न केवल जनसाधारण स्वय यह दावा करते है वरन् अकबर के समय के एक शिलालेख मे इसका विशेष उल्लेख किया गया है। खण्डहरो के मध्य खडे विशाल स्तूप पर लिखा हुआ है कि यह कोशाम्बीपुर है।

कोशाम्बी के वर्तमान खण्डहरो मे मिट्टी की दीवारें एवं दुर्ग की रक्षा हेतु बनाये बुर्ज सम्मिलित हैं जिनकी परिधि २३,१०० फुट अथवा ठीक चार मील तीन फर्लाङ्ग है। दीवारों की सामान्य ऊँचाई सामान्य स्तर से ३० से ३५ फुट है परन्तु बुर्ज अधिक ऊँचे हैं। उत्तरी बुर्ज ५० फुट ऊँचे हैं जबकि दक्षिणी पश्चिमी एवं दक्षिणी पूर्वी कोणों

के बुर्ज ६० फुट से अधिक ऊँचे हैं। मूल रूप से दुर्ग के चारों ओर खाईयाँ थीं परन्तु वर्तमान समय मे मिट्टी की दीवार के नीचे कुछ खोखली खाईयाँ हैं। उत्तरी दीवार की लम्बाई ४,५०० फुट है, दक्षिणी दीवार ६,००० फुट, पूर्वी दीवार ७५०० फुट तथा पश्चिमी दीवार ५,१०० फुट लम्बी है अथवा कुल मिलाकर इनकी लम्बाई २६,१०० फुट है। उत्तरी एव दक्षिणी दीवारो की लम्बाई मे भिन्नता इस कारण थी कि मूल रूप में दुर्ग का विस्तार नदी की ओर था परन्तु मेरा विश्वास है कि पश्चिमी एवं पूर्वी दीवारो की लम्बाई मे भिन्नता पूर्णतयः यमुना के कटाव के कारण है जिसमे दीवारो का दक्षिण-पश्चिमी कोण नदी के कटाव के कारण लुप्त हो गया था। अब दक्षिण दिशा मे पश्चिमी दीवार के अर्द्ध भाग का कोई चिह्न शेष नही है और गढवा ग्राम के गृह नदी के ऊपर लटकती चट्टान के किनारे पर बने हुए हैं। दुर्ग के दक्षिण पश्चिमी कोण पर बने पक्का बुर्ज से प्रभासा तक ठीक चार मील की दूरी तक नदी की पहुँच २०° उत्तर पूर्व है जबकि ह्वेनसाग के समय मे कोशाम्बी के दक्षिण पश्चिम मे १½ मील की दूरी पर एक गुफा एव दो स्तूप थे। इन सभी समान परिस्थियो के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि दुर्ग की पश्चिम दीवार मूल रूप से सम्भवतः उतनी ही लम्बी थी जितनी पूर्वी दीवार। इस प्रकार पश्चिमी दीवार की लम्बाई में २४०० फुट अथवा लगभग आधे मील की वृद्धि हो जायेगी तथा दीवारो की सम्पूर्ण परिधि बढ़ कर ४ मील ७ फर्लाङ्ग हो जायेगी जो ह्वेनसाग द्वारा बताई गई दूरी अर्थात ३० ली अथवा ५ मील के माप से केवल एक फर्लाङ्ग कम है। अतः नाम, आकार एवं स्थिति, इन तीनो बातो मे वर्तमान कोसम, सातवी शताब्दी मे ह्वेनसाग द्वारा वर्णित प्राचीन कोशम्बी से ठीक-ठीक मिलता है।

ह्वेनसाग के अनुसार कोशाम्बी की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी जो पूर्णतयः असम्भव है क्योंकि यह नगर चारो ओर समीप के अन्य जिलों से घिरा हुआ था। अतः मै सहस्र के स्थान पर सौ पढ़ूँगा एव इस जिले की परिधि को ६०० ली अथवा १०० मील निर्धारित करूँगा।

कुशपुरा

कोशाम्बी से चीनी तीर्थ यात्री ने उत्तर पूर्व दिशा में एक विस्तृत वन से होकर गङ्गा नदी तक यात्रा की और नदी को पार करने के पश्चात् वह उत्तर की ओर मुड गया और ७०० ली अथवा ११७ मील की दूरी पर किया-शी पू-लो नगर में पहुँचा जिसे एम० जुलीन ने उचित रूप से कसपुरा पढा है। (१) इस नगर की स्थिति को

(१) एम० जुलीन की 'ह्वेनसांग' नामक पुस्तक के अनुसार तीर्थ यात्री की 'जीवनी' में कुशपुरा का कोई उल्लेख नहीं किया गया है एवं कोशाम्बी से विशाखा की दूरी ५०० ली पूर्व बताई गई है।

निर्धारित करने में तीर्थ यात्री का विसाखा तक १७० ली से १८० ली अथवा २८ से ३० मील का पश्चानवर्ती मार्ग कोशाम्बी से दिकांश एवम् दूरी के समान महत्वपूर्ण है क्योंकि ह्वेनसांग का विसाखा, जैसा कि मैं अभी बताऊँगा, फाह्यान के साची तथा हिन्दुओं के साकेत अथवा अयोध्या के समान है और इस प्रकार अपनी खोज मे हमें अपने निर्देशन हेतु कोशाम्बी एवम् अयोध्या के दो सुनिश्चित बिन्दु प्राप्त हो जाते हैं। मानचित्र पर देखने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोमती (अथवा गुमती) नदी पर अवस्थित सुल्तानपुर का पुराना नगर इङ्गित स्थान पर अवस्थित है। अब इस नगर का हिन्दु नाम कुशभवनपुर अथवा साधारण कुशपुरा था जो ह्वेनसांग द्वारा दिये गये नाम के प्रायः समान है। श्री बेने द्वारा राजा मानसिंह से उधृत सूचना को ध्यान मे रखते हुए कि 'सुल्तानपुर के समीप एक स्तूप था।' मैने तत्कालिक निर्जन नगर के एक ओर अपना पडाव डाला एवम् सम्पूर्ण स्थान को सावधानी पूर्वक खोज की परन्तु मेरी खोज व्यर्थ गई। न तो मैं किसी स्तूप के चिह्न प्राप्त कर सका न ही मैं किसी प्रकार के प्राचीन खण्डहरो के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त कर सका। परन्तु सुल्तानपुर से प्रस्थान के दूसरे दिन मुझे सूचना मिली कि ५ मील उत्तर पश्चिम मे महमूदपुर नामक गाँव एक प्राचीन टीले पर अवस्थित है जो सुल्तानपुर के टीले की अपेक्षा अधिक बडा है और फैजाबाद पहुँचने पर मुझे रायल इञ्जीनियर्स के लेफ्टीनेन्ट स्वेटेन्हम से सूचना मिली कि सुल्तानपुर के उत्तर पश्चिम मे एक स्तूप विद्यमान है जो इस गाँव से अधिक दूर नही है। अतः मेरा निष्कर्ष है कि सुल्तानपुर अर्थात् प्राचीन कुशपुरा ही ह्वेनसांग के कसपुर का स्थान है और उल्लिखित दूरियो पर ध्यान देने से यह अनुरूपता अधिक निश्चित हो जायेगी।

कोशाम्बी छोडने पर तीर्थ यात्री सर्व प्रथम गङ्गा नदी तक उत्तर-पूर्व दिशा में गया और नदी को पार करने के पश्चात् कुसपुरा तक उत्तर दिशा मे गया। उसकी यात्रा की कुल दूरी ११७ मील थी। अब कोसम, के उत्तर पूर्व मे गङ्गा नदी के दो विशाल घाट माऊ सराय एवम् फाफामऊ मे थे। प्रथम घाट ४० मील दूर था जबकि दूसरा घाट ४३ मील की दूरी पर था। परन्तु चूंकि यह दोनो घाट एक दूसरे के समीप है एवम् इलाहाबाद के ठीक उत्तर में है अतः किसी भी घाट से गङ्गा नदी को पार करने से कुसपुरा तक कुल दूरी समान रहेगी। फाफामऊ से सुल्तानपुर उत्तर दिशा में एवम् ६६ मील की दूरी पर है और कोसम से सुल्तानपुर की कुल दूरी १०६ मील है जो ह्वेनसांग द्वारा कथित ७०० ली अथवा ११६⅔ मील से कुल आठ मील कम है। जबकि दोनो दिकांश उसके कथन से ठीक समानता रखती है। कुसपुरा से विशाखा तक तीर्थ यात्री ने उत्तर दिशा का अनुसरण किया था और कुल दूरी १७० ली से १८० ली अथवा २८ मील से ३० मील थी। अब, वर्तमान अयोध्या प्राचीन अयोध्या अथवा साकेत सुल्तानपुर के ठीक उत्तर में है और निकटतम बिन्दु तक इसकी दूरी ३०

मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी से केवल ६ मील अधिक है। चूंकि प्रथम दूरी ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी से कम है और अन्तिम दूरी इससे अधिक है अतः मैं एक सम्भावित के रूप मे इस बात का प्रस्ताव करूंगा कि हमारे आंकडे महमूदपुर ग्राम से लिये जाने चाहिए जिससे कोसम से कुसपुरा के बौद्ध मठ की दूरी ११४ मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी ० से तीन मील के भीतर आ जायेगी और अयोध्या का पश्चातवर्ती मार्ग को ३६ मील से घट कर ३१ मील रह जायेगा जो चीनी तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी से एक मील कम है। चूंकि सभी दिकांश ठीक-ठीक मिलते हैं और चूंकि दोनो स्थानो के नाम प्रायः समान हैं अतः मेरा विचार है कि सुल्तानपुर अथवा कुशपुरा को ह्वेनसांग के कसपुरा के अनुरूप स्वीकार करने मे सङ्कोच नही होना चाहिये।

बताया जाता है कि कुशपुर अथवा कुश भवन पुर का नाम राम के पुत्र कुश के नाम पर रखा गया था। मुस्लिम आक्रमण के कुछ ही समय पश्चात् यह नगर भार राजा नन्द कुँवर के अधीन था जिसे सुल्तान अलाउद्दीन गोरी (खिल्जी) ने पदच्युत कर दिया था। विजेता ने नगर की सुरक्षा पंक्ति को सुदृढ़ बनाया, यहाँ एक मस्जिद का निर्माण करवाया एवं इस स्थान के नाम को परिवर्तित कर सुल्तानपुर कर दिया। इसमे सन्देह नहीं कि कुशपुर के संस्थापक ने तीन ओर से गोमती अथवा गुमती नदी से घिरे होने के परिणाम स्वरूप सैनिक दृष्टिकोण से अनुकूल स्थान होने के कारण इस स्थान का निर्वाचन किया था। वर्तमान समय मे यह स्थान पूर्णतयः निर्जन है। यहाँ के सभी निवासी नदी के दूसरे अथवा दक्षिणी तट पर नवीन नगर मे चले गये है। सुल्तानपुर के ध्वस्त दुर्ग के स्थान पर अब ७५० फुट वर्गाकार टीला है जिसके चारों किनारों पर ईंटो के बने बुर्ज हैं। चारो ओर से यह टीला ध्वस्त नगर के टूटे हुए भवनों से घिरा हुआ है। कुल मिलाकर दोनों का क्षेत्र आधा वर्ग मील है अथवा इसकी परिधि २ मील है। सुल्तानपुर के आकार का यह अनुमान कुशपुर के सम्बन्ध में ह्वेनसांग द्वारा दिये गये अनुमान से समीपता रखता है। ह्वेनसांग के अनुसार इसकी परिधि १० ली अथवा १$\frac{2}{3}$ मील थी।

सुल्तानपुर के अथवा कुशपुर के १८ मील दक्षिण पूर्व मे हिन्दुओ का एक प्रसिद्ध स्थान है जिसे धोपापापुर कहा जाता है। यह गोमती नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर तथा गढा अथवा शेर की गढ़ी की दीवारों के नीचे बसा हुआ है। धोपाप का स्थान अधिक प्राचीन है क्योंकि चारो ओर आधे मील तक सभी खेत ईंटो एव बर्तनों के टुकड़ो से ढके हुए हैं।

विसाखा, साकेत, अथवा अयुध्या

फाहियान के "शाची के विशाल राज्य" अथवा ह्वेनसांग के विसाखा को

स्थिति के सम्बन्ध मे अधिक कठिनाई का अनुभव किया गया है परन्तु मैं सन्तोषजनक ढङ्ग मे यह दिखाने की आशा करता हूँ कि दोनो स्थान ब्राह्मणो के साकेत अथवा अजुध्या के समान हैं। यह कठिनाई का मुख्य कारण यह है कि फाहियान ने शो-वी अथवा सरावस्ती को शाचो के दक्षिण मे दिखाया है जबकि ह्वेनसांग ने इसे उत्तर--पूर्व में दिखाया है। इसी प्रकार इस कठिनाई का आंशिक कारण सकिसा के सर्व-प्रसिद्ध नगर से ३० योजन की दूरी के स्थान पर ७+३+१० = २० योजन की कथित दूरी है। लंका की बौद्ध पुस्तको मे वर्णित एक हिन्दू तीर्थ-यात्री की गोदावरी तट से सेवेत अथवा सरावस्ती की यात्रा के मार्ग से दिकाश मे त्रुटि का ज्ञान होता है। यह तीर्थ यात्री महिस्सती तथा उज्जैनी अथवा महेशमती तथा उज्जैन के पार करने के बाद कोशाम्बी पहुँचा था और तत्पश्चात साकेत से होकर सेवेत तक उसी मार्ग से गया था जिसका ह्वेनसांग ने अनुसरण किया था। अतः सेवेत को साकेत के उत्तर मे स्वीकार करने के पक्ष मे हमारे पास दो प्रमाण है। जहाँ तक दूरी का सम्बन्ध है मैं पुन. लका की बौद्ध पुस्तको का उल्लेख करूंगा जिनमे लिखा गया है कि सक ़पुर (अथवा सगकस्यपुर, वर्तमान सकिसा) से सेवेत की दूरी ३० योजन थी। अब फाहि-यान ने सकिसा से कन्नौज की दूरी ७ योजन, तत्पश्चात गङ्गा नदी पर होली तक ३ याजन एवं वहाँ से शाचो तक १० योजन अथवा कुल मिला कर २० योजन अथवा लका की पुस्तको से १० योजन कम बताई है। फाह्यिान के कथन का त्रुटि पूर्ण होना इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उसकी दूरी शाचो को लखनऊ के आस-पास दिखा-येगी जबकि अन्य दूरी इसे अयोध्या अथवा फैजाबाद के समीप, अथवा ह्वेनसांग की मार्ग सूचक पुस्तक मे इङ्गित स्थान पर दिखायेगी। यहाँ भी "लम्बी दूरी के समर्थन मे" हमे दो विद्वानो का समर्थन प्राप्त है। अतः इस बात की घोषणा करने मे मुझे कोई सङ्कोच नही है कि फाहियान द्वारा शो वी से शाची का कथित दिकाश त्रुटिपूर्ण है तथा "दक्षिण" के स्थान पर 'उत्तर' पढ़ा जाना चाहिये।

अब मुझे यह दिखाना है कि फाहियान की शाची ही ह्वेनसांग की विशाखा नगरी थी तथा दोनो ही साकेत अथवा अयोध्या के अनुरूप थीं। शाची के सम्बन्ध मे फाहियान ने लिखा है कि "नगर को दक्षिणी द्वार से छोडने पर आपको सडक के पूर्व मे वह स्थान दिखाई देगा जहाँ बुद्ध ने बिच्छु के वृक्ष की एक शाखा काट कर भूमि मे लगा दी थी जहाँ सात फुट ऊँचा होने के पश्चात् इसके आकार मे न वृद्धि हुई न कमी।" अब विशाखा के सम्बन्ध में ह्वेनसाग ने ठीक इसी कथा का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि "राजधानी के दक्षिण में, तथा सड़क की बाईं ओर (अर्थात् पूर्व की ओर, जैसा कि फाहियान ने लिखा है) अन्य धार्मिक वस्तुओं के ६ अथवा ७ फुट ऊँचा एक विचित्र वृक्ष था जो सदैव एक समान रहता था, न इनमें वृद्धि होती थी न कमी।" यह महात्मा बुद्ध का प्रख्यात दातुन वृक्ष है जिसके सम्बन्ध में मैं आगे चल

कर लिखूंगा परन्तु यह मुझे उत्पत्ति, ऊँचाई एवम् स्थिति के सम्बन्ध मे इस वृक्ष के दोनों विवरणों मे अत्यधिक समानता का उल्लेख करने की आवश्यकता है। मेरे विचार में उपर्युक्त विवरणों की समानता के कारण इस बात मे सन्देह नहीं रह जाता कि फ.हियान की शाची ह्वेनसांग की विसाखा नगरी थी।

जहाँ तक विसाखा एवं हिन्दुओ के साकेत नगर की अनुरूपता का प्रश्न है मैं अपने प्रमाणो को मुख्य रूप से निम्न बातो पर आधारित करता हूँ। प्रथम यह कि विसाखा जो बौद्ध इतिहास की सभो स्त्रियो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध थी—वह श्रावस्ती के धनाढ्य व्यापारी मृगर के पुत्र पूर्धन मे अपने विवाह से पूर्व साकेत की निवसिनी थी, द्वितीय—ह्वेनसाग के अनुसार बुद्ध ने विसूखा मे ६ वर्ष व्यतीत किये थे जबकि टर्नर के पाली इतिहास मे कहा गया है कि बुद्ध ने १६ वर्ष साकेत मे व्यतीत किये थे। (१)

लका की पुस्तको मे कुलीन कुमारी विसाखा की कथा को विस्तारपूर्वक दिया गया है। हार्डी के अनुसार (२) उसने श्रावस्ती में पूर्ववाराम का निर्माण करवाया था जिसका उल्लेख ह्वेनसाग ने भी किया है। अब, साकेत मे भी एक पूर्व वाराम है और इसमें सन्देह नही किया जा सकता कि इम मठ का निर्माण भी उसने करवाया था। वह एक धनाढ्य व्यापारी धनजा की पुत्री थी जो राजगृह से आकर साकेत मे बस गया था। अब, प्राचीनतम अङ्कित मुद्राओं मे जो केवल अयोध्या मे प्राप्त की गई हैं। हमे धनदेव एव विशाखा दत्ता के नाम की कुछ मुद्राये मिलती हैं। इस बात का का उल्लेख मैंने इस कारण किया है कि मेरे विचार मे इससे इस बात को सम्भावना का पता चलता है कि अयोध्या अथवा साकेत मे धनन तथा विशाखा का परिवार अत्यधिक प्रसिद्ध था। अतः उनके नाम की पुनर्वृत्ति से एव स्त्री की महान प्रसिद्धि से मेरा अनुमान है कि नगर को सम्भवतः उसके नाम पर विसाखा कहा गया था।

अन्य प्रमाण जिसे मैंने बुद्ध निवास के वर्षों से प्राप्त किया है प्रत्यक्ष एवं ठोस है। लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तको के अनुसार निर्वाण के समय बुद्ध ३५ वर्ष की आयु के थे। तत्पश्चात उन्होने २० वर्षों तक उत्तरी भारत के विभिन्न स्थानो पर धर्म प्रचार किया और २५ वर्ष की अपनी शेष आयु में उन्होंने श्रावस्ती के जेतवन मठ मे एवं १६ वर्ष साकेतपुर के पुब्बारामो मठ मे व्यतीत किये थे। बर्मा की ऐतिहासिक पुस्तकों मे इन संख्याओ को १६ एवं ६ वर्ष बताया गया है और अन्तिम संख्या ह्वेनसाग द्वारा दी गई संख्या से ठीक-ठीक मिलती है। इससे अधिक ठोस प्रमाण और

---

(१) मैं तीर्थ यात्री के ६ वर्षों को १६ वर्षों के स्थान पर त्रुटि समझता हूँ क्योकि बुद्ध के सम्पूर्ण प्रचार काल का लङ्का की पुस्तकों में सावधानी पूर्वक वर्णन किया गया है।

(२) लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तको मे भी पुब्बारामो का उल्लेख मिलता है।

क्या हो सकता है। केवल दो ही ऐसे स्थान थे जहाँ बुद्ध कुछ समय तक ठहरे थे। अर्थात् श्रावस्ती एवं साकेत। विसाखा एवं साकेत एक ही स्थान के नाम थे।

मेरा विश्वास है कि साकेत एव विसाखा की अनुरूपता को सदा स्वीकार किया गया है परन्तु इस बात का मुझे ज्ञान नहीं है कि इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये कोई प्रमाण प्रस्तुत किया गया हो। डी० कोरोस ने इस स्थान का उल्लेख करते हुए केवल इतना कहा है "साकेतना अथवा अयोध्या" तथा एच० एच० विल्सन ने अपने सस्कृत शब्द कोष में साकेत को "अयोध्या नगरी" कहा है। परन्तु इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर रामायण एवं रघुवंश के अनेक विवरणों से प्राप्त किया जा सकता है जिनमें साकेत नगर को सामान्यतः राजा दशरथ एवं उनके पुत्रों की राजधानी कहा गया है। परन्तु रामायण की निम्न पंक्ति जिसे लखनऊ के एक ब्राह्मण ने मुझे बताया था उपर्युक्त अनुरूपता को सिद्ध करने हेतु पर्याप्त हैं।

साकेताम नगरम राजा नामना दशरथोबली
तास्मयी देया मया कन्या कैकेयी नाम तो जना।

कैकेयी के पिता अश्वजीत ने साकेत नगर के राजा दशरथ को अपनी पुत्री देने का प्रस्ताव किया।

रामायण मे अयोध्या अथवा साकेत के प्राचीन नगर को सरयू अथवा सरजू नदी के तट पर अवस्थित बताया गया है। कहा जाता है कि इसका व्यास १२ योजन अथवा १०० मील था परन्तु हमें इसके स्थान पर १२ कोस अथवा २४ मील पढ़ना चाहिये क्योंकि अपने सभी उद्यानों सहित यह नगर इतने क्षेत्र तक विस्तृत रहा होगा। पश्चिम में गुप्तार घाट से पूर्व में रामघाट तक सीधी रेखा से कुल दूरी प्रायः ६ मील है और यदि हम यह अनुमान लगायें कि उपनगरों एवं उद्यानों सहित यह नगर दो मील की गहराई तक सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र मे विस्तृत रहा होगा तो इसका व्यास १२ कोस के छोटे आंकड़ो से ठीक-ठीक मिल जायेगा। वर्तमान समय मे जनसाधारण राम घाट एवं गुप्तार घाट की ओर प्राचीन नगर की पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाओ के रूप मे सकेत करते हैं और इनके अनुसार दक्षिणी सीमा ६ मील की दूरी पर भदरसा के समीप भरत कुण्ड तक विस्तृत थी। परन्तु चूँकि इन सीमाओ मे तीर्थ-यात्रा के सभी स्थान आ जाते हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जन साधारण इन्हें भी प्राचीन नगर की सीमाओ मे सम्मिलित समझते हैं परन्तु निश्चय ही ऐसा नहीं था। आईन-ए-अकबरी में प्राचीन नगर को लम्बाई में १४८ मील एवं चौड़ाई मे ३६ कोस बताया गया है। अन्य शब्दो में इसमें घाघरा नदी के दक्षिण अवध का सम्पूर्ण प्रान्त सम्मिलित

था । बड़ी संख्याओं की उत्पत्ति स्पष्ट है । रामायण के १२ योजन जो ४८ कोस के समान हैं राम की नगरी के लिये अत्यधिक कम समझे गये अतः ब्राह्मणों ने अपने अतिशयोक्ति पूर्ण विचारों के अनुकूल बनाने के लिये इसमें १०० कोस की वृद्धि कर दी । अयोध्या का वर्तमान नगर जो प्राचीन नगर के स्थान के उत्तर पूर्वी कोण तक सीमित है—केवल २ मील लम्बा एवं तीन चौथाई मील चौड़ा है परन्तु इसका आधा क्षेत्र भी बसा हुआ नहीं है और सम्पूर्ण क्षेत्र जर्जर अवस्था का संकेत करता है । यहाँ अन्य प्राचीन नगरों के स्थानों के प्रतिकूल खण्डित मूर्तियों एवं कला पूर्ण स्तम्भों से ढँके उन्नत टीले नहीं हैं परन्तु यहाँ केवल कूड़े के निचले-असमान ढेर दिखाई देते हैं जिनसे सभी ईंटें पड़ोसी फैजाबाद नगर के भवनों के लिये ले जाई गई हैं । यह मुस्लिम नगर जो २½ मील लम्बा एवं एक मील चौड़ा है मुख्य रूप से अयोध्या के खण्डहरों से निकाली गई सामग्री से बना हुआ है । दोनों नगर कुल मिलाकर प्रायः ६ वर्ग मील अथवा राम की प्राचीन राजधानी के सम्भावित आकार के लगभग आधे भाग में विस्तृत हैं । फैजाबाद में किसी महत्व का एकमात्र भवन वृद्ध भाओं बेगम का मकबरा है जिसकी कथा को वारेन हेस्टिंग्स के प्रसिद्ध मुकदमे के समय प्रचलित किया गया था । फैजाबाद, अवध के प्रथम नवाब की राजधानी थी परन्तु १७७५ ई० में आसफुद्दौला ने इसे त्याग दिया था ।

सातवीं शताब्दी में विसाखा नगरी का घेरा केवल १६ ली अथवा २⅔ मील अथवा इसके वर्तमान आकार के आधे से अधिक नहीं था परन्तु सम्भवतः इसकी जन-संख्या अधिक थी क्योंकि आधुनिक नगर का एक तिहाई भाग भी बसा हुआ नहीं है । ह्वेनसांग ने जिले की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील बताया है जो अत्यधिक अतिशयोक्ति पूर्ण है । परन्तु जैसा कि मैं उल्लेख कर चुका हूँ—इस प्रदेश में तीर्थ-यात्री के मार्ग में आने वाले कुछ जिलों के अनुमानित आंकडे इतने अतिशयोक्तिपूर्ण है कि यह प्रायः असम्भव है कि सभी आंकडे शुद्ध हो । अतः मैं वर्तमान उदाहरण में ४०० ली अथवा ६७ ली पढ़ूँगा एवं विसाखा की सीमाओं को अयोध्या के आस-पास, घाघरा एवं गोमती नदियों के मध्यवर्ती छोटे क्षेत्र तक सीमित करूँगा ।

श्रावस्ती

अयोध्या अथवा अवध की प्राचीन सीमा सरजू अथवा घाघरा नदी द्वारा दो विशाल प्रान्तों में विभाजित थी । उत्तरी प्रदेश उत्तर कोशल कहलाता था तथा नदी का दक्षिणी प्रदेश बनौधा कहाता था । प्रत्येक भाग दो जिलों में विभाजित था । बनौधा प्रान्त में इन जिलों को पच्छिम रात तथा पूरब रात अथवा पश्चिमी एवं पूर्वी जिले कहा जाता था जबकि उत्तर कोशल में राप्ती के दक्षिण में गौडा (आधुनिक गोण्डा) तथा राप्ति अथवा रावती—जैसा कि अवध में इसे सामान्य रूप से पुकारा जाता है—के

उत्तर में कोशल जिला था। इनमें कुछ एक नाम पुराणों में मिलते हैं। इस प्रकार वायु पुराण में कहा गया है कि राम के पुत्र लव ने उत्तर कोशल में शासन किया था, परन्तु मत्स्य लिङ्ग एवं कर्म पुराण मे श्रावस्ती को गौंडा की राजधानी कहा गया है। जब हमे इस बात का पता चलता है कि गौडा उत्तर कोशल का एक उप खण्ड मात्र था एवं श्रावस्ती के खण्डहर वस्तुतः गौडा—जिले (मान चित्र के गोण्डा) मे प्राप्त हुए हैं तो उपर्युक्त प्रत्यक्ष त्रुटि को सन्तोष जनक ढङ्ग से सुलझाया जा सकता है। गोंडा का विस्तार राप्ती नदी पर बलरामपुर के प्राचीन नाम से सिद्ध होता है जो पूर्व-वर्ती समय में राम गढ़-गोंडा था। अतः मेरा अनुमान है कि गौड़ ब्राह्मण एवम् गौड़ मूल रूप से इस जिले के निवासी रहे होगे न कि बङ्गाल मे मध्य कालीन गौडा नगर के। घाघरा नदी के दाहिने तट पर अयोध्या एवम् जहांगीराबाद में, गोंडा, पंजपुर तथा वाम तट पर गोडा अथवा गोडा जिले के जैसनो में एवम् गोरखपुर के पड़ोसी जिले के अनेक भागों में इस (गौड़) नाम के ब्राह्मण अधिक संख्या मे मिलते हैं। अतः घाघरा के दक्षिण मे अवध अथवा बनौधा की राजधानी अयोध्या थी जबकि श्रावस्ती घाघरा के उत्तर मे अवध अथवा उत्तर कोशल की राजधानी थी।

बौद्ध-धर्म के इतिहास मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थानों में एक स्थान के रूप में श्रावस्ती के प्रसिद्ध नगर की स्थिति ने अधिक समय तक हमारे विद्वानों को भ्रम में रखा है। इसका आंशिक कारण स्वयं चीनी तीर्थ यात्रियों के परस्पर विरोधी कथन थे तथा आंशिक रूप से अवध प्रान्त के अच्छे मानचित्र का अभाव भी इस भ्रम का कारण था। विशाखा अथवा अयोध्या के अपने विवरण मे मैंने फाहियान एवम् ह्वेनसांग द्वारा कथित दिकाश एव दूरियो की लंका की बौद्ध पुस्तको में दी गई दूरियो एवं दिकाश से तुलना की है और मैंने निश्चय पूर्वक सिद्ध किया है कि सङ्किसा से दूरी एव शाची अथवा साकेत से दिकाश मे उसने त्रुटि की है। ह्वेनसांग एवं लंका की बौद्ध पुस्तको से हम जानते हैं कि श्रावस्ती साकेत अथवा अयोध्या के उत्तर मे था अथवा अन्य शब्दो मे यह गोडा जिले अथवा उत्तर कोशल मे था। ब्राह्मणों के कम से कम चार पुराणो मे इस कथन की पुष्टि होती है और चूंकि फहियान ने भी लिखा है कि शी वी अथवा सेवेत कोशल मे था अतः इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नही हो सकता कि श्रावस्ती को साकेत अथवा अयोध्या के उत्तर मे कुछ दिनो की यात्रा पर ढूंढा जा सकता है। फाहियान के अनुसार इसकी दूरी ८ योजन अथवा ५६ मील थी जिसे ह्वेनसांग ने बढ़ा कर ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है। परन्तु चूंकि अन्तिम तीर्थ-यात्री ने भारतीय योजन को ४० ली प्रति योजन की दर से चीनी माप मे लिखा है अतः दूसरे माप के अनुकूल करने के लिये हम इसे शुद्ध कर ३५० ली अथवा ५८ मील लिख सकते हैं। अब, चूंकि अयोध्या से राप्ति नदी

के दक्षिणी तट पर अवस्थित सहेट मेहर तक की वास्तविक दूरी यही है अतः ह्व नसांग की दूरी को ५०० ली से घटा कर ३५० लो करने मे मुझे संकोच नहीं है। यहाँ यह लिखना पर्याप्त होगा कि साहेत माहेत में मैंने बुद्ध की एक विशालकाय मूर्ति प्राप्त की थी जिस पर श्रावस्ती के नाम सहित एक लेख खुदा हुआ था।

साहेत माहेत का ध्वस्त नगर अकौना एवं बलरामपुर के मध्य क्रमशः ५ मील एवं १२ मील की दूरी पर एव बहराईच तथा गोण्डा से लगभग समान दूरी पर अवस्थित है। आकार मे यह प्रायः अर्द्ध चन्द्राका के समान है जिसका १¾ मील लम्बा व्यास भीतर की ओर झुका हुआ है एव राप्ति नदी के पुराने तट के साथ-साथ उत्तर पूर्वोन्मुख है। पश्चिमी भाग जो तीन चौथाई मील तक उत्तर से दक्षिण की ओर जाता है इस घेरे का एक मात्र सीधा भाग है। प्राचीरो की ऊँचाई भिन्न-भिन्न है। पश्चिम की ओर प्राचीरें ३५ से ४० फुट ऊँची है जबकि दक्षिण एवं पूर्व में इनकी ऊँचाई २५ अथवा ३० फुट से अधिक नहीं है। इसका उच्चतम बिन्दु उत्तर पश्चिमी विशाल प्राचीर है जो खेतों से ५० फुट ऊँची है। उत्तर पूर्वी भाग अथवा अर्धचन्द्र का छोटा भाग राप्ति से सुरक्षित था जो आज भी वार्षिक बाढ के समय अपने पुराने मार्ग से प्रवाहित होती है। अर्द्धचन्द्र के लम्बे घुमाव की प्राचीरें किसी समय एक खाई से सुरक्षित रही होगी जिसके अवशेष दक्षिण पश्चिमी कोण मे लगभग आधा मील लम्बी दल-दल के रूप मे दिखाई देते हैं। प्रत्येक स्थान पर यह प्राचीरे प्राचीन नगरों से विशेष रूप से सम्बन्धित बडे आकार को ईंटो के टुकड़ो से ढँकी हुई हैं और यद्यपि मैं एक स्थान को छोड़ अन्य किसी भी स्थान पर दीवारो के चिह्न ढूंढने मे असफल रहा था तथपि ईंटों की उपस्थिति ही यह दर्शाने के लिये पर्याप्त है कि मिट्टी की प्राचीरों पर किसी समय ईंटों की मोर्चा-बन्दी रही होगी। नदी की ओर मध्य भाग मे खड़ी दीवार का एक भाग १० फुट मोटा था। मेरे सर्वेक्षण के अनुसार मिट्टी की पुरानी दीवारों का कुल घेरा १७,३०० फुट अथवा ३¼ मील से अधिक था। अब, यह २० ली अथवा ३⅓ मील का ठीक वही विस्तार है जिसे ह्व नसांग ने केवल राजभवन के लिये निश्चित किया। परन्तु चूंकि यह नगर उस समय निर्जन एव ध्वस्त अवस्था में था अतः उसने राजभवन को ही नगर समझने की त्रुटि की होगी। कम मे कम इतना निश्चित है कि दीवारों के बाहर उप नगर अति-सीमित रहे होगे क्योंकि यह स्थान प्रायः पूर्ण रूप से विशाल धार्मिक भवनो के खण्डहरों से घिरा हुआ है जिनके कारण व्यक्तिगत भवनों के लिये स्थान नहीं रहा होगा। अतः मुझे पूर्ण सन्तोष है कि राज-भवन को ही नगर समझने की त्रुटि की गई है और यह त्रुटि इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि सातवीं शताब्दी में ह्व नसांग की यात्रा के समय भी यह नगर अत्यधिक जर्जर एवं निर्जन अवस्था में था। चूंकि ४०० ई० में फाहियान ने यहाँ की

जन संख्या को नगन्य बताया है जबकि लंका की पुस्तकों में २७५ तथा ३०३ ई० के मध्य सवाठीपुर के राजा खीरा धार का उल्लेख मिलता है अतः श्रावस्ती का पतन चौथी शताब्दी मे हुआ होगा और ३१६ ई० में गुप्त वंश के पतन से सम्बन्धित करने मे हम सम्भवतः त्रुटि करेंगे।

कहा जाता है कि श्रावस्ती की स्थापना सूर्य वंशी युवनाश्व के पुत्र एवम् सूर्य के दसवें वन्शज राजा श्रावस्त ने करवाई थी। अतः इसकी स्थापना राम से अधिक समय पूर्व भारतीय इतिहास के काल्पनिक समय में हुई थी। इस प्राचीन समय मे सम्भवतः यह अयोध्या राज्य का भाग था क्योंकि वायु पुराण में इसे राम के पुत्र लव से सम्बन्धित बताया गया है। बुद्ध के समय भे जब श्रावस्ती का इतिहास में पुनः उल्लेख आता है तो उस समय यह महा कोशल के पुत्र राजा प्रसेनाजित की राजधानी थी। राजा ने नवीन धर्म को ग्रहण कर लिया और अपने शेष जीवन काल में वह बुद्ध का परम हितैषो एवम् रक्षक था। परन्तु उसका पुत्र विरुधक शाक्य जाति से घृणा करता था एवम् उनके देश पर उनके आक्रमण एवम् तत्पश्चात ५०० शाक्य कुमारियों—जिन्हे उसके रनिवास के चुना गया था—की हत्या के कारण बुद्ध की सर्व प्रसिद्ध भविष्यवाणी हुई कि सात दिनो के भीतर राजा अग्नि में भस्म हो जायेगा। जैसा कि बौद्ध धर्मावलम्बियो ने कथा को सुरक्षित रखा है बुद्ध की भविष्य वाणी सत्य हुई एवम् ग्यारह शताब्दी पश्चात भी ह्वेनसांग को वह सरोवर दिखाया गया था जहाँ अग्नि से बचने के लिये राजा ने शरण ली थी।

श्रावस्ती के सम्बन्ध मे हमे कनिष्क के एक शताब्दी पश्चात् अथवा बुद्ध के पाँच शताब्दी पश्चात् तक कोई सूचना नही मिलती। जब ह्वेनसागं के अनुसार श्रावस्ती का राजा विक्रमादित्य बौद्ध धर्मावलम्बियों का कट्टर शत्रु था एवं विभाषा शास्त्र के प्रसिद्ध लेखक मनोरहित ने शास्त्रार्थ में ब्राह्मणो से पराजित हो जाने पर आत्म हत्या कर ली थी। विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी—जिसका नाम नही दिया गया है—के समय मनोरहित के प्रख्यात शिष्य वासुबन्धु ने ब्राह्मणों पर विजय प्राप्त की थी। इन दो राजाओं की सम्भावित तिथियो को ७० ई० से १२० ई० तक निश्चित किया जा सकता है। अगली दो शताब्दिमों तक श्रावस्ती स्वतन्त्र राजा के अधीन रही प्रतीत होता है क्योंकि २७५ ई० से ३१६ तक हमे यहाँ के राजा के रूप मे खोराधार एवं उसके भतीजे के नाम मिलते हैं परन्तु उसमे सन्देह नही कि इस सम्पूर्ण काल में श्रावस्ती मगध के गुप्त वंश को आश्रित थी क्योंकि कहा जाता है कि साकेत का शक्तिशाली पड़ोसी नगर उनके अधीन था। वायु पुराण में लिखा है कि "गुप्त जाति के राजकुमार गङ्गा तट से प्रयाग, साकेत तथा मगध तक सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार करेंगे।" इस समय से श्रावस्ती का शनैः-शनैः ह्रास हुआ। ४०० ई० में यहाँ केवल २०० परिवार थे, ६३२ ई० में यह पूर्णतयः निर्जन था एवं वर्तमान

समय में द्वार के समीप कुछ क्षेत्र को छोड़ शेष नगर प्रायः अभेद्य वन का समूह है ।

नगर के नाम के सम्बन्ध मे कुछ मतभेद है । फाह्यान ने इसे शी-वी कहा है जबकि ह्वेनसांग ने चीनी भाषा में यथा सम्भव शुद्ध रूप में इसे शी-लो-फा शी ती अथवा श्रावस्ती कहा है । परन्तु यह भिन्नता वास्तविक मे अधिक दिखावटी है क्योकि इसमे सन्देह नही हो सकता कि शी-वी लंका की अधिकांश पुस्तकों मे दिये गये नाम सावडढी के स्थान पर सेवेत के संक्षिप्त पाली स्वरूप का केवल परिवर्तत स्वरूप है । इसी प्रकार साहेत का आधुनिक नाम प्रत्यक्ष रूप से पाली के सावेत का केवल भिन्न स्वरूप है । अन्य नाम माहेत की समीक्षा करने मे मैं असमर्थ हूँ परन्तु यह केवल मुरबद्ध शब्द है जिसमे हिन्दुओ की विशेष रुचि है जैसा कि उल्टा पुलटा; और अनेक व्यक्तियो का कथन है कि सम्पूर्ण स्थान की जर्जर अवस्था के अनुकूल साहेत माहेत का यही वास्तविक अर्थ है । परन्तु कुछ व्यक्तियों का कथन है कि इसका मूल नाम सेट-मेट था और चूंकि यह सेवेत का भ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता है अतः यह सम्भव है कि सहेत महेत सेठ-मेत का दीर्घ उच्चारण पात्र है । केवल एक मुसलमान ने जा ध्वस्त नगर के समीप पीर बरान के मकबरे की देख भाल करता था इस बात पर जोर दिया है कि इसका वास्तविक नाम सावित्री था जो पाली के शुद्ध सावाठी स्वरूप के अत्यधिक समीप है और इसमे सन्देह नही रह जाता कि इस नाम मे इस स्थान का वास्तविक नाम सुरक्षित है ।

ह्वेनसांग के अनुसार श्रावस्ती राज्य का कुछ क्षेत्र ४००० ली अथवा ६६७ मील था जो घाघरा एव पर्वतो के अधोभाग के मध्यवर्ती क्षेत्र के वास्तविक विस्तार से दुगना है । परन्तु चूंकि उसने नेपाल की सीमाओ के सम्बन्ध में भी इन्ही आंकड़ो को दोहराया है अतः यह सम्भव है कि उसके समय मे उत्तर की पहाडियो मे मलभूम एवं खाची के दो पश्चिमी जिले श्रावस्ती के अधीन रहे हो । इस प्रकार श्रावस्ती की सीमओ मे हिमालय पर्वतो से घाघरा नदी तक, पश्चिम मे करनाली नदी से लेकर पूर्व में धोलगिरि पर्वतो एवं फैजाबाद तक सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित था । इस क्षेत्र का घेरा ६०० मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा अनुमानित आंकड़ो के अति समीप है ।

कपिला

श्रावस्ती से दोनो चीनी तीर्थ यात्री सीधे कपिला की ओर गये जो सम्पूर्ण भारत मे बुद्ध के जन्म स्थान के रूप में प्रसिद्ध था । ह्वेनसांग ने इसे दक्षिण पूर्व में ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है परन्तु पूर्व वर्ती तीर्थ यात्री फाहियान के अनुसार इसकी दूरी इसी दिशा में १३ योजन अथवा ९१ मील थी । ऐसा प्रतीत होता है कि एक योजन अथवा ७ मील का अन्तर कपिला एवं क्राकुचन्दा के जन्म स्थान की अपेक्षाकृत स्थिति के कारण हुआ है जो एक दूसरे से एक योजन की दूरी पर थे ।

फाहियान कपिला जाने से पूर्व क्रकुचन्दा के जन्म स्थान पर गया था जबकि ह्वेनसांग सर्व प्रथम कपिला गया था तत्पश्चात क्राकूचन्दा के जन्म स्थान पर। चूंकि इस स्थान को सम्भावित रूप से नगर के पश्चिम मे ८ मील का दूरी पर अवस्थित ककुआ नामक स्थान के अनुरूप समझा जा सकता है और मैं नगर को कपिला नगर के अनुरूप समझने का प्रस्ताव करना चाहता हूँ अतः मैं फाहियान के विवरण को ग्रहण करने का इच्छुक हूँ। अब साहेत तथा नगर की मध्यवर्ती दूरी ८१½ मील से अधिक है क्योकि मैंने साहेत से अशोकपुर तक सड़क की दूरी को ४२½ आंका था एव भारतीय एटलस के विशाल मानचित्र पर सीधे माप से अशोकपुर से नगर की दूरी ३९ मील है। अतः देश के इस भाग की घुमाओ दार सड़को से इनकी वास्तविक दूरी ८५ मील से कम नही हो सकती और जैसा कि फाहियान ने लिखा है। सम्भवतः यह प्रायः ९० मील है।

ह्वेनसांग ने जिले के घेरे को ४००० ली अथवा ६६७ मील आंका है जो फैजाबाद से घाघरा एवम् गण्डक के सङ्गम तक दोनो नदियो के वास्तविक क्षेत्र के समान है। सीधे माप के अनुसार यह क्षेत्र ५५० मील है जो मार्ग दूरी के अनुसार ६०० मील से अधिक हो जायेगा।

कपिला के नाम के सम्बन्ध मे अभी तक कोई सकेत प्राप्त नही किया जा सका परन्तु मेरा विश्वास है कि अनेक समान तथ्यो के आधार पर सकुचित सीमाओ के भीतर नगर की स्थिति को निश्चित किया जा सकता है। तिब्बत की बौद्ध पुस्तको के अनुसार सूर्य वशी वीर गौतम के किसी वंशज ने कोशल में रोहिणी नदी के समीप एक झील के तट पर कपिलवस्तु अथवा कपिला नगर की स्थापना की थी। अब नगर अथवा नगर खास रात्री की कोहान नामक एक सहायक नदी के समीप चन्दो ताल के पूर्वी तट पर एवम् घाघरा नदी के पार अवध के उत्तरी खण्ड में अर्थात कोशल में अवस्थित है। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि श्रावस्ती से इसकी दूरी एवं दिकांश चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये आकडो से मिलते हैं। पश्चिम की ओर सिद्ध नामक एक छोटी नदी झील मे गिरती है। यह नाम जिसका अर्थ "पवित्र व्यक्ति" है—सदैव प्राचीन मुनियो के लिए प्रयोग मे लाया गया है और वर्तमान उदाहरण मे मेरा विचार है कि मैं इसे कपिल मुनि के लिये प्रयोग कर सकता हूँ जिसका आश्रम नगर के विपरीत झील के तट पर था। गौतम वशो सर्व प्रथम कपिल मुनि के आश्रम के पास बस गये थे परन्तु चूंकि उनकी गायो के रम्भाने से मुनि की समाधि मे विघ्न पड़ता था उन्होंने कुछ दूरी पर अर्थात झील के दूसरे अथवा पूर्वी छोर पर नवीन कपिला नगर की स्थापना कर ली।

चीनी तीर्थ यात्रियों एवम् लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तकों में रोहिणी नदी की स्थिति को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। फाहियान के अनुसार लुनमिङ्ग अथवा

लुम्बिनी नामक राजकीय उद्यान-जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था—कपिला के पूर्व में ५० ली अथवा १६ मील की दूरी पर अवस्थित था। ह्वेनसांग ने इसे ला-फा नी कहा है एवम् इसे दक्षिण पूर्व दिशा में प्रवाहित एक छोटी नदी के तट पर अवस्थित बताया है जिसे जन साधारण "तेल की नदी" कहा करते थे। लङ्का की पुस्तकों के अनुसार रोहिणी नदी कपिला एवम् कोली नगरों के मध्य में प्रवाहित थी। कोली नगर बुद्ध की माता माया देवी का जन्म स्थान था। इसे व्याघपुर भी कहा जाता था। जब माया देवी पसूतावस्था में थी तो वह कोली मे अपने माता-पिता से मिलने हेतु गई। "दोनो नगरो के मध्य साल वृक्षों का लुम्बिनी नामक एक उद्यान था जहाँ दोनों नगरो के निवासी मनोरञ्जनार्थ आया करते थे।" वहाँ उसने विश्राम किया एवम् शिशु बुद्ध को जन्म दिया। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि सूखा काल में कपिला एव कोली के निवासियो मे रोहिणी के जल को अपने धान के खेतो हेतु प्राप्त करने के प्रश्न पर झगड़ा हुआ था। इन सभी बातों के आधार पर मेरा अनुमान है कि रोहिणी सम्भवतः वर्तमान समय की कोहान नदी थी जो नगर के पूर्व मे लगभग ६ मील पर दक्षिण पूर्वी दिशा मे बहती है। यह मानचित्रों की कुआना अथवा कुआना नदी है एव बुचनान की कोयाने नदी है जिसने इसे "एक सुन्दर छोटी नदी कहा है जो अपनी अनेक शाखाओ द्वारा जिले के सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी क्षेत्र को सींचती है।" इस प्रकार सभी आवश्यक बातों मे यह बौद्ध ऐतिहासिक पुस्तकों की रोहिणा नदी से मिलती है।

कोली की स्थिति सन्देहपूर्ण है परन्तु इसे सम्भवतः अम-कोहिल ग्राम से सम्बन्धित किया जा सकता है जो नगर के ११ मील पूर्व मे और कोहाना नदी के निकटतम बिन्दु से ३ मील से कम दूरी पर है। नगर से कोहिल जाने वाली सड़क मोकसोन नाम के एक छोटे कस्बे के विपरीत कोहाना नदी को पार करती है जो सम्भवतः किसी समय के प्रसिद्ध लुम्बिनी उद्यान का स्थान रहा हो क्योंकि इसे परादिमोक्षा अथवा "मोक्षस्थान" भी कहा जाता था। तत्पश्चात यह विशिष्ट नाम छोटा होते-होते माक्षा अथवा मोक्षान हो गया होगा जिससे मैं ह्वेनसांग की 'तेल का नदी' को सम्बन्धित करूंगा क्योंकि सस्कृत में माक्षान तेल का एक नाम है। अबुल फजल ने बुद्ध के जन्म स्थान को मोक्ता कहा है जो सम्भवतः मोक्ष का त्रुटि पूर्ण उच्चारण है।

नगर को प्राचीन कपिला के अनुरूप स्वीकार करने मे एक अन्य ठोस बिन्दु इस तथ्य से प्राप्त होता है कि नगर का वर्तमान मुखिया गौतम राजपूत है और नगर एवं अमोरहा के जिले गौतम राजपूतों एवं गौतमिया राजपूतों के मुख्य स्थान हैं। गौतमिया राजपूत गौतमो की एक निम्न श्रेणी है। अब कपिला वस्तु के शाक्य भी गौतम राजपूत थे एव स्वयं शाक्य मुनि को बर्मा निवासियों में गौतम बुद्ध अथवा गौतम माना जाता है। वशलता में गौतमों को अरका बन्धु का वंशज बताया गया है

जो (अरकाबन्ध) प्रसिद्ध अमर सिन्हा के अमर कोष में दिये गये बुद्ध के अनेक नामों में एक नाम है। अमर सिन्हा स्वयं बौद्ध धर्मावलम्बी थे।

मैंने स्वयं नगर की यात्रा नही की है परन्तु मुझे सूचित किया गया है कि यहाँ एक खेड़ा अर्थात ईंटों के खण्डहरो का एक टीला है एवं इसके आस-पास ईटो के बने भवनों के अनेक खण्डहर हैं। चूंकि फाहियान ने पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ मे कपिला को "अक्षरशः विशाल निर्जन स्थान बताया है जहाँ न तो राजा है न जनता, परन्तु केवल कुछ एक भिक्षु एवं दस बीस गृह हैं अतः इस बात की सम्भावना नही है कि नगर के स्पष्ट चिह्न प्राप्त किये जा सके जो १२ शताब्दियो से अधिक समय से निर्जन पड़ा हुआ है। सातवी शताब्दी के मध्य मे ह्वेनसांग ने इस स्थान को इतना ध्वस्त देखा था कि उसके लिये यहाँ विस्तार जानना असम्भव था अतः मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि वर्तमान समय मे विस्तृत खण्डहरो का अभाव नगर के उस ठोस दावे को ठुकरा नहीं सकता जो इसे कपिला के अनुरूप स्वीकार किये जाने के लिये प्राप्त है। इस क्षेत्र के अनेक स्थानो के नामों से इस अनुरूपता की पुष्टि होती है। यह नाम अधिक पवित्र स्थानो का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते है जो बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक इतिहास मे प्रसिद्ध थे। मैं पिछले दो बुद्धो, क्राकुचन्दा एव कनक मुनि के जन्म स्थानो एवं सर कूप या विशेष उल्लेख करता हूँ जो बुद्ध के तीर की चोट से बहने लगा था।

फाहियान ने क्रकूचन्दा के जन्म स्थान को ना-पी किया नाम दिया है परन्तु बौद्ध पुस्तकों में इसे क्षेमावती अथवा खेमावती कहा गया है। परन्तु लंका की बौद्ध पुस्तको मे क्रकूचन्दा को मेखल के राजा क्षेत्र का पुरोहित कहा गया है फाहियान के अनुसार यह नगर कपिला से एक योजन अथवा ७ मील पश्चिम मे था परन्तु ह्वेनसांग के अनुसार यह कपिला से ५० ली अथवा ८½ मील दक्षिण मे था। अन्य आंकडो के अभाव मे यह कहना कठिन होगा कि कौन-सा कथन शुद्ध है परन्तु चूंकि मुझे नगर के ठोक आठ मील पश्चिम मे ककुआ नामक कस्बा मिलता है अत: मैं फाहियान के विवरण का अनुसरण करने का इच्छुक हूँ। क्योकि ककुआ, क्राकू का पाली स्वरूप है। ह्वेनसांग द्वारा दिये गये दिकांश के अनुसार इस नगर को कलवारी खास के आस-पास देखना चाहिये जो नगर के ७ मील दक्षिण मे है।

कनक मुनि के जन्म स्थान की स्थिति के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की त्रुटि मिलती है। फाहियान के अनुसार यह स्थान क्रकूचन्दा के जन्म स्थान के दक्षिण मे था जबकि ह्वेनसांग के अनुसार उत्तर में था। दूरी के सम्बन्धो मे दो ही एक मत है। पूर्ववर्ती यात्री ने इसे एक योजन से कम अथवा ५ अथवा ६ मील बताया है और अन्तिम यात्री ने ३० ली अथवा ५ मील कहा है। लड्का की बौद्ध पुस्तकों में नगर को शोभावती नगर कहा गया है जिसे सम्भवत. ककुआ के ६½ मील दक्षिण पश्चिम में

एवम् नगर के दक्षिण पश्चिम में इतनी ही दूरी पर शुमय पुरवा गाँव समझा जा सकता है।

सर कूप की स्थिति के सम्बन्ध मे भी दिकांश की समान भिन्नता का पता चलता है। फाहियान ने इसे कपिला के ३० ली अथवा ५ मील दक्षिण पश्चिम में बताया है जबकि ह्वेनसांग ने इसे समान दूरी पर दक्षिण पूर्व में दिखाया है। वर्तमान उदाहरण मे भी मेरा अनुमान है कि फाहियान का कथन सही है क्योकि ह्वेनसांग ने सार कूप से लुम्बिनी उद्यान को ८० से ९० ली अथवा १३ से १५ मील बताया है जो —जैसा कि मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ—कपिला के पूर्व मे रोहिणी अथवा कोहान नदी के तट पर था। अब, यदि सर कूप यदि राजधानी के दक्षिण पूर्व मे था तो लुम्बिनी उद्यान से इसकी दूरी ६ अथवा ७ मील से अधिक नही हो सकती थी और यदि यह दक्षिण पश्चिम मे था—जैसा कि फाहियान ने लिखा है—तो इसकी दूरी १२ अथवा १३ मील रही होगी। अतः सर कूप की सम्भावित स्थिति को सखनपुर ग्राम के समीप निश्चित किया जा सकता है जो नगर के दक्षिण पश्चिम मे ठीक ५½ मील की दूरी पर है।

इन स्थानो की अनुरूपता का प्रस्ताव करते समय मैंने यह अनुमान कर लिया है कि नगर की प्राचीन कपिला का स्थान था परन्तु चूंकि मैंने देश के इस भाग का स्वयं निरीक्षण नही किया है और वह सभी सूचना जो मैं प्राप्त कर सका हूँ आवश्यक रूप से स्पष्ट है अतः मेरा विचार है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का अन्तिम निर्णय नगर एवम् आस-पास के स्थानों के वास्तविक निरीक्षण के पश्चात हो सकेगा। इस बीच में मैं अपनी वर्तमान खोज के परिणामों को उस समय तक लाभदायक समझता हूँ जब तक वास्तविक निरीक्षण से वास्तविक स्थिति का पता नही चलता।

रामाग्राम

कपिला से दोनो तीर्थ यात्री ननमो की ओर गये जिसे भारत के बौद्ध ग्रन्थों के रामाग्राम के अनुरूप स्वीकार किया गया है। फाहियान के अनुसार यह स्थान ५ योजन अथवा ३५ मील पूर्व में था तथा ह्वेनसांग के अनुसार यह इसी दिशा में २०० ली अथवा ३३⅓ मील की दूरी पर था। परन्तु उनके एक मत होने पर भी मेरा विश्वास है कि यह दूरी अधिक है। अनोमा नदी तक उनकी पश्चातवर्ती यात्रा को फाहियान ने ३ योजन अथवा २१ मील बताया है जबकि ह्वेनसाग ने इसे १०० ली १६⅔ मील कहा है और इस प्रकार कपिला से अनोमा नदी तक प्रथम यात्री के अनुसार कुल दूरी ८ योजन अथवा ५६ मील थी जबकि अन्तिम यात्री के अनुसार यह ३०० ली अथवा ५० मील थी। परन्तु भारतीय बौद्ध ग्रन्थो मे इस दूरी को केवल ६ योजन अथवा ४२ मील बताया गया है जिसे मैं सही शुद्ध समझता हूँ क्योंकि

वर्तमान ओमी नदी जो सम्भवतः बौद्ध पुस्तकों की अनोमा नदी है—नगर से पूर्व दिशा में प्रायः ४० मील दूर है। अनोमा की अनुरूपता पर अभी विचार किया जायेगा।

तीर्थ यात्री के कथनानुसार रामाग्राम की स्थिति को नगर एवम् अनोमा नदी के बीच लगभग दो तिहाई दूरी अर्थात ४ योजन अथवा २८ मील पर देखा जाना चाहिये। इस स्थान पर मुझे खण्डहरो के एक टीले सहित दियोकली नामक गाँव देखा था जिसे त्रिकोणमिति सम्बन्धी सर्वेक्षण हेतु चुना गया था। महावन्शो मे लिखा हुआ है कि रामागामो का स्तूप-जो गङ्गा नदी पर खड़ा था—नदी की बाढ से नष्ट हो गया था। श्री लैडले ने इस बात पर जोर दिया है कि यह नदी गङ्गा नहीं नहीं हो सकती परन्तु घाघरा अथवा उत्तर की अन्य कोई नदी हो सकती है। परन्तु मैं इस बात मे विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि लंका की पुस्तको मे गङ्गा की कल्पना मात्र की गई है। सभी बौद्ध ग्रन्थ इस बात मे सहमत हैं कि बुद्ध के अवशेषो को आठ भागों मे विभाजित किया गया था जिसमे एक भाग रामाग्राम के कोशलो को प्राप्त हुआ था और उन्होंने इस भाग पर एक स्तूप का निर्माण करवाया था। कुछ वर्ष पश्चात अवशेषो के सात भागो को मगध के अजात शत्रु ने एकत्रित किया था और उसने इन्हे राज गृहो के एक ही स्तूप मे रखा था परन्तु आठवाँ भाग उस समय भी रामाग्राम मे रहा। लङ्का की बौद्ध पुस्तको के अनुसार रामाग्राम का स्तूप नदी की बाढ़ मे बह गया था एव अवशेष पात्र नदी मार्ग से सागर तक चला गया था जहाँ नागाओ ने इसे प्राप्त कर लिया था और उन्होने इसे अपने राजा को भेंट में दे दिया था। जिसने इसके स्वागतार्थ एक स्तूप का निर्माण करवाया था। १६१ से १३७ ई० पूर्व लङ्का के दुथागमिनी के शासन काल में पवित्र भिक्षु सोनुत्तारो ने आश्चर्यजनक रूप से इस पात्र को नाग राजा से प्राप्त कर लिया और लङ्का के महा थूपो अथवा "महा-स्तूप" मे सुशोभित किया।

अब, यह कथा चीनी तीर्थ यात्रियो के कथनो से पूर्णतयः भिन्न है। जिन्होंने दुथागामिनी से कई शताब्दियों पश्चात रामाग्राम की यात्रा की थी एवम् उन्होंने स्तूप को अच्छी अवस्था मे देखा था परन्तु नदी को नही देखा था। पांचवी शताब्दी के प्रारम्भ मे फाहियान ने स्तूप के समीप एक सरोवर देखा था जहाँ एक नाग रहा करता था जो निरन्तर स्तूप पर दृष्टि रखता था। सातवी शताब्दी के मध्य मे ह्वेनसांग ने इसी स्तूप एवम् नागो से भरे सरोवर को देखा था जो प्रतिदिन मानव शरीर धारण कर स्तूप पर पूजा किया करते थे। दोनो तीर्थ यात्रियो ने सम्राट अशोक द्वारा इस पात्र को हटाकर अपनी राजधानी मे ले जाने के प्रयत्नों का उल्लेख किया है परन्तु नाग राज के प्रतिवाद के कारण उसे सफलता नहीं मिली। "नाग राज ने कहा, यदि आप अपनी बली द्वारा इस स्तूप की शोभा नही बढ़ा सकते तो आप इसे नष्ट कर सकते हैं

और मैं आपके मार्ग में बाधा नहीं डालूंगा।" अब, लङ्का की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार नाग राज ने भिक्षु सोनुत्तारो को अवशेष पात्र लङ्का ले जाने के प्रयत्न से विरक्त करने के लिये इसी तर्क का आश्रय लिया था। अतः मेरा अनुमान है कि लङ्का के लेखकों ने रामाग्राम के सरोवर को चतुराई से नदी मे परिवर्तित कर दिया गया था जिससे अवशेष जो सरोवर के नागो के पास थे सागर मे नाग राजा के पास ले जाये जा सके एवम् वहाँ से उन्हे लङ्का अथवा अन्य किसी भी स्थान पर सरलता पूर्वक ले जाया जा सके। इस प्रकार लङ्का की कथा मे नदी की आवश्यकता थी जिससे अवशेषो को सागर तक ले जाया जा सके। परन्तु दो तीर्थ यात्रियो जिन्होने कई शताब्दियो पश्चात स्तूप को सुरक्षित देखा था परन्तु नदी को नही देखा था—की सयुक्त साक्षी के सम्मुख कथा की साक्षी कोई महत्व नही रखती। अतः मै गङ्गा को लङ्का के लेखकों की कल्पना समझ कर छोड़ देता हूँ और इसके स्थान पर चीनी तीर्थ यात्रियो के नाग सरोवर को सत्य स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार नदी से छुटकारा प्राप्त करने के पश्चात मैं दयोखली को बौद्ध इतिहास के रामाग्राम के अनुरूप स्वीकार किये जाने मे कोई आपत्ति का कारण नही देख सकता। पाचवी शताब्दी मे फाहियान की यात्रा के समय यह नगर पूर्णतयः निर्जन था। फाहियान ने यहाँ केवल एक छोटी धार्मिक संस्था के होने का वर्णन किया है। सातवी शताब्दी के मध्य मे भी यह संस्था थी परन्तु यह अति जर्जर अवस्था मे रही होगी क्योकि यहाँ मठ की देख-भाल करने के लिए केवल एक स्रामनेरा अथवा भिक्षु था।

अनोमा नद।

बौद्ध धर्म के इतिहास मे अनोमा नदी राजकुमार सिद्धार्थ द्वारा सन्यासी के वस्त्र ग्रहण करने के स्थान के रूप मे प्रसिद्ध थी जहाँ उन्होंने अपने केश काटे थे एवम् अपने दास एवम् घोडे को त्याग दिया था। बर्मा एवम् लका की बौद्ध पुस्तको के अनुसार कपिला से इस स्थान की दूरी ३० योजन अथवा २१० मील थी। यह कथन त्रुटिपूर्ण विचार था कि यह स्थान कपिला एवम् राजग्रही के मध्य था जबकि दोनों स्थानो की मध्य वर्ती दूरी ६० योजन बताई जाती है। ललित विस्तार के तिब्बती अनुवाद में इस दूरी को ६ योजन अथवा ४२ मील बताया गया हैं। यह दूरी फाहियान तथा ह्वेनसांग के आंकडो से कुछ कम है परन्तु चूंकि प्रथम तीर्थ-यात्री दो दूरियो को पूर्ण योजन मे बताया है और अन्तिम यात्री ने दोनो दूरियो को सौ सौ की संख्या मे ली मे बताया है अतः उन्हें केवल अनुमानित स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार फाहियान का ५ योजना जमा ३ योजन केवल ४½ तथा २½ योजन हो सकता है तथा ह्वेनसांग के २०० ली जमा १०० ली वस्तुतः केवल १८० ली जमा ८० ली हो सकते हैं। इस प्रकार प्रथम दूरी को घटा कर ७ योजन अथवा ४६ मील

किया जा सकता है एवम् अन्तिम दूरी को घटा कर २६० ली अथवा ४३ मील बताया जा सकता है। अतः मैं ललित विस्तार को ६ योजन अथवा ४२ मील की दूरी को वास्तविक दूरी की समीपस्थ दूरी स्वीकार करता हूँ जिसे पूर्ण योजन में बताया जा सकता है।

सन्यासी जीवन को ग्रहण करने के लिये जब राजकुमार सिद्धार्थ ने कपिला छोडा तो उन्होने वैशाली से होते हुए राजगृही का मार्ग अपनाया। अतः इस मार्ग की सामान्य दिशा दियोकली के आगे संग्रामपुर से नीचे ओमी नदी के तट तक एवम् उस स्थान तक जहाँ यह नदी औमियार झील मे गिरती है पूर्व दक्षिण पूर्व थी। (१) चूँकि औमी नदी उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर बहती है अतः नगर से इसकी दूरी ४० से ४५ मील तक है। यह मार्ग सग्रामपुर के ऊपर नदी को पार नही कर सकता था क्योंकि इसमे इसकी दूरी ४० मील से कम हो जाती है। न ही यह बिन्दु औमियार झील से नीचे है जो एक संकीर्ण मार्ग से राप्ति में मिलती है। यदि स्वीकृत तथ्य सही हैं तो नदी पार करने का बिन्दु औमियार झील के सिर से थोडा ऊपर रहा होगा।

अब, औमी अथवा संस्कृत अवमी का अर्थ है "हीन" और नदी के नाम के रूप में यह पडोस की अन्य नदियों की तुलना में इस नदी के छोटे आकार का प्रतिनिधित्व करता होगा। मानचित्र पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि औमो राप्ती नदी का पुराना मार्ग है जिसने वर्तमान मार्ग को डुमरिया गञ्ज के समीप त्याग दिया था। बूढ़ी नाला नामक औमो की मुख्य शाखा को बांसी के समीप निकलती है अब भी वार्षिक बाढ़ के समय दलदल नामक एक शाखा द्वारा राप्ती नदी से जल प्राप्त करती है। अकेला यह तथ्य ही इस बात का निर्णायक प्रमाण है कि बनेहर के समीप बूढ़ी नाला से सङ्गम के नीचे औमो का निचला मार्ग राप्ती का पुराना मार्ग है। अतः पुराने मार्ग को राप्ती के विशाल अथवा मुख्य मार्ग से भिन्न दिखाने के लिये औमी अथवा अवमी नदी अर्थात् "हीण अथवा छोटी नदी" की उपाधि उचित रूप से दी गई थी।

ललित विस्तार के अनुसार वह स्थान जहाँ बुद्ध ने नदी को पार किया था। अनुवैन्या जिले में मनेया नामक नगर के समीप था। नगर का नाम अज्ञात है परन्तु जिले का नाम अनौला प्रतीत होता है जो औमो नदी के निचले मार्ग के पश्चिमी तट के खण्ड का नाम है एवम् जिसमें संग्रामपुर एवम् औमियार झील दोनो ही सम्मिलित

---

(१) पूर्वी भारत ३१४ में बुचनान ने इसे नगर झील कहा है परन्तु भारतीय एटलस मे एवम् राजकीय मानचित्रो में इसे अमियार ताल तथा नदी को अमी नदी कहा गया है।

की। अनुवैन्या का अर्थ है वैन्य नदी अथवा वैन्य नदी की निवसी शाखा का तटीय प्रदेश। यह नाम सम्भवतः वेणु अथवा बांस शब्द से लिया गया है और यदि ऐसा है तो इसका अर्थ 'बांस की नदी' होगा और इस प्रकार यह बशी के समान नाम होगा जो तट पर बांस के होने के कारण अथवा बांसी नगर से होकर बहने के कारण इस नदी को दिया जा सकता है।

बर्मा एवम् लङ्का की बौद्ध कथाये इस कथन मे सहमत हैं कि नदी तट पर पहुँचने पर—जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने दास एवम् घोडे को त्याग दिया था—नदी का नाम पूछा और यह बताये जाने पर कि इसका नाम अनोमा है नदी के नाम से सम्बन्धित टिप्पणी की जिसे अनुवादको ने भिन्न-भिन्न रूप से लिखा है। बर्मी कथा के अनुसार नदी का नाम अनोया था जिसे सुनने पर राजकुमार ने टिप्पणी की "मैं स्वयं को उस सम्मान के अयोग्य सिद्ध नही करूंगा जिसकी मैं कामना करता हूं।" "तत्पश्चात घोड़े को एड लगाते ही वह भयानक पशु तुरन्त नदी के दूसरे तट पर कूद गया।" श्री हार्डी ने इस घटना को अधिक संक्षिप्त रूप मे लिखा है।" नदी तट पर पहुँच कर उन्होने सामन्त से इसका नाम पूछा और जब उन्हे बताया गया कि इसका नाम अनौमा, 'प्रख्यात अथवा सम्मानीय' है तो उन्होंने इसे अपने पक्ष मे एक अन्य शुभ शगुन के रूप मे ग्रहण कर लिया। टरनौर ने लङ्का की बुद्धावशों की अट्टकथा के आधार पर इस कथा को विस्तार मे बताया है। राजकुमार सिद्धार्थ ने छन्दो मे पूछा, "इस नदी का क्या नाम है?" 'स्वामी इसका नाम अनोमा है।' उत्तर मे उन्होने कहा, 'मेरे विधान मे किसी प्रकार का अनाम (हीणता) नहीं होगी। यह कहते हुए उन्होने एड़ी दबाई और अपने अश्व को छलाङ्ग लगाने का सकेत दिया।" टरनौर का कथन है कि "इस टिप्पणी म श्लेष है" परन्तु श्लेष ' बौद्ध साहित्य मे लघुता की वस्तु नही है।" टरनौर ने किसी त्रुटि के कारण अनोमा को "हीणता" से सम्बन्धित कर लिया है जबकि इसका अर्थ ठीक इसके विपरीत है एवम् श्री हार्डी एव पादरी बिगां-डेट ने इसे शुद्ध रूप में लिखा है। बर्मी एवं लङ्का की बौद्ध पुस्तको के अनुसार ऐसा प्रतीत होगा कि नदी का नाम अनोमा "हीण नदी वरन् श्रेष्ठ" था और राजकुमार की टिप्पणी भी इसी प्रकार रही होगी कि उसका विधान भी अनोमा (श्रेष्ठ) होगा। परन्तु चूंकि वर्तमान समय मे नदी का नाम औमी अथवा 'हीण' है और चूंकि टरनौर के अनुवाद से पता चलता है कि उसकी प्रतिलिपि में इसका नाम ओमा अथवा औमा था मैं इस सन्देह का निवारण नही कर सकता कि इसका वास्तविक पाठ यही है एवं जब राजकुमार को यह सूचना दी गई थी कि नदी का नाम ओमा अथवा 'हीण' है तो उन्होंने टिप्पणी की कि "मेरा विधान अनौमा अथवा 'श्रेष्ठ' होगा।" यदि नदी का ३० नाम अनोमा था तो यह बात समझ मे नहीं आती कि यह नाम किस प्रकार औमी

बन गया। जिसका अर्थ मूल नाम के अर्थ के विपरीत है। परन्तु यदि यह औमी अर्थात् राप्ती की छोटी शाखा की थी और बौद्ध धर्मावलम्बियो ने इसे अपनी इच्छानुसार बदल कर अनोमा कर दिया था तो मूल नाम का पुनः प्रयोग बौद्ध धर्म के ह्रास का स्वाभाविक परिणाम प्रतीत होगा।

परन्तु नदी के पूर्वी तट पर उस बिन्दु से थोड़ी दूरी पर जिसे मैंने बुद्ध के नदी पार करने का स्थान स्वीकार किया है, तीन महत्व पूर्ण नामो की उपस्थिति से बौद्ध अनोमा एवं आधुनिक औमा की अनुरूपता की पुष्टि होती है। दूसरे तट पर पहुँचने पर राजकुमार घोडे से नीचे उतर गया और उन्होंने अपने दास चन्दक को कपिला वापस लौट जाने का आदेश दिया। इस स्थान पर चन्दक निवर्त्तन अथवा 'चन्दक की वापसी' नामक एक स्तूप खड़ा है जिसे बोल चाल की भाषा मे सम्भवतः चन्दबर्त बना दिया गया होगा। मेरे विचार मे इस स्थान को औमी नदी के पूर्वी तट पर, औमियार झील के सिरे के समीप अवस्थित चन्दौली ग्राम के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो गोरखपुर के १० मील दक्षिण मे है। तत्पश्चात राजकुमार ने अपनी खड़ग के साथ अपने केशो का जूडा काट डाला जिसे ऊपर की ओर फैंके जाने पर देवताओ ने ग्रहण कर लिया "जिन्होंने उस स्थान पर चूडा पट्टी गढ़ नामक स्तूप का निर्माण कराया। बोलचाल की भाषा मे इस नाम को छोटा कर चूडा ग्रह बना दिया गया होगा जिसे मेरे विचार मे चन्दौली के तोन मील उत्तर मे चौरेया नामक गाँव के अनुरूप माना जा सकता है। तत्पश्चात राजकुमार ने काशाय नामक अपने वस्त्र उतार दिये क्योकि यह काशी अथवा बनारस मे महीन सूत के बने हुए थे। इन वस्त्रो के स्थान पर उन्होने सन्यासियो के योग्य सादे वस्त्र पहन लिये। इस घटना के स्थान पर जन साधारण ने काशाय ग्रह नामक स्तूप का निर्माण करवाया। इस स्थान को मैं चन्दौली के ३½ मील दक्षिण पूर्व मे अवस्थित कसेयार नामक गाँव के अनुरूप स्वीकार करूँगा। इन अनुरूपताओ के पक्ष मे मैं इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि ह्वेनसाग ने त्यागे गये वस्त्रों के स्तूप को चन्दक वापसी' के स्तूप के पूर्व में दिखाया है परन्तु त्यागे गये वस्त्रों के स्तूप के समीप ही चूडा पट्टी गढ़ स्तूप को दिखाने मे उसने उस स्थान के विपरीत दिशा में संकेत किया हैं जिसे मैं कसेयर के उत्तर में ६ मील की दूरी पर चौरेया में दिखा चुका हूँ। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि मेरी प्रस्तावित अनुरूपताओं में एक अनुरूपता त्रुटि पूर्ण होगी परन्तु चूंकि अन्य दोनों ह्वेनसांग द्वारा बताई गई स्थितियों से सहमत हैं प्रतीत होती हैं अतः मेरा अनुमान है कि वह सभी सम्भवतः सही हैं।

पीपलवन

अनोमा से दोनों चीनी यात्री बुद्ध की चिता की राख पर निर्मित स्तूप को

यात्रा पर गये जो पिप्पलवनों के स्थान पर बना हुआ था। इस नगर के मौर्यों ने जिन्हे विलम्ब के कारण बुद्ध के अवशेष नही मिल सके थे राख से ही सन्तोष कर लिया। फाहियान ने स्तूप को अनोमा के पूर्व मे ४ योजन अथवा २८ मील की दूरी पर बताया है परन्तु ह्वेनसाग के अनुसार इस की दूरी १८० से १९० ली अथवा ३० से ३२ मील थी जब कि इसकी दिशा दक्षिण पूर्व थी। फाहियान ने नगर के नाम का उल्लेख नही किया है परन्तु बर्मी एवं लका की बौद्ध पुस्तको मे इसे पिप्पला बनो अथवा 'पीपल वन" कहा गया है तथा तिब्बती दुलवा मे इसे न्याग्रोद्ध अथवा वट वृक्ष कहा गया है। ह्वेनसांग ने भी "न्साग्रोधा वृक्षों के वन" को कोयले के स्तूप 'का स्थान कहा है और चूंकि उसने वस्तुतः उस स्थान का यात्रा की थी अत: हमे लका के ग्रन्थों की साक्षी के स्थान पर उसकी शाक्षी को स्वीकार करना चाहिये। अब इस नाम का कोई स्थान नही है परन्तु ह्वेनसाग द्वारा इङ्गित दक्षिण पूर्वी दिशा मे एक विशाल वन है जिसने सहनकट नामक प्राचीन नगर के खण्डहरो को पूरी तरह घेर रखा है। बुचनान ने इस स्थान का विस्तृत विवरण दिया है जिसने खण्हरों से बुद्ध की अनेक मूर्तियां प्राप्त की थी। अतः बौद्ध धर्म के समृद्ध काल मे निश्चित ही इस नाम का स्थान था। मानचित्र पर सीधे माप के यह औमी नदी पर बन्दौली घाट से २० मील की दूरी पर है परन्तु सड़क की दूरी से मार्ग मे अनेक छोटी नदियों के आ जाने के कारण यह दूरी २५ मील से कम नही है। अतः यह स्थिति ह्वेनसांग के कोयले के स्तूप की स्थिति से यथा सम्भव मिलती है परन्तु मैं इसकी पुष्टि के प्रमाण प्रस्तुत, नहीं कर सकता जब तक कि श्री नगर कोलुआ नामक गांव को 'कोयल' अर्थात कोयला से सम्बन्धित न किया जाये। परन्तु इसकी सम्भावना अधिक नहीं है। फिर भी मैं यह जोड़ देना चाहता हूँ कि सहनकट से कसिया का दिकांश ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित कोयले के स्तूप से कुशी नगर का उत्तर पूर्वी दिकांश से मिलता है।

कुशीनगर

फाहियान ने कुशी नगर को कोयले के स्तूप से १२ योजन अथवा ८४ मील पूर्व बताया है परन्तु वैशाली एवं बनारस से इसकी कथित दूरियों से तुलना करने पर यह दूरी पूर्णतयः असम्भव प्रतीत होती है। दुर्भाग्यवश ह्वेनसाग ने अपनी सामान्य आदत के विपरीत दूरी का उल्लेख नही किया है और उसने केवल इतना लिखा है कि उसने जङ्गली बैलों जङ्गली हाथियों एवं लुटेरों से पूर्ण एक विस्तृत वन से होकर लम्बे समय तक उत्तर पूर्व दिशा मे यात्रा की थी। सहनकट के उत्तर एव पूर्व में इस वन का एक भाग अब भी विद्यमान है और गोरखपुर के उत्तर मे तराई के वनों में जङ्गली हाथी अभी भी अधिक संख्या में पाये जाते हैं। सर्व प्रथम मि० विलसन ने कसिया का कुशी नगर के स्थान के रूप में प्रस्ताव किया था और यह प्रस्ताव सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है। यह गाँव गोरखपुर के पूर्व ठीक ३५ मील की दूरी पर

दो मुख्य मार्गों के चौराहे पर अवस्थित है। मानचित्र पर सीधे माप से यह गाँव सहनकट से २८ मील उत्तर पूर्व में है। अथवा सडक की दूरी से ३२ मील दूर है। अतः इसकी दूरी फाहियान द्वारा कथित १२ योजन की दूरी के स्थान पर केवल ५ योजन है। बनारस से इसकी दूरी में वृद्धि किये बिना तथा वैशाली से इसकी दूरी को घटाये बिना इसे अधिक दूर उत्तर पूर्व में नहीं दिखाया जा सकता। अब, प्रथम दूरी को ह्वेनसांग ने ७०० ली अथवा ११७ मील सीमित किया है तथा अन्तिम दूरी को फाहियान ने स्वय २५ योजन अथवा १७५ मील निश्चित किया है और चूँकि दोनो अनुमान कसिया की वास्तविक स्थिति के अधिक समीप हैं अतः मुझे विश्वास है कि फाहियान द्वारा इसे १२ योजन बताया जाना एक त्रुटि थी। कसिया के समीप अनुरुद्धवा मानचित्र पर सीधे माप से बनारस से ठीक १११ मील उत्तर-उत्तर पूर्व मे हैं और सडक की दूरी के अनुसार यह दूरी १२० से कम नही होगी। मैंने जिस मार्ग का अनुसरण किया था उसके अनुसार कसिया एवं वैशाली की मध्यवर्ती दूरी १४० मील है परन्तु यह मार्ग उन नवीन सीधी रेखाओं के साथ-साथ था जिन्हें अङ्ग्रेजी सरकार ने निश्चित किया था। स्थानीय घुमावदार पुराने मार्गों से यह दूरी कही अधिक अथवा १६० मील से कम नही रही होगी।

ह्वेनसांग की यात्रा के समय कुशीनगर को दीवारें जर्जर अवस्था में थी एवं यह स्थान प्रायः निर्जन था परन्तु प्राचीन राजधानी की ईंटों की नीव १२ ली अथवा २ मोल के घेरे मे विस्तृत थी। अनरुद्धवा तथा कशिया के मध्य वर्तमान खण्डहर अधिक बडे क्षेत्र मे फैले हुए हैं परन्तु इनमे कुछ एक निश्चित ही नगर से बाहर थे और अब इसकी वास्तविक सीमाओ का निश्चय करना प्रायः असम्भव है। सम्भवतः यह नगर अनरुद्धवा गाँव के उत्तर पूर्व में खण्डहरों के टीले के स्थान पर बसा हुआ था। अतः बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति का स्थान स्तूप की स्थिति से, एव माथा कुआर का कोट अथवा 'मृतक राजकुमार का दुर्ग' नामक खण्डहर एव वह स्थान जहाँ बुद्ध के शव को जलाया गया था, वर्तमान देविस्थान नामक विशाल स्तूप के स्थान के अनुरूप होंगे। प्रथम स्थान अनरुद्धवा के उत्तर पश्चिम मे तथा छोटा गण्डक अथवा हिरण्यवती नदी के पुराने मार्ग—जो यदा कदा वर्षा ऋतु में जल से भर जाता है—के पश्चिम मे है। अन्तिम स्थान अनरुद्धवा के उत्तर पूर्व में तथा हिरन्यवती अथवा छोटा गंडक के पुराने मार्ग के पूर्व में अवस्थित है।

कशिया के समीप खण्डहरों से वर्तमान समय मे सम्बन्धित एक मात्र नाम माथा कुआर अथवा 'मृतक राजकुमार' का नाम है। श्री लिस्टन ने इसे मादा कहा है परन्तु पडोसी भिशनपुर गाँव के एक ब्राह्मण ने मेरे लिये उपर्युक्त नाम को ठीक उसी प्रकार लिखा था जैसा मैंने ऊपर लिखा है। मेरे विचार मे यह शब्द मथा अथवा माथा

से लिया गया है अतः माथा कुआर को मैंने "मृतक राजकुमार" स्वीकार किया है जिसे मैं बुद्ध की मृत्यु अथवा जनसाधारण की भाषा में निर्वाण के पश्चात स्वयं बुद्ध से सम्बन्धित करता हूँ। शाक्य द्वारा सन्यासी के वस्त्र ग्रहण करने की घटना का वर्णन करते हुए ह्वेनसांग ने उसे कुमार राजा अथवा 'राजकीय राजकुमार' कहा है परन्तु मेरा विश्वास है कि यद्यपि विद्वानों ने सन्यासी बुद्ध के लिये इस उपाधि का प्रयोग नहीं किया था फिर भी यह असम्भव नहीं है कि जनसाधारण मे यह नाम प्रचलित रहा हो। ह्वेनसांग से हमें पता चलता है कि जहाँ बुद्ध की मृत्यु हुई थी उस स्थान पर ईंटो का बिहार अथवा मन्दिर मठ बनवाया गया था जिसमे मृत्यु शैया पर लेटे हुए बुद्ध की प्रतिमा थी जिसका सिर उत्तर की ओर था। स्वाभाविक है कि वह प्रतिमा कुशीनगर के स्थान पर पूजा की विशेष वस्तु रही होगी और यद्यपि विद्वानो मे यह "निर्वाण प्रतिमा" के नाम से प्रचलित रही हो फिर भी मैं यह विश्वास कर सकता हूँ कि जन-साधारण के सभी वर्गों मे "मृतक राजकुमार की प्रतिमा" का नाम अधिक प्रचलित रहा हो। अतः मेरा विचार है कि माथा कुआर का नाम जिसे आज भी कशिया के खण्डहरों से सम्बन्धित किया जाता है बुद्ध की मृत्यु से सीधा सम्पर्क रखता है। उनके अनुयायियों के अनुसार बुद्ध की मृत्यु ५४३ ई० पूर्व में वैशाख पूर्णिमा के अवसर पर कुशीनगर में हुई। वर्तमान समय तक इस नाम का जीवित रहना कशिया को बुद्ध की मृत्यु के स्थान के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में एक ठोस प्रमाण है।

खुखुन्दो-कहौन

कुशी नगर के बाद ह्वेनसांग बनारस की ओर गया और २०० ली अथवा ३३ मील दक्षिण-पश्चिम की यात्रोपरान्त वह एक विशाल नगर में पहुँचा जहाँ एक ब्राह्मण रहा करता था जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था। यदि हम कठोरता पूर्वक दक्षिण पश्चिम दिशा का अनुसरण करे तो हमे इस विशाल नगर को रुद्रपुर के समीप सहनकट के अनुरूप स्वीकार करना चाहिये। परन्तु इस स्थान को हम इसके पूर्व पिप्पलवन के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं और यह स्थान बनारस की ओर जाने वाले मुख्य मार्ग पर नहीं है। चूंकि ह्वेनसाग ने ब्राह्मण द्वारा आने जाने वाले सभी यात्रियो की सेवा का विशेष उल्लेख किया है अतः यह निश्चित है कि यह विशाल कस्बा कुशी नगर तथा बनारस के मध्य मुख्य मार्ग पर रहा होगा। अब, यह मुख्य मार्ग रुद्रपुर से होकर नही जा सकता था क्योंकि ऐसा करने से इसे घाघरा नदी के अतिरिक्त राप्ती नदी को भी पार करना पडता जबकि स्वयं रुद्रपुर बनारस के सीधे मार्ग मे नही पड़ता। यह प्राय: स्पष्ट है कि यह मुख्य मार्ग घाघरा एवं राप्ती के संगम स्थान से नीचे किसी स्थान पर घाघरा को पार करता होगा। जनसाधारण के अनुसार घाघरा को पार करने का घाट कहौन के ४ मील दक्षिण में तथा दोनों नदियों

के संगम स्थान से ७ मील नीचे महिसी में था। कशिया से महिसी घाट तक यह मार्ग खुखुन्दो एवं कहौन के दो प्राचीन नगरो से होकर गया होगा। आज भी इन दोनो स्थानों पर प्राचीनता के चिह्न पाये जाते हैं परन्तु प्रथम नगर कशिया से केवल २८ मील दूर है जबकि द्वितीय नगर की दूरी ३५ मील है। दोनों ही असंदिग्ध रूप से ब्राह्मण-वादी थे परन्तु खुखुन्दो मे प्राप्त सभी खण्डहर मध्य युग से सम्बन्धित है जबकि कहौन में प्राप्त अवशेष स्कन्द गुप्त के समय के है जिसने ह्वेनसांग के समय से कई शताब्दी पूर्व शासन किया था। अतः मैं ह्वेनसांग के प्राचीन नगर के प्रतिनिधि के रूप में कहौन के दावे को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। आंशिक रूप से इसकी असंदिग्ध प्राचीनता के कारण एव आंशिक रूप से इस कारण कि कशिया से खुखुन्दो के अपेक्षाकृत बडे नगर की दूरी की उपेक्षा इस स्थान की दूरी तीर्थ यात्री के अनुमान से अच्छी तरह मिलती है।

पावा, अथवा पदरौना

लंका की पुस्तकों मे कुशी नगर पहुँचने से पूर्व बुद्ध के अन्तिम विश्राम स्थान के रूप मे पावा का उल्लेख किया गया है। कुशी नगर मे उनकी मृत्यु के पश्चात बुद्ध के शव के दाह सस्कार मे भाग लेने के लिये कुशी नगर तक काश्यप की यात्रा में इसका पुनः उल्लेख मिलता है। पावा, बुद्ध के अवशेष प्राप्त करने वाले आठ नगरो मे एक नगर के रूप में भी प्रसिद्ध था। लका की पुस्तकों मे इसी कुशीनगर से गंडक नदी की ओर केवल १२ मील की दूरी पर दिखाया गया है। अब कशिया से १२ मील उत्तर उत्तर पूर्व मे पदरौना अथवा पदर वन नाम एक बड़ा गाँव है जहाँ टूटी हुई ईन्टो से ढका एक विशाल टीला है जिसमें बुद्ध की अनेक प्रतिमाये प्राप्त की गई हैं। पदरवन अथवा पदरवन के नाम को सरलता पूर्वक छोटा कर परबन, पबन अथवा पावा बनाया जा सकता है। तिब्बती कह्ग्यूर मे इसे दिग पचन कहा गया है परन्तु चूँकि इसका अर्थ नहीं दिया गया है अतः यह कहना असम्भव है कि यह मूल भारतीय नाम है अथवा तिब्बती अनुवाद। पावा एवम् कुशीनगर के मध्य कुकुत्था अथवा कुकुत्था नामक एक नदी थी जहाँ बुद्ध ने स्नान किया था एवम् जल ग्रहण किया था। यह नदी वर्तमान समय की बाधी, बरही अथवा बान्धी नाला रही होगी जो ३६ मील बहने के बाद कशिया से ८ मील नीचे छोटा गंडक अथवा हिरन्य नदी के बाये तट पर मिलती है।

वाराणसी, अथवा बनारस

सातवीं शताब्दी मे पो-लो-नो-सी अथवा वाराणसी राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी तथा राजधानी जो गङ्गा नदी के पश्चिमी तट पर थी १८ से १९ ली अथवा ३ मील लम्बी एवम् ५ से ६ ली अथवा १ मील चौड़ी थी। पड़ोसी

राज्यों की सीमाओं को देखते हुए इसकी सम्भावित सीमायें उत्तर मे गोमती नदी, से इलाहाबाद तक एवम् टोन्स नदी से बिल्हारी तक सीधी रेखा, दक्षिण में बिलहारी से सोनहाट तक सीधी रेखा एवम् पूर्व मे रेहन्द कर्मनासा तथा गङ्गा नदियाँ थीं। इन सीमाओं के भीतर इसकी परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ५६५ मील एवम् वास्तविक मार्ग दूरी से ६५० मील है।

बनारस नगर उत्तर पूर्व मे बरना नदी एवम् दक्षिण पश्चिम मे असी नाला के मध्य गङ्गा नदी के बाये तट पर अवस्थित है। बरना अथवा वरणा एक महत्वपूर्ण छोटी नदी है जो इलाहाबाद के उत्तर मे निकलती है तथा लगभग १०० मील तक बहती है। असी बहुत ही छोटी नदी है और अपने गौण आकार के कारण यह हमारे सर्वाधिक विस्तृत मानचित्रों मे भी दिखाई नहीं देती। भारतीय एटलस प्रति नवम्बर ८८ मे जो एक इंच बराबर चार मील की दर से बनाई गई है अथवा बनारस जिले के पत्थर के छाप के बड़े मानचित्र में जिसे एक इंच बराबर २ मील की दर से बनाया गया है इस नदी को स्थान नहीं दिया गया है। इस भूल के कारण फ्रांसीसी विद्वान एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन को गङ्गा की सहायक नदी के रूप में असी नदी के अस्तित्व मे सन्देह है एवम् उनका अनुमान है कि यह केवल बरना नदी की एक शाखा हो सकती है एवम् दोनो की संयुक्त धारा जिसे वाराणसी कहा जाता था—से नगर का नाम वाराणसी पड़ गया था। जैसा कि मैंने बताया है असी नाला को हलमन्डेन द्वारा प्रकाशित जेम्स प्रिन्सिप के बनारस के मानचित्र मे एवम् उस छोटे मानचित्र मे देखा जा सकता है जिसे मैंने बनारस के खण्डहरों की व्याख्या करने के लिये बनाया है। श्री एच० एच० विलसन ने अपने संस्कृत शब्द कोष में वाराणसी के अन्तर्गत असी की स्थिति को ठीक-ठीक समझाया है। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि बनारस से रामनगर की ओर जाने वाली सड़क नगर के ठीक बाहर एवम् नदी में संगम स्थान से कुछ नीचे असी नाला को पार करती है। दोनो छोटी नदियों एवम् गङ्गा के संगम स्थान को विशेष रूप से पवित्र माना जाता है और तदनुसार नगर से नीचे बरना संगम एवम् नगर से ऊपर असी संगम पर मन्दिरों का निर्माण करवाया गया है। नगर को उत्तर एवम् दक्षिण से घेरने वाली दोनों नदियों के संयुक्त नाम से ब्राह्मणों ने वाराणसी अथवा वाराणसी नाम प्राप्त किया जिसे बनारस नाम का संस्कृत स्वरूप समझा जाता है। परन्तु जनसाधारण में प्रचलित रूप से इसे राजा बनारस के नाम से सम्बन्धित किया जाता है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने लगभग ८०० वर्ष पूर्व इस नगर की स्थापना की थी।

अबुल फजल ने इन दोनों छोटी नदियों का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि, "वाराणसी जिसे सामान्यतः बनारस कहा जाता है बरना एवम् असी नदियों के मध्य अवस्थित एक विशाल नगर है।" पादरी हेबर ने भी इस बात का उल्लेख किया

है कि राजा बनारस ने उसे सूचित किया था कि "गङ्गा नदी में गिरने वाली बारा एवम् नासा नाम की दो नदियों के नाम पर इस नगर का प्राचीन नाम बनारस था।" विद्वान पादरी ने अनुमान लगा लिया है कि यह दोनो नादियाँ भूमिगत होकर गङ्गा में मिलती हैं क्योंकि इन्हे मानचित्र पर नही दिखाया गया है परन्तु दो पृष्ठों के बाद उसने लिखा है कि उसकी नौका "एक छोटी नदी के मुहाने पर पहुँची जो सेकरोल" अर्थात बनारस छावनी, "की ओर जाती थी। यहां यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि यह केवल उनके दास की सूचना पर लिखा गया है एवम् उन्होने वस्तुतः नदी को नही देखा, परन्तु चूंकि पादरी बरना के उत्तर मे श्री बोक के साथ रहते थे अतः हिन्दुओ के पवित्र नगर मे अपने निवास के दिनों मे वह पत्थर के विशाल पुल से कम से कम दो बार प्रति दिन आया जाया करते होगे।

बौद्ध धर्मावलम्बियो मे बनारस उस स्थान के रूप मे प्रसिद्ध हैं जहाँ महान गुरू ने अपने सिद्धान्तो का सर्व प्रथम प्रचार किया था अथवा जैसा कि वह इसे लाक्षणिक रूप में व्यक्त करते है 'जहाँ उन्होने धर्म चक्र चलाया था।' यह बुद्ध के जीवन की चार महान घटनाओ मे एक घटना थी और उस स्थान पर बनाये गये स्तूप को बौद्ध धर्म के चार महान स्तूपो मे गिना जाता है। यह स्तूप-जिसे अब धमेक कहा जाता है—नगर के उत्तर में लगभग ३ मील को दूरी पर खण्डहरो के विशाल समूह मे खड़ा है जो चारो ओर विशाल कृत्रम झीलो से घिरे हुए हैं। धमेक नाम सम्भवतः सस्कृत के धर्मोपदेशक का संक्षिप्त स्वरूप है। किसी भी धार्मिक गुरू के लिये यह एक सामान्य नाम है परन्तु इस बात को ध्यान मे रखने पर कि बुद्ध ने सर्व प्रथम इसी स्थान पर धर्म चक्र चलाया था, यह नाम स्तूप के लिये उपयुक्त प्रतीत होता है। सरल भाषा में इसे धर्मदेशक भी कहा जाता है जिसे बोल-चाल की भाषा मे स्वभाविक रूप से छोटा कर धम्मदक अथवा धमेक बना दिया गया होगा।

नगर का प्राचीनतम नाम काशो था जो अकेले अथवा अन्तिम नाम के साथ काशी बनारस के रूप मे आज भी प्रचलित है। यह सम्भवतः टालमी का कस्सीदा अथवा कस्सीदिया था। यह नाम काशी राज से सम्बन्धित किया जाता है जो चन्द्र-वंशियों के प्रारम्भिक पुरखो में था। उसके बाद उसके २० वंशजों ने काशी मे राज्य किया। प्रसिद्ध काशी राज दिवोदास इन्ही वंशजो मे थे।

गरजापटीपुर

बनारस से ह्वेनसांग पूर्व दिशा में ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रो-परान्त चेन चू राज्य मे गया था जो मूल नाम का चीनी अनुवाद है जिसका अर्थ 'युद्ध क्षेत्र का स्वामी' था। श्री एम० जुलीन ने योद्धा पटी अथवा योद्धाराजपुर नाम का प्रस्ताव किया है परन्तु चूँकि केवल अनुवाद ही दिया गया है अतः हम विग्रहपटी, युद्ध

नाथ, रण स्वामी आदि अनेक नामों का प्रस्ताव कर सकते हैं। गङ्गा नदी पर अवस्थित राजधानी की परिधि १० ली अथवा १⅔ मील थी। इस प्रकार वर्णित स्थान निश्चित ही गाजीपुर है जो बनारस से प्रायः ५० मील पूर्व गङ्गा नदी पर अवस्थित है। वर्तमान नाम मुसलमानों द्वारा रखा गया था और कहा जाता है कि यह नाम मूल हिन्दू नाम गर्जपुर का केवल परिवर्तित स्वरूप है। इस बात की अधिक सम्भावना है कि ह्वेनसांग ने गर्जन के रूप में इसी नाम का उल्लेख किया है जिसके साधारण अर्थ से 'युद्ध' का संकेत भी मिलता है और गर्जन पति 'युद्ध के देवता' की उपाधि है। गाजीपुर अब एक बड़ा नगर है जिसकी लम्बाई २ मील एवम् परिधि ५ अथवा ६ मील हैं। ह्वेनसांग ने जिले की परिधि का अनुमान २००० ली अथवा ३३३ मील लगाया था जो प्रायः उत्तर मे घाघरा तथा दक्षिण मे गोमती, पश्चिम में टाण्डा से गङ्गा एवम् घाघरा के संगम स्थान के मध्यवर्ती क्षेत्र के आकार के समान है।

राजधानी से २०० ली अथवा ३३ मील पूर्व मे ह्वेनसांग अविधकर्ण मठ मे गया था जो अति सुन्दर कला मूर्तियो से सुसज्जित था। दिकांश एवम् दूरी को देखते हुए इस स्थान को गङ्गा नदी के तट पर बलिया के आस-पास देखा जाना चाहिये। अविद्धकर्ण का अर्थ है 'छिद्रित कर्ण' और मेरे विचार मे यह सम्भव है कि यह नाम बलिया के एक मील पूर्व मे अवस्थित बीकापुर नाम में सुरक्षित है क्योंकि अविद्धकर्ण-पुर को सरलता पूर्वक बिद्धकर्णपुर तथा बीकनपुर बनाया जा सकता है। यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि फहियान द्वारा 'बृहद आरण्य' नाम के अन्तर्गत उल्लिखित स्थान यही हो। यह स्थान पटना एवम् बनारस के मध्य, प्रथम स्थान से १० योजन अथवा ७० मील तथा अन्तिम स्थान से १२ योजन अथवा ८४ मील की दूरी पर है। इसका भारतीय नाम नहीं दिया गया है परन्तु चूँकि इसका अक्षरशः अर्थ बृहद आरण्य अथवा बिदारन होगा इस नाम को अज्ञानता अथवा इच्छा से सरलता पूर्वक बिद्धकर्ण पढ़ा जा सकता है। पटना एवम् बनारस से दी गई दूरी बलिया की दूरी से ठीक-ठीक मिलती है जो प्रथम नगर से ७२ मील तथा अन्तिम नगर से ८६ मील है।

मठ से ह्वेनसांग १०० ली अथवा १६ मील दक्षिण पूर्व में गङ्गा नदी तक गया। नदी को पार कर वह कुछ अकथित दूरी तक दक्षिण की ओर गया एव यो-लो-सो-भो अथवा महासार नामक नगर में पहुँचा। इस स्थान पर ब्राह्मणों का निवास था जो बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं रखते थे। श्री एम० विवीन डी सेन्ट मर्टिन ने इसे अरा (मानचित्र के अराह) के ६ मील पश्चिम में अवस्थित मसार गाँव के अनुरूप स्वीकार किया है जिसके समीप बुचनान को अनेक ध्वस्त भवन एवं अधिक संख्या में ब्राह्मणों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। तत्पश्चात तीर्थ-यात्री ने तुरन्त ही ना-लो-येन अथवा नारायण मन्दिर मे पहुँचने की सूचना दी है जबकि उसने अन्तिम स्थान से इसकी दूरी अथवा दिकांश का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु वैशाली तक उसके पश्चातवर्ती

मार्ग को देखने पर मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि उसने खेल गंज के समीप गङ्गा नदी को पार किया होगा जो मसार के ठीक उत्तर में ठीक १६ मील अथवा १०० ली की दूरी पर है। गङ्गा एवं घाघरा नदियों के समीप यह स्थान विशेष रूप से पवित्र माना जाता है और खेल गंज के थोड़ा ऊपर संयुक्त नदियों के तट पर अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया गया है। अतः मैं इसी स्थान को ह्वेनसांग द्वारा कथित नारायण अथवा विष्णु के मन्दिर का स्थान बताऊँगा जिसे उसने दो मंजला एवं पत्थर की सर्वाधिक सुन्दर कला मूर्तियों से सुसज्जित बताया है।

मन्दिर से पूर्व ३० मील अथवा ५ मील की दूरी पर एक प्रसिद्ध स्तूप था जिसे अशोक ने उस स्थान पर बनवाया था जहाँ बुद्ध ने किन्हीं राक्षसों पर विजय प्राप्त की थी एवं उन्हें बुद्ध धर्म का अनुयायी बनाया था। कहा जाता है कि यह राक्षस मानव भक्षी थे। इन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया अथवा प्राचीन बौद्ध धर्मावलम्बियों के मतानुसार बौद्ध धर्म की महान त्रिमूर्ती अर्थात बुद्ध, धर्म एवं संघा की शरण ली। शरण संस्कृत शब्द है और चूँकि सारन ही उस जिले का वास्तविक नाम है जहाँ राक्षसों ने बुद्ध की शरण ली थी अतः मेरा निष्कर्ष है कि उस स्थान पर बनाये गये स्मारक को शरण स्तूप कहा गया होगा। यह स्तूप अधिक प्रसिद्ध रहा होगा क्योंकि इस बात में सन्देह नहीं कि इसी स्तूप के नाम पर जिले का वर्तमान नाम पड़ा होगा। अब, खेल गंज के पाँच मील पूर्व जाने से हम सारन जिले की वर्तमान राजधानी में पहुँचते हैं। दुर्भाग्यवश धपरा के सम्बन्ध में मैं कोई सूचना प्राप्त नहीं कर सका परन्तु इतना निश्चित है कि यह अधिक महत्व का स्थान रहा होगा अन्यथा जिले की अङ्गरेजी राजधानी के रूप में इसका निर्वाचन न किया जाता।

शरण स्तूप से तीर्थ यात्री १०० ली अथवा १६⅔ मील दक्षिण पूर्व में एक अन्य स्तूप पर गया जो द्रोण ब्राह्मण ने उस पात्र पर बनवाया गया था जिससे उसने बुद्ध के अवशेषों का माप किया था। लंका की पुस्तकों के अनुसार दोणो (अथवा द्रोण) ब्राह्मण ने कुम्भान पर स्तूप का निर्माण करवाया था और इसी कारण इसे कुम्भान स्तूप भी कहा जाता था। हार्डी ने ब्राह्मण को द्रोहा एवं पात्र को "स्वर्ण माप" कहा है। वर्मा की पुस्तकों में पात्र को यही नाम दिया गया है परन्तु ब्राह्मण को दौना कहा गया है। तिब्बती विवरण में दोण नाम को अवशेषों के 'माप' से सम्बन्धित बताया गया है जो निश्चित ही असत्य है क्योंकि ब्राह्मण को अवशेषों का कोई भाग नहीं मिला परन्तु उसे वह पात्र मिला था जिससे उसने अवशेषों का माप किया था। सम्भवतः यह पात्र माप के द्रोण के तुल्य था क्यों कहा जाता है कि अवशेषों का प्रत्येक भाग एक दोण था। अतः स्तूप को द्रोण स्तूप कहा गया होगा क्योंकि यहाँ वह पात्र रखा गया था जिससे प्रति दोण का माप किया था। परन्तु दोण स्तूप ही स्मारक का एक मात्र नाम नहीं था। लंका के बौद्ध ग्रन्थों में इसे कुम्भा स्तूप

कहा गया है। अब कुम्भ एक बड़े आकार का जल भरने का पात्र है जिसे बड़े मुख वाले फूलों से पूर्ण पात्र के रूप में अनेक भारतीय स्तूपों पर खुदा हुआ देखा जा सकता है। मैं छपरा के दक्षिण पूर्व मे १७ मील की दूरी पर ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थान पर कुम्भ अथवा द्रोण समान किसी नाम को नही ढूंढ सका हूँ। परन्तु इसी स्थिति में देगवार नामक एक गाँव है जो, चूँकि देग कुम्भ के आकार का एक बड़ा धातु के बने पात्र का हिन्दी नाम है, सम्भवतः मूल नाम का परिवर्तत नाम हो सकता है। परन्तु देग समान आकार के पात्र का फारसी नाम भी है अतः मै सरल स्मृति के लिये देगवार का उल्लेख करूंगा क्योकि इसका समान अर्थ है और इसकी स्थिति भी बौद्ध इतिहास के प्रसिद्ध कुम्भ स्तूप के समान है।

वैशाली

कुम्भ स्तूप से ह्वेनसाग उत्तर पूर्व की ओर १४० अथवा १५० ली अथवा ३३ से ३५ मील की दूरी पर अवस्थित वैशाली नगर मे गया। उसने मार्ग मे गङ्गा नदी पार करने का उल्लेख किया है परन्तु चूँकि वह इस यात्रा मे पर्व ही नदी के उत्तर मे था अतः उसका उल्लेख गडक नदी से सम्बन्धित रहा होगा जो देगवारा के १२ मील के भीतर बहती है। अतः हमे वैशाली को गडक के पूर्व मे देखना चाहिये। तदनुसार यहाँ हमे एक प्राचीन ध्वस्त दुर्ग सहित बेसोढ़ नामक गाँव मिलता है जिसे आज भी राजा बिसाल का गढ़ अथवा राजा वैशाल का दुर्ग कहा जाता है जो प्राचीन वैशाली का प्रसिद्ध संस्थापक था। ह्वेनसांग का कथन है कि राजमहल की परिधि ४ से ५ ली अथवा ३५०० से ४४०० फुट थी जो प्राचीन दुर्ग के मेरे आंकड़ों से मिलती है। मेरे आंकड़ो के अनुसार ध्वस्त दीवारों की रेखाओं के साथ-साथ दुर्ग का आकार १५०० फुट गुणा ७५० फुट अथवा कुल मिलाकर ४६०० फुट था। अबुल फजल ने वेसोढ़ नाम के अन्तर्गत इस स्थान का उल्लेख किया है। वर्तमान समय मे भी यह ईंटों के खण्डहरो से घिरा एक विस्तृत गाँव है। यह देगवारा से ठीक २३ मील की दूरी पर है परन्तु इसकी दिशा उत्तर पूर्व के स्थान पर उत्तर-उत्तर-पूर्व है। यह स्थिति पाटली पुत्र अथवा पटना के विपरीत गङ्गा नदी के तट तक ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित दूरी एवं दिकाश से ठीक-ठीक मिलती है। यह स्थान देगवारा से १२० ली अथवा २० मील दक्षिण मे है और गङ्गा के उत्तरी तट पर हाजीपुर का स्थान भी ठीक २० मील दक्षिण मे है। इस प्रकार बेस्मेढ़ का ध्वस्त दुर्ग एवं वैशाली के प्राचीन नगर में नाम, स्थिति एव आकार की इतनी अधिक समानता है कि इनकी अनुरूपता में किसी प्रकार का उचित सन्देह शेष नही रह जाता।

ह्वेनसांग के आंकडो के अनुसार वैशाली राज्य की परिधि ५०००, ली अथवा ८३३ मील थी जो निश्चय ही अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि इस परिधि को स्वीकार करने

से वैशाली राज्य मे व्रिजी के पड़ोसी राज्य को सम्मिलित करना होगा जिसकी परिधि ह्वेनसांग के कथनानुसार ४००० ली अथवा ६६७ मील थी। अब, व्रिजी की राजधानी को वैशाली के उत्तर पूर्व में ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर बताया गया है और चूंकि दोनो जिले पर्वतो एवम् गङ्गा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र मे थे अतः यह प्रायः निश्चित है कि इनमें किसी एक के अनुमानित आंकड़ो में कुछ त्रुटि है। आस-पास के अन्य राज्यों को देखते हुए, पर्वतों से दक्षिण मे गङ्गा नदी तक एवं पश्चिम मे गडक नदी से पूर्व मे महा नदी तक दोनो जिलो की सयुक्त सीमायें ७५० अथवा ८०० मील से अधिक नही हो सकती। अतः मेरा निष्कर्ष है कि या तो एक अथवा दोनो जिलो के अनुमानित आंकडो मे कुछ त्रुटि अथवा अतिश्योक्ति है अथवा दोनो जिले भिन्न नामो के अर्न्तगत एक ही राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। अब मैं यह दिखाने का प्रयास करूंगा कि अन्तिम अनुमान सत्य है।

मि० बर्नाफ द्वारा उद्धत एक बौद्ध कथा मे बुद्ध आनन्द सहित चापाल स्तूप तक जाते है तथा एक वृक्ष के नीचे बैठ कर अपने शिष्य से इस प्रकार वार्तालाप करते हैं "आनन्द, देखो व्रिज्जियो की भूमि वैशाली नगरी कितनी सुन्दर है।" इत्यादि। बुद्ध के समय एव उनके पश्चात अनेक शताब्दियो तक वैशाली निवासियो को लिच्छवी कहा जाता था तथा त्रिकन्दसेहा मे लिच्छवी, वैदेही एवम् तिरभुक्ति को पर्यायवाची नाम बताया गया है। रामायण के पाठक जानते है कि वैदेही राजा जनक के राज्य मिथिला का एक सामान्य नाम था जिसकी कन्या सीता को वैदेही भी कहा जाता है। तिरभुक्ति वर्तमान तिरहुती अथवा तिरहुत है। अब, मिथारी जिले मे जनकपुर के आधुनिक नगर को देश की जनता की सर्व सम्मति से मिथिला की राजधानी, प्राचीन जनकपुरी का स्थान स्वीकार किया जाता है। यह ह्वेनसांग द्वारा कथित व्रिजी की राजधानी चेन-शू-ना की स्थिति से मिलती है। एम० विवोन डी सेन्ट मर्टिन ने चीनी नाम को ची-शू-ना पढ़ा है परन्तु श्री एम० जुलीन ने इसे छा सू-ना कहा है तथा उनका इस बात का संकेत किया है कि द्वितीय स्वरूप को शूक्र में ढूंढा जा सकता है और मेरे विचार मे इसे शूक्र मे भी देखा जा सकता है। नाम का शुद्धीकरण सन्दिग्ध है परन्तु—यदि चीनी तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी एवम् दिशा ठीक हैं तो यह प्रायः निश्चित है कि सातवी शताब्दी मे व्रिज्जियो की राजधानी जनकपुर थी।

ह्वेनसांग ने फो ली शी अथवा व्रिजी नाम के अर्न्तगत देश के सस्कृत नाम का वर्णन किया है परन्तु यह भी कहा है कि उत्तरी प्रदेश की जनता देश को सान-फा-शी अथवा समवजी कहा करते थे जो समव्रिज्जियो अथवा संयुक्त व्रिज्जियो का पाली स्वरूप है। इस नाम से मेरा अनुमान है कि व्रिजी एक बहुत बड़ी जाति का नाम था जो वैशाली के लिच्छवी मिथिला के वैदेही एवम् तिरहुत के तिरभुक्ति आदि अनेक शाखाओ में विभाजित थी। अतः इनमे किसी भी खण्ड को व्रिजी समव्रिजी अथवा

"संयुक्त व्रिजो" कहा जा सकता है। हमारे पास सतलज के बागडियों अथवा सम बागड़ियों की लड़ाकू जाति का समानान्तर उदाहरण है जो तीन विभिन्न शाखाओं में बटी हुई थी। अतः मेरा निष्कर्ष है कि वैशाली संयुक्त व्रिजयों अथवा वज्जियों की सीमा में एक ही जिला था अतः वैशाली के विस्तार सम्बन्ध मे ह्वेनसांग का अनुमान एक साधारण त्रुटि थी। सम्भवतः हमें ५००० ली अथवा ८३३ मील के स्थान पर इसे १५०० ली अथवा २५० मील पढ़ना चाहिये। इस दिशा में वैशाली जिला छोटी गण्डक नदी के पश्चिम की ओर व्रिज्जियो के देश के दक्षिण-पश्चिमी कोण तक सीमित होगा।

वैशाली के उत्तर-पश्चिम मे २०० ली अथवा ३३ मील से कुछ कम दूरी पर ह्वेनसांग ने एक प्राचीन नगर के खण्डहरों का उल्लेख किया है जो अनेक वर्ष पूर्व नष्ट हो गया था। कहा जाता है कि बुद्ध ने महादेव नामक एक चक्रवर्ती राजा के रूप मे अपने पिच्छले जन्म मे यहाँ राज्य किया था और इस तथ्य के समर्थन मे यहाँ एक स्तूप है। इस स्थान का नाम नही दिया गया है परन्तु दिकांश एक दूरी वैशाली से प्रायः ३० मील उत्तर पश्चिम मे एक प्राचीन ध्वस्त नगर केशरिया की ओर सकेत करते हैं। इस स्थान पर खण्डहरो का एक टीला है जिस पर एक उन्नत स्तूप खड़ा है। जन साधारण के अनुसार यह स्तूप राजा वेन चक्रवर्ती ने बनवाया था। पुराणो मे भी राजा वेन को चक्रवर्ती राजा कहा गया है और मैंने उसके नाम को उत्तरी भारत में उतना ही प्रचलित पाया है जितना राम अथवा पाण्डवो का नाम प्रचलित है। यह स्मारक जिले के दो विशाल मार्गों अर्थात पटना से उत्तर की ओर बेतिया एव छपरा से गण्डक पार नेपाल की ओर जाने वाले मार्गों के चौराहे पर अवस्थित है। लङ्का की बौद्ध पुस्तको मे इस तथ्य का एक विचित्र उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार स्वयं बुद्ध ने आनन्द को सूचित किया था कि "उन्होंने एक चक्रवर्ती राजा के लिये चार मुख्य मार्गों के चौराहे पर एक थूपो का निर्माण करवाया था।" अतः मुझे इस बात में सन्देह नही है कि यह स्थान ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थान के अनुरूप है।

व्रिजी

वैशाली से ह्वेनसाग उत्तर पूर्व की ओर ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर अवस्थित फो-लो-शी अथवा व्रिजी गया था जिसे हम वज्जियों अथवा व्रिज्जियों की शक्तिशाली जाति की सीमा के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं। बुद्ध के समय में व्रिजी, लिच्छिवी, विदेह त्रिरभुक्ति एवं अन्य अनेक शाखाओं में विभाजित थे जिनके नाम अज्ञात हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन शाखाओ की संख्या आठ थी क्योंकि अपराधियों को अट्ठ कुलक अथवा आठ वंशों के संयुक्त न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता था जिसमें प्रत्येक वंश से एक-एक सदस्य को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता था। ह्वेनसांग ने लिखा है

कि उत्तरी प्रदेश के लोग उन्हें साम-फा-सो-अथवा समवज्जी अर्थात "संयुक्त वज्जी" कहा करते थे तथा मि० टर्नौर ने लङ्का की पाली पुस्तकों के आधार पर वज्जी की जनता के सम्बन्ध में अपने विस्तृत एवं रुचि पूर्ण विवरण में इसी नाम का उल्लेख किया है। मगध के महान सम्राट अजात शत्रु ने वज्जियों की विशाल एवं शक्तिशाली जाति को अपने अधीन बनाने की इच्छा से इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सर्वाधिक अनुकूल उपाय जानने के लिये अपने दूत को बुद्ध के पास भेजा था। सम्राट को सूचित किया गया था कि जब तक वज्जी की जनता संयुक्त रहेगी वह अपराजित रहेगी। सम्राट ने अपने मन्त्री की सहायता से तीन वर्षों मे उनके शासकों की एकता को इतना छिन्न-भिन्न कर दिया कि वह परस्पर सन्देह के कारण एकता का मार्ग भूल गये और तदनुसार बिना प्रतिरोध उन्हे पराधीन बना लिया गया। टर्नौर के अनुसार "वज्जियान राज्यो के समूह मे शासको का गणतन्त्र था।" अतः समव्रिजी अथवा "संयुक्त व्रिजी" आठ वन्शो के सम्पूर्ण राज्य का नाम था जो—जैसा कि बुद्ध ने टिप्पणी की थी—समय-समय पर परस्पर परामर्श द्वारा संयुक्त कार्य करने एवम् प्राचीन वज्जियान सस्थानो को जीवित रखने का अपना प्रण दोहराया करते थे। किसी राजा का उल्लेख नही किया गया है परन्तु कहा जाता है कि जन साधारण वृद्ध जनों की आज्ञाओं का पालन करते थे।

ह्वेनसांग के अनुसार व्रिज्जियो का प्रदेश पूर्व से पश्चिम लम्बा एवम् उत्तर से दक्षिण सकीर्ण था। यह विवरण गण्डक एव महानदी के मध्यवर्ती क्षेत्र से ठीक ठीक मिलता है जो ३०० मील लम्बा एव १०० मील चौडा है। इन सीमाओं के भीतर अनेक प्राचीन नगर हैं जिनमे कुछेक प्राचीन आठ व्रिजी वशो की राजधानी रहे होंगे। वैशाली, केसरिया एवं जनकपुर को हम देख चुके हैं अन्य स्थान है नवन्दगढ़ सिमरून, दरभङ्गा पूर्णिया तथा मोतिहारी। अन्तिम तीनो नगर अब भी बसे हुए हैं एवं सर्व ज्ञात है परन्तु सिमरून पिछले ५५० वर्षों से निर्जन है जबकि नवन्दगढ़ सम्भवतः १५ शताब्दियों से निर्जन पड़ा है। श्री होदगसन ने सिमरून का उल्लेख किया है परन्तु इसकी सम्भावित प्राचीनता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विचार प्रगट करने से पूर्व इसके खण्डहरों का सर्वेक्षण आवश्यक है। मैं स्वय १८६२ ई० मे नवन्दगढ़ गया था और मेरे विचार में यह उत्तरी भारत का प्राचीनतम एवं सर्वाधिक रुचि पूर्ण स्थान है।

नवन्दगढ़ अथवा नौनदगढ़ एक ध्वस्त दुर्ग है जो शिखर पर २५० फुट से ३०० फुट वर्गाकार एवं ८० फुट ऊंचा है। यह बेतिया से १५ मील उत्तर उत्तर पश्चिम में एवं गण्डक नदी के निकटतम बिन्दु से १० मील दूर लौरिया के विशाल गाँव के समीप अवस्थित है। प्राचीन खण्डहरों मे एक उत्कृष्ट शिला स्तम्भ है जिसके ऊपर शेर बना हुआ है एवं इस पर अशोक का लेख खुदा हुआ है। यहाँ पर मिट्टी की

तीन पंक्तियाँ भी हैं जिनमें दो पंक्तियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है तथा तीसरी पंक्ति पूर्व से प श्चम की ओर। हमें सामान्यतः जो स्तूप दिखाई देते हैं वह पत्थर अथवा ईंटों के बने होते हैं परन्तु प्राचीनतम स्तूप केवल मिट्टी के टीले हुआ करते थे और मैंने ऐसे जितने भी स्तूप देखे हैं उनमें यह स्तूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण है मेरा विश्वास है कि यह बौद्ध धर्म के उत्थान से पूर्व कालीन राजाओं के स्मारक हैं और इन्हें ६०० से १५०० ई० पू० के समय का स्वीकार किया जा सकता है। इनमे प्रत्येक को केवल भिसा अथवा 'टीला' कहा जाता है परन्तु सम्पूर्ण स्थान को राजा उत्तान पात के मन्त्रियो का कोट अथवा मोर्चाबन्द निवास स्थान माना जाता है जबकि नवन्द गढ़ का दुर्ग राजा का निजी निवासस्थान था। स्तूप शब्द का मूल अर्थ केवल "मिट्टी का टीला" है और मि० कोलब्रूक ने 'अमर कोष' के अपने अनुवाद मे इस का यही अर्थ दिया है। मेरा विश्वास है कि मिट्टी के यह स्तूप अथवा नवन्द गढ़ के चैत्यास उन स्तूपो मे सम्मिलित रहे होगे जिनकी ओर व्रिजी के सम्बन्ध में आनन्द से पूछे छटे प्रश्न मे बुद्ध ने सकेत किया था।" आनन्द ! तुमने सुना होगा कि वज्जियान, चाहे उनसे सम्बन्धित वज्जियान : चैत्यानी की सख्या कितनी ही क्यों न हो, चाहे वह नगर के भीतर अवस्थित हो अथवा बाहर, उनका सम्मान, प्रतिष्ठा बनाये रखते है तथा वहाँ भेट चढ़ाते हैं और वह प्राचीन भेट, प्राचीन प्रतिष्ठा एवम् प्राचीन त्याग को बनाये रखते हैं।" अब, यह चैत्यानी बौद्ध स्तूप नही हो सकते हैं क्योकि बुद्ध ने अपने जीवन काल मे यह प्रश्न किया था। तदनुसार लङ्का की अट्ठकथा के लेखक ने लिखा है कि वह यखथानोनी अर्थात यक्ष अथवा राक्षस पूजा से सम्बन्धित हैं। यखस अथवा संस्कृत यक्ष तथा जक्ष कुबेर के दास तथा कोष रक्षक थे और उनके मुख्य निवास स्थान को अलकपुर कहा जाता था। अब, गण्डक के आस पास किसी स्थान पर अलकप्पो नामक नगर है जहाँ बलया अथवा बुलुका नामक जाति का निवास है जिन्हे बुद्ध के अवशेषो का अधिकांश भाग प्राप्त हुआ था। अतः यह सम्भव है कि अलकप्पो का यह नगर यक्ष पूजा से सम्बन्धित रहा हो तथा नवन्दगढ़ के पूर्व बुद्ध कालीन स्तूप व्रिज्जियो के चैत्य थे और बुद्ध ने इन्ही की ओर सकेत किया था। यदि ऐसा है तो अलकप्पो के बलया अथवा बुलुका व्रिज्जियों के आठ वंशो मे रहे होगे और अलकप्पों के गण्डक नदी के समीप होने के कारण उपर्युक्त निष्कर्ष अधिकसम्भवित प्रतीत होता है।

नेपाल

व्रिजी से चीनी तीर्थ यात्री नी-पो-लो अथवा नेपाल गया था जिसे उसने १४०० अथवा १५०० ली यानी २३३ से २५० मील उत्तर पश्चिम में बताया है। जनकपुर से नेपाल ओर दो मार्ग जाते हैं एक कमला नदी के मार्ग से दूसरा भागमती

अथवा भगवती नदी के मार्ग से परन्तु किसी भी मार्ग से यह दूरी १५० मील से अधिक नहीं है। देश की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील बताई गई है जो अत्याधिक कम है। इस परिधि में यदि सप्त कोसिकी अथवा कोसी नदी की सात शाखाओ पर खास नेपाल जिले को लिया जाये तो तीर्थ यात्री के आकड शुद्ध हो सकते हैं परन्तु इस परिस्थिति मे गण्डक नदी का तटीय पर्वतीय प्रदेश अलग राज्य रहा होगा जो अत्यधिक असम्भावित है। अत: मैं दोनों नदियो की घाटी को नेपाल में सम्मिलित एवं ह्वेनसांग के आंकड़ों को परिवर्तत कर ६००० ली अथवा १००० मील स्वीकार करूँगा जो दोनो घाटियों के वास्तविक आकार के समान है।

नेपाल का राजा लिच्छवी जाति का क्षत्रिय था जिसका नाम अन्शु वर्मा था जो सम्भवत: स्थानीय इतिहास का अंशु वर्मा था क्योकि वह विजेताओं के नेवारित अथवा नेवार परिवार का सदस्य था। लिच्छवी होने के नाते अन्सु वर्मा एक विदेशी अर्थात वैशाली का एक व्रिजी रहा होगा। इसी प्रकार तिथियो मे भी समानता है क्योकि अशु वर्मा राघव देव ने ८८० ई० में नेवार वंश की स्थापना की थी। प्रत्येक शासक के लिये १६ वर्षो का राज्य काल निर्धारित करने से अन्शु वर्मा के राज्यारोहण को ६२५ ई० मे निश्चित किया जा सकता है और ६३७ ई० मे ह्वेनसांग की यात्रा उसके शासन काल के अन्तिम वर्षों मे हुई होगी।

यह बात उल्लेखनीय है कि तिब्बत एवं लद्दाख के शासक भी लिच्छवियो के वन्शज होने का दावा करते हैं परन्तु यदि उनका दावा उचित है तो वह निश्चित ही परिवार की नेपाली शाखा के सदस्य रहे होगे। अब कहा जाता है कि नेपाल की विजय नेवारित ने की थी जो अन्शु वर्मा से ३७ वा पूर्ववर्ती शासक था और १७ वर्ष की दर से ६२६ वर्ष पूर्व अर्थात ४ ईसवी पूर्व मे उसका राज्यारोहण हुआ होगा। तिब्बती इतिहास न्याखरी त्सान्पो के राज्यारोहण से प्रारम्भ होता है जिसका समय लहा थोथोरी (४०७ ई०) से ५०० वर्ष पूर्व अर्थात ९३ ई० पूर्व निर्धारित की गई है। परन्तु चूंकि ल्हा थोथोरी के पाँचवें उत्तराधिकारी का जन्म ६२७ ईसवी में हुआ था अत: उपर्युक्त (४०७ ईसवी की) तिथि मे प्राय: १५० वर्षों की त्रुटि हुई है। इस प्रकार प्रथम शासक की तिथि को निर्धारित करने से लिच्छवियों की विजय को ५० ईसवी अर्थात नेपाल विजय से दो पीढ़ी उपरान्त ही निर्धारित किया जा सकता है।

मगध

नेपाल से ह्वेनसांग वैशाली वापस गया और तदोपरान्त दक्षिण दिशा मे यात्रा करते हुए गङ्गा नदी को पार कर वह मगध की राजधानी में प्रविष्ट हुआ। उसने लिखा है कि नगर का मूल नाम कुसुमपुर था, यह दीर्घ काल से निर्जन था। एवं उस समय जर्जर अवस्था में था। पाटली पुत्र पुर के नवीन नगर को छोड इसकी परिधि

७० ली अथवा ११३/३ मील थी। इस नाम को यूनानियों ने मेगस्थनीज के आधार पर आंशिक रूप से परिवर्तन कर पालीबोथ्रा बना दिया था। मेगस्थनीज के विवरण को एरियन ने सुरक्षित रखा है।" भारत का मुख्य नगर दो महान नदियों अर्थात एरन्नोबोअस एवं गङ्गा नदी के सङ्गम स्थान के समीप प्रासी की सीमाओं में अवस्थित पालीबोथ्रा है। एरन्नोबोअस सम्पूर्ण भारत की तीसरी बड़ी नदी समझी जाती है और इसकी गणना सिन्धु एवं गङ्गा के बाद, की जाती है। अन्त में यह अन्तिम नाम की नदी में मिल जाती है। मेगस्थनीज ने हमे आश्वासन दिया है कि इस नगर की लम्बाई ८० स्टेडिया एवं चौड़ाई १५ स्टेडिया थी। यह चारों ओर एक खाई से घिरा हुआ था जिसका कुल क्षेत्र ६ एकड़ था एवं गहराई ३० क्यूबिट फुट थी। इसकी दीवारें ५७० प्राचीरों एवं ६४ द्वारों से सुसज्जित थी।" इस विवरण के अनुसार सिल्यूकस निकेटर के समय मगध की राजधानी की परिधि २२० स्टेडिया अथवा २५१/६ मील थी। यह पटना के आधुनिक नगर के विस्तार से प्रायः मिलता है जो बुचनन के सर्वेक्षणानुसार ६ मील लम्बा तथा २१/४ मील चौड़ा था अथवा जिसकी परिधि २११/२ मील थी। अतः हम सरलता पूर्वक यह स्वीकार कर सकते हैं कि सातवी शताब्दी मे कुसुमपुर का प्राचीन नगर आकार मे उपर्युक्त आकार का आधा अर्थात ह्वेनसांग के कथनानुसार ११ मील रहा होगा।

दिवोडोरस ने नगर की स्थापना का श्रेय हेराक्लीज को दिया है। सम्भवतः उसका संकेत कृष्ण के भ्राता बलराम की ओर था परन्तु नगर की इस प्राचीन स्थापना का स्थानीय पुस्तकों में समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है। वायु पुराण के अनुसार कुसुमपुर अथवा पाटलीपुत्र नगर की स्थापना बुद्ध के समकालीन अजात शत्रु के पौत्र राजा उदयास्व ने करवाई थी। परन्तु महावन्शो मे उदय को अजात शत्रु का पुत्र बताया गया है। बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार राजगृह से वैशाली तक अपनी अन्तिम यात्रा मे जब बुद्ध ने गङ्गा नदी को पार किया तो मगध के राजा अजात शत्रु के दो मन्त्री वज्जियानों अथवा व्रिजी निवासियो को रोकने के उद्देश्य से पाटली गाँव के स्थान पर एक दुर्ग के निर्माण कार्य में व्यस्त थे। बुद्ध ने उस समय भविष्यवाणी की थी कि यह एक प्रसिद्ध नगर बन जायेगा। इन सभी समान विवरणों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पाटलीपुत्र नगर की स्थापना का कार्यारम्भ वस्तुतः अजातशत्रु के समय में हुआ था परन्तु यह कार्य उसके पुत्र अथवा पौत्र उदय के शासन काल तक अर्थात ४५० ई० पू० तक पूरा नहीं हुआ था।

गङ्गा एवम् एरान्नोबोअस नदियों के सङ्गम स्थान पर नगर की स्थिति को सर्व प्रथम गण्डक अथवा हिरण्यवती का सङ्गम स्थान समझा जाता था। यह नदी पटना के विपरीत गङ्गा नदी में गिरती है। परन्तु श्री रेवनशा ने स्पष्ट निर्णय दिया है कि सोन नदी पूर्व काल मे पटना नगर से कुछ ऊपर गङ्गा नदी में गिरती थी। चूँकि

सोन 'अथवा सोना' नदी को इसकी सुनेहरी बालू के कारण हिरण्य बाह भी कहा जाता था अतः नाम एवम् स्थिति दोनों में इनकी अनुरूपता पूर्ण हो जाती है।

स्ट्रैबो एवम् प्लिनी पाली बोथरा के निवासियो को प्रासी नाम से पुकारने में एरियन से सहमत हैं। आधुनिक लेखक एकमत से प्रासी को संस्कृत प्राच्य अथवा "पूर्वी" शब्द से सम्बन्धित करते हैं। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रासी पलासिया अथवा परासिया अर्थात "पलास अथवा परास के निवासी" का केवल यूनानी स्वरूप है। पलास अथवा परास मगध का एक वास्तविक एवम् सर्व प्रसिद्ध नाम है जिसकी राजधानी पालीबोथ्रा थी। यह नाम पलास से लिया गया था जो इस प्रान्त मे वर्तमान समय मे भी उतनी ही प्रचुर मात्रा में उगता है जितना ह्वेनसांग के समय मे उगता था। नाम का सामान्य स्वरूप परास है परन्तु शीघ्रता से उच्चारण करते समय प्रास बन जाता है जसे मैं यूनानी प्रासी का मूल स्वरूप समझता हूँ। कर्टियस द्वारा दिये गये हिज्जों से उपर्युक्त अनुमान की पुष्टि होती है। कर्टियस ने यहाँ के निवासियो को परसी कहा है जो भारतीय नाम परासिया का प्राय: ठीक अनुवाद है।

ह्वेनसांग के अनुमानानुसार मगध प्रान्त की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। उत्तर मे यह गङ्गा नदी, पश्चिम में बनारस जिले, पूर्व में हिरण्य पर्वत अथवा मुंगेर तथा दक्षिण में किरन सुवर्ण अथवा सिंह-भूमि से घिरा हुआ था। अतः इसकी सीमाये पश्चिम मे कर्म-नासा नदी एवम् दक्षिण मे दामूद नदी के उद्गम स्थान तक विस्तृत रही होगी इन सीमाओ की परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ७०० मील अथवा मार्ग दूरी से प्रायः ८०० मील होगी।

चूंकि मगध, एक धार्मिक सुधारक के रूप मे बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित स्थान था अतः भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यहाँ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित पवित्र स्थानो की संख्या अधिक है। मुख्य स्थान बुद्ध गया, कुक्कुत्तपद, राजगृह, कुसाग्रहपुर, नालन्दा, इन्द्रशिला कुहा, तथा कपोतिक मठ है। इन सभी स्थानो का भिन्न भिन्न उल्लेख किया जायेगा जबकि अपेक्षाकृत साधारण स्थानो का उल्लेख ह्वेनसांग के मुख्य स्थानों की मार्ग यात्रा के विवरण के साथ किया जायेगा।

बुद्ध गया

पाटलीपुत्र छोड़ने पर ह्वेनसांग ने नगर के दक्षिण पश्चिमी कोण से यात्रा प्रारम्भ की और १०० ली अथवा १६$\frac{2}{3}$ मील दक्षिण पश्चिम मे ती-लो-शी किया अथवा ती-लो त्सी किया मठ तक गया जहाँ से उसने उसी दिशा में ६० ली अथवा ५ मील दूर एक उन्नत पर्वत तक अपनी यात्रा जारी रखी। इसी पर्वत के शिखर से बुद्ध ने मगध राज्य का अनुमान लगाया था। तदोपरान्त वह ३० ली अथवा ५ मील कुछ उत्तर पश्चिम की ओर एक पहाड़ी के अधोभाग पर अवस्थित एक अत्याधिक

विशाल मठ तक गया जहाँ गुणमति ने एक सन्यासी को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। तत्पश्चात दक्षिण पश्चिम दिशा में २० ली अथवा ३½ मील तक अपनी यात्रा जारी रखते हुए वह एक एकान्त पहाड़ी एवम् शिल भद्रा मठ पर पहुँचा और उसी दिशा मे पुनः ४० अथवा ५० ली, ७ अथवा ८ मील की दूरी पर नी-लीन-शेन अथवा नैरंजन नदी को पार कर किया-यी अथवा गया नगर मे प्रवेश किया।

इस मार्ग मे उल्लिखित स्थानो मे किसी की पहचान करने से पूर्व मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि इस मार्ग मे दिकाश एवम् दूरी मे अनेक त्रुटियाँ हैं जिन्हे सुधारना आवश्यक है। चूँकि गया पटना से ठीक दक्षिण मे है अत. दक्षिण पश्चिम दिशा को केवल दक्षिण पढ़ना चाहिये। सभी स्थानों की कुल दूरी केवल २३० ली अथवा ३८ मील बनती है जबकि पटना एवम् गया की वास्तविक दूरी मुख्य मार्ग से ६० मील है जबकि ह्वेनसाग ने जिस मार्ग का अनुसरण किया उसके अनुसार यह दूरी प्रायः ७० मील है। अत: इसकी यात्रा की कुल दूरी उसकी वास्तविक यात्रा से २०० ली अथवा ३३ मील कम है। इस सख्या को मै दो समान भागो मे विभाजित करूँगा और उनका प्रत्येक भाग ह्वेनसाग द्वारा उल्लिखित प्रथम दो दूरियो मे जोड़ दूँगा।

दिकाश एवम् दूरी की उपर्युक्त शुद्धि को स्वीकार करते हुए ती-लो रसी किया अथवा तिलदक मठ के स्थान को पटना नगर के दक्षिण-पश्चिमी कोण के दक्षिण मे २०० ली अथवा ३३ मील पर अथवा फमगू नदी के पूर्वी तट पर तिल्लार नगर के स्थान पर निश्चित किया जा सकता है। तिलदक की वास्तविक स्थिति यही थी इस तथ्य को तीर्थ यात्री ने अपने पश्चातवर्ती कथन मे स्वीकार किया है। चीन वापसी के समय नालन्दा मठ को छोड़ते समय वह सीधे तिलदक गया जिसे उसने नालन्दा के ३ योजन अथवा २१ मील पश्चिम मे बताया है। अब मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि नालन्दा की स्थिति राजगीर के ६ मील उत्तर मे बरागाँव के स्थान पर थी तथा बरागाँव से तिल्लार तक की दूरी सीधी रेखा से १७ मील एवं मार्ग दूरी से प्रायः २० मील है।

तत्पश्चात ह्वेनसांग उस उन्नत पर्वत पर गया था जहाँ से बुद्ध ने मगध देश का अनुमान लगाया था। मेरी प्रस्तावित शुद्धि से इस पर्वत को तिलदक अथवा तिल्लार के १६० ली अथवा ३२ मील दक्षिण मे एवम् गया के ७० मील उत्तर पूर्व मे देखा जाना चाहिए। उपर्युक्त दिकांश एवम् दूरी से पर्वत को वजीर गञ्ज से ३ मील उत्तर पश्चिम में किसी स्थान पर तथा अमेठी से लगभग इतनी ही दूरी पर गिरयक एवम् गया की मध्यवर्ती उन्नत पहाडियों मे निश्चित किया जा सकता है। अच्छा हुआ कि इन पहाडियों का उल्लेख आ गया। इससे मार्ग के प्रथम भाग की दूरी को शुद्ध करने की आवश्यकता का पता चलता है क्योंकि पटना से निकटतम पहाड़ी ५० मील से अधिक दूरी पर है।

बुद्ध के पर्वत से तीर्थ-यात्री ३० ली अथवा ५ मील उत्तर पश्चिम में गुणमति के विशाल मठ तक गया जो पर्वतों के एक दर्रे मे एक ढलवान पर अवस्थित था। दिकांश एवम् दूरी निदावर के समीप पेवर नदी के पूर्वी तट पर पहाड़ियों की निचली श्रेणी की ओर संकेत करते हैं। गुनमति मठ से ह्वेनसांग २० ली अथवा ३½ मील दक्षिण पश्चिम में सीलभद्र मठ तक गया जो एक एकान्त पहाड़ी पर अवस्थित था। मेरे विचार में इस स्थिति को बिथावा नाम की एक एकान्त पहाड़ी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो निदावत के ३ मील दक्षिण पश्चिम मे पेवर नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है। बिथा नाम-जिसका अर्थ कृतिम टीला है—सम्भवतः सीलभद्र के ध्वस्त मठ की ओर सकेत करता है।

इस स्थान से तीर्थ-यात्री ४० अथवा ५० ली, ७ अथवा ८ मील दक्षिण पश्चिम की ओर गया तथा निरन्जन नदी को पार करते हुए उसने गया नगर मे प्रवेश किया। इस नदी को अब फलगू कहा जाता है और लिलाजन अथवा निलन्जन नाम पश्चिमी शाखा तक सीमित है जो गया से ५ मील ऊपर मोहिनी नदी मे गिरती है। नगर की जनसंख्या अधिक नही थी परन्तु यहाँ ब्राह्मणो के १००० परिवार थे। नगर को बुद्ध गया से भिन्न दिखाने के लिये इसे आज भी ब्रह्म गया कहा जाता है।

नगर से ५ अथवा ६ ली अथवा १ मील दक्षिण पश्चिम मे गया पर्वत है जो भारतीय जनता मे देवी पर्वत के रूप मे ज्ञात है। इस पहाड़ी को अब ब्रह्मजून अथवा ब्रह्मयोनि कहा जाता है और अशोक के स्तूप के स्थान पर अब एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। पहाड़ी के दक्षिण पूर्व मे तीन कश्यपो के स्तूप है इनमे पूर्व की ओर एक विशाल नदी (फलगू) के पार पो-लो-की-पू-तो नामक एक पर्वत था जिसके शिखर पर बुद्ध एकान्त वास करने के लिये गये थे। इससे पूर्व उन्हाने ६ वर्षों तक मौनव्रत रखा परन्तु तदोपरान्त मौनव्रत तोडने पर उन्होंने चावल एवम् दूध ग्रहण किया तथा उत्तर पूर्व की ओर जाते हुए उन्होने इस पर्वत को देखा परन्तु पर्वत देवता के विघ्न के कारण वह दक्षिण पश्चिम की ओर से नीचे चले गये जहाँ से वह १५ ली अथवा २½ मील दक्षिण पश्चिम में बौद्ध गया के स्थान पर पीपल के प्रसिद्ध वृक्ष तक पहुँचे थे। अन्तिम दूरी एवम् दिकांश से पता चलता है कि प्राग बोधी पर्वत वर्तमान समय का मोरत पहाड है क्योकि दक्षिणी पश्चिमी कोण बौद्ध गया से ठीक २½ मील की दूरी पर है। नीचे जाते हुए लगभग आधे मार्ग पर एक कन्दरा थी जहाँ बुद्ध ने विश्राम किया था एवम् वह पद्मासन मे बैठे थे। फाहियान ने इस कन्दरा का उल्लेख किया है और इसे बोधी वृक्ष से आधा योजन अथवा ३½ मील उत्तर पूर्व की ओर बताया है। अतः पर्वत के दक्षिणी छोर से इसकी दूरी प्रायः एक मील थी। मुझे सूचना मिली थी कि पश्चिमी भाग में अब भी एक कन्दरा है।

ह्वेनसांग ने गया अथवा ब्रह्म जून से पूर्वी पर्वत की दूरी का उल्लेख नहीं किया है जो प्रायः ४ मील अथवा २४ ली है। पूर्ववर्ती तीर्थ-यात्री फाहियान का उल्लेख यहाँ महत्वपूर्ण नही है क्योंकि उसने किया-यी अथवा गया से बोधी वृक्ष के पडोस तक की दूरी को केवल २० ली अथवा ३½ मील कहा है जबकि वास्तविक दूरी ५ मील अथवा ३० ली से अधिक है।

बौद्ध गया पवित्र पीपल वृक्ष के कारण प्रसिद्ध था जिसके नीचे शाक्य सिन्हा पाँच वर्षों तक तपस्या करते रहे और अन्त मे उन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ। यह प्रसिद्ध बोधी द्रुम अथवा "बोधी वृक्ष" आज भी खड़ा है यद्यपि यह अत्यधिक जर्जर अवस्था मे है। वृक्ष के समीप ही पूर्व दिशा मे ईंटो का बना एक मन्दिर है जिसका निचला भाग ५० वर्ग फुट है एवम् जो १६० फुट ऊँचा है। निस्सन्देह यह वही बिहार है जिसे ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी मे देखा था क्योंकि उसने इसे बोधी वृक्ष के पूर्व मे बताया था और इसका वर्णन करते हुए उसने इसे निचले भाग पर २० पद वर्गाकार एवम् १६० से १७० फुट ऊँचा बताया है।

कुक्कुतपद

बोधी द्रुम से ह्वेनसांग ने निरजन नदी को पार किया तथा गन्ध हस्तो नामक स्तूप पर गया जिसके समीप एक सरोवर एवम् शिला स्तम्भ था। बौद्ध गया से प्रायः १ मील दक्षिण पूर्व मे लिलाजत नदी के पूर्वी तट पर बकरोर नामक स्थान पर उपर्युक्त स्तूप के अवशेष एवम् स्तम्भ का निचला भाग आज भी देखे जा सकते हैं।

पूर्व दिशा मे यात्रा करते हुए तीर्थ यात्री ने मो हो अथवा मोहना नदी को पार किया एवम् एक विशाल वन मे प्रवेश किया जहाँ उसने एक अन्य शिला स्तम्भ देखा था। तत्पश्चात १०० ली अथवा लगभग १७ मील उत्तर-पूर्व वह क्यू-क्यू-चा-पो-थो अथवा कुक्कुतपद पर्वत पर पहुँचा जो अपनी तीन चोटियो के कारण महत्वपूर्ण है। फाहियान के विवरण के अनुसार कुक्कुतपद पहाड़ी का अधोभाग बौद्ध गया के पवित्र वृक्ष के दक्षिण मे ३ ली अथवा आधे मील की दूरी पर था। तीन ली के स्थान पर हमे ३ योजन अथवा २१ मील पढ़ना चाहिये जो ह्वेनसांग द्वारा कथित १७ मील की दूरी एवम् दोनो नदियो को पार करने की २ मील की दूरी सहित कुल मिलाकर १९ मील की दूरी से मिलती है।

मैं इस स्थान को वर्तमान कुर्कीहार के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ जो यद्यपि मानचित्र में नही दिखाया गया है फिर भी गया एवम् बिहार के नगरो के मध्यवर्ती क्षेत्र मे सम्भवतः सबसे बड़ा स्थान है। यह वजीरगज के ३ मील उत्तर-पूर्व में, गया से १५ मील उत्तर-उत्तर पूर्व एवम् बौद्ध गया से २० मील उत्तर पूर्व मे है। कुर्कीहार का वास्तविक नाम कुर्क बिहार बताया जाता है जो मेरे विश्वासानुसार

कुक्कुत्तपद विहार का केवल संक्षिप्त स्वरूप है क्योंकि संस्कृत कुक्कुत्त एवम् हिन्दी का कुक्कुर अथवा कुरक समान शब्द हैं। अतः वर्तमान कुर्कीहार नाम एवं स्थिति में बौध धर्मावलम्बियों के कुक्कुत्तपद पहाड़ी से मिलता है। परन्तु इस भू-भाग में तीन शिखरों वाली कोई पहाडी नही है परन्तु गाँव से लगभग आधा मील उत्तर की ओर तीन ऊँची नोकी पहाड़ियाँ दिखाई देती हैं और चूँकि परस्पर समीप होने के कारण इनके अधोभाग मिलते हुए प्रतीत होते हैं अतः इन्हे ह्वेनसांग की तीन चोटियो वाली पहाडी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। यह अनुरूपता उन अनेक ध्वस्त टीलों की उपस्थिति से प्रमाणित होती है जिनसे अनेकानेक बौद्ध मूर्तियाँ एवम् प्रतिभित स्तूप प्राप्त हुए हैं।

कुसागरापुर

कुक्कुत्तपद पहाडी से तीर्थ यात्री १००० ली अथवा १७ मील दूर फो-थो-फा-ना अथवा बुद्धवन गया था। विर्कास एवम् दूरी उस उन्नत पहाडी की ओर संकेत करते हैं जिसे बुद्धियान कहा जाता है और जिसे इसकी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण त्रिकोणमति सम्बन्धी सर्वेक्षण का एक केन्द्र बनाया गया था। सीधी रेखा पर इसकी दूरी १० मील से अधिक नहीं है परन्तु चूँकि सम्पूर्ण मार्ग पर्वतीय एवम् घुमावदार है अतः वास्तविक दूरी १५ अथवा १६ मील से कम नही हो सकती। यहाँ से ३० ली अथवा ५ मील पूर्व मे उसने प्रसिद्ध यस्तीवन की यात्रा की थी। यह नाम जखतीबन के रूप मे आज भी सर्व ज्ञात है जो संस्कृत शब्द का केवल हिन्दी रूपान्तर है। यह स्थान बुद्धियान पहाडी के पूर्व मे कुसागरापुर के प्राचीन ध्वस्त नगर की ओर आने वाले मार्ग पर अवस्थित है और आज भी ठहरने के उद्देश्य से यहाँ अनेक व्यक्ति आया करते हैं। यहाँ से तीर्थ यात्री १० ली अथवा २ मील दक्षिण पश्चिम की ओर एवम् एक उन्नत पर्वत के दक्षिण मे अवस्थित दो गरम सरोवरों तक गया जहाँ जनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध ने स्नान किया था। यह सरोवर वर्तमान समय मे भी जखतीबन से दो मील दक्षिण मे तपोबन नामक स्थान पर हैं। यह नाम तप्प पानी अथवा 'गरम जल' का संक्षिप्त स्वरूप है। बन्यु बन के दक्षिण पूर्व मे ६ अथवा ७ ली अथवा एक मील से कुछ अधिक दूरी पर एक उन्नत पर्वत था जहाँ सम्राट बिम्बसार द्वारा निर्मित पत्थरो का एक बान्ध था। यह पर्वत हन्डिया की उन्नत पहाड़ी के अनुरूप है जो १४६३ फुट ऊँची है एवम् जो महान त्रिकोणमति सर्वेक्षण का एक केन्द्र थी। यहाँ से ३ अथवा ४ ली अथवा आधा मील उत्तर की ओर एक एकान्त पहाड़ी थी। आज भी उस मकान के अवशेष देखने को मिलते हैं जहाँ पूर्ववर्ती समय मे महर्षि व्यास रहा करते थे। उत्तर पूर्व में ४ अथवा ५ ली अथवा $\frac{3}{4}$ मील की दूरी पर एक छोटी पहाडी थी जहाँ पत्थरों को काट-काट कर गृह बनाये गये थे। साथ ही यहाँ एक पत्थर था जहाँ

भगवान इन्द्र एवम् ब्रह्मा ने बुद्ध के शरीर पर लगाने के उद्देश्य से गोसीरस नामक चन्दन की लकड़ी एकत्रित की थी। दोनों स्थानों की पहचान नहीं की जा सकी है परन्तु सावधानी पूर्वक निरीक्षण करने से चन्दन की लकडी के पत्थर का पता लगाया जा सकता है क्योंकि इसके समीप ही एक अति विशाल कन्दरा थी जिसे जनसाधारण "असुरों का राजमहल" कहा करते थे। इस स्थान से ६० ली अथवा १० मील की दूरी पर तीर्थ यात्री कियू-शी-की-लो-पू-लो अथवा कुसागार-पुर अर्थात "कुश-घास के नगर" पहुँचा था।

कुसागरापुर मगध की प्राचीन राजधानी थी जिसे राजगृह अथवा 'राजकीय निवास स्थान कहा जाता था। इसे गिरिवराज अथवा 'पहाडियों से घिरा हुआ" भी कहा जाता था जो 'पर्वतों से घिरे हुए स्थान' के रूप मे ह्वेनसाग के वर्णन से सहमत है। रामायण एवम् महाभारत दोनों मे ही गिरिव्रज नाम मगध के राजा जरासन्ध की प्राचीन राजधानी को दिया गया है जो १४२६ ई० पू० के महान युद्ध का एक मुख्य नायक था। चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने नगर को पाँच पहाडियों की मध्यवर्ती घाटी में राज गृह के नवीन नगर से ४ ली अथवा ३/४ मील दक्षिण मे अवस्थित बातया है। ह्वेनसांग ने समान दूरी एवम् समान स्थिति का उल्लेख किया है एव दो गरम सरोवरों का उल्लेख किया है जिन्हे आज भी देखा जा सकता है। फाहियान ने आगे लिखा है कि "पाँचों पहाड़ियाँ नगर के चारो ओर दीवार के समान कमरबन्द बनाती थी" यह प्राचीन राज गृह अथवा जन साधारण मे प्रचलित पुराना राजगीर का सही वर्णन है। टर्नौर ने लङ्का की पाली पुस्तकों से इसी वर्णन को लिया है। इन पुस्तको मे पाँच पहाड़ियों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं गिजझकूटो, इसगिली, वेभारो, वेपुलो तथा पाण्डवों। महाभारत में पाँच पहाडियों को वैहर वराहा, वृषभ ऋषिगिरि एवं चैत्यक कहा गया है परन्तु वर्तमान समय मे उन्हे बैभर गिरि, विपुलगिरि रत्नागिरि, उदय गिरि तथा सोनगिरि कहा जाता है।

बैभार पर्वत के जैन मन्दिरो के लेखो मे इस नाम को वैभार अथवा किसी स्थान पर व्यवहार लिखा गया है। निःसन्देह यह पाली ग्रन्थों का वेभार पर्वत है जिसके किनारे पर सर्व प्रसिद्ध सत्तपन्नी कन्दरा थी जिसके समीप ५४३ ई० पू० में प्रथम बौद्ध सम्मेलन हुआ था। मेरा विश्वास है कि यह कन्दरा आज भी सोन भण्डार के नाम से पर्वत के दक्षिणी भाग मे देखी जा सकती है परन्तु ह्वेनसांग के विवरणानुसार इसे पर्वत के उत्तरी छोर पर देखा जाना चाहिये। तिब्बती डुल्वा में इसे 'न्यग्रोध की कन्दरा' कहा गया है।

रत्नागिरि सोन भण्डार कन्दरा से ठीक पूर्व एक मील की दूरी पर है। यह स्थिति फाहियान द्वारा कथित 'पीपल वृक्ष की कन्दरा' की स्थिति से मिलती है जिसमें बुद्ध भोजनोपरान्त मनन किया करते थे। यह प्रथम सम्मेलन की कन्दरा से ५ अथवा

६ ली (लगभग एक मीम) पूर्व मे थी । अतः रत्नगिरि की पहाड़ी पाली ग्रन्थों के पाण्डो पर्वत के अनुरूप है जहाँ बुद्ध रहा करते थे और जिसे ललित बिस्तार में सदैव "पर्वतों का राजा" कहा गया है । प्राचीन राजगृह से एक घुमावदार एवं काट-काट कर बनाया गया मार्ग रत्नागिरि के शिखर पर एक छोटे जैन मन्दिर तक जाता है जहाँ जैन धर्मावलम्बी निरन्तर आया करते हैं । मैं इसे महाभारत के ऋषिगिरि के अनुरूप समझता हूँ ।

विपुल पर्वत स्पष्ट रूप से पाली ग्रन्थों के वेपुलो के अनुरूप है और चूंकि अब इसके शिखर पर उन्नत स्तूप अथवा चैत्य के खण्डहर फैले हुए है जिसका ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है अतः मै इसे महाभारत के चैत्यक पर्वत के अनुरूप स्वीकार करता हूँ । अन्य दोनो पर्वतो के सम्बन्ध मे मैं तत्काल कोई विवरण नही दे सकता परन्तु मैं यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि इनके शिखरो पर भी छोटे-छोटे जैन मन्दिर बने हुए हैं ।

फाहियान के अनुसार पहाडियों का मध्यवर्ती प्राचीन नगर पूर्व से पश्चिम ५ अथवा ६ ली तथा उत्तर से दक्षिण ७ अथवा ८ ली था अर्थात इसकी परिधि २४ से २८ ली अथवा ४½ मील थी । ह्वेनसाग के अनुसार इसकी परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी जबकि इसकी अधिकाश लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर थो । मैंने प्राचीन दीवारो का सर्वेक्षण किया था जिसके अनुसार इसकी परिधि २४,५०० फुट अथवा ४⅔ मील बनती है जो दोनो तीर्थ यात्रियो के अनुमान के मध्य है । अधिकाश लम्बाई उत्तर पश्चिम मे दक्षिण पूर्व है अतः जहाँ तक नगर की लम्बाई का प्रश्न है दोनो यात्रियो के कथनों मे कोई विशेष अन्तर नही है । सम्भवतः दोनो ने पूर्व मे नेकपाई बान्ध से उत्तर पश्चिम के किसी स्थान तक लम्बाई का अनुमान लगाया होगा (मेजर किटोई ने इसका वर्णन किया है) यदि इसे दीवार के पञ्च पाण्डव कोण तक लिया जाये तो इसकी दिशा पश्चिम उत्तर पश्चिम हो जायेगी और लम्बाई ८००० फुट परन्तु यदि इसे तोरह देवी के मन्दिर तक लिया जाये तो इसकी दिशा उत्तर उत्तर पश्चिम एवम् लम्बाई ६००० फुट से अधिक होगी ।

मैं फाहियान के इस कथन को उद्धृत कर चुका हूँ कि 'पाँच पहाडियाँ एक नगर की दीवारों के समान कमरबन्द बनाती है ।" यह कथन ह्वेनसांग द्वारा दिये गये विवरण से मिलती है जिसका कथन है कि यह चारो ओर से उन्नत पर्वतो से घिरा हुआ है जो इसकी वाह्य दीवार का काम करते हैं एवम् इस वाह्य दीवार की परिधि १५० ली अथवा २५ मील है ।" इस सख्या के स्थान पर मैं इसे ५० ली ८⅓ मील पढ़ने का प्रस्ताव करता हूँ । क्योंकि अपने सर्वेक्षानुसार परिधि के समान करने के लिये यह शुद्धि आवश्यक है । पहाड़ियों के मध्य सीधी दूरी निम्न प्रकार से है :—

(१) वैभार से विपुल तक		१२,००० फुट
(२) विपुल से रत्न तक		४,५०० फुट
(३) रत्न से उदय तक		८,५०० फुट
(४) उदय से सोन तक		७,००० फुट
(५) सोन से वैभार		९,००० फुट
	कुल	४१,००० फुट

इस प्रकार कुल दूरी ८ मील से कम हैं परन्तु यदि उतार चढ़ाव को सम्मिलित किया जाये तो यह ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी (शुद्ध दूरी ५० ली) के प्रायः समान हो जाती है। प्राचीरों की बाह्य पंक्ति बनाने वाली प्राचीन दीवारो को अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। मैंने इन्हें विपुल गिरि से रत्नगिरि होते हुए नेकपाई बान्ध तक एवम् तत्पश्चात उदयगिरि के ऊपर एव घाटी के दक्षिणी मुहाने से सोनगिरि तक देखा था इस मुहाने से बाहर की दीवारे जो आज भी अच्छी दशा मे है १३ फुट मोटी है। ह्वेनसांग द्वारा कथित २५ मील की परिधि को प्राप्त करने के लिये इन प्राचीरो को पूर्व मे गिरियेक तक ले जाना आवश्यक होगा। चूँकि गिरियेक पहाड़ी पर भी इसी प्रकार की प्राचीरें हैं अतः यह सम्भव है कि ह्वेनसांग इन्हे भी बाह्य दीवारों की परिधि में सम्मिलित करना चाहता था परन्तु यह विशाल परिधि उसके इस कथन से सहमत नहीं है कि "उन्नत पर्वत नगर को चारो ओर से घेरे हुए थे" क्योंकि गिरियेक की दूरस्थ पहाड़ी को किसी भी प्रकार से प्राचीन राजगृह का एक किनारा नही हो सकती थी।

राजगृह के गरम सरोवर सरस्वती नदी के दोनों तटो पर देखे जा सकते हैं। इनमें आधे सरोवर वैभार पर्वत के पूर्वी अधाभाग पर एवं अन्य अर्द्ध भाग विपुल पर्वत के पश्चिमी अधोभाग पर है। ५ प्रथम अर्द्ध भाग के सरोवरों के न म इस प्रकार है—(१) गङ्गा यमुना, (२)अनन्त ऋषि (३) सप्त ऋषि, (४)ब्रह्मकुण्ड (५) कश्यप ऋषि, (६) व्यास कुण्ड, तथा मारकण्ड कण्ड। इनमे सर्वाधिक गरम सप्त ऋषि है। विपुल पर्वत के गरम सरोवरो के नाम इस प्रकार हैं—(१) सीता कुण्ड; (२) सूरज कुण्ड; (३) गणेश कुण्ड; (४) चन्द्रमा कुण्ड, (५) रामकुण्ड; तथा ऋङ्ग ऋषि कुण्डा अन्तिम सरोवर पर मुसलमानो ने अधिपत्य स्थापित कर लिया है जो इसे एक प्रसिद्ध फकीर चिल्ला शाह के नाम पर मखदूम कुण्ड कहा करते है। इस फकीर की समाधि सरोवर के समीप ही है। कहा जाता है कि मूल रूप मे चिल्ला का चिलवा कहा जाता था एवं वह एक अहीर था। अतः वह अवश्य ही एक हिन्दू रहा होगा जिसने धर्म परिवर्तित कर लिया था।

ह्वेनसांग ने प्राचीन नगर से १५ ली अथवा २½ मील उत्तर-पूर्व की ओर गृद्ध

कूट की प्रसिद्ध पहाड़ी का उल्लेख किया है। फाहियान के अनुसार यह पहाड़ी नवीन नगर के दक्षिण पूर्व में १५ ली अथवा २½ मील की दूरी पर थी। अतः हमारे दोनों यात्री गिद्ध शिखर को शिला पर्वत नाम की उन्नत पहाड़ी पर निश्चित करने में सहमत हैं। परन्तु मैं इस पहाड़ी की किसी भी कन्दरा के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त नहीं कर सका। फाहियान ने इसे "गिद्ध की कन्दरा वाली पहाड़ी" कहा है तथा उसने लिखा है कि यहाँ अरहनों की अनेक सहस्र कन्दरायें थी जहाँ यह लोग तपस्या किया करते थे। मेरा अनुमान है कि यह चट्टान के साथ-साथ बनाये गये छोटे कमरे थे तथा दीवारों के गिर जाने के कारण इनके नाम भुला दिये हैं। दोनों यात्रियों की संयुक्त साक्षी इतनी ठोस है कि उसमे सन्देह नहीं किया जा सकता और भावी खोज में सम्भवतः किसी समय की इन पवित्र कन्दराओं के अवशेष प्राप्त किये जा सके।

राजगृह

फाहियान ने राज गृह के नवीन नगर को प्राचीन नगर से ४ ली अथवा ⅔ मील उत्तर की ओर दिखाया है। यह स्थिति राजगीर नामक ध्वस्त दुर्ग की स्थिति में मिलती है।

कहा जाता है कि राजगृह के नवीन नगर का निर्माण बुद्ध के समकालीन, अजातशत्रु के पिता राजा श्रेनिक ने करवाया था जिसे बिम्बसार भी कहा जाता था। अतः बौद्ध इतिहास के अनुसार इसकी स्थापना की तिथि को ५६० ई० पू० से पुराना नहीं कहा जा सकता। ह्वेनसांग के समय (६२६—६४२ ई०) में बाह्य दीवारें ध्वस्त हो चुकी थीं परन्तु भीतरी दीवारें खड़ी हुई थी एव इनका विस्तार २० ली (३⅓ मील) था। यह कथन मेरे सर्वेक्षण के आंकड़ों से समीपता रखता है जिसके अनुसार दीवारों की परिधि ३ मील से कुछ कम थी। बुचनान ने राजगृह को असमान पंच भुजाकार कहा है जिसका व्यास १,२००० गज है। स्पष्ट है कि १२०० गज के स्थान पर त्रुटि पूर्वक १२००० गज लिखा गया है और इसे १२०० गज स्वीकार कर लेने से इसकी परिधि ११,३००० फुट अथवा २⅛ मील होगी। सम्भवतः यह भीतरी दीवारों की परिधि थी जो मेरे सर्वेक्षणानुसार १३,००० फुट थी। मेरा विचार है कि नवीन राजगृह एक असमान पञ्चकोण है जिसका एक किनारा लम्बा एव अन्य चार किनारे प्रायः समानाकार हैं जबकि खाइयों से बाहर कुल परिधि १४,२६० फुट अथवा ३ मील से कुछ कम है।

पहाड़ी की ओर दक्षिणी भाग में २००० फुट लम्बा एवम् १५०० चौड़ा भीतरी दीवार के एक भाग को अलग कर एक दुर्ग बना लिया गया है। इस दुर्ग की कच्ची प्राचीरों को पत्थर की जिन दीवारों से रोका गया है उन्हे अनेक स्थानो पर अच्छी हालत में देखा जा सकता है। जैसा कि बुचनान ने प्रस्ताव किया है यह सम्भव

है कि ये दीवारें बाद में बनवाई गई हों परन्तु मेरे विचार में यह दीवारें नवीन नगर के दुर्ग की दीवारे थी और यह दीवारें नगर की प्राचीन दीवारों की अपेक्षा अधिक सावधानी एवम् अधिक ठोस बनाये जाने के कारण एवम् सैनिक आवश्यकता के रूप में निरन्तर सुधार एवम् मरम्मत के कारण समय की ठोकरों को सहन करती रही हैं जब कि नगर की दीवारो को अनावश्यक अथवा अधिक खर्चीली समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है।

नालन्दा

राजगृह (राजगीर) से ठीक उत्तर मे ७ मील की दूरी पर बरगाँव नामक एक गाँव है जो प्राचीन सरोवरों एवम् ध्वस्त टीलो से प्रायः घिरा हुआ है और मैंने जिन स्थानो की यात्रा की है उन सभी की अपेक्षा यहाँ अधिक कला पूर्ण एवं अधिक संख्या मे मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बरगाँव के अवशेषो की अधिकता को देखकर डा० बुचनान को विश्वास हो गया था कि यह किसी राजा का निवास स्थान रहा होगा और बिहार के एक जैन भिक्षु ने उसे सूचित किया था कि यह राजा श्रेनिक एव उनके उत्तराधिकारियो का निवास स्थान था। ब्राह्मणो का विश्वास है कि यह अवशेष कुन्दिलपुर नगर क अवशेष है जो श्री कृष्ण की एक पत्नी रुकमणि का प्रसिद्ध जन्म स्थान था। परन्तु चूंकि रुकमणी विदर्भ अथवा बरार के राजा भीष्म की पुत्री थी अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि ब्राह्मणो ने उसे बरार के स्थान पर बिहार समझने की त्रुटि की हो जो बरगाँव से केवल ७ मील की दूरी पर है। अतः मुझे ब्राह्मणो के कथन की सत्यता मे सन्देह है, विशेषकर जब मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि बरगाँव के अवशेष भारत मे बौद्ध शिक्षा के सर्वधिक प्रसिद्ध स्थान नालन्दा के अवशेष है।

फाहियान ने हालो को कुटिया को एकान्त चट्टान की पहाड़ो अर्थात गिरियेक से १ योजन अथवा ७ मील तथा नवीन राजगृह से भी समान दूरी पर बताया है। यह विवरण गिरियेक तथा राजगीर की स्थिति की तुलना मे बरगाँव की स्थिति से मिलता है। लङ्का के पाली ग्रन्थों मे भी नालन्दा को राजगृह से १ योजन की दूरी पर बताया गया है। पुनः, ह्वेनसाग ने नालन्दा को बौद्ध गया के पवित्र पीपल वृक्ष से ७ योजन अथवा ४६ मील दूर बताया है जो मार्ग दूरी के अनुसार सही है जबकि मानचित्र पर सीधो रेखा पर यह दूरी केवल ४० मील है। उसमे यह भी लिखा है कि यह नवीन राजगृह से लगभग ३० ली अथवा ५ मील उत्तर की ओर और यदि दोनों स्थानों की दूरी को प्राचीन प्राचीरो के दूरस्थ उत्तरी बिन्दु से आंका जाये तो दूरी एव दिकांश दोनो ही बरगाँव को स्थिति की ओर संकेत करते हैं। अन्त में, इस स्थान पर मैंने दो शिलालेख प्राप्त किये थे उन दोनों मे इस स्थान को नालन्दा कहा गया है।

फाहियान ने नालन्दा को सारिपुत्र का जन्म स्थान कहा है जो बुद्ध का विशेष

अनुयायी था परन्तु यह कथन पूर्णतयः सत्य नहीं है क्योंकि ह्वेनसांग के विस्तृत वर्णन से हमें पता चलता है कि सारि पुत्र का जन्म नालन्दा एवं इन्द्र शिला गुहा के मध्य अथवा प्रथम स्थान से लगभग ४ मील दक्षिण पूर्व में कलपिका नामक स्थान पर हुआ था। नालन्दा को महा मोगलान का जन्म स्थान भी कहा गया है जो बुद्ध का दूसरा मुख्य शिष्य था परन्तु यह कथन पूर्णतयः सत्य नही है क्योंकि ह्वेनसांग के अनुसार महान मोगलान का जन्म नालन्दा से ८ अथवा ६ ली (१½ मील से कम) दक्षिण पश्चिम मे कुलिका नामक स्थान पर हुआ था। इस स्थान को मैं बरगांव के खण्डहरो के दक्षिण पश्चिम मे १½ मील की दूरी पर जगदीशपुर के समीप एक ध्वस्त टीले के अनुरूप सिद्ध करने मे सफल हुआ हूँ।

बरगांव के खण्डरो मे ध्वस्त ईटो के अनेक समूह हैं जिनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण उन्नत नुकीले टीलो की पक्ति है जो उत्तर तथा दक्षिण दिशा मे फैली हुई है। यह उन्नत टीले नालन्दा के प्रसिद्ध मठ से सम्बन्धित विशाल मन्दिरो के अवशेष है। नालन्दा के विशाल मठ का १६०० फुट लम्बे एव ४०० फुट चौड़े ईंटो के खण्डहरो के विशाल समूह मे चतुर्भुजाकार खेतो से देखा जा सकता है। यह खेत छः छोटे मठो के आगनो का सकेत देते हैं। ह्वेनसाग के अनुसार यह छ छोटे मठ विशाल मठ के भीतर बने हुए थे जिनमे आठ आगन थे। इनमे पाँच मठ एक ही परिवार के पाँच शासको द्वारा बनवाये गये थे एव छठा मठ उनके उत्तराधिकारी द्वारा बनवाया गया था जिन मध्य भारत का राजा कहा गया है।

मठ के दक्षिण मे एक सरोवर था जिसमे नालन्दा नामक एक नाग रहा करता था और तद्नुसार इस स्थान को उसी के नाम पर नालन्दा कहा जाने लगा। आज भी ध्वस्त मठ के दक्षिण में करगिदया पोखर नामक एक छोटा सरोवर है जो नालन्दा सरोवर की स्थिति से ठोक-ठीक मिलता है अतः यह सम्भवतः नाग सरोवर के अनुकूल है।

नालन्दा के खण्डहरो के चारो ओर के स्वच्छ सरोवरो का उल्लेख किये बिना मै प्राचीन नालन्दा के समाप्त नही कर सकता। उत्तर पूर्व में गिदी पोखर तथा पनसोकर पोखर हैं जो एक-एक मील लम्बे हैं जबकि दक्षिण मे इन्द्र पोखर है जो कम से कम ½ मील लम्बा है। अन्य सरावर आकार मे छोटे हैं और उनके विस्तृत उल्लेख की आवश्यकता नही है।

इन्द्र शिला गुहा

गया के पहाड़ियो की दो समानान्तर श्रेणियाँ उत्तर पूर्व मे लगभग ३६ मील तक गिरियेक गाँव के विपरीत पचान नदी तक चली गई हैं। दक्षिणी श्रेणी का पूर्वी छोर अधिक झुका हुआ है परन्तु उत्तर छोर निरन्तर ऊँचा उठा हुआ है और अचानक ही यह दो उन्नत शिखरों पर समाप्त हो जाता है जो पंचान नदी पर झुके हुए हैं। पूर्व

की ओर निचली चोटी पर ईंटों का बना एक ठोस बुर्ज है जो जरासन्ध-की-बैठक अथवा जरासन्ध के सिंहासन के नाम से प्रसिद्ध है जबकि पश्चिम की ओर उन्नत चोटी पर जिससे गिरियेक नाम को विशेष रूप से सम्बन्धित किया जाता है—अनेक भवनों के अवशेषों से ढका आयताकार चबूतरा बना हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य खण्डहर एक विहार अथवा मन्दिर था जो सबसे ऊँची चोटी पर बना हुआ है। यहाँ पहुँचने के लिये स्तम्भो वाले कमरो से गुजरने वाली कठिन सीढ़ियों को पार करना पड़ता है।

दोनो चोटियाँ अति ढलुआ मार्ग द्वारा सम्बन्धित हैं जो पूर्ववर्ती समय में गिरियेक गाँव के विपरीत पहाड़ी के अधोभाग तक चला गया था। इस मार्ग के सभी मुख्य स्थानो पर एवम् घुमाव पर ईंटों के बने स्तूप देखे जा सकते हैं जिनका व्यास ५ तथा ६ फुट से लेकर २५ फुट तक है। ऊपरी ढलवान के अधोभाग पर तथा जरासन्ध के बुर्ज से ५६ के भीतर १०० फुट वर्गाकार सरोवर बनाया गया है। यह सरोवर आंशिक रूप से खोद कर एवम् आंशिक रूप से निर्माण कार्य द्वारा पूरा किया गया है। उत्तर की ओर कुछ दूरी पर एक अन्य सरोवर है जो भवन निर्माण हेतु पत्थर निकाले जाने से बन गया था। यह दोनों सरोवर अब सूखे हुए हैं।

गिरियेक गाँव से २ मील दक्षिण पश्चिम मे तथा जरासन्ध के बुर्ज से १ मील की दूरी पर पर्वत के दक्षिणी भाग मे एक प्राकृतिक कन्दरा है जो बान गङ्गा नदी के स्तर से प्रायः २५० फुट ऊपर है। यह कन्दरा-जिसे गिद्ध द्वार कहा जाता है सामान्य विश्वासानुसार जरासन्ध के बुर्ज से सम्बन्धित बताई जाती है परन्तु टार्च की रोशनी मे निरीक्षण करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि यह कन्दरा बुर्ज की ओर जाती हुई एक प्राकृतिक दरार है परन्तु यह केवल ९८ फुट लम्बी है कन्दरा का प्रवेश द्वार १० फुट चौडा एवम् १४ फुट ऊँचा है परन्तु अन्तिम छोर तक पहुँचते इसकी ऊँचाई अत्यधिक कम हो जाती है। यह कन्दरा चमगादडों से भरी हुई है एवम् इसके वातावरण मे अति कठोर उदण्डता एवम् दुर्गन्ध है। यह तथ्य ही इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि इस कन्दरा का निकास द्वार नही है अन्यथा इसके भीतर वायु का झोका अवश्य मिलता। पीले भूरे पत्थरो की उन्नत उट्टानों के समीप असंख्य गिद्ध दिखाई देते है और कन्दरा के प्रवेश द्वार पर मैने उनके पङ्ख एकत्रित किये थे।

मेरे विचार मे गिरियेक के खण्डहर—जिनका उल्लेख मैंने अभी किया है—फाहियान द्वारा "एकान्त चट्टान की पहाड़ी" के कथित से मिलते हैं जहाँ इन्द्र ने बुद्ध से ४२ प्रश्न पूछे थे। यह विवरण ह्वेनसांग की इन्द्र शिला गुहा के वर्णन से भी मिलता है जिसमे समान कथा का उल्लेख किया गया है।

दिकांश एवम् दूरी दोनों में गिरियेक एवम् इन्द्र शिला गुहा की पहाड़ी में इतनी

अधिक समानता है कि मुझे उनकी अनुरूपता पर पूर्ण सन्तोष है परन्तु मुझे यह असम्भावित प्रतीत नहीं होता कि यह गिरियेक अर्थात "एक पहाड़ी" से अधिक नहीं है जिसका फाहियान ने उल्लेख किया है।

दोनों तीर्थ यात्रियों ने कन्दरा को पर्वत के दक्षिणी भाग में बताया है और यह स्थिति गिद्ध द्वार के उपर्युक्त विवरण से ठीक-ठीक मिलती है। गिद्ध द्वार अथवा संस्कृत भाषा के गृद्ध द्वार का अर्थ है गिद्ध के आने जाने का मार्ग। ह्वेनसाग ने इसे उस पत्थर के नाम पर इन्द्र शिला गुहा कहा है जिस पर इन्द्र द्वारा बुद्ध से पूछे गये ४२ प्रश्न लिखे हुए हैं। फाहियान ने लिखा है कि यह चिह्न इन्द्र ने स्वयं अपनी उँगली से बनाये थे।

फाहियान के अनुसार "एकान्त चट्टान" की पहाडी मगध की राजधानी पाटलीपुत्र से ८ योजन अथवा ५६ मील दक्षिण पश्चिम में तथा नालन्दा से एक योजन अथवा ७ मील पूर्व में थी। ह्वेनसांग ने नालन्दा जाते समय अनेक स्थानों की यात्रा की थी परन्तु विभिन्न दिकांश एवम् दूरियों के कारण उसने इन्द्र शिला गुहा को नालन्दा से ४७ ली अथवा ७ $\frac{3}{4}$ मील पूर्व दक्षिण पूर्व मे बताया है। वरगाँव एवम् गिरियेक की वास्तविक मध्यवर्ती दूरी लगभग ६ मील है एवम् इसकी दिशा दक्षिण पश्चिम दिशा के पश्चिम की ओर बताई जा सकती है। यदि हम उसको दक्षिण पूर्व तथा पूर्व दिशाओं को दक्षिण दक्षिण पूर्व तथा पूर्व दक्षिण पूर्व पढ़े तो सामान्य दिशा दक्षिण पूर्व हो जावेगी एवम् इसकी दूरी ८ मील बढ़ जायेगी जो सत्य के समीप है।

बिहार

गिरिएक के एकान्त पर्वत से तीर्थ यात्री उत्तर पूर्व दिशा में १५० से १६० ली अथवा २५ से २७ मील दूर कपोतिक मठ तक गया। इसके आधा मील दक्षिण में एक उन्नत एकान्त पहाड़ी थी जहाँ अनेक कला पूर्ण भवनो से घिरा हुआ अवलोकितेश्वर का बिहार था। तीर्थ यात्री के १६० ली को ६० ली अथवा १० मील पढने से मैं इस स्थान को बिहार के अनुरूप समझता हूँ। (१) हमारे मानचित्रो मे इस नाम को बेहार लिखा गया है परन्तु जन साधारण इसे बिहार लिखते एवम् पुकारते है जो इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि यह स्थान किसी समय किसी प्रसिद्ध बौद्ध बिहार का स्थान रहा होगा। इन्हीं कारणों से मैं अवलोकितेश्वर के विशाल बिहार को—जो एक पहाडी के शिखर पर खडा है—वर्तमान बिहार एवम् खण्डहरों से ढँके वहाँ के विशाल एकान्त पर्वत के अनुरूप समझता हूँ। यह पहाडी बिहार नगर

---

(१) एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने अपना सन्देह व्यक्त किया है कि १५० से १६० ली को ५० अथवा ६० ली पढ़ा जाना चाहिये।

के उत्तर पश्चिम में है जिसका उत्तरी छोर अत्यन्त ढलुआं एवम् दक्षिणी भाग कम ढलुआं है। शिखर पर अब मुसलमानी इमारतें बनी हुई हैं परन्तु मुझे बौद्ध मूर्तियों एवम् सङ्कुलित स्तूपों के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए थे।

कपोतिक मठ से तीर्थ यात्री दक्षिण-पूर्व को ओर ४० ली अथवा ७ मील दूरी एक अन्य मठ तक गया जो एक एकान्त पहाड़ी पर अवस्थित था। दिकांश एवम् दूरी तितरावा के विशाल ध्वस्त टीले की ओर सकेत करते हैं जो बिहार के दक्षिण पूर्व में ठीक ७ मील की दूरी पर है। तितरवा के स्थान पर १२०० फुट लम्बा एक स्वच्छ विशाल सरोवर है जिसके उत्तर की ओर खण्डित ईंटो का एक विशाल टीला है जो अपने वर्गाकार स्वरूप के कारण किसी मठ का खण्डहर प्रतीत होता है।

इस स्थान से ह्वेनसांग ने उत्तर-पूर्व दिशा मे अपनी यात्रा को जारी रखा तथा ७० ली अथवा १२ मील के पश्चात् गङ्गा नदी के दक्षिणी तट पर एक विशाल गाँव में पहुँचा। परन्तु चूकि नदी का निकटतम बिन्दु २५ मील दूर है अतः हमें ७० के स्थान १७० ली अथवा २९ मील पढना चाहिये। यह आंकडे गिरिएक से कपोतिक मठ की मध्यवर्ती दूरी में १०० मील की कमो को यहाँ जोड देने से प्राप्त किये गये है।

मैंने इन दानो शुद्धियो को आवश्यक समझा है क्योकि ह्वेनसाग ने कपोतिक मठ के समोप पहाडी की अधिक ऊँचाई का विशेष उल्लेख किया है और चूंकि बिहार अथवा तितवार के उत्तर अथवा उत्तर पूर्व मे मैं किसी भी पहाडी के अस्तित्व से भिज्ञ नही हूँ अतः ह्वेनसाग द्वारा अपने मार्ग के विवरण को देश की वास्तविक स्थिति के अनुकूल बनाने के लिये प्रथम मार्ग दूरी को कम करने एवम् अन्तिम मार्ग को बढाने का इच्छुक हूँ। गिरिएक म २५ मील पूर्व उत्तर पूर्व मे शेखपुर के स्थान पर ६६५ फुट ऊचा एक पहाडी है जो सम्भवतः कपोतिक मठ की वास्तविक स्थिति हो सकती है परन्तु कपोतिक मठ की स्थिति मे परिवर्तन होने से तीर्थ यात्री के पश्चातवर्ती मार्ग एवम् दूरी मे भी परिवर्तन करना पड़ेगा क्योंकि शेखपुर गङ्गा नदी से केवल २० मील की दूरी पर है।

तत्पश्चात् तीर्थ यात्री पूर्व दिशा मे १०० ली अथवा लगभग १७ मील दूर लो-इन-नी-लो के मठ एवम् गाँव मे गया था जिसे श्री एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने गङ्गा नदी पर अवस्थित रोहिनिल अथवा रोहिनल के अनुरूप स्वीकार किया है। इसकी वास्तविक दिशा दक्षिण पूर्व है परन्तु चूंकि तीर्थ यात्री ने नदी मार्ग का अनुसरण किया था अतः उसके विवरण मे त्रुटि हो सकती है।

हिरण्य पर्वत

रोहिनल से, ह्वेनसांग २०० ली अथवा ३३ मील पूर्व की ओर ई-लान ना-पो-फा-ता अथवा हिरण्य पर्वत अर्थात "स्वर्ण पर्वत" राज्य की राजधानी में पहुँचा।

नगर के समीप ही हिरण्य पर्वत था "जिससे निकलने वाले धुएँ एवम् भाप के बादल सूर्य एवम् चन्द्रमा को ढंक दिया करते थे।" गङ्गा से इसकी समीपता एवम् रोहिनल तथा चम्पा से दिकांश एवम् दूरी के आधार पर इस पर्वत की स्थिति को मुङ्गेर के स्थान पर निश्चित किया जा सकता है। अब, इस पहाड़ी से धुआं नही निकलता परन्तु आस पास की पहाड़ियों मे गरम जल के सरोवरों से पता चलता है कि मुङ्गेर से कुछ ही मीलो के भीतर ज्वालामुखी तत्व उपस्थित है। ह्वेनसांग ने गरम जल के इन सरोवरों का उल्लेख किया है।

गङ्गा नदी के तट पर यह एकान्त पहाडी जो पहाडियो एवम् नदी के मध्यवर्ती स्थल मार्ग एवम् नदी के जल मार्ग पर नियन्त्रण रखती है—अपनी अनुकूल स्थिति के कारण अधिक प्रारम्भिक काल में बस गई होगी। तदनुसार महाभारत मे इसे बंग तथा ताम्रलिप्त अथवा बङ्गाल तथा तमलूक के समीप अवस्थित मोदागिरी कहा गया है जो पूर्वी भारत के एक राज्य को राजधानी थी। ह्वेनसांग की यात्रा के समय एक पडोसी राज्य के राजा ने यहाँ के राजा को पदच्युत कर दिया था। यह राज्य उत्तर में गङ्गा तथा दक्षिण मे घने जङ्गलो वाले पर्वतो से घिरा हुआ था और चूंकि इसकी परिधि को ३००० ली अथवा ५०० मील आंका गया है अतः दक्षिण में इसका विस्तार पारसनाथ के प्रसिद्ध पर्वतों तक रहा होगा जो ४४७८ फुट ऊँचा है। अतः मैं इसको सीमाओ को उत्तर मे लखी-सराय से गङ्गा नदी पर सुल्तान-गज तक तथा दक्षिण मे पारसनाथ पहाडी के पश्चिमी छोर से बराकर तथा दानूंद नदियो के सगम स्थान तक निर्धारित करूंगा। इस भू-भाग की परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ३५० मील तथा दो नदियों के घुमावदार मार्ग के अनुसार ४२० मील से अधिक होगी।

चम्पा

मुंगेर से, ह्वेनसाग, पूर्व दिशा में ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रोपरान्त चेन पो अथवा चम्पा पहुँचा जो भागलपुर जिले का एक प्राचीन नाम है। राजधानी एक चट्टानी पहाड़ी जो चारों ओर से नदी द्वारा घिरी हुई थी। पश्चिम मे १४० से १५० ली अथवा २३ से २५ मील की दूरी पर गङ्गा नदी पर अवस्थित थी। इसके शिखर पर ब्राह्मणो का एक मन्दिर था। इस विवरण से पत्थर घाट के विपरीत द्रुममय चट्टानी द्वीप को पहचाना सरल है जिसकी चोटो पर एक मन्दिर बना हुआ है। चूंकि पत्थर घाट भागलपुर के पूर्व में ठीक २४ मील की दूरी पर है अतः मेरा निष्कर्ष है कि चम्पा की राजधानी या तो इसी स्थान पर रही होगी अथवा इसके समीप रही होगी। समीप ही, पश्चिम की ओर चम्पा नगर नाम का एक विशाल गाँव एवं चम्पापुर नामक एक छोटा गाँव है जो सम्भवतः चम्पा की प्राचीन राजधानी की वास्तविक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।

तीर्थ यात्री ने चम्पा की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील आंका है और चूंकि यह राज्य उत्तर मे गङ्गा नदी द्वारा तथा पश्चिम में मुंगेर पर्वत द्वारा घिरा हुआ था अतः इसकी सीमायें पूर्व में गङ्गा नदी को भागीरथी शाखा तक तथा दक्षिण में दामूद नदी तक विस्तृत रही होगी। दोनों उत्तरी बिन्दुओं को गङ्गा नदी पर जानगीर तथा तेलिया गली, तथा दक्षिणी बिन्दुओं को दामूद नदी पर प्राचीन तथा भागीरथी पर कलना स्वीकार करने से सीमान्त रेखा की लम्बाई सीधे माप के अनुसार ४२० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार लगभग ५०० मील होगी। यह ह्वेनसांग द्वारा अनुमानित आकार से इतना कम है कि मेरा विचार है कि या तो मूल पुस्तक मे किसी प्रकार की त्रुटि रही होगी अथवा तीर्थ यात्री के समय चम्पा जिले की भूगोलिक सीमाओं के बीच किसी प्रकार का भ्रम रहा होगा। तीर्थ यात्री के विवरण से हमें पता चलता है कि चम्पा के पश्चिम में मुंगेर के राजा को एक पड़ोसी राजा ने पद-च्युत कर दिया था। चम्पा के पूर्व कान्जोल जिला एक पडोसी राज्य का आश्रित था। चूंकि चम्पा इन दोनों जिलों के मध्य मे अवस्थित है अतः मेरा अनुमान है कि चम्पा का राजा ही सम्भवतः वह राजा था जिसने दोनों जिलों पर विजय प्राप्त की थी और इस प्रकार ह्वेनसांग के विस्तृत आंकडों में मूल चम्पा के पूर्व एव पश्चिम के यह दोनो जिले सम्मिलित रहे होंगे। इस विचार धारा के अन्तर्गत राजनीतिक सीमाओ को गङ्गा नदी पर लखीसेराय से राजमहल तक तथा पारसनाथ को पहाडी से दामूद नदी के साथ-साथ भागीरथी नदी पर कलना तक विस्तृत बताया जा सकता है। इन सीमाओं के भीतर चम्पा की परिधि सीधे माप के अनुसार ५५० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार ६५० मील होगी।

कान्कजोल

चम्पा से तीर्थ यात्री ४०० ली अथवा ६७ मील पूर्व की यात्रोपरान्त की-चू-ओी-ली अथवा की-चिङ्ग-की-लो नामक जिले में पहुँचा। दूरी एवम् दिकाश "हमें राज-महल जिले में ले आते हैं जो मूल रूप से कान्कजोल नामक एक नगर के नाम पर कान्कजोल कहलाता था। यह नगर राजमहल के १८ मील दक्षिण मे अब भी बसा हुआ है। कहलगांव (कोकगोंग) तथा राजमहल से होते हुए नदी मार्ग का अनुसरण करने से भागलपुर से इसकी दूरी कुल ६० मील है परन्तु मानगांव तथा बरहट होते हुए पहाड़ियो के सीधे मार्ग से इसकी दूरी ७० मील से कम है। चूंकि यह स्थिति ह्वेन-सांग द्वारा इङ्गित स्थान की स्थिति से मिलती है अतः मुझे सन्देह है कि चीनी नाम मे दो अक्षरों की अदला-बदली हुई है और हमे इसे की-की-चू-लो पढ़ना चाहिये जो कान्कजोल का अक्षरशः अनुवाद है। ग्लेडविन द्वारा आईन-ए-अकबरी के अनुवाद में इस नाम को गङ्गजूक कहा गया है परन्तु चूंकि मूल प्रतिलिपि में सभी नामों को क्रम-वार दिया गया है अतः यह निश्चित है कि प्रथम अक्षर क है। अतः मेरा निष्कर्ष है

कि वास्तविक नाम कान्कजोल है क्योंकि अन्तिम ल को सरलता पूर्वक पढ़ने की त्रुटि की जा सकती है। हेमिल्टन ने अपने गजेटीयर मे इस स्थान को कौकजोली कहा है जो सम्भवतः कन्कजोली के स्थान पर गलती से लिखा गया है। उसने लिखा है कि पूर्ववर्ती समय में राजमहल जिले को "अपनी राजधानी के नाम पर अकबर नगर कहा जाता था जबकि लगान सम्बन्धी पुस्तकों मे इसे मुख्य रूप से एक सैनिक खण्ड के रूप मे कन्कजोली कहा गया है।"

ह्वेनसांग ने जिले की परिधि को २००० ली अथवा ३३३ मील आंका है परन्तु चूंकि यह एक पडोसी राज्य का आश्रित राज्य था अतः इसकी परिधि को उसी राज्य की परिधि मे सम्मिलित किया गया है जिसका उल्लेख मैं कर चुका हूँ। स्वतन्त्र राज्य के रूप मे कान्कजोल के छोटे राज्य के अन्तर्गत सम्भवतः राजमहल के दक्षिण एवम् पश्चिम का सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र तथा पहाड़ियो एवम् भागीरथी नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र रहा होगा जो दक्षिण मे मुर्शिदाबाद तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र की परिधि प्रायः ३०० मील होगी।

पौण्ड्र वर्धन

कान्कजोल से तीर्थ यात्री ने गङ्गा नदी को पार किया तथा पूर्व की ओर ६०० ली अथवा १०० मील की यात्रोपरान्त पुन-न-फा-तान-न राज्य में पहुँचा। एम० जुलीन ने इस नाम को पौण्ड्र वर्धन कहा है जबकि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने इसे बर्दवान के अनुरूप स्वीकार किया है। परन्तु बर्दवान अन्तिम स्थान के दक्षिण में तथा गङ्गा नदी के एक ही तट पर अवस्थित है। इसके अतिरिक्त इसका संस्कृत नाम वर्द्धमान है जैसा कि हम पिच्छले उदाहरणों में देख चुके हैं दिकांश मे भिन्नता एक त्रुटि के कारण हो सकती है परन्तु मेरे विचार में अन्य भिन्नताओ के कारण बर्दवान को इस स्थान के अनुरूप समझना सांघातिक होगा। मैं पबना का प्रस्ताव करूँगा जो कान्कजोल से प्रायः १०० मील दूर है एवम् गङ्गा नदी के विपरीत तट पर अवस्थित है परन्तु इसकी दिशा पूर्व के स्थान पर दक्षिण पूर्व है। चीनी अक्षर पुण्य वर्धन अथवा पौण्ड्र वर्धन का प्रतिनिधित्व करता है परन्तु अन्तिम नाम ही वास्तविक नाम होगा क्योंकि काश्मीर के स्थानीय इतिहास में इसे गोड़ के राजा जयन्त की राजधानी कहा गया है जिसने ७८२ ईसवी से ८१३ ईसवी तक राज्य किया था। (१) बोलचाल की भाषा में इस नाम को संक्षिप्त कर पोन बर्धन अथवा पोवधन कर दिया गया होगा जिससे इसे पूबना अथवा पोबना बना देना सरल रहा होगा जैसा कि इसे कुछ लोग पुकारते हैं। ह्वेन-

(१) राजतरङ्गिणी भाष्य पुराण के ब्रह्माण्ड खण्ड से एच० एच० विल्सन द्वारा उद्धृत पौण्ड्र देश के वर्णन में प्रान्त के अधिकांश भाग को गङ्गा के उत्तर में दिखाया गया है।

सांग के अनुसार राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी जो पश्चिम में महानदी, पूर्व में तिस्ता तथा ब्रह्मपुत्र तथा दक्षिण मे गङ्गा नदी द्वारा घिरे भू-भाग के वास्तविक आकार से ठीक-ठीक मिलता है।

जझोती

ह्वेनसांग ने ची-ची तो राज्य को उज्जैन के उत्तर-पूर्व में १००० ली अथवा १६७ मील की दूरी पर बताया है। चूंकि इस नाम के प्रथम एव द्वितीय अक्षर चीनी भाषा में भिन्न भिन्न हैं अतः यह निश्चित है कि यह भारतीय भाषा के दो विभिन्न अक्षरो के समान होगे। ची-ची-तो-को अबुरिहान द्वारा उल्लिखित जझोटी अथवा जझोती के अनुरूप स्वीकार कर लेने से इस आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। अबु-रिहान ने इसकी राजधानी को कजूराहा कहा है तथा इसे कन्नौज से ३० परसांग अथवा ९० मील दक्षिण पूर्व मे दिखाया है। परन्तु वास्तविक दिशा दक्षिण है और दूरी लगभग ३० परसांग से दुगनी अर्थात १८० मील है। इब्न बतूता ने १३३५ ई० मे इस राजधानी की यात्रा की थी। जिसने इसे खजूरा कहा है तथा यहाँ एक मील लम्बी झील के होने का उल्लेख किया है जिस के चारो ओर मूर्तिपूजकों के मन्दिर थे। इन मन्दिरों को खजुराहो के स्थान पर आज भी देखा जा सकता है और उत्तरी भारत मे प्रातः मन्दिरों मे यह मन्दिर सम्भावतः सर्व श्रेष्ठ हैं।

अबु-रिहान तथा इब्न बतूता के विवरणों से पता चलता है कि जझोटी प्रान्त बुन्देलखण्ड के वर्तमान जिले के अनुरूप है। चीनी तीर्थ यात्री ने ची ची तो की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील बताया है जिससे चारो ओर १६७ मील रेखाओ वाला एक चतुर्भुज बनता है कहा जाता है। कि बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमे गङ्गा एवम् यमुना का सम्पूर्ण दक्षिणी क्षेत्र तथा पश्चिम मे बेतवा नदी से पूर्व मे चन्देरी सागर के जिले सहित विन्ध्य वासिनी देवी के मन्दिर तक एवम् दक्षिण मे नर्बदा नदी के मुहाने के समीप बिल्हारी तक का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित था। परन्तु प्राचीन जझोतिया ब्राह्मणों के प्राचीन राज्य की यही सीमायें थी जो, बुचनान की सूचनानुसार उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्बदा तक तथा पश्चिम मे बेतवा नदी पर अवस्थित उरच से लेकर पूर्व में बुन्देल नाला तक विस्तृत था। अन्तिम नाला एक छोटी नदी है जो बनारस के समीप तथा मिर्जापुर से दो (पैदल) यात्राओं की दूरी पर गङ्गा नदी मे मिलती है। अन्तिम पच्चीस वर्षों में मैंने इस प्रदेश में चारों दिशाओं में भ्रमण किया है तथा मैंने जझोतिया ब्राह्मणों को सम्पूर्ण प्रान्त में फैले हुए पाया है परन्तु जमुना के उत्तर में अथवा बेतवा के पश्चिम में जझोतिया ब्राह्मणों का एक भी परिवार नहीं है। मैंने उन्हें बेतवा नदी पर उरच के समीप बरवा सागर में, जमुना नदी पर हमीरपुर के समीप मोहबा मे केन नदी के समीप खजुराहों तथा राजनगर में तथा चन्देरी एवम् भिलसा के मध्य उदयपुर, पथारी तथा एरान में देखा है। चन्देरी

में जभोतिया बनिया भी पाये जाते हैं जिनसे इस बात का पता चलता है कि यह नाम सामान्य पारिवारिक पद न होकर सामान्य स्वीकृति का एक निर्देशक पद है। ब्राह्मणों ने जभोतिया नाम को यजुर होता से लिया है जो ऋगवेद की एक प्रथा थी परन्तु चूँकि यह नाम ब्राह्मणों एवम् बनियो अर्थात अन्य व्यापारियों के लिये समान रूप से प्रयोग मे लाया जाता है अतः मेरे विचार में यह प्रायः निश्चित है कि यह नाम केवल एक भौगोलिक नाम था जो उनके देश, जभोती से लिया गया था। ब्राह्मणों की अन्य अनेक जातियो से इस विचार की पुष्टि होती है जैसे कन्नौज से कन्नौजिया, गोड़ से गौड़ सरयूपार से सरवरिया अथवा सरयूपरिया, दक्षिण के द्राविड़, मिथिला से मैथिल आदि। इन उदाहरणों से पता चलता है कि ब्राह्मणों की जातियों में भौगोलिक नाम प्रचलित थे और चूँकि किसी एक प्रान्त में एक ही जाति के लोग अधिक संख्या में मिलते हैं अतः मैं किसी सीमा तक निश्चय पूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वह भू-भाग जहाँ जभोतिया ब्राह्मण अधिक संख्या मे रहते थे वस्तुतः जभोती प्रान्त का क्षेत्र था।

खजुराहो १६२ मकानो वाला एक छोटा गाँव है जहाँ १००० से कम निवासी हैं। इनमे जभोतिया ब्राह्मणों की सात विभिन्न शाखाओं के भवन एवम् चन्देल राजपूतो के सात भवन है। इन राजपूतों का मुखिया प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज के प्रतिद्वन्दी राजा परमाल देव का वंशज होने का दावा करता है। यह गाँव चारो ओर से मन्दिरो एवम् खण्डहरों से घिरा हुआ है परन्तु यह सभी पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण पूर्व के तीन विभिन्न स्थानो में सामूहिक रूप से पाये जाते हैं। पश्चिमी समूह जिसमें ब्राह्मणो के मन्दिर हैं, सिब सागर के तट पर अवस्थित है। यह सागर वस्तुतः एक संकीर्ण झील है जो वर्षा ऋतु मे उत्तर से दक्षिण लम्बाई में तीन चौथाई मील लम्बी हो जाती है परन्तु ग्रीष्म ऋतु मे इसकी लम्बाई ६०० फुट से अधिक नही रहती। गाँव मे यह तीन चौथाई मील पर, खण्डहरो के उत्तरी समूह से समान दूरी पर तथा जैन मन्दिरों के दक्षिण-पूर्वी समूह मे ठीक एक मील दूर है। कुल मिलाकर यह खण्डहर एक वर्ग मील मे फैले हुये हैं परन्तु चूँकि पश्चिमी समूह एवम् खजूर सागर के मध्य किसी प्रकार के खण्डहर नहीं है अतः प्राचीन नगर की सीमा झील के पश्चिमी तट से आगे विस्तृत नहीं रही होगी। झील के अन्य तीनो ओर यह खण्डहर उत्तर से दक्षिण की ओर ४५०० फुट लम्बे एवम् पूर्व से पश्चिम की ओर २५०० फुट चौड़े अथवा १४,००० फुट अथवा २¾ मील की परिधि वाले आयताकार क्षेत्र में निरन्तर फैले हुए हैं। यह परिधि ६४१ ईसवी में ह्वेनसांग द्वारा कथित राजधानी के आकार से ठीक-ठीक मिलती है परन्तु कुछ समय पश्चात् खजुराहो नगर को पूर्व तथा दक्षिण में कुरार नाला तक विस्तृत किया गया था और विस्तृत दशा में इसकी परिधि ३½ मील से कम नहीं थी।

चूँकि महोबा एवम् खजुराहो दोनों ही समान आकार के नगर थे अतः यह कहना कठिन है कि ह्वेनसांग के समय राजधानी कौन सी थी। परन्तु चूँकि महोबा अथवा महोत्सव नगर चन्देल परिवार के उत्थान से सम्बन्धित है अतः मैं इसे सर्वाधिक सम्भावित समझता हूँ कि जझोतिया ब्राह्मणो के प्रारम्भिक परिवारो की राजधानी खजुराहो थी और इस प्रकार ह्वेनसाग की यात्रा के समय खजुराहो ही जझोती राज्य की राजधानी थी। परन्तु चूँकि यह उज्जैन से ३०० मील से अधिक अथवा यात्री द्वारा कथित दूरी से दुगनी दूरी पर है अतः वास्तविक दूरी के समान करने के लिये तीर्थ यात्री के १००० ली को बढ़ाकर २००० ली अथवा ३३३ मील करना होगा। यह एक विचित्र तथ्य है कि अबुरिहान ने कन्नौज से दूरी के अनुमान मे भी समान अनुपात मे त्रुटि की है और दोनों लेखको के समान विचारो से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो की त्रुटि का सम्भावित कारण भी समान होगा अर्थात् उन्होंने बुन्देलखण्ड के बडे कोस का अनुसरण किया होगा जो ४ मील अथवा उत्तरी भारत के सामान्य कोस के दुगने के समान है।

ह्वेनसाग ने जझोती राज्य की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मोल कहा है। इन विस्तृत आकड़ो को प्राप्त करने के लिये इस राज्य मे सिन्ध तथा टोन्स नदियो का सम्पूर्ण मध्यवर्ती प्रदेश तथा उत्तर मे गङ्गा नदी से दक्षिण मे नया सराय तथा बिलहारी तक के भू-भाग को सम्मिलित करना पडेगा। इस भू-भाग मे कालिन्जर का प्रसिद्ध दुर्ग तथा चन्देरी का सुदृढ़ दुर्ग भी सम्मिलित थे जो क्रमशः महोबा पर मुसलमानो की विजयोपरान्त चन्देल राजपूतो की स्थायी राजधानी बन गया था तथा जो बूढ़ो चान्देरी के त्याग दिये जाने पर पूर्वी मालवा की मुस्लिम राजधानी बन गया था।

महोबा

महोबा का प्राचीन नगर हमीरपुर मे ५४ मील पर तथा खजुराहो के उत्तर मे ३४ मील दूर बेतवा एवं यमुना के संगम स्थान पर कड़े पत्थर की एक निचली पहाड़ी के अधोभाग पर अवस्थित है। यह नाम महोत्सव नगर का संक्षिप्त स्वरूप है। यह महोत्सव चन्देल परिवार के संस्थापक चन्द्र वर्मा ने कराया था। कहा जाता है कि यह नगर ६ योजन लम्बा तथा २ योजन चौडा था परन्तु मैं इसे एक बडे नगर के लिये मूर्ख कथाकारो द्वारा अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन समझता हूँ। मेरे सर्वेक्षणानुसार पश्चिम में राय कोट के छोटे दुर्ग से लेकर पूर्व मे कल्यान सागर तक यह नगर अपने अधिकतम विस्तृत स्वरूप मे भी १½ मील से अधिक लम्बा नहीं रहा होगा। यह प्रायः एक मील चौड़ा है जिससे इसकी परिधि ५ मील बनती है परन्तु इसका वास्तविक क्षेत्र एक वर्ग मील से अधिक नही है क्योंकि इसका दक्षिणी पश्चिमी भाग मदन सागर झील से ढँका हुआ है। अतः सर्वाधिक समृद्धि के समय इसकी जनसंख्या, प्रति ३००

वर्ग फुट के पीछे एक व्यक्ति की उच्चतम औसत को स्वीकार करने पर, १००,००० व्यक्तियों से कम रही होगी। १८४३ ई० मे मैं छः सप्ताह तक महोबा मे रहा था। उस समय यहाँ ७५६ गृह बसे हुए थे एवं यहाँ की जनसख्या ४००० थी। तदोपरान्त इस नगर का विस्तार हुआ है और कहा जाता है कि अब यहाँ पर ६०० घर एवम् ५००० निवासी हैं।

महोबा तीन विशिष्ट भागो मे विभाजित है—प्रथम—महोबा अथवा नगर विशेष जो पहाडी के उत्तर मे है; द्वितीय—भीतरी किला जो पहाडी की चोटी पर है तथा तृतीय दरीबा अथवा पहाडी का दक्षिणी नगर। नगर के पश्चिम मे कीरत सागर है जिसका घेरा १½ मील है। यह सागर कीर्ति वर्मा द्वारा बनवाया गया था जिसने १०६५ से १०८५ ई० तक शासन किया था। दक्षिण की ओर मदन सागर है जिसकी परिधि प्रायः ३ मील है। इसका निर्माण मदन वर्मा ने कराया था जिसने ११३० से ११६५ ईसवी तक शासन किया था। पूर्व की ओर कल्यान सागर नाम की एक छोटी झील है। उसके आगे विजय सागर नाम की एक गहरी झील है जिसका निर्माण विजय पाल ने करवाया था जिसने १०४५ ईसवी से १०६५ ईसवी तक राज्य किया था। अन्तिम झील महोबा की झीलो से सबसे बड़ी है जिसकी परिधि ४ मील से कम नहीं है परन्तु बुन्देल खण्ड जिले की सर्वाधिक सुन्दर एवम् दृश्य-मय झील मदन सागर है। यह सागर पश्चिम मे गोकर की कठोर चट्टानी पहाड़ी से, उत्तर मे प्राचीन दुर्ग के अधोभाग पर बने घाट एवम् मन्दिरो की श्रेणियो से तथा दक्षिण पूर्व में तीन चट्टानी अन्तरीपो से घिरा हुआ है। यह भू-नासिकाये झील के भीतर की ओर मध्य तक चली गई हैं। उत्तरी भाग मे एक चट्टानी द्वीप है जो ध्वस्त भवनो से ढँका हुआ है तथा उत्तरी-पश्चिमी कोण की ओर कठोर पत्थर के बने दो मन्दिर है जिन्हे चन्देल राजाओं ने बनवाया था। इनमें एक पूर्णतयः जर्जर अवस्था मे है परन्तु दूसरा मन्दिर ७०० वर्षों के पश्चात भी जल के भीतर उन्नत एवम् सीधा खड़ा है।

महोबा की स्थापना की परम्परागत कथा का मूल उल्लेख चन्द बरद (बरदाई) ने किया है। (१) अन्य स्थानीय इतिहास लेखको ने इस कथा का अनुसरण किया है। इस कथा के अनुसार चन्देल राजपूत बनारस के राजा गहिरवार इन्द्रजीत के ब्राह्मण पुरोहित हेमराज की पुत्री हेमावती से उत्पन्न हुए थे। हेमावती अत्यन्त सुन्दरी थी और एक दिन जब वह रति तालाब मे स्नान करने गई तो चन्द्रमा देवता ने उसे आलिङ्गन में ले लिया। जब चन्द्रमा आसमान की ओर जाने लगा तो हेमावती ने उसे

(१) चन्देल राजा परमाल (परमार्दी देव) के युद्धो एवम् चन्देलों की उत्पत्ति का वर्णन करने वाले—चन्द्र बरदाई की कविता के भाग को महोबा काण्ड का नाम दिया गया है।

बुरा-भला कहा। "मुझे क्यों कोसती हो।" चन्द्रमा ने कहा, "तुम्हारा पुत्र पृथ्वी का राजा बनेगा और उसके वंशजों की सौ शाखायें होगी।" हेमावती ने पूछा—"जब मैं अविवाहिता हूँ तो मेरा पाप कैसे छिपेगा।" चन्द्रमा ने उत्तर दिया, "डरो मत। तुम्हारा पुत्र कर्णावती नदी के तट पर जन्म लेगा। तब उसे तुम खजुराया ले जाना और वहाँ उसे दक्षिणा में दे देना एवम् त्याग करना। महोबा में वह राज्य करेगा और एक महान शासक बनेगा। उसे दैवी पत्थर प्राप्त होगा और वह लोहे को स्वर्ण बना सकेगा। कालिन्जर की पहाड़ी पर वह एक दुर्ग का निर्माण करायेगा। जब तुम्हारा पुत्र १६ वर्षों का होगा तो तुम अपने अपयश को दूर करने के लिये भण्ड यज्ञ करना और तदोपरान्त बनारस को त्याग कर कालिन्जर में निवास करना।"

इस भविष्य वाणी के अनुसार हेमावती का पुत्र, द्वितीय चन्द्रमा की भांति बैशाख के कृष्ण पक्ष के ग्याहरवें दिन सोमवार को कर्णावती, आधुनिक केन नदी के तट पर उत्पन्न हुआ। (१) तदोपरान्त समस्त देवताओं की उपस्थिति मे चन्द्रमा ने महोत्सव मनाया। बृहस्पती ने उस बालक की जन्म कुण्डली बनाई तथा बालक को चन्द्र वर्मा नाम दिया गया। १६ वर्ष की आयु में उसने एक शेर का बध किया। चन्द्रमा प्रगट हुए एवम् उन्होंने उसे दैवी पत्थर भेंट किया एवम् उसे राजनीति का ज्ञान कराया। तत्पश्चात उसने कालिन्जर दुर्ग का निर्माण कराया तथा अपनी जननी को पापमुक्त कराने के उद्देश्य से यज्ञ कराया तथा ४५ मन्दिरों का निर्माण कराया। तदोपरान्त चन्द्रवती रानी एवम् अन्य सभी रानियाँ हेमावती के चरणो मे बैठ गई और उसके पाप धुल गये। अन्त में वह महोत्सव अथवा महोबा गया और उसे अपनी राजधानी बनाया।"

विभिन्न लेखको ने इस तिथि को भिन्न-भिन्न रूप से लिखा है परन्तु शिलालेखो से प्राप्त वंशावलियों के अनुसार चन्देल परिवार के उत्थान एवम् महोबा की स्थापना की सम्भावित तिथि ८०० ई० है।

महेश्वरपुर

जझोती से चीनी तीर्थ यात्री उत्तर दिशा में ६०० ली अथवा १५० मील की यात्रोपरान्त मो-ही-शी-फा-लो-पू-लो अथवा महेश्वरपुर गया जहाँ का शासक एक ब्राह्मण था। चूँकि उत्तर दिशा का अनुसरण करने से हम कन्नौज के समीप पहुँच जायेंगे अतः मेरा निष्कर्ष है कि दिकांश मे सम्भवतः त्रुटि हुई है। अतः मैं ६०० ली अथवा १५० मील दक्षिण पढ़ने का प्रस्ताव करूँगा जिस स्थिति में मण्डल नाम का

(१) कुछ एक प्रतिलिपियो मे नदी के नाम को कियान अथवा किरनवती कहा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रथम नाम से ही एरियान ने कैनास नाम प्राप्त किया था जिसे सम्भवतः कियानास नाम से परिवर्तित किया गया है।

प्राचीन नगर खड़ा है जिसे महेशमतिपुर भी कहा जाता था। यह ऊपरी नर्बदा के तटीय प्रदेश की मूल राजधानी थी। बाद मे जबलपुर से ६ मील दूर त्रिपुरी अथवा तेवर ने इसका स्थान ग्रहण कर लिया था। महेशमतिपुर नाम प्राचीन है क्योंकि महावंशों में उल्लेख किया गया है कि २४० ईसवी पूर्व मे सम्राट अशोक के समय थेरो महादेव को महेश मण्डल भेजा गया था। देश की उपज को उज्जैन की उपज के समान बताया गया है जो इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि महेश्वर जभोटी के उत्तर की ओर नही हो सकता था क्योकि ग्वालियर तथा गङ्गा दोआब की हल्के रङ्ग की मिट्टी उज्जैन के आस पास की काली मिट्टी से भिन्न है। इन कारणो से मैं ऊपरी नर्बदा पर अवस्थित महेशमतिपुर को ह्वेनसांग के महेश्वरपुर के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। इस राज्य की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी। इन आंकडों के अनुसार इसकी सीमाओं को अनुमानतः पश्चिम मे दमोह तथा सियोनी से पूर्व में नर्बदा के मुहाने तक विस्तृत बताया जा सकता है।

उज्जैन

ह्वेनसांग ने यू-शी-येन-न अथवा उज्जैयनी का राजधानी को परिधि मे ३० ली अथवा ५० मील कहा है जो वर्तमान समय मे इसके आकार से कुछ कम है। राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। पश्चिम की ओर से यह राज्य मालवा राज्य से घिरा हुआ था जिसकी राजधानी धार नगर अथवा धार उज्जैन से ५० मील के भीतर था। अतः उज्जैन की सीमाये पश्चिम मे चम्बल नदी से आगे नही हो सकती थी परन्तु उत्तर मे यह मालवा तथा जभोती के राज्यो से, पूर्व मे महेश्वरपुर से तथा दक्षिण मे नर्बदा तथा ताप्ती नदियो के मध्य सत्पुडा पर्वतो से घिरा होगा। इन सीमाओ के भीतर अर्थात् पश्चिम मे रणथम्भोर तथा बुरहानपुर से पूर्व मे दमोह तथा सिउनी तक उज्जैन राज्य से सम्बन्धित भू-भाग की परिधि प्रायः ६०० मील रही होगी।

जभोती तथा महेश्वरपुर के पडोसी राज्यो की भांति उज्जैन राज्य भी एक ब्राह्मण राजा के अधीन था परन्तु जभोती का राजा बौद्ध धर्मावलम्बी था जबकि अन्य दोनो राजे ब्राह्मणवादी थे। पश्चिम में मालवा का शासक कट्टर बौद्ध था। परन्तु ह्वेनसांग के समय का मो-ला-पो अथवा मालवा प्राचीन प्रान्त के पश्चिमी अर्द्ध भाग तक सीमित है जबकि पूर्वी अर्द्ध भाग में उज्जैन का ब्राह्मण राज्य है। चूंकि प्रान्त की राजनीतिक सीमायें इस प्रकार इसकी धार्मिक सीमाओ से मिलती है अतः इस बात का उचित अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सम्बन्ध विच्छेद धार्मिक मतभेद के परिणाम स्वरूप हुआ होगा। और चूंकि प्रान्त के पश्चिमी अथवा बौद्ध भाग को अब भी मालवा कहा जाता है अतः मेरा निष्कर्ष है कि ब्राह्मणों ने ही सम्बन्ध विच्छेद

किया होगा तथा उज्जैन का राज्य मालवा के प्राचीन बौद्ध राज्य की ब्राह्मणवादी शाखा थी। इसी प्रकार मेरा विश्वास है कि महेश्वरपुर कोसल अथवा बराट—जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायेगा—के विशाल बौद्ध राज्य की ब्राह्मणवादी शाखा रहा होगा। उज्जैन मे कई दर्जन मठ थे परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय यहाँ केवल तीन अथवा चार मठ अच्छी हालत मे थे जो लगभग ३०० भिक्षुओं को शरण प्रदान करते थे। देवताओ के मन्दिरो की संख्या अधिक थी तथा यहाँ राजा ब्राह्मणो के पाखण्डवादी ग्रन्थो का ज्ञाता था।

मालवा

ह्वेनसांग ने मो-ला-पो अथवा मालवा की राजधानी को मो हो अथवा माही नदी के दक्षिण पूर्व मे तथा भड़ोच के उत्तर पश्चिम मे २००० ली अथवा ३३३ मील की दूरी पर अवस्थित बताया है। यहाँ दिकांश एवम् दूरी दोनों ही त्रुटिपूर्ण हैं क्योकि मालवा भड़ोच के उत्तर पूर्व में है जहाँ से माही नदी का उद्गम स्थान केवल १५० मील की दूरी पर है। अतः मैं इसे १००० ली अथवा १६७ मील उत्तर पूर्व पढ़ूँगा जो मालवा की एक प्राचीनतम राजधानी धार नगर अथवा धार की स्थिति से प्रायः ठीक-ठीक मिलता है। वर्तमान धार नगर की लम्बाई तीन चौथाई मील तथा चौड़ाई आधा मील है अथवा इसकी परिधि २½ मील है परन्तु चूँकि दुर्ग नगर की सीमाओ से बाहर है अतः इस स्थान की कुल परिधि ३½ मील से कम नही हो सकती है। प्रान्त की सीमाओ को ६००० ली अथवा १००० मील बताया गया है। पश्चिम की ओर मालवा के दो आश्रित राज्य थे अर्थात् खेड़ा, जिसकी परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी, तथा आनन्दपुर जिसकी परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी। इनके अतिरिक्त वदारी नाम का एक स्वतन्त्र राज्य था जिसकी परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। इन सभी राज्यों को पश्चिम तथा पूर्व मे कच्छ तथा उज्जैन, उत्तर में बैराट तथा दक्षिण मे बलभी एवम् महाराष्ट्र के मध्यवर्ती क्षेत्र मे रखना होगा जिसकी कुल परिधि १३५० मील से अधिक नहीं है। अतः यह सम्भावित प्रतीत होता है कि तीर्थ यात्री ने आश्रित राज्यों को शासक राज्य की सीमाओं में ले लिया होगा। अतः मैं उपर्युक्त क्षेत्र के दक्षिणी अर्द्ध भाग को मालवा एवम् उसके आश्रित राज्यो का क्षेत्र समझता हूँ जबकि उत्तरी भाग को वदारी के स्वतन्त्र राज्य का क्षेत्र समझता हूँ। इस प्रकार मालवा की सीमाये उत्तर में वदारी, पश्चिम में बलभी पूर्व मे उज्जैन तथा दक्षिण मे महाराष्ट्र द्वारा निर्धारित होती है। कच्छ में बनास नदी के मुहाने से लेकर मन्दसोर के समीप चम्बल तक तथा दमान तथा मालीगाँव के मध्यवर्ती सहया-द्री पर्वतों से लेकर बुरहानपुर से नीचे ताप्ती नदी तक इस क्षेत्र की परिधि मानचित्र पर सीधे माप के अनुसार ८५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार प्रायः १००० मील

है। अबुरिहान के अनुसार नर्बदा से धार की दूरी ७ परसाग थी और वहाँ से महरट-दास की सीमा १८ परसांग थी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि धार की सीमायें दक्षिण में ताप्ती नदी तक विस्तृत रही होंगी।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि भारत मे दो ऐसे राज्य थे जिन्हें बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने का विशेष स्थान समझा जाता था अर्थात् उत्तर पूर्व मे मगध तथा दक्षिण पश्चिम मे मालवा। इसी तथ्य के अनुसार उसने लिखा है कि मालवा मे अनेक सहस्र मठ थे जिनमे कम से कम २०,००० भिक्षु थे। उसने इस बात का भी उल्लेख किया है कि उसकी यात्रा से ६० वर्ष पूर्व शिलादित्य नामक एक शक्तिशाली राजा ने ५० वर्षों तक मालवा मे राज्य किया था और वह एक कट्टर बौद्ध अनुयायी था।

खेड़ा

ह्वेनसाग ने की-चा अथवा खेडा जिले को मालवा से ३०० ली अथवा ५० मील उत्तर पश्चिम में बताया है। चूंकि एम० जुलीन तथा एम० विवीन ने की-चा को खाचा पढा है जिसे वह कच्छ के पठार के अनुरूप स्वीकार करते हैं अत: मैं उन कारणो पर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ जिनके कारण मैं भिन्न नाम का प्रस्ताव करना चाहता हूँ। अन्य जिन नामो में चा के विशेष चिह्न का प्रयोग किया है उन्हें देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पाटलीपुत्र तथा कुक्कुता के सर्व प्रसिद्ध नामो में इसी चिह्न का प्रयोग किया है जहाँ यह त अथवा ट अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार ओ-चा-ली मे भी इसी अक्षर का प्रयोग किया गया है उसे एम० जुलीन ने अटाली तथा एम डी सेन्ट मार्टिन ने थल अथवा थार के मरू क्षेत्र के अनुरूप स्वीकार किया है। तदनुसार की-चा नाम को खू-टा पढ़ा जाना चाहिये। अब खेडा गुजरात के एक विशाल गाँव का वास्तविक संस्कृत स्वरूप है। यह नगर अहमदाबाद तथा खम्बोय के मध्य अवस्थित है। अत: मैं तीर्थ यात्री के की-चा को खेडा के अनुरूप स्वीकार करूँगा। यह सत्य है कि ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी केवल ३०० ली है परन्तु तीर्थ-यात्री की यात्राओं के इस भाग में दिकांश एवम् दूरियों की इतनी त्रुटियाँ है कि मुझे इस दूरी को १३०० ली अथवा २१७ मील पढ़ने का प्रस्ताव करने में संकोच नहीं होता है। यह अनुमान कैरा तथा धार की मध्यवर्ती दूरी के अधिक समीपता रखता है। जब हम इस बात का स्मरण करते हैं कि मालवा राज्य पूर्व की ओर २५ मीलों के भीतर ही उज्जैन की स्वतन्त्र सीमाओं से घिरा हुआ था तो ऐसी दशा में इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि धार से ५० मील के भीतर कोई अन्य राज्य रहा होगा अन्यथा मालवा की सीमायें उज्जैन तथा खेडा के मध्य लगभग ५० मील की चौड़ाई तक सीमित रहतीं। परन्तु मेरी प्रस्तावित शुद्धि को स्वीकार करने से उपर्युक्त कठिनाई दूर हो सकती है तथा खेड़ा मालवा राज्य का दूरस्थ पश्चिमी खण्ड निर्धारित

हो जायेगा । ह्वेनसांग ने इसकी परिधि को २००० ली अथवा ५०० मील स्वीकार किया है । यह आकार खेड़ा जिले की सम्भावित सीमाओं से ठीक-ठीक मिलता है जब कि इसकी सीमाओं को पश्चिम में साबरमती के तट से लेकर उत्तर पूर्व में मही नदी के विशाल मोड़ तक तथा दक्षिण मे बड़ोदा तक विस्तृत बताया जा सकता है । आकार में यह प्रायः वर्गाकार है ।

आनन्दपुर

ह्वेनसांग ने ओ-नान-तो-पू-लो अथवा आनन्दपुर को वल्लभी के उत्तर पश्चिम मे ७०० ली अथवा ११७ मील की दूरी पर बताया है । एम० विवीन जैनियों के कल्प सूत्र के आधार पर इसे बरनगर के अनुरूप बताया है परन्तु इसकी दिशा उत्तर पूर्व तथा दूरी १५० मील अथवा ६०० ली है । संस्कृत के वदपुर अथवा बरपुर के रूप में बरनगर के वर्णन किया जा चुका है । जिले का विस्तार २००० ली अथवा ३३३ मील था तथा यह मालवा का आश्रित राज्य था । इसकी सीमाओ को पश्चिम में बनास नदी के मुहाने से पूर्व में साबरमती नदी मध्यवर्ती त्रिभुजाकार क्षेत्र तक सीमित करने से उपर्युक्त अनुमानित आकार को प्राप्त किया जा सकता है ।

वडारी, अथवा इडर

मालवा छोड़ने के पश्चात ह्वेनसांग ने सर्व प्रथम दक्षिण पश्चिम मे "दो सागरो के संगम स्थान" तक यात्रा की । तत्पश्चात उत्तर पश्चिम की ओर मुड़ कर ओ-चा-ली अथवा वडारी पहुँचा । यात्रा की समस्त दूरी २४०० से २५०० ली अथवा ४०० से ४१७ मील थी । मेरे विचार मे दो सागरो के संगम स्थान से उसका आशय खाम्बे की खाड़ी में दक्षिणी एवं पश्चिमी सागरो के संगम से है । ताप्ती नदी के मुहाने के समीप सूरत अथवा प्राचीन सुरपारक नगर को खाड़ी का प्रवेश द्वार समझा जा सकता है और चूँकि यह धार के दक्षिण पश्चिम में अवस्थित है अतः सम्भवतः यह वही स्थान है जहाँ ह्वेनसांग सर्व प्रथम गया था । इसकी दूरी केवल २०० मील है । सूरत से इडर समान दूरी पर है परन्तु इसकी दिशा उत्तर पूर्व है । अतः मैं उत्तर पश्चिम के स्थान पर उत्तर पूर्व पढ़ूंगा और इस प्रकार इडर ह्वेनसांग, के ओ-चा-ली अथवा वडारी की स्थिति से मिल जायेगा । मैं इडर के सस्कृत नाम से अनभिज्ञ हूँ परन्तु यह अत्यधिक सम्भावित प्रतीत होता है कि बसन्त नगर के लेख मे उल्लिखित नगर वडारी ही है । ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में वडारी वदपुर अथवा बर नगर के पड़ोस में एक छोटी रियासत की राजधानी थी जो इडर से ३० मील पश्चिम तथा साबरमती नदी के विपरीत तट पर था । राजपरिवार राजा भव गुप्त के पूर्वज होने का दावा करता है "जो एक महान योद्धा एवम् अपने वंश का रत्न था ।" मेरा विश्वास है कि यह भव अथवा बब उदयपुर के शिशोदिया के भव बप्पा के समान है

जिनके पूर्वज अनेक शताब्दियों से इडर के राजा थे। चूंकि बप्पा आठवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था अतः उसके पूर्वज इडेर के राजा का समय ह्वेनसांग की यात्रा के समय से मिलता है। इन कारणों से मेरा विचार है कि इडर को लेख के वडारी तथा साथ ही साथ चीनी तीर्थ यात्री के ओटाली अथवा वडारी के अनुरूप स्वीकार करने के पर्याप्त कारण हैं।

प्रान्त की परिधि का अनुमान ६००० ली अथवा १००० मील लगाया गया है। इस विस्तृत आकार से पता चलता है कि उत्तर में वैराट, पश्चिम मे गरजर, पूर्व मे उज्जैन तथा दक्षिण मे मालवा का सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र अटाली अथवा वडारी के अन्तर्गत रहा होगा। अतः इसकी सीमायें उत्तर मे अजमेर तथा रणथम्भौर, पूर्व तथा पश्चिम मे लोनी तथा चम्बल नदियां तथा दक्षिण मे कच्छ की खाड़ी मे बनास नदी से मन्दसोर के समीप चम्बल तक मालवा की सीमायें रही होंगी। इन सीमाओ की परिधि मानचित्र पर लगभग ८०० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार १००० मील है।

निचले सिन्ध के पूर्वी देशो के प्लिनी द्वारा दिये गये वर्णन मे मुझे निम्न गद्यांश मिलता है जो इडर तथा आस-पास के क्षेत्र से सम्बन्धित प्रतीत होता है। "तत्पश्चात् नरेयाई जाति थी जो भारत के उच्चतम पर्वत कपितालिया से घिरे हुए थे जिसके पार स्वर्ण एवम् रजत निकाला जाता था। उनके बाद ओराटुराय अथवा (ओराटोई) थे जिनके राजा के पास केवल दस हाथी थे परन्तु पद सैनिकों की एक विशाल सेना थी। (तथा) वरेटाटोई (अथवा सुराटाटोई) थे जिनके राजा के पास कोई हाथी नहीं था परन्तु अश्व रोहियो एवम् पद सैनिको की एक सुदृढ सेना थी। (तत्पश्चात्) ओडम्बो-राई आदि थे।" इससे पूर्व हम अन्तिम जाति को कच्छ निवासियो के, तथा कपिटा-लिया के उन्नत पर्वत को पवित्र अरबुदा अथवा आबू पर्वत के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं जो समुद्र के स्तर से ५००० फुट ऊँचा था। अतः नरेयाई निश्चित ही सरई अर्थात "नरकट के प्रदेश" की जनता का नाम रहा होगा क्योकि नार तथा सार नरकट के पर्यायवाची शब्द है। सरई प्रदेश वर्तमान समय मे भी नरकट के तीरो के लिये प्रसिद्ध है।

ओराटुरोई को मै वडपुर अथवा बर पुर के निवासियो के अनुरूप स्वीकार करूँगा जो बरनगर के निवासियो के समान हैं। यूनानी नाम मे थोड़े परिवर्तन से मूल यूनानी नाम ओराटुरा को ओरापुरा पढ़ा जा सकता है जो बरपुर अथवा वडपुर के समान है। प्लिनी की सूची मे अन्तिम नाम वरेटाटाई है जिसे मैं विटारेटाई पढ़ूँगा। कुछ प्रतिलिपियों मे सौराटराटोई को विभिन्न ढङ्ग से लिखा गया है और इन सभी स्व-रूपो से उपर्युक्त शुद्धि की पुष्टि होती है। फिर भी यह प्रायः सम्भव है कि सौराटरा-टोई नाम सौराष्ट्र निवासियो के लिये लिखा गया हो। प्रसिद्ध वराह मिहिर ने दक्षिण

पश्चिमी भारत की जातियों में सौराष्ट्र एवम् बाडर निवासियों का एक साथ उल्लेख किया है। यह बाडर निवासी निश्चित ही बाडरी अथवा वाडरी के निवासी थे।

मैं समझता हूँ कि वडारी उस जिले का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें वडरी अथवा बेर-वृक्ष अधिक संख्या मे मिलते थे। यह वृक्ष दक्षिणी राजपूताना में सामान्यतः पाये जाते है इन्ही कारणो से मैं प्राचीन सौवीरा को इसके पड़ोस मे ढूँढना चाहता हूँ जिसे मैं सोफीर अथवा ओफीर के प्रसिद्ध नाम का वास्तविक स्वरूप समझता हूँ क्योंकि सौवीर वडारी अथवा बेर वृक्ष एवम् इसके इस मीठे फल का दूसरा नाम है। अब, सोफीर वर्तमान समय मे भारत का नाम है परन्तु यह नाम मूल रूप से भारतीय तट के उस भाग से सम्बन्धित रहा होगा जहाँ पश्चिमी देशो के व्यापारी आया करते थे। मेरा विचार है कि इसमे सन्देह नही हो सकता कि यह स्थान खम्बे के खाड़ी मे था जो अति प्राचीन काल से भारत एवम् पश्चिमी देशो के मध्य व्यापार का मुख्य केन्द्र था। यूनानी इतिहास के सम्पूर्ण काल मे यह व्यापार नर्बदा नदी के मुहाने पर बरी गाजा अथवा भड़ौच के प्रसिद्ध नगर के एकाधिकार में था। चौथी शताब्दी मे इसका कुछ भाग गुजरात पठार की नवीन राजधानी बलभी ने प्राप्त कर लिया था। मध्य युग में यह व्यापार खाड़ी के सिरे पर खाम्बे के स्थान पर होता था और आधुनिक समय में ताप्ती के मुहाने पर सूरत नगर इस व्यापार का केन्द्र है।

यदि मेरा यह अनुमान सही है कि बेर वृक्षों की अधिकता से सौवीर नाम प्राप्त किया गया था तो यह सम्भव है कि खाम्बे की खाड़ी के सिरे पर बडारी अथवा इडर का एक अन्य विशिष्ट नाम था। रुद्रधाम के प्राचीन लेख के अनुसार हमें इसे इसी स्थान पर देखना चाहिये क्योंकि यहाँ सिन्धु सौबीरा को सराष्ट्र तथा भारू कच्छ के बाद तथा कुकुर, अपरान्ता तथा निशाद से पहले दिखाया गया है। इस व्यवस्था के अनुसार सौवीरा सौराष्ट्र तथा भड़ौच के उत्तर मे तथा निशाद के ठीक दक्षिण मे पर्वत के पड़ोस मे अर्थात उसी स्थान पर होना चाहिये जिसकी ओर मैंने संकेत किया है। विष्णु पुराण मे भी सौवीरा को इसी स्थान पर दिखाया गया है। "सदूर पश्चिम में पारी पात्र पर्वतों के साथ-साथ निवास करने वाले सौराष्ट्र वासी, सूर, अभीर, अरबुद, करुश तथा मालव थे तथा साकल, मद्रास आदि स्थानों के निवासी सौवीर सैन्धव हूर्ण एवम् मालव थे।" इस व्याख्या में हमें वडारी अथवा इडर के पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवम् दक्षिण सम्पूर्ण क्षेत्र के लगभग सभी प्रख्यात स्थानो का उल्लेख मिलता है। परन्तु वडारी का अथवा खेड़ा, खाम्बे अथवा अनलबाड़ आदि किसी नाम का उल्लेख नहीं किया गया है जिससे मेरा अनुमान है कि यह सभी स्थान सौवर के अधीन रहे होंगे। अतः वडारी अथवा सौवीरा दक्षिणी राजपूताना के समान था।

बाईबिल के यूनानी भाषा के अनुवाद में यहूदो ओफीर को सदैव सोफीर लिखा गया है। सम्भवतः इसे सोफीर के मिस्री नाम के प्रति आदर भाव से ग्रहण किया

गया था। इस नाम का सर्व प्रथम उल्लेख जोब की पुस्तक मे किया गया था जहाँ "ओफीर के स्वर्ण" को सर्व श्रेष्ठ श्रेणी का स्वर्ण कहा गया है। कुछ समय पश्चात टायर के राजा हुरम के जहाज "सोलोमन के सेवकों सहित ओफीर गये और वहाँ से ४५० प्रामाणिक स्वर्ण लेकर सोलोमन राजा के पास गये।" तत्पश्चात इजिहा ने ओफीर के स्वर्ण का उल्लेख किया है जिसका कथन है कि "मैं मानव को स्वर्ण से और यहाँ तक कि ओफीर के स्वर्णिम धातु से भी मूल्यवान बनाऊँगा।" यहाँ धातु का अर्थ जीभ अथवा ईंट लगाया गया है और मेरा अनुमान है कि अचान द्वारा छिपाई गई ५० शेकल वजन की स्वर्णिम धातु सम्भवतः ओफीर की एक ईंट थी।

अब इस बात को सिद्ध करना शेष है कि वडारी अथवा इडर का जिला जिसे मैं ओफीर का सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि प्रस्तावित कर चुका हूँ प्राचीन समय से वर्तमान समय तक संस्कार के स्वर्ण उत्पादक देशों में सम्मिलित रहा है। यद्यपि इस विषय पर प्रमाण कम है परन्तु यह स्पष्ट है। प्राचीन साक्षियों में मैं केवल प्लिनी की साक्षी का उल्लेख कर सकता हूँ जिसने आबू पर्वत के पार रहने वालो को "स्वर्ण एव रजत की विस्तृत खानो" का स्वामी कहा है। वर्तमान समय मे अरावली की श्रेणी ही भारत का एक मात्र स्थान है जहाँ कुछ मात्रा में रजत प्राप्त किया जाता है जबकि इसकी नदियो में आज भी स्वर्ण प्राप्त किया जा सकता है जिसके श्रेष्ठतम नमूने भारतीय अजायब घर में देखे जा सकते हैं।

परन्तु यदि खाम्बे की खाडी भारत एवम् पश्चिमी देशो के मध्य व्यापार का महान केन्द्र था तो यह आवश्यक नही है कि स्वर्ण जिसके कारण यह केन्द्र प्रसिद्ध था, इसी जिले की उपज हो। वर्तमान समय में इसी पश्चिमी तट पर बम्बई से दो भीतरी जिलों की उपज अर्थात मालवा की अफीम तथा बरार की कपास विदेशों मे भेजी जाती है। जहाँ कही भी व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं स्वभाविक है कि पश्चिमी व्यापारियो के समान के बदले भारतीय स्वर्ण वहाँ एकत्रित हो गया हो।

पूर्वी भारत

सातवीं शताब्दी में भारत के पूर्वी खण्ड में आसाम, गङ्गा के डेल्टा सहित बङ्गाल, सम्भलपुर, उड़ीसा तथा गंजाम सम्मिलित थे। ह्वेनसांग ने इसे प्रान्त अथवा खण्ड को ६ राज्यों में विभाजित किया है जिन्हें उसने काम रूप, समतत, ताम्रलिप्ति, किरण, सुवर्ण ओड़ तथा गञाम कहा है और मैं इन्हीं नामो के अन्तगर्त इन राज्यो का उल्लेख करूँगा।

काम रूप

मध्य भारत मे पौण्ड्र बर्धन अथवा पबना से चीनी तीर्थ यात्री ६०० ली अथवा १५० मील पूर्व की ओर गया तथा एक महान नदी को पार कर किया-मो-ल्यू-पो अथवा कामरूप मे प्रवेश किया जो आसाम का सस्कृत नाम है। इसकी सीमाओ को परिधि को १०००० ली अथवा १६६७ मील आंका गया है। इस विस्तृत आकार से पता चलता है कि ब्रह्मपुत्र नदी की सम्पूर्ण घाटी अथवा कूंचविहार अथवा भूटान सहित आधुनिक आसाम इसमे सम्मिलित रहा होगा। प्राचीन काल मे ब्राह्मपुत्र की घाटी तीन क्षेत्रो में विभाजित थी जिन्हे सदिया, आसाम एवं काम रूप कहा जा सकता है। चूंकि अन्तिम राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली एवम् शेष भारत के समीप थी अतः सम्पूर्ण घाटी को सामान्यतः इसी नाम से पुकारा जाता था। कूंचविहार कामरूप का सदूर पश्चिमी खण्ड था और चूंकि यह देशा का सर्वाधिक समृद्ध शाली क्षेत्र था अतः यह राजाओं का निवास स्थान बन गया जिनको राजधानी कामतीपुर के नाम से सम्पूर्ण प्रान्त को पुकारा जाने लगा। परन्तु कहा जाता है कि काम रूप की प्राचीन राजधानी गौहाटी थी जो ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर अवस्थित थी। अब, कूंचविहार की राजधानी कामतीपुर पबना से ठीक १५० मील अथवा ६०० ली की दूरी पर थी यद्यपि इसकी दिशा पूर्व की ओर थी जबकि गौहाटी पबना से उत्तर-पूर्वी दिशा मे इसमे ठीक दुगनी दूरी अर्थात १६०० ली अथवा ३१७ मील की दूरी पर थी। चूंकि प्रथम स्थान की स्थिति तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी से ठीक-ठीक मिलती है अतः यह प्रायः निश्चित है कि सातवीं शताब्दी मे यह कामरूप की राजधानी थी। इस तथ्य से इस बात की पुष्टि प्रतीत होती है कि यहाँ के निवासियों की भाषा एवम् मध्य भारत के निवासियों की भाषा मे बहुत कम भिन्नता थी। अतः यह असामी भाषा नही थी और परिणाम स्वरूप मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग जिस राजधानी मे गया था वह ब्रह्मपुत्र की घाटी में गौहाटी न होकर भारत के कूंचविहार जिले में

कामतीपुर थी। इसी प्रकार तीर्थ यात्री ने जिस बड़ी नदी को पार किया था वह ब्रह्मपुत्र न होकर तिस्ता नदी थी।

पूर्व में कामरूप की सीमायें चीन के सू प्रान्त के दक्षिण-पश्चिमी बर्बरों की सीमाओं से मिलती थी। दक्षिण पूर्व के वनो में जङ्गली हाथी प्रचुर सख्या मे थे और वर्तमान समय में भी यहाँ यही दशा है। यहाँ का राजा भास्कर वर्मा नामक एक ब्राह्मण था जो भगवान नारायण अथवा विष्णु का वंशज होने का दावा करता था एवम् जिसके परिवार ने पिछली १००० पीढियो से यहाँ राज्य किया था। वह एक कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बी तथा ६४३ ईसवी में पाटलीपुत्र से कन्नौज की धार्मिक यात्रा में उसने हर्षवर्धन का साथ दिया था।

समतत

समतत अथवा सान-मो-ता-चा की राजधानी को कामरूप के दक्षिण में १२०० से १३०० ली अथवा २०० से २१७ मील तथा ताम्रलिप्ति अथवा तमलूक के पूर्व में ९०० ली अथवा १५० मील की दूरी पर बताया है। प्रथम स्थिति जसर अथवा जेस्सोर से प्रायः ठीक-ठीक मिलती है और सम्भवतः इस स्थान की ओर ही संकेत किया गया है जबकि तमलूक से दिर्काश एवम् दूरी हमे सुन्दरी वन अथवा सुन्दर बन के निर्जन प्रदेश की ओर ले जायेगी जो हुरनघाट नदी एवम् बाकर गञ्ज के मध्य है। परन्तु ऐसे प्रदेश में जहाँ निचले बङ्गाल की भाँति मार्ग में बारम्बार नदियाँ पार करनी पड़ती है, एक स्थान से दूसरे स्थान का मार्ग दूरी मानचित्र पर सीधे माप की दूरी से ⅙ भाग अधिक होगी। इस प्रकार जैसोर जो थल मार्ग द्वारा ढाका से १०३ मील तथा कलकत्ता से ७७ मील दूर है सीधे माप के अनुसार इन स्थानों से क्रमशः ८२ एवम् ६२ मील दूर है। अतः ह्वेनसांग द्वारा १५० मील की स्थल मार्ग की दूरी सीधे माप के अनुसार १२० मील से अधिक नही होगी जो तमलूक तथा जैसोर के मध्य वास्तविक दूरी से केवल २० मील अधिक है। परन्तु चूंकि पूर्व की ओर से स्थल मार्ग द्वारा तमलूक तक नहीं पहुँचा जा सकता अतः तीर्थ यात्री ने कम से कम आधा मार्ग जल मार्ग से पूरा किया होगा और स्थल एवम् जल मार्गों के संयुक्त मार्ग की अनुमानित दूरी अर्थात १५० मील को उचित रूप से स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि इसका वास्तविक माप करना कठिन था। जसर अथवा "पुल" नाम—जिसने प्राचीन मुरली का स्थान ले लिया है से प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान होता है। जहाँ स्थान-स्थान पर गहरे नदी मार्गों को पार करना पड़ता है और वर्तमान सडकों एवम् पुलों के निर्माण से पूर्व आवागमन का मुख्य साधन नाव था। मुरली अथवा जसर सम्भवतः टालमी का गङ्गा रेगिया है।

इलाहाबाद के स्थान पर समुद्र गुप्त के लेख में समतत देश का उल्लेख किया

गया है जहाँ इसे कामरूप तथा नेपाल के साथ दिखाया गया है। वराह मिहर-जो छठी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ था की भौगोलिक सूची मे भी इसका उल्लेख किया गया है। प्रोफेसर लासेन के अनुसार इस नाम से ह्वेनसाग द्वारा दिया गया वर्णन अर्थात समुद्र तट पर निचली एवम् नम भूमि से मिलता है। यहाँ के निवासी कद में छोटे एवम् सावले रङ्ग के होते थे जैसे कि वर्तमान निचले बङ्गाल के निवासी हुआ करते हैं। इन सभी समान तथ्यो से यह निश्चित है कि समतत गङ्गा का डेल्टा रहा होगा और चूँकि देश की परिधि को ३००० ली अथवा ५०० मील बताया गया है अतः इसमें वर्तमान समय का सम्पूर्ण डेल्टा अथवा भागीरथी तथा गङ्गा को मुख्य नदियो का मध्यवर्ती त्रिभुजाकार क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा।

ह्वेनसाग ने समतत के अनेक पूर्वी देशो का उल्लेख किया है परन्तु चूँकि उसने केवल एक सामान्य दिशा का उल्लेख किया है विभिन्न स्थानो की मध्यवर्ती दूरी का नही अतः इन नामों की पहचान करना सरल कार्य नही है। प्रथम स्थान शी-ली-चा-ता-लो है जो समतत के उत्तर पूर्व में महान सागर के समीप एक घाटी मे अवस्थित था। यह नाम सम्भवत: श्री क्षत्र अथवा श्री क्षेत्र के लिये प्रयोग मे लाया गया है जिसे एम० विवीन डी सेन्ट मर्टिन ने गङ्गा के डेल्टा के उत्तर-पूर्व मे साई हट अथवा सिल्हट के अनुरूप स्वीकार किया है। यह नगर मेगा नदी की घाटी मे अवस्थित है और यद्यपि यह समुद्र से अधिक दूरी पर है फिर भी इस बात की सम्भावना अधिक है कि तीर्थ यात्री ने इसी स्थान की ओर सकेत किया था। द्वितीय प्रदेश किया-मो-लाँग किया था जो प्रथम स्थान से पूर्व की ओर एक बडी खाडी के समीप था। मेरे विचार मे इस स्थान को मेगा नदी के पूर्व तथा बङ्गाल की खाडी के सिरे पर टिपरा के कोमिल्ला जिले के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। तृतीय देश तो लो-पो-ती था जो अंतिम प्रदेश के पूर्व की ओर था। एम जुलीन ने इस नाम को द्वारवती कहा है परन्तु उन्होंने इसे पहचाने का प्रयत्न नही किया। फिर भी मैं प्रस्ताव करूँगा कि यह तैलगवती अर्थात तैलग अथवा पेगु नामक जाति का प्रदेश हो सकता है। वर्मी जिलो मे नाम के अन्त में वती आता है जैसे हंसवती, ददयवत, दोनयवती, आदि। इससे पूर्व ई० शांग-ना-पू-लो था और इस स्थान से भी आगे पूर्व की ओर मो-हो-चेन-पो था। तदोपरान्त दक्षिण पश्चिम की ओर येन-मो-न-चू राज्य था। इनमे प्रथम नाम को मैं शान जाति का देश अर्थात लाओस समझता हूँ। द्वितीय नाम सम्भवत: कोचीन चीन अथवा अनाम है और तृतीय नाम जिसे एम० जुलीन ने यमन द्वीप कहा है—निश्चित ही यव द्वीप अथवा जावा है।

ताम्रलिप्ति

तान-मो-ली-ती अथवा ताम्रलिपि जिले की परिधि को १४०० अथवा १५००

ली अथवा २५० मील बताया गया है। यह समुद्र तट पर अवस्थित था तथा देश की भूमि निचली एवम् नम थी। इसकी राजधानी एक खाड़ी में थी तथा स्थल एवम् जल मार्ग द्वारा यहाँ पहुँचा जा सकता था। ताम्रलिप्ति तमलुक का संस्कृत नाम है जो हुगली एवम् रूप नारायण नदियों के संगम स्थान से १२ मील ऊपर रूपनारायण की खाड़ी में अवस्थित था। इस जिले में सम्भवतः हुगली नदी का पश्चिमी उपजाऊ परन्तु छोटा क्षेत्र सम्मिलित था जो उत्तर में वर्द्धवान तथा कलना से लेकर दक्षिण में कोसई नदी के तट तक फैला हुआ था। यूनानी तमालिटीज ताम्रलिप्ति के पाली स्वरूप तामलिट्टी से लिया गया था।

किरण सुवर्ण

ह्वेनसांग ने कि-लो-ना-सू-फा-ला-ना अथवा किरण सुवर्ण को ताम्रलिप्ति के उत्तर पश्चिम में ७०० ली अथवा ११७ मील तथा ओड़ अथवा उड़ीसा के उत्तर पूर्व में समान दूरी पर बताया है। चूंकि सातवीं शताब्दी में उड़ीसा की राजधानी वैतरनी नदी पर जाजीपुर थी अतः किरण सुवर्ण के मुख्य नगर को सुवर्ण रेखा नदी के जल मार्ग के साथ-साथ सिंह भूम तथा बड़ भूम के जिलो में किसी स्थान पर देखना चाहिये परन्तु भारत के इस जंगली क्षेत्र के सम्बन्ध में हमारी जानकारी इतनी कम है कि मैं देश की प्राचीन राजधानी के सम्भावित प्रतिनिधि के रूप में किसी भी विशेष स्थान का प्रस्ताव करने में असमर्थ हूँ। बड़ा बाजार बड़ भूम का मुख्य नगर है और चूँकि इसकी स्थिति ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थिति से मिलती है अतः इसे सातवीं शताब्दी में राजधानी का सम्भावित स्थान स्वीकार किया जा सकता है। इसकी सीमाओं की परिधि ४४०० से ४५०० ली अथवा ७३३ से ७५० मील बताई जा सकती है। अतः इसमें पूर्व से पश्चिम मेदनीपुर तथा सिरगुजा तथा उत्तर से दक्षिण दमदा तथा वैतरनी नदियों के मुहाने के मध्यवर्ती पर्वतीय राज्य सम्मिलित रहे होंगे।

अब, देश के इस जंगली भाग में अनेक जंगली जातियाँ बसी हुई हैं जिन्हें कोल्हान अथवा कोल के सामूहिक नाम से पुकारा जाता है। परन्तु चूँकि इस जाति के लोगों में दो विभिन्न भाषाओं की विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह लोग दो विभिन्न जातियों के लोग थे जिनमें मुण्डा एवं उरौन जातियों को विशिष्ट प्रतिनिधि समझा जा सकता है। कर्नल डाल्टन के अनुसार "देश में सर्व प्रथम मुण्डा जाति निवास करती थी और उनके आगमन से काफी समयोपरान्त उरौन जाति का प्रादुर्भाव हुआ" तथा "यद्यपि अब इन दोनों जातियों को देश के गाँवों में एक ही खेतों में काम करते, समान व्यौहारों को मनाते एवम् हुए भी पूर्णतयः भिन्न-भिन्न जाति कहा जा सकता है और इनमें अपनी जाति से विच्छेद किये बिना अर्न्तजातीय विवाह नहीं हो सकते।" भाषा की भिन्नता से जाति भिन्नता के तथ्य की पुष्टि होती है

जिनसे पता चलता है कि उरौन दक्षिण की तामिल जाति से सम्बन्धित थे जबकि उत्तर की पर्वतीय जातियो से सम्बन्धित थी जो हिमालय पर्वत से विन्ध्याचल पर्वत तक एवम् सिन्ध नदी से बङ्गाल की खाड़ी तक फैली हुई थी।

कर्नल डाल्टन ने मुण्डरों से सम्बन्धित विभिन्न जातियों का उल्लेख किया है जैसे एलिचपुर की कुआर, सिरगुजा की कोरेवा, छोटा नागपुर की खेरिया, सिंह भूमि की होर, मानभूमि तथा ढाल भूमि की भूमिज मानभूमि, सिंहभूमि, कटक, हजारी बाग तथा भागलपुर की पहाडियो की सन्थाल जाति। इनके साथ उसने कटक के सहायक जिलों मे केउन्झर आदि की जौंगा अथवा पुट्टन जाति को जोड़ दिया है जो "मुण्डा परिवार की अन्य सभी जातियों से कटी हुई है और उन्हें स्वय भी अपने सम्बन्धों का ज्ञान नही है परन्तु उनकी भाषा से पता चलता है कि वह एक हो जाति के लोग हैं तथा उनकी निकटन शाखा सैरिया शाखा है।" इस जाति की पश्चिमी शाखायें मालवा तथा खान्देश की भील जाति तथा गुजरात की कोली जाति हैं। इन जातियों के दक्षिण मे इसी जाति को एक अन्य शाखा है सूर अथवा सुआर कहा जा सकता है। वह पूर्वी घाटो के दूरस्थ उत्तरो द्वार पर अवस्थित है।

कर्नल डाल्टन के अनुसार सिंहभूमि की हो अथवा होर जाति "मुण्डा जाति की मूल शाखा" है। उन्होने इसे सम्पूर्ण जाति मे सर्वाधिक ठोस, शुद्ध, शक्तिशाली एवम् रुचिपूर्ण शाखा एवम् इनकी आकृति को निश्चित रूप से श्रेष्ठ कहा है। अपनी आकृति से हो जाति के लोग उन लोगो की भाँति दिखाई देते हैं जिन्होने अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखा है और इस कारण उन्हे गर्व भी है। उनमें अनेक व्यक्तियो की अपनी आकृति के कारण आर्यों से तुलना की जा सकती है जिनकी ऊँची नासिका, विशाल, सुगठित मुख, सुन्दर दाँत एवम् मुखड़े को हिन्दू जातियो के समान बताया जा सकता है। जब मुण्ड जाति के लोगो की आकृति आर्यों से भिन्न दिखाई देती है तो वह नीग्रो जाति के स्थान पर मङ्गोल जाति से मिलती-जुलती प्रतीत होती है। इस जाति के लोग सामान्य कद के एवम् रङ्ग में भूरे एवम् भूरे पीले होते हैं।"

मुण्डा भाषा की विभिन्न प्रचलित भाषाओ में हो, होर, होरो, अथवा होको शब्द "नर" के लिये प्रयोग मे लाये जाते हैं। सिंहभूमि के निवासियो द्वारा इस नाम के प्रयोग से कर्नल डाल्टन के विश्वास की पुष्टि होती है कि वह जाति मुण्डा जाति की सर्वाधिक शक्तिशाली शाखा थी। परन्तु वह अपने आपको लड़ाका अथवा "योद्धा" भी कहा करते हैं जिनसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह मुण्डा जाति की मुख्य शाखा थे।

कर्नल डाल्टन ने मुण्डा नाम के किसी अर्थ का उल्लेख नहीं किया है परन्तु मैंने देखा देखा है कि सिंह भूमि एवं मुण्डा जाति की अन्य शाखाओं में गाँव के मुखिया को

मुण्डा अथवा मोटो कहा जाता है अतः मेरा निष्कर्ष है कि मुण्डा अथवा मोटो शाखा किसी समय इस जाति की शासक जाति रही होगी। विष्णु पुराण मे मुण्डा को उन ग्यारह राजकुमारो के परिवार का विशिष्ट नाम बताया गया है जिन्होने तुशार अथवा तोखरी जाति के पश्चात राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु वायु पुराण में इस नाम का उल्लेख नहीं मिलता है और हमे मरुण्ड का नाम मिलता है जो सम्भवतः द्वितीय एवम् तृतीय शताब्दियों के दो शिला लेखों में प्राप्त अन्य नाम मुरुण्ड का परिवर्तित स्वरूप है। टालमी ने गङ्गा के उत्तर के निवासियो को मरुण्डाई नाम दिया है परन्तु दक्षिण के निवासियो को उसने मण्डली कहा हैं जो छोटा नागपुर के मुण्डा हो सकते हैं क्योंकि उनकी भाषा एवम् देश को मुण्डला कहा गया है। यह कवल एक प्रस्ताव है, परन्तु मण्डाली की स्थिति से पता चलता है कि वह प्लिनी के मोनेडीज लोग थे जिन्होंने सुआरी जाति के साथ-साथ पालीबोथरा के दक्षिणी प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। चूंकि यह मुण्डा एवम् सुआर जाति के देश की वास्तविक स्थिति यही है अतः मेरे विचार में यह प्रायः निश्चित है कि वह प्लिनी की मोनेडोज एवम् सुआरी जातियाँ थी।

एक अन्य स्थान पर प्लिनी ने मण्डेई तथा मल्लो जाति को कालिगाय तथा गङ्गा के मध्यवर्ती क्षेत्र का निवासी कहा कहा है। मल्ली जाति के प्रदेश मे मल्लुस नामक एक पर्वत था जो मोनेडीज तथा सुआरी का प्रसिद्ध मालेयस पर्वत प्रतीत होता है। मेरे विचार मे इस बात की अधिक सम्भावना है कि दोनो नाम भागलपुर के दक्षिण में प्रसिद्ध मण्डर पर्वत के लिये प्रयुक्त किये गये थे जो सागर मन्थन के समय देवताओं एवम् राक्षसों द्वारा प्रयोग मे लाये जाने के कारण प्रसिद्ध है। मण्डेई को मैं महानदी नदी के निवासियों के अनुरूप स्वीकार करूंगा जिसे प्लिनी ने मनदा कहा है। अतः मल्ली अथवा मलेई टालमी की मण्डालाय जाति होगी जो पालीबोथरा के दक्षिण में गङ्गा के दाहिने तट पर बसी हुई थी, अथवा वह राज महल पहाड़ियो के निवासी हो सकते हैं जिन्हें मलेर कहा गया है जिसे कन्नड़ माले तथा तामिल भाषा के मलेई अर्थात 'पर्वत' से प्राप्त किया गया है। अतः यह हिन्दू पहाड़ी अथवा पर्वतिया अर्थात "पर्वतीय मनुष्य" के समान होगा।

प्लिनी की सुआरी जाति टालमी की सोबराय जाति है और नोवों को ही लकड़हारों की जङ्गली जाति सवरा अथवा सुआर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो जङ्गलों में घूमा करते थे। कहा जाता है कि सवरो की सीमायें खोण्ड जाति के सीमान्त से प्रारम्भ होती थी और दक्षिण मे पेन्नार नदी तक विस्तृत थीं। परन्तु पूर्वी घाट की सवार थयवा सुआर जाति दूर-दूर तक बसी हुई जाति की केवल एक

शाखा थी जबकि मुख्य जाति ग्वालियर तथा नरवाड के दक्षिण पश्चिम में तथा दक्षिणी राजपूताना मे अधिक संख्या में मिलती है। ग्वालियर सीमा की सवारी अथवा सहारी जाति नरवाड तथा गुणा के पश्चिम की ओर कोटा सीमा के बनों मे बसी हुई है। इस जाति के लोग चम्बल नदी एवम् इसकी शाखाओं के जल मार्ग के साथ-साथ बसे हुए हैं जहाँ यह टाड द्वारा वर्णित राजपूताना की सुरिया जाति से मिलते है। यह नाम टालमी के सोराय जाति के नाम में सुरक्षित है जिन्हें कोण्डाली तथा फिलीटोय अथवा गोण्ड तथा भीलों के दक्षिण मे बताया गया है। अतः वह मध्य भारत के सुआर अथवा सवरा रहे होंगे जो वैन गङ्गा के उदगम स्थान के आस-पास जङ्गली एवम् पर्वतीय प्रदेश मे बसे हुए थे तथा जिन्हें तिस्ता नदी की घाटी के साथ-साथ भी देखा जा सकता है। चूँकि किरन का अर्थ है "मिली-जुली जाति का मनुष्य" अथवा बर्बर मनुष्य, अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि किरण सुवर्ण सुवार अथवा सुआर जाति का मूल नाम रहा हो।

सातवी शताब्दी के प्रारम्भ मे इस देश का राजा शी-शाँग-किया अथवा ससांगक था जो बौद्ध धर्म के परम विरोधी के रूप मे प्रसिद्ध है। अङ्ग्रेजी अजायब घर के "पेयनी नाईट कलेक्शन" मे मैंने एक स्वर्ण मुद्रा देखी थी जिस पर इस राजा का पूरा नाम खुदा हुआ था। अन्य स्थानों पर भी इस मुद्रा के नमूने मिलते हैं।

औड़ा अथवा, उड़ीसा

ओ-चा अथवा ओडा राज्य आधुनिक ओड़ा अथवा उड़ीसा प्रान्त से ठीक-ठीक मिलता है। ह्वेनसांग की जीवनी' से ऐसा प्रतीत होता है कि ओड़ा तमलूक ताम्रलिप्ति के दक्षिण पश्चिम मे ७०० ली की दूरी पर था और चूँकि यह दिकांश एवम् दूरी जाजीपुर की स्थिति से मिलती है अतः मेरा विचार है कि ओड़ा जाने से पूर्व तीर्थ यात्री किरण सुवर्ण से तमलुक वापस आया होगा। तीर्थ यात्रा की यात्राओ के विवरण मे दिकाश एवम् दूरी को किरण सुवर्ण से लिया गया है जो सम्भवतः एक त्रुटि है क्योंकि इन्हे सामान्य रूप से राजधानी से सम्बन्धित किया गया था जो चाहे इसे जाजीपुर स्वीकार किया जाये अथवा कटक, किरण सुवर्ण के ठीक दक्षिण में थी।

प्रान्त की परिधि ७००० ली अथवा ११६७ मील थी और यह दक्षिण पूर्व मे समुद्र से घिरा हुआ था जहाँ ची-ली-ता-लो-चिग अथवा चरित्तपुर नामक एक प्रसिद्ध बन्दरगाह थी। यह सम्भवतः पुरी का वर्तमान नगर था जिसके समीप जगन्नाथ का प्रसिद्ध मन्दिर बना हुआ है। नगर के बाहर एक दूसरे के समीप ही पाँच स्तूप थे जिनके बुर्ज अधिक ऊँचे थे मेरा अनुमान है कि इनमें एक को जगन्नाथ को समर्पित किया गया है। इस देवता उसके भाई बलदेव तथा बहन सुभद्रा की तीन आकार रहित मूर्तियाँ बौद्ध धर्म की बुद्ध, धर्म एवम् संघा की लाक्षणिक प्रतिमा की साधारण

नकल है जिनमें द्वितीय मूर्ति को सदैव स्त्री रूप का प्रतिनिधि स्वीकार किया गया है। मथुरा एवम् बनारस के वार्षिक पञ्चाङ्ग मे इन्हे बुद्ध का ब्राह्मण अवतार स्वीकार किया जाता है जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जगन्नाथ की मूर्ति बौद्ध मूर्तियों पर आधरित है।

उडीसा की राजनीतिक सीमाओ को इसके सर्व शक्तिशाली शासक के समय मे उत्तर मे हुगली तथा दमूद नादियो तक तथा दक्षिण मे गोदावरी तक विस्तृत कहा जा सकता है। परन्तु ओड्रदेश अथवा ओड-देश का प्राचीन राज्य महानदी की घाटी तथा सुवर्ण रेखा नदी के निचले मार्ग तक सीमित था। इसमे कटक तथा सम्भलपुर के सम्पूर्ण जिले तथा मेदिनीपुर का कुछ भाग सम्मिलित था। यह राज्य पश्चिम मे गोण्डनावा तथा उत्तर मे जसपुर एवम् सिह भूमि के पर्वतीय राज्यो से, पूर्व मे समुद्र से तथा दक्षिण मे गजाम से घिरा हुआ था। ह्वेनसांग के समय मे भी इस राज्य सीमायें यही रही होंगी क्योकि इस भू-भाग की परिधि तीर्थ-यात्री के अनुमानित आकडो से मिलती है।

प्लिनी ने ओरेटीज को भारत के निवासी कहा है जिनके प्रदेश मे मालेयस पर्वत था परन्तु एक अन्य स्थान पर उसने इस पर्वत को मोनेडीज तथा सुआरी जाति की सीमाओ मे बताया है जबकि तीसरे स्थान पर उसने मल्लस पर्वत को मल्ली जाति की सीमाओ मे बताया है। चूंकि अन्तिम जाति कलिंगोई के उत्तर मे थी तथा मोनेडीज एवम् सुआरी जाति पालीबोथरा के दक्षिण मे थी अतः ओरेटीज को हमे महानदी एवम् इसकी सहायक नदियों के साथ-साथ किसी स्थान पर देखना चाहिये। अतः जैसा कि हम बता चुके हैं मोनेडीज एवम् सुआरी मुण्डा एवम् सुआर जातियाँ रही होंगी तथा ओरेटीज उड़ीसा के निवासी रहे होंगे। माली; द्रविड भाषा मे पर्वत का एक नाम है और चूंकि उरौन अथवा पश्चिमी उड़ीसा के लोग आज भी द्रविड भाषा का प्रयोग करते हैं अतः यह सम्भव है मल्लस, पर्वत का वास्तविक नाम नही था। हो सकता है कि यह तेलिंगाना का प्रसिद्ध श्री-पर्वत हो जिससे यहाँ के निवासियों को श्री-पर्वतीय कहा जाता था।

देश की प्राचीन राजधानी महानदी नदी पर कटक थी, परन्तु छठी शताब्दी के प्रारम्भ में राजा जजाति केशरी ने वैतरनी नदी पर जजातीपुर के स्थान पर नवीन राजधानी की स्थापना कराई थी जो जाजीपुर के संक्षिप्त नाम के अर्न्तगत आज भी जीवित है। इसी राजा ने भुवनेश्वर के कुछ विशाल मन्दिरों का निर्माण आरम्भ करवाया था परन्तु इस नाम नगर की स्थापना ललितेन्द्र केशरी ने करवाई थी। कहा जाता है कि यहाँ के निवासियों की भाषा एवम् बोली मध्य भारत के निवासियो की भाषा एवम् बोली से भिन्न थी और वर्तमान समय में भी इस भाषा एवम् बोली में अन्तर है।

नगर के दक्षिण पश्चिम में दो पहाड़ियाँ थी जिनमें एक पहाड़ी जिसे पुष्पगिरी कहा जाता था उस पर इसी नाम का एक मठ एवम् पत्थरों का बना एक स्तूप था जबकि दूसरी पहाड़ी पर केवल एक स्तूप था। यह पहाड़ी उत्तर पश्चिम की ओर थी। इन पहाड़ियों को मैं उदयगिरी एवम् खण्डगिरी की प्रसिद्ध पहाड़ियाँ समझता हूँ जिनमे अनेक बौद्ध कन्दरायें एवम् लेख पाये गये हैं। यह पहाड़ियाँ कटक के २० मील दक्षिण में तथा भुवनेश्वर के मन्दिरों के विशाल समूह से ५ मील पश्चिम में हैं। कहा जाता है कि स्तूपों का निर्माण राक्षसों ने करवाया था जिनसे मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग के समय में इन पहाड़ियों की विशाल कन्दराओं एवम् बौद्ध कालीन कार्यों की तिथि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नही थी।

गञ्जाम

ओड़ा की राजधानी से तीर्थयात्री दक्षिण पश्चिम दिशा में १२०० ली अथवा २०० मील दूर कोंग यू तो गया। इस नाम की पहचान नहीं हो सकी है परन्तु मेरा विचार है कि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने चिल्का झील के पड़ोस मे इसकी वास्तविक स्थिति की ओर संकेत किया है। यह राजधानी एक खाड़ी अर्थात दो समुद्रों के सङ्गम स्थान के समीप अवस्थित थी जिसे केवल विशाल चिल्का झील तथा समुद्र समझा जा सकता है क्योंकि लहरो से बने इस तट के साथ अन्य सागर अथवा झील नही है। अतः केवल गञ्जाम ही प्राचीन राजधानी हो सकती थी। परन्तु चूँकि गञ्जाम जाजीपुर से मानचित्र पर सीधे माप के अनुसार केवल १३० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार प्रायः १५० मील दूर है अतः मेरा निष्कर्ष है कि गञ्जाम की ओर जाते हुए तीर्थयात्री ने उदयगिरि तथा खण्डगिरि की पहाड़ियो एवम् चरित्र पुर अथवा पुरी नगर की यात्रा की थी। इस मार्ग से यह दूरी बढकर सीधे माप से १६५ मील तथा सड़क मार्ग से प्रायः १६० मील हो जायेगी जो चीनी तीर्थयात्री के अनुमान से सहमत है।

एम० जुलीन ने चीनी अक्षर कोग-यू-तो को कोन्योधा कहा है परन्तु मैं इस नाम के किसी भी स्थान से अनभिज्ञ हूँ। मैं देखता हूँ कि एम पाथियर ने इस नाम को कयूआन-यू-मो लिखा (१) है जो गञ्जाम का अनुवाद प्रतीत होता है परन्तु यह नाम कहाँ से लिया गया है इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है। हेमिल्टन ने गञ्जाम को "भन्डार" कहा है परन्तु यह नाम अकेला नहीं रहता वरन् इस सदा सस्थापक के नाम अथवा उस स्थान पर क्रय-विक्रय की मुख्य वस्तु के नाम के साथ जोड़ दिया जाता है जैसे रामगंज, ठठियार गंज आदि। इस जिले की परिधि केवल १००० ली अथवा

(१) पूर्वी भारत के ऊ-चा अथवा ओडा को क्यूने यू को भी कहा गया है जिस समय अर्थात ६५० से ६८४ ई० में यह ओड़ अथवा उड़ीसा का अश्रित राज्य रहा होगा।

१६७ मील थी जिससे पता चलता है कि इसकी सीमायें रशिकुल्या नदी की छोटी घाटी तक सीमित थी परन्तु यद्यपि यह एक छोटा राज्य था परन्तु प्रतीत होता है कि उस समय यह एक महत्वपूर्ण राज्य था क्योंकि ह्वेनसांग यहाँ के सैनिकों को वीर एवम् साहसी कहा है तथा उनके राजा को इतना शक्तिशाली बताया है कि पड़ोसी राज्य उसके अधीन थे एवम् उनमे राजा का सामना करने की शक्ति नही थी। इस विवरण मे मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय गञ्जाम का राजा उड़ीसा के इतिहास का ललितेन्द्र केसरी रहा होगा। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने ६१७ ई० से ६७६ ई० तक लगभग ६० वर्षों तक राज्य किया था। तीर्थ यात्री ६३९ ई० मे गञ्जाम गया था जिस समय यह राजा अपनी चरमोवस्था में था। परन्तु केवल ४ वर्षोपरान्त जब तीर्थयात्री पुनः मगध मे पहुँचा तो उसने देखा कि कन्नौज का महान सम्राट हर्ष वर्धन उसी समय ही गञ्जाम के विरुद्ध सफल अभियान से वापस आया था। युद्ध के कारणो की व्याख्या नही की गई है परन्तु चूँकि हर्षवर्धन एक कट्टर बौद्ध अनुयायी था जबकि ललितेन्द्र एक ब्राह्मण वादी था अतः धर्म विभेद के कारण युद्ध का कोई न कोई कारण निकल आया होगा यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस समय गञ्जाम को कन्नौज राज्य मे मिला कर उड़ीसा प्रान्त का भाग घोषित कर दिया होगा।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि गञ्जाम की लिपि मध्य भारत की लिपि से मिलती है परन्तु दोनो स्थानो की भाषा एवम् उच्चारण भिन्न-भिन्न था। इस कथन से इस बात को पुष्टि होती है कि सातवी शताब्दी के मध्य तक भारत के अधिकांश भागो मे समान लिपि प्रचलित थी। इनसे इस बात का पता भी चलता है कि सम्पूर्ण भारत में बौद्ध मठो के मध्य स्थापित पत्र व्यवहार की भाषा पूर्ण रूप मे लुप्त नही हो सकी थी यद्यपि ब्राह्मणवाद के गठित उत्थान से उसमे बाधा पड़ी होगी।

———

दक्षिणी भारत

ह्वेनसाग के अनुसार दक्षिणी भारत मे, पश्चिम में नासिक से लेकर पूर्व में गञ्जाम तक ताप्ती एवम् महानदी नदियों का सम्पूर्ण दक्षिणी पठार सम्मिलित था। श्री लङ्का को छोड यह नौ राज्यों में विभाजित था। श्री लङ्का को भारत का अङ्ग नहीं समझा जाता था। तीर्थ यात्री ने ६३९ तथा ६४० ईसवी में इन सभी राज्यो की यात्रा की थी। उसने उत्तर पूर्व दिशा से कलिंग मे प्रवेश किया था और उत्तर-पश्चिम की ओर मुड़ते हुए वह कोशल एवम् आन्ध्र के भीतरी राज्यों मे गया था। तदोपरान्त दक्षिणी दिशा में अपनी यात्रा को जारी रखते हुए वह धनकाकटा, जोरया, द्रविड़ से होते हुए सालकुट तक गया था। द्रविड़ राज्य की राजधानी काँची मे उसे श्री लङ्का के राजा की हत्या की सूचना मिली जिसके पश्चात उसने उस द्वीप की स्थिति के कारण वहाँ जाने का विचार त्याग दिया। तत्पश्चात उत्तर की ओर मुड़ते हुए वह कोंकण एवम् दक्षिण भारत के ७ राज्यों मे अन्तिम राज्य महाराष्ट्र गया।

कलिंग

सातवी शताब्दी मे की लिग किया अथवा कलिंग की राजधानी गञ्जाम के दक्षिण पश्चिम में १४०० से १५०० ली अथवा २३३ से २५० मील की दूरी पर अवस्थित थी। दिकांश एवम् दूरी दोनो ही गोदावरी नदी पर राजमहेन्द्री अथवा समुद्र तट पर कोरिंग की ओर सकेत करती हैं। इनमे प्रथम स्थान गञ्जाम से २५१ मील दक्षिण पश्चिम मे तथा द्वितीय स्थान इसी दिशा मे २४६ मील की दूरी पर है। परन्तु चूँकि प्रथम स्थान को अधिक समय से राज्य की राजधानी बताया जाता है अतः मेरा अनुमान है कि तीर्थयात्री इसी स्थान पर गया होगा। कहा जाता है कि कलिंग की मूल राजधानी कलिंग पट्टन से २० मील दक्षिण पश्चिम मे श्रीककोल अथवा चीकाकोल में थीं। इस राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। इसकी सीमाओ का उल्लेख नही किया गया है परन्तु चूँकि इसकी सीमाये पश्चिम मे आन्ध्र तथा दक्षिण में धनकटक मिलती थी अतः इसकी सीमाये दक्षिण पश्चिम मे गोदावरी नदी तथा उत्तर पश्चिम में इन्द्रावती नदी की गौलिया शाखा से परे नही होगी। इन सीमाओ के भीतर कलिंग की परिधि प्रायः ८०० मील होगी। देश के इस भाग का मुख्य स्थान पर्वतो की महेन्द्र श्रेणी है जिसने महाभारत लिखे जाने के समय से वर्तमान समय तक अपना नाम सुरक्षित एवम् अपरिवर्तित रखा है। विष्णु पुराण में इस पर्वत श्रेणी का ऋषि-कुल्य नदी के उद्गम स्थान के रूप मे उल्लेख किया गया है और चूँकि यह गञ्जाम

नदी सर्व प्रसिद्ध नाम है अतः महेन्द्र पर्वत को महेन्द्र माली श्रेणी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो गञ्जाम को महानदी की घाटी से अलग करती है।

राजमहेन्द्री वेनगी के चालुक्य राजाओ की पूर्वी अथवा छोटी शाखा की राजधानी थी जिनका अधिकार क्षेत्र उडीसा की सीमाओ तक विस्तृत था। वेनगी राज्य की स्थापना ५४० ई० मे बेनगीपुर की प्राचीन राजधानी पर अधिकार किये जाने के पश्चात हुई थी। प्राचीन राजधानी के अवशेष एल्लूर मे ५ मील उत्तर तथा राजमहेन्द्री से ५० मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में वेगी के स्थान पर देखे जा सकते हैं। ७५० ई० के लगभग वेन्गी के राजा ने कलिग पर अधिकार कर लिया था और कुछ ही समय पश्चात उसने राजमहेन्द्री को राजधानी बना लिया।

प्लिनी ने कलिंगोय जाति को मण्डेई तथा मल्ली जातियों एवम् मालेयस के प्रसिद्ध पर्वत मे नीचे, भारत के पूर्वी तट का निवासी बताया है। इस पर्वत को सम्भवतः गञ्जाम मे ऋषिकुल्य नदी के सिरे पर एक उन्नत पर्वत श्रेणी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसे आज भी महेन्द्र माले अथवा महेन्द्र पर्वत कहा जाता है। दक्षिण मे कलिंगोय की सीमायें कलिंगोन की भू-नासिका तथा डण्डगुला नगर तक विस्तृत थी जो गङ्गा के मुहाने से ६२५ रोमन मील अथवा ५७४ ब्रिटिश मील था। दूरी एवम् नाम दोनों ही कोरिंगोन को भू-नासिका के रूप मे कोरिंग बन्दरगाह की ओर संकेत करते हैं जो गोदावरी नदी के मुहाने पर सूनासिका पर अवस्थित है। दण्डगुडा अथवा दण्डगला नगर को मैं बौद्ध ग्रन्थों का दान्तपुर समझता हूँ जिसे कलिंग की राजधानी के रूप में सम्भवतः राजमहेन्द्री के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो कोरिंगा से केवल ३० मील उत्तर-पूर्व मे है। यूनानी भाषा के अत्यधिक समानता के कारण मेरे विचार में यह असम्भावित बात नही है कि इस स्थान का यूनानी नाम दण्डपुला था जो प्रायः दान्तपुर के समान है। परन्तु इस दिशा में प्लिनी के समय मे ही कलिंग में बुद्ध के दान्त का मठ बनवाया गया होगा। बौद्ध ग्रन्थों के इस कथन से उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है कि बुद्ध की मृत्यु के तुरन्त बाद बुद्ध का सुवा दन्त कलिंग में ले जाया गया था तथा वहाँ के शासक ब्रह्मदत्त ने इसकी प्रतिष्ठा हेतु एक मठ का निर्माण कराया। यह भी कहा जाता है कि दान्तपुर एक महान नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित था और यह नदी केवल गोदावरी हो सकती है क्योंकि कृष्णा नदी कलिंग मे नही थी। केवल यही तथ्य दान्तपुर की स्थिति को राज महेन्द्री की प्राचीन राजधानी के स्थान पर निर्धारित करने के लिये पर्याप्त है। महेन्द्री नाम सम्भवतः टालमी के पितुण्ड्रा मेट्रोपोलिस में सुरक्षित है जिसे उ ने मैसोलोम अथवा गोदावारी अर्थात मछलीपटम की नदी के समीप दिखाया है।

कलिङ्ग की राजधानी का अधिक प्राचीन नाम सिन्हापुर था जिसे श्री लङ्का के

प्रथम लिखित शासक विजय के पिता, सिन्हा बहू अथवा सिंह बाहु के नाम पर पुकारा जाता था। इसके स्थिति का संकेत नहीं किया गया है परन्तु गञ्जाम के ११५ मील पश्चिम मे लालगला नदी पर इसी नाम का एक विशाल नगर बसा हुआ है जो सम्भवतः समान स्थान है।

चेदी के कलचूरी अथवा हैहय राजपरिवार के लेखो मे कहा गया है कि यह राजा 'कालञ्जरपुर' तथा त्रिकलिंग के स्वामी की उपाधि धारण किया करते थे। कलिञ्जर बुन्देल खण्ड का एक सर्व प्रसिद्ध दुर्ग है और त्रि कलिंग कृष्णा नदी पर धनक अथवा अमरावती, आन्ध्र अथवा वारङ्गल तथा कलिंग अथवा राजा महेन्द्री के तीन राज्यो का नाम रहा होगा। त्रिकलिंग का नाम सम्भवतः पुराना है क्योकि प्लिनी ने मक्को कलिंगोय तथा गङ्गारीडीज कलिंगोय को कलिंगगोय से भिन्न जाति कहा है जब कि महाभारत मे विभिन्न स्थान पर कलिंग का उल्लेख तीन बार किया गया है और तीनो बार इसे विभिन्न निवासियो से सम्बन्धित किया गया है। इस प्रकार चूंकि त्रि कलिंग तेलिंगाना के विशाल प्रान्त से मिलता है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि तेलिंगाना त्रि कलिंगान का केवल संक्षिप्त नाम रहा हो। मैं जानता हूँ कि इस नाम को सामान्य रूप से महादेव के त्रि लिंग से लिया गया है परन्तु प्लिनी द्वारा मक्को कलिंगोय तथा गंगारीटीज के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि त्रि कलिंगान मैगस्थनीज के समय मे भी ज्ञात थे क्योकि प्लिनी ने भारतीय भूगोल मुख्य रूप से मैगस्थनीज के विवरण से लिया है। अतः यह नाम दक्षिण भारत मे महादेव के लिंग की पूजा के समय से पुराना रहा होगा। ऐसा राजा के खण्डागिरी लेख मे कलिंग का तीन बार उल्लेख किया गया है और यह राजा ईसवी पूर्व की द्वितोय शताब्दी में हुआ था। इससे भी प्राचीन समय मे अथवा साक्य मुनी के जीवन काल में यह स्थान श्रेष्ठ मल-मल के उत्पादन के लिये प्रसिद्ध था और उसकी मृत्यु पर राजा ने बुद्ध का दान्त प्राप्त किया था जिस पर उसने एक देदीप्यमान स्तूप का निर्माण करवाया था।

कोशल

कलिंग से चीनी तीर्थ यात्री उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग १८०० से १६०० ली अथवा ३०० से ३१७ मील की यात्रोपरान्त क्याओ-सा-ला अथवा कोशल राज्य मे गया। दिकांश एवम् दूरी हमें विदर्भ अथवा बरार के प्राचीन प्रान्त की ओर ले जाती है जिसकी वर्तमान राजधानी नागपुर है। यह विवरण रत्नावली एवम् वायु पुराण मे वर्णित कोशल की स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है। प्रथम पुस्तक मे कोशल राज्य विन्ध्याचल पर्वतों द्वारा घिरा हुआ है जबकि द्वितीय ग्रन्थ में कहा गया है कि राम के पुत्र कुश ने विन्ध्याचल पर्वत की खड़ी दीवारों पर बनी कुशस्थली अथवा कुशावती नामक राजधानी से कोशल पर राज्य किया था। इन सभी समान तथ्यों से

हमे प्राचीन कोशल को बरार अथवा गोण्डवाना के आधुनिक जिले के अनुरूप स्वीकार करने मे सहायता मिलती है। राजधानी की स्थिति को निर्धारित करना अधिक कठिन है क्योंकि ह्वेनसांग ने इसके नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु चूंकि इस नगर की परिधि ४० ली अथवा ७ मील थी अतः सम्भव है कि वर्तमान समय का कोई विशाल नगर इसका प्रतिनिधित्व करे। यह नगर इस प्रकार है—चान्दा, नागपूर, अमरावती तथा एलिचपुर।

चान्दा दीवारो से घिरा एक नगर है जिसकी परिधि ६ मील है। यहाँ एक दुर्ग भी है। यह वेन गङ्गा तथा वरछा नादियो के सङ्गम स्थान से नीचे अर्थात गोदावरी नदी पर राजमहेन्द्री से २९० मील उत्तर पश्चिम मे तथा कृष्णा नदी पर धरनी कोट से २८० मील की दूरी पर अवस्थित है। अतः इसकी स्थिति ह्वेनसाग द्वारा कथित दिकांश एवम् दूरी से ठीक ठीक मिलती है।

अमरावती राजमहेन्द्री से समान दूरी पर है तथा एलिचपुर यहाँ से भी ३० मील उत्तर मे है। अतः चान्दा ही एक मात्र ऐसा स्थान है जो सातवीं शताब्दी में कोशल की राजधानी के अनुरूप होने का ठोस दावा कर सकता है। धनाकटा तक ९०० ली अथवा ९०० जमा १००० ली की पश्चातवर्ती दूरी से राज महेन्द्री से १८०० अथवा १९०० ली की कथित दूरी की पुष्टि होती है। यह स्थान निश्चित ही कृष्णा नदी पर अवस्थित धरनी कोट अथवा अमरावती के समान था। अब धरनीकोट से चान्दा की मार्ग दूरी सीधे मार्ग से २८० मील अथवा १६८० ली है परन्तु ह्वेनसांग सर्व प्रथम ९०० ली तक दक्षिण पश्चिम की ओर गया था और तत्पश्चात वह १००० ली तक दक्षिण की ओर गया था अतः दोनो स्थानो के मध्य सीधा मार्ग १७०० ली से अधिक नहीं रहा होगा।

राज्य के ३०० ली अथवा ५० मील दक्षिण पश्चिम मे पो-लो-मो लो-की-ली नामक एक उन्नत पर्वत था जिसका अर्थ "काला शिखर" बताया जाता है। एम० जुलीन ने इसे वर्तमान समय का बरमूल गिरो कहा है परन्तु मैं प्राप्त पुस्तको अथवा मानचित्रों मे इस नाम के किसी भी स्थान को प्राप्त करने में असमर्थ रहा हूँ। इस पर्वत को स्पर अथवा घाटी रहित एक अत्यधिक उन्नत पर्वत कहा गया है जिससे यह पता चलता है कि यह पत्थरों का समूह था। राजा सो-तो-पो हो अथवा सातवाहन मे पर्वत को काट-काट कर पाँच मंजला भवन बनवाया था जहाँ अनेक दर्जन अर्थात अनेक मील लम्बी एक खोखली सड़क द्वारा पहुँचा जा सकता था। ह्वेनसांग ने इस स्थान की यात्रा नहीं की थी। परन्तु चूंकि यह कहा गया है कि चट्टान को काट-काट कर नागार्जुन नामक पवित्र बौद्ध मुनी का निवासस्थान बनवाया गया था और यदि राजधानी से इसकी दूरी केवल ५० मील थी तो तीर्थ यात्री निश्चित ही इस स्थान पर जाता। इसी प्रकार यदि हम दक्षिण 'पश्चिमी दिशा को सही स्वीकार करें तो

आन्ध्र की ओर अपने पश्चातवर्ती यात्रा के समय तीर्थ यात्री इस स्थान के समीप से गुजरा होगा क्योंकि आन्ध्र की ओर यात्रा उसी दिशा अर्थात दक्षिण दिशा में की गई थी। अतः मेरा निष्कर्ष है कि जिसके माध्यम से तीर्थ यात्री ने इस चट्टान की स्थिति की ओर संकेत किया है सम्भवतः राज्य की सीमाओं से सम्बन्धित था और परिणाम स्वरूप इस स्थान को राज्य की पश्चिमी सीमाओं से ३०० ली अथवा ५० मील की दूरी पर देखा जाना चाहिये। यह स्थिति एलोरा के समीप देवगिरी के महान चट्टानी दुर्ग की स्थिति से भली भाँति मिलती है और पोलोमोलोकीशी अथवा वर्मूल गिरी नाम को वरूला अथवा एलोरा का मूल स्वरूप समझा जा सकता है। इस विवरण के अनेक अंश उदाहरणार्थ चट्टान को काट कर बनाये गये लम्बे गलियारे एवम् चट्टान के शिखर से गिरते हुए पानी का झरना—देवगिरी के स्थान पर एलोरा की विशाल बौद्ध संस्थाओ के विवरण से मिलते हैं। परन्तु चूंकि ह्वेनसांग इस स्थान पर नही गया था अतः उसने अपने विवरण विभिन्न यात्रियों के विभिन्न विवरणों से लिया होगा जिनमें एलोरा तथा देवगिरी के साथ मिले हुए स्थानों को एक ही स्थान समझ लिया गया होगा।

फाहियान ने भी पाँचवीं शताब्दी में चट्टान को काट-काट कर बनाये गये उन्ही निवास स्थानो का उल्लेख किया है। उसने इस स्थान को फो-लो-यू अथवा "कपोत" कहा है और इसे तथसिन अर्थात दक्षिण अथवा दक्षिणी भारत अथवा आधुनिक दक्कन कहा है। उसने यह सूचना बनारस के स्थान पर प्राप्त की थी और चूंकि दूरी में वृद्धि से आश्चर्य जनक बातें अपना महत्व स्थाई रखती हैं अतः उसका विवरण भी ह्वेनसांग के विवरण की भांति विचित्र है। ठोस चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को पाँच मजला कहा गया है जिसकी प्रत्येक मंजल विभिन्न पशुओ के आकार की बनाई गई है और पाँचवी अथवा अन्तिम मंजल कपोत्त के आकार की बनाई गई है जिसके कारण मठ को कपोत्त मठ कहा गया है। अतः चीनी अक्षर फो-लो-यू संस्कृत के पारावत अर्थात कपोत के लिये लिखे गये होंगे। ऊपरी मंजल से निकला झरना मठ के सभी कमरों अथवा मजिलों से होते हुए मुख्य द्वार से बाहर गिरता है। इस विवरण में भी हमे पाँच मजिले शिखर से गिरता झरना, स्थान के नाम की समानता आदि सभी बाते मिलती हैं जो ह्वेनसांग के विवरण से समीपता रखती है। दोनों मे विभिन्नता का मुख्य बिन्दु नाम को दिये गये अर्थ मे निहित है। ह्वेनसांग के अनुसार पो लो मो लो ली का अर्थ "काला शिखर" है जबकि फाहियान के अनुसार फो-लू-यू का अर्थ 'कपोत" है। परन्तु इन दोनों तोर्थ यात्रियों के मध्यवर्ती समय मे इसका तीसरा उल्लेख भी मिलता है जिसमें इस नाम के भिन्न अर्थ बताये गये हैं। ५०३ ई० मे दक्षिण भारत के राजा ने अपना दूत चीन भेजा था जिससे इस बात का पता लगाया गया था कि उसके देश में "ऊँचाई पर अवस्थित' पा लाई नामक

एक सुदृढ़ नगर है। यहाँ से ३०० ली अथवा ५० मील पूर्व की ओर एक अन्य सुदृढ नगर था जिसे चीनी अनुवाद मे फयू-च्यू चिंग कहा गया है। यह नगर एक प्रसिद्ध सन्त का जन्म स्थान था जिसका नाम चू-सान-हुँ अथवा "अन्न के दानो की माला" बताया गया है। अब, पलामाला "अन्न के दानो की माला" का नाम है और चूंकि यह नाम ह्वेनसांग के पो लो मो लो के प्रत्येक अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है अतः मेरा अनुमान है कि यह दोनो एक ही स्थान अथवा व्यक्ति के नाम होगे। मै ह्वेनसांग द्वारा नाम को दिये गये अर्थ की उत्तर भारत की भाषाओ मे व्याख्या करने में असमर्थ हूँ और मै केवल इतना कह सकता हूँ कि तीर्थ यात्री ने सम्भवतः किसी दक्षिणी अथवा द्रविड़ भाषा का अनुवाद किया होगा। कन्नड भाषा मे 'माले' पर्वत का नाम है और चूंकि पारा एवम् पारस दोनो का रङ्ग काला है अतः यह सम्भव है कि वह चीनी नाम से सम्बन्धित हो। अतः पारा का अर्थ काला और पारा माले का अर्थ काली पहाड़ी लगाया गया होगा। दक्षिण भारत के सर्वाधिक विषैले सर्पों मे एक सर्प जिसका रङ्ग गहरा नीला अथवा काला होता है - पार गुडु कहलाता है। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि ह्वेनसाग का अनुवाद दक्षिण की किसी भाषा से लिया गया होगा। चीनी अनुवाद मे निहित भ्रम चीनी अक्षरो की दुर्बलता के कारण है जिसके कारण संस्कृत शब्दों को चीनी भाषा मे अनुवाद करना कठिन है। इस प्रकार पो लो-फा-तो को फाहियान के अनुसार पारावत अर्थात "कपोत्त" पढ़ा जा सकता है अथवा सि-यू-की के अनुसार परावत अर्थात 'अधोन' पढा जा सकता है जबकि यह सम्भव है कि इसका वास्तविक स्वरूप पर्वत रहा हो क्योकि इस बात का विशेष उल्लेख किया गया है कि मठ का निर्माण चट्टानों को काट काट कर किया गया था।

राजधानी को पा-लाई कहा गया है। अब चान्दर के दुर्ग को बाल किला अथवा उन्नत दुर्ग भी कहा जाता है जो यद्यपि मुसलमानो द्वारा दिया गया फारसी नाम है तथापि इसे सम्भवतः इसके मूल नाम पा लाई के आधार पर रखा गया था।

समस्त चीनी पुस्तको मे चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को एक पवित्र सन्यासी से सम्बन्धित किया गया है परन्तु प्रत्येक विवरण में इस सन्यासी का नाम भिन्न-भिन्न दिया गया है। फाहियान के अनुसार यह काश्यप नामक पूर्ववर्ती बुद्ध का मठ था। सी-यू-की मे इसे परामाला मुनी का जन्म स्थान कहा गया है जबकि ह्वेनसांग का कथन है कि राजा सातवाहन ने नागार्जुन मुनी के लिये इस मठ को बनवाया था। फाहियान तथा ह्वेनसांग के विचित्र विवरणों से मैं यह सोचने लगा हूँ कि उनका विवरण सम्भवतः देव गिरी तथा एलोरा की महान कन्दराओ से सम्बन्धित रहा होगा परन्तु यदि ह्वेनसांग तथा सी-यू-की द्वारा बताई गई दूरी सही है तो चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को चान्दा से प्रायः ५० मील पश्चिम अथवा दक्षिण पश्चिम मे देखा जाना चाहिये। अब, मानचित्र में इसी स्थिति पर अथवा चान्दा से

४५ मील पश्चिम में पाण्डु कुरी अथवा 'पाण्डु गृह' नामक एक स्थान दिखाया गया है जिससे इस स्थान की असंदिग्ध प्राचीनता का पता चलता है। सम्भव है कि यह चट्टानों में बनाई गई किन्हीं कन्दराओ से सम्बन्धित हो क्योकि धमनार खोलवी के स्थान पर बनी चट्टानी कन्दराये पाण्डवो के नाम पर भीम कन्दरा, अर्जुन कन्दरा आदि नामो से जानी जाती है। पूर्ण सूचना के अभाव मे मैं केवल इस स्थान के विचित्र एवम् अर्थयुक्त नाम की ओर ध्यान आकर्षित कराना चाहता हूँ। एलिचपुर तथा अमरावती से ५० मील दक्षिण पश्चिम एवम् अजन्ता से ८० मील पूर्व मे पतूर नामक स्थान पर अनेक बौद्ध कन्दराये हैं। चूँकि इन कन्दराओ का कभी उल्लेख नही किया गया है अतः यह सम्भव है कि भविष्य मे इमे फाहियान तथा ह्वेनसांग द्वारा कथित चट्टानो को काट-काट कर बनाये गये मठ के अनुरूप स्वीकार कर लिया जाये।

नागार्जुन के सम्बन्ध मे राजा सात वाहन अथवा सादवाहन का उल्लेख विशेष रूप मे रुचिपूर्ण है क्योकि इससे पता चलता है कि परामाल की बौद्ध कन्दरायें ईसवी काल की प्रथम शताब्दी में बनवाई गई होंगी। सादवाहन एक पारिवारिक नाम था और नासिक की एक कन्दरा के शिलालेख मे इसी रूप इसका उल्लेख किया गया है। परन्तु सातवाहन भी प्रसिद्ध शाली वाहन का सर्व ज्ञात नाम है जिसने ७९ ई० मे शक सम्वत की स्थापना की थी। (१) इस प्रकार हमे इस बात के दो प्रमाण प्राप्त हैं कि परामाल की बौद्ध कन्दरायें प्रथम शताब्दी में बनवाई गई थी। आगे चलकर हम सात वाहन एवम् सातकरनी की अनुरूपता पर विचार करेंगे। पश्चिमी कन्दराओ के शिला लेखो से पता चलता है कि कोशल निश्चित ही गौतमीपुत्र सातकरनी के विशाल दक्षिणी राज्य का भाग था और यदि यह राजा प्रथम शताब्दी मे हुआ था—जैसा कि यह प्रतीत होता है (२)—तो सातवाहन अथवा शाली वाहन से उसकी अनुरूपता असंदिग्ध होगी। यहाँ दक्षिण भारत के इतिहास के इस रुचिपूर्ण बिन्दु की सम्भावना पर विचार करना पर्याप्त होगा।

---

(१) साता अथवा साली, यक्ष का नाम था और जब उसने शेर का रूप धारण किया तो बालक रामकुमार ने उस शेर की सवारी की थी और इस प्रकार वह सातावाहन अथा शाली वाहन कहलाया था।

(२) कन्हारी नासिक तथा कार्ली के अधिकांश शिला लेख एक ही समय से सम्बन्धित हैं और चूँकि इनमे अधिकांश शिला लेखों मे गोतमीपुत्र सतकरनी, पुष्योमयो तथा यदन्या श्री के उपहारों का उल्लेख मिलता है अतः सभी को आन्ध्र की सार्व भौमिकता के समय से सम्बन्धित किया जा सकता है। परन्तु एक शिला लेख की तिथि शक्यदिरय अथवा शक समय का ३० वां वर्ष अर्थात् १०८ ई० थी। अतः आन्ध्र वासी उस समय राज्य कर रहे होंगे।

ह्वेनसांग ने कोशल के राज्य की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील बताया है। इसकी सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु तीर्थ यात्री की यात्राओं के विवरण से हम जानते है कि यह राज्य उत्तर मे उज्जैन, पश्चिमो में महाराष्ट्र, पूर्व में उड़ीसा तथा दक्षिण में आन्ध्र एवम् कलिंग से घिरा हुआ था। राज्य की सीमाओं को अनुमानतः ताप्ती नदी पर बुरहानपुर तथा गोदावरी नदी पर नान्देड़ से लेकर छत्तिसगढ़ में रत्नपुर तक तथा महानदी के उदगम स्थान के समीप नवगढ़ तक विस्तृत बताया जा सकता है। इन सीमाओं के भीतर कोशल राज्य की सीमाओं की परिधि १००० मील से अधिक है।

आन्ध्र

कोशल से ह्वेनसांग ६०० ली अथवा १५० मील दक्षिण में अन तो-लो अथवा आन्ध्र अथवा आधुनिक तेलिगाना तक गया। इसकी राजधानी को पिंग-की-लो कहा जाता था जिसे एम० जुलीन ने विंगलीला कहा है परन्तु आज तक इसकी पहचान नही की जा सकी है। हम जानते हैं कि वारगल अथवा वरनकोल कई शताब्दियों बाद तक तेलिगाना की राजधानी थी परन्तु इसकी स्थिति तीर्थ यात्री द्वारा वर्णित स्थिति से नहीं मिलती क्योंकि यह गङ्गा नदी पर चान्दा से अधिक दूर है जबकि कृष्णा नदी पर घरनी कोट के अधिक समीप है। और चीनी अक्षर वारङ्गल नाम का प्रतिनिधित्व नही करते यद्यपि उन्हें वन्कोल का प्रतिनिधि समझा जा सकता है। इन्हें भीमगल पढ़ा जा सकता है जो तेलिंगाना क एक प्राचीन नगर का नाम है। इसका उल्लेख अबुल फजल ने किया था। परन्तु भीम गल चान्दपुर से १५० मील दक्षिण अथवा दक्षिण पश्चिम मे होने के स्थान पर केवल १२० मील दक्षिण पश्चिम मे है और धरनी कोट से १६७ मील की अपेक्षा यह स्थान २०० मील उत्तर मे है। और यदि दोनों की स्थिति में अधिक समानता होती तो मैं चीनी अक्षरों को वारङ्गल के अशुद्ध अनुवाद के रूप में स्वीकार कर सकता था परन्तु वारङ्गल तथा चान्दा की मध्यवर्ती वास्तविक दूरी १६० मील तथा वारङ्गल से धरनी कोट की दूरी केवल १२० मील है। अतः ह्वेनसांग के विवरणानुसार यह अन्तिम स्थान के अधिक समीप तथा प्रथम स्थान से अत्यधिक दूर है। यदि हम बरार में अमरावती को कोशल की राजधानी स्वीकार कर सकें तो भीमगल असंदिग्ध रूप से आन्ध्र की राजधानी का प्रतिनिधित्व करेगा क्योंकि यह स्थान चान्दा अथवा घरनी कोट के मध्य में अवस्थित है। परन्तु दोनों दूरियां ह्वेनसांग के ६०० ली तथा १००० ली अथवा १५० मील तथा १६७ मील के आकड़ों की तुलना मे इतनी अधिक हैं कि दोनो में सामञ्जस्य नहीं हो सकता है। भीम गल तथा वारङ्गल के मध्य एल गन्देल की स्थिति तीर्थ यात्री के विवरण भली प्रकार से मिलती है क्योंकि यह चान्दा से प्रायः १३० मील तथा घरनी कोट से १७०

मील की दूरी पर है। अतः मै एलगन्देल को ईसा काल की सातवी शताब्दी में आन्ध्र की राजधानी के सम्भावित प्रतिनिधि के रूप मे स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

आन्ध्र की राजधानी की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील बताई गई है। किसी भी दिशा में इसकी सीमा का उल्लेख नही किया गया है परन्तु इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि गोदावरी नदी जो पूर्व तथा उत्तर मे आन्ध्र की वर्तमान सीमा है प्राचीन समय मे भी इसकी उत्तरी एवम् पूर्वी सीमा रही होगी। इसी प्रकार उत्तर की ओर यह तेलगु भाषा की सीमा भी है। पश्चिम मे जहाँ यह महाराष्ट्र के विशाल राज्य से मिलता है इसकी सीमाये गोदावरी नदी की मंजीरा शाखा से आगे नही गई होगी। अतः इन सीमाओ को दक्षिण पूर्व मे मंजीरा तथा गोदावरी से भद्राचलम तक २५० मील तथा दक्षिण मे हैदराबाद तक १०० मील बताया जा सकता है जबकि हैदराबाद तथा भद्रा-चलम को मध्यवर्ती दूरी १७५ मील है। इन सोमाओं मे राज्य की परिधि ५२५ मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित परिधि के समान बताया जा सकता है।

प्लिनी ने अन्डारोय नाम की एक शक्ति शाली जाति के रूप मे आन्ध्र निवासियों का उल्लेख किया है जिनके अधीन ४० सुदृढ नगर तथा एक सौ हजार पद सैनिको, दो हजार अश्वरोहियों एवम् एक हजार हाथियो की एक विशाल सेना थी। पेटिन जेरियन सूचियो मे अन्ड्राई इन्डी नाम के अन्तर्गत इनका उल्लेख किया गया है। विल्सन के अनुसार इन पेटिनजेरियन सूचियो मे आन्ध्र को "गङ्गा नदी के तट पर" दिखाया गया है परन्तु इन सूचियो के विस्तृत मानचित्रों में अनेक जातियो एवम् राष्ट्रो को उनके वास्तविक स्थान से अधिक दूर दिखाया गया है। आस-पास के नामो की तुलना करने से एक सरल एवम् सुरक्षित निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार अन्ड्राये इन्डी को दमरीस के समीप दिखाया गया है जिसे मैं साधारण परिवर्तन के बाद प्लिनी के लिमीरिके के अनुरूप स्वीकार कर सकता हूँ क्योंकि इन सूचियो को बनाने वाले यूनानी अधिकारी रहे होगे। परन्तु लिमारिके के निवासी दक्षिणी पठार के दक्षिण पश्चिमी तट पर बसे हुए थे अतः उनके पडोसी अन्ड्राय इन्डी गङ्गा नदी के पौराणिक आन्ध्रवासियों की अपेक्षा तेलिंगाना के आन्ध्रवासी रहे होगे। प्लिनी ने अन्ड्राय के सम्बन्ध मे अपनी सूचना को या तो अपने समय के सिकन्द्री व्यापारियो से प्राप्त किया होगा अथवा पालीबोथ्रा के दरबार मे सिल्यूकस निकेटोर तथा टालमी फिलाडेल्फस के राजदूत मैगस्थनीज तथा दियोनीसियस से प्राप्त किया होगा। परन्तु चाहे अन्ड्राय प्लिनी के समकालीन थे अथवा नहीं इतना निश्चित है कि प्लिनी द्वारा कथित काल में आन्ध्रवासी अथवा अन्ड्राय मगध राज्य पर राज्य नहीं करते थे क्योंकि आगे चल कर उसने स्वयं लिखा है कि पालीबोथरा के प्रासी जाति भारत की सर्वाधिक शक्तिशाली जाति थी जिनके पास ६००,००० पद सैनिकों ३०,००

अश्वारोहियों तथा ६००० हाथियो को, अथवा अ ड्राय इन्डो की शक्ति से ६ गुणा अधिक सेना थी ।

चीनो तीर्थ यात्री ने उल्लेख किया है कि यद्यपि आन्ध्रवासियो की भाषा मध्य भारत के निवासियों की भाषा से भिन्न थी तथापि अधिकांश भाग मे दोनों की लिपि प्रायः समान थी । इस कथन को ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये क्योंकि इससे पता चलता है कि उत्तर भारत से आई प्राचोन देवनागरी लिपि उस समय भी प्रचलित थी और दसवी शताब्दी के लेखो में प्राप्त होने वाले तेलगु भाषा के टेढे-मेढे अक्षर उस समय तक दक्षिण मे प्रचलित नही हुये थे ।

दोनककोट्टा

आन्ध्र छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग १००० ली अथवा १६७ मील तक वनो एव मरुस्थल को पार करता हुआ तो-ना-की-त्सी-किया तक गया जिसे एम० जुलीन ने धनक चेक पढ़ा है । परन्तु पञ्जाब मे ताकी अथवा त्सो-किया के अपने विवरण मे मैं बता चुका हूँ कि चीनो अक्षर त्सो भारतीय दन्त स्वर त अथवा ट का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे उपर्युक्त नाम धनकटक बन जायेगा । मैं कन्हारी तथा कार्ली की कन्दराओ के शिला लेखो में धनककट के नाम का उल्लेख कर चुका हूँ जिसे मैंने चीनो नाम के अन्तिम दो अक्षरो को अदला-बदली से धनककट पढने का प्रस्ताव किया है । (१) धनककट का नाम कम से कम चार कन्दराओ के शिला लेखों मे पाया गया है और प्रत्येक लेख मे डा० स्टीवेन्सन ने इसे एक व्यक्ति के नाम के रूप मे पढ़ा है जिसे उन्होंने क्षेनोक्रेटीज् नामक यूनानो कहा है । परन्तु मेरा विश्वास है कि इन शिला लेखो मे दिया गया नाम एक नगर अथवा देश का नाम है जो शिला लेख लिखने वालो का नगर अथवा देश था । चूंकि यह शिल्प लेख संक्षिप्त है अतः मैं डा० स्टीवेन्सन के प्रति न्याय भाव मे उन्हे यहाँ उधृत करूंगा ।

डा० स्टीवेन्सन ने जिस लेख के आधार पर लेखको की यूनानी राष्ट्रीयता का अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है—

धनुकाकधा यवनासा सिंहाध्यानम यथा दानम । अर्थात "यूनानी क्षेनोक्रेटीज द्वारा सिंहो सहित स्तम्भ का दान ।"

मेरा अनुवाद किसो सीमा तक भिन्न है—

---

(१) सन् १८६४ ई० में भारत सरकार को दी गई पुरातत्वसम्बन्धी अपनी रिपोर्ट मे मैंने अपनी प्रस्तावित शुद्धी को प्रकाशित किया था जो वस्तुतः कई वर्ष पूर्व प्रस्तावित की गई थी । डा० भाऊदाजी ने भी चीनी नाम को लेखों के धनककट के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु उन्होंने चीनी अक्षर त्सी के शुद्ध पाठ का उल्लेख नहीं किया है ।

"धनुककट के यवन द्वारा सिंहों वाले स्तम्भ का दान" कहा है परन्तु निम्न-लिखित लेख से स्पष्ट रूप से इस बात का पता चलता है कि धनुककट स्थान का नाम था और परिणाम स्वरूप यवन किसी मनुष्य का नाम रहा होगा।

धेनुककट ऊषभदत्ता पुतसा

मित देवा नकसा थभा दानम

डा० स्टीवेन्सन ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

"धेनुककट (उपनाम) ऋषभदत्त के पुत्र राजा मित्र देव द्वारा स्तम्भ दान"

इस अनुवाद को समझाते हुए उन्होंने धनुककट को यूनानी स्वीकार करने का प्रस्ताव किया है जिसके यूनानी नाम के साथ-साथ एक हिन्दू नाम भी था जिसे उसने बौद्ध धर्म अथवा हिन्दू धर्म की किसी शाखा को ग्रहण करते समय अपने लिया था क्योंकि धर्म परिवर्तन के समय नाम भी परिवर्तन कर किये जाते थे।" परन्तु धनुककट को एक स्थान का नाम स्वीकार करने से इस लेख को किसी अनुमान की ह० धर्मी किये बिना सरलता पूर्वक पढ़ा जा सकता है। मेरा अनुवाद इस प्रकार है :—

"धनुककट के ऋषभ दत्त के पुत्र राजा मित्र देव द्वारा स्तम्भ दान।"

जहाँ तक दानकर्ता के नाम का सम्बन्ध है कार्ले का तीसरे शिला लेख में दुर्भाग्यवश त्रुटि है और अन्तिम शब्द दुर्बोध है। परन्तु प्रारम्भिक लेख को डा० स्टीवेन्सन ने इस प्रकार पढ़ा है :—

धनुककटा (सु) भविकामा, इत्यादि।

जिसके अनुवाद उसने इस प्रकार किया है, "धनुककट द्वारा एक सौम्य निवास स्थान का दान," इत्यादि। यहाँ जिस शब्द का अनुवाद "सौम्य निवास स्थान" दिया गया है मेरा विचार है कि उसे भविवेक पढ़ा जा सकता है क्योंकि ह्वेनसांग ने पो-पी-फी किया नामक धनुककट के एक प्रसिद्ध सान्यासी का उल्लेख किया है। यह नाम वस्तुतः पाली का भो विवेक तथा संस्कृत का भावविवेक है।

कन्हारी में प्राप्त चौथे लेख की केवल ६ पंक्तियां हैं और इसे पश्चिमी कन्दराओं में प्राप्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख समझा जाता है क्योंकि इसकी तिथि सर्व-प्रसिद्ध शालिवाहन काल की तिथि है। डा० स्टीवेन्सन ने इसके प्रारम्भिक भाग को इस प्रकार पढ़ा है :—

उपासका धेनुककाटीनासा कल्प (नक) मनास्का, इत्यादि। और उन्होंने 'धेनुककट को शिल्पी' कहा है। परन्तु श्री वेस्ट द्वारा प्रकाशित प्रथम पंक्ति का वास्तविक पाठ इस प्रकार है :—

उपासकासा धनुककटेयासा कुशापियासा

जिसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है, धनुककट के एक उपासिक, कुशापिया का (दान)"

अन्तिम पक्ति मे दी गई, शिला लेख की तिथि का डा० स्टीवेन्सन ने त्रुटिपूर्ण अनुवाद किया है जो इस प्रकार है :—

दत्तवा सलासाका दत्यालेन ।

और पूर्ववर्ती विवारिक शब्द को लेकर उन्होने इसका अनुवाद इस प्रकार है—

"यहाँ बौद्ध भिक्षुओं के लिये एक बड़ा कमद्रा बनवाया गया है। यहाँ बुद्ध के दांत की कन्दरा (है)।"

मैं देखता हूँ कि अपने अनुवाद में डा० स्टीवेन्सन ने दत्य एवम् लेन के मध्य 'क' अक्षर छोड़ दिया है। ले ब्रे्ट्र तथा श्री वेस्ट द्वारा बनाई गई दोनो प्रतिलिपियो मे डा० स्टीवेन्सन ने क शब्द को छोड़ दिया है। इस सम्बन्ध में मैं लेख के अन्तिम शब्दों को इस प्रकार पढ़ूँगा।

दत्त वासे ३० शकादित्य काल

जिसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है :—

"शकादित्य के काल के ३० वें वर्ष में दिया गया।"

अर्थात ७८+३० = १०८ ई० मे। सकादित्य सालिवाहन को एक सामान्य उपाधि है और शक सम्वत—जिसकी स्थापना उसने करवाई थी—को प्राचीन लेखों मे सक भूप काल अथवा सक नृप काल कहा जाता है। यह दोनों नाम सकादित्य काल के पर्यायवाची शब्द हैं। अतः धनुककट मे ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भिक काल में बौद्ध संस्थान रहे होंगे और यदि कार्ले लेख में मेरे प्रस्तावित भावविवेक के नाम को स्वीकार कर लिया जाये तो बौद्ध धर्म ईसवी काल की प्रथम शताब्दी मे भी उतना ही प्रचलित था क्योंकि भावविवेक नागार्जुन का एक शिश्य था।

धनककट की स्थिति को कृष्णा नदी पर धरनीकोट अथवा अमरावती के स्थान पर निश्चित करते समय मैंने न केवल आन्ध्र तथा कोशल से इसके दिकांश एवम् दूरी का ध्यान रखा है परन्तु अन्य अनेक समान कारणो पर विचार भी किया जिन्हे मैं अब विस्तार पूर्वक लिखूंगा।

श्री लङ्का एवम् श्याम की बौद्ध प्रथाओ मे हमें गङ्गा नदी के मुहाने तथा श्री लङ्का के द्वीप के मध्यवर्ती प्रदेश का विवरण मिलता है जहाँ नागा लोग बसे हुए थे। इन नागाओं के पास बुद्ध के अवशेषों के एक अथवा दो द्रोण भाग थे जिन्हे "रत्न रजित बालू" के समीप एक सुन्दर तथा बहुमूल्यवान स्तूप में प्रतिष्ठित किया गया था। मूलरूप से अवशेषों का यह भाग कपिलावस्तु के समीप रामाग्राम से सम्बन्धित था परन्तु बुद्ध के अवशेषो के मूल आठ भागो मे एक भाग पात्र सहित गङ्गा नदी के मार्ग से समुद्र तक चला गया जहाँ नागाओं ने इसे प्राप्त कर लिया और वह इसे मजेरिका नामक अपने देश मे ले गये। अब, यह देश दन्तपुर के दक्षिण में था क्योंकि

बुद्ध के दाँत सहित दन्तपुर से श्री लङ्का जाते समय राजकुमार तथा राजकुमारी हेम माला का विमान "रत्न रजित बालू" के समीप तट पर गिर गया था। रत्न रंजित बालू की स्थिति को किस्तना नदी पर घरनीकोट में अथवा इसके समीप निर्धारित करने में इस नाम से सहायता मिलती है क्योंकि देश के इस भाग की हीरों की खाने घरनीकोट के उत्तर मे पतियाल के छोटे जिले तक सीमित है। दन्तपुर से बभर यात्रा ३१० ई० मे हुई थी और स्याम देश के विवरणानुसार अवशेषों के बोनी द्रोण नागा देश मे उस समय तक सुरक्षित थे परन्तु तीन वर्षोंपरान्त श्री लङ्का के राजा ने इन अवशेषों को प्राप्त करने के उद्देश्य से एक पुजारी को मजेरिका भेजा और नागाओ के प्रतिरोध के होते हुए भी इन अवशेषो को आश्चर्य जनक ढङ्ग से प्राप्त कर लिया गया। तत्पश्चात नागा राजा ने श्री लङ्का से अवशेषो का कुछ भाग वापस करने की प्रार्थना की "जिसे स्वीकार कर लिया गया।"

श्री लङ्का के विवरण में अनेक बातें भिन्न प्रकार से दी गई हैं परन्तु मुख्य भिन्नता तिथि के सम्बन्ध में है। महावंशो के अनुसार रामाग्राम में केवल एक द्रोण अवशेष थे जिन्हें नागाओं ने मजेरिका के स्थान पर प्रतिष्ठित किया था। तदोपरान्त १५७ ई० पूर्व मे दलथागामिनी के राज्य काल के पाँचवे वर्ष मे श्री लङ्का ले जाया गया। इस राजा ने इन्हे रूआनवेली के स्थान पर महा स्तूपो मे रखा था।

महावंशों के लेखक ने श्री लङ्का के इस महान स्तूप की महिमा का प्रज्वलित विवरण दिया है परन्तु उसने स्वीकार किया है कि मजेरिका का चैत्य "इतना सुन्दर बनाया गया था तथा उसे अनेक प्रकार से इतना सुसज्जित किया गया था......कि श्री लङ्का की समस्त समृद्धि अन्तिम स्तूप के मूल्य से कम होगी।" दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित प्राप्त सूचना के अनुसार यह विवरण केवल घरनीकोट के देदीप्यमान स्तूप से सम्बन्धित हो सकता है जो कम उभडी हुई कला पूर्ण खुदाई से अक्षरश: ढँका हुआ था।

श्री लङ्का एवम् स्याम के ऐतिहासिक ग्रन्थो मे तिथियो की विभिन्नता का उत्तर प्राप्त करना कठिन है परन्तु मेरे विचार मे यह अत्यधिक असम्भावित है कि इन अवशेषों को ३१३ ई० मे श्री लङ्का ने जाया गया था और रूआन बेली के विशाल स्तूप मे इन्हे प्रतिष्ठित किया गया हो तथा तदोपरान्त त्रुटि पूर्वक उन्हे स्तूप के मूल संस्थापक दुथागमिनी से सम्बन्धित किया गया हो। प्रसिद्ध दाँत जिसे ३१० ई० मे कलिंग से श्री लङ्का ले लाया गया था—२४० ई० पूर्व मे अशोक के समकालीन देवाननपियातिस्सो द्वारा निर्मित धर्मचक्र नामक भवन में रखा गया था तथा तदोपरान्त इसे अभयगिरि बिहार मे स्थानान्तरित किया गया था जिसकी स्थापना ८६ ई० पू० में कराई गई थी।

परन्तु चाहे हम इस उत्तर को स्वीकार करें अथवा नहीं, बौद्ध ग्रन्थों तथा

तीर्थ यात्रियों के विवरण एवम् महावशो के सामान्य सहमति से हमे पता चलता है कि रामाग्राम के बौद्ध अवशेष ई० पूर्व की तीसरी शताब्दी के मध्य मे भी अपने मूल स्थान मे प्रतिष्ठित थे। उस समय अशोक बुद्ध की मृत्योपरान्त विभाजित सभी अवशेषो पर स्तूप बनवा रहा था। अवशेषो को यदि १५७ ई० पूर्व मे श्री लङ्का ले जाया गया था जैसा कि महावशो मे लिखा गया है—तो हमे रामाग्राम के स्थान पर मूल स्तूप के विनाश, एवम् मजेरिका के स्थान पर भारत के सर्वाधिक देदीप्यमान स्तूप मे अवशेषों के प्रतिष्ठापन तथा श्री लङ्का ले जाये जाने के पश्चातवर्ती कार्य को ८० वर्षों से कुछ अधिक काल तक सीमित करना होगा। परन्तु श्री फर्ग्युसन के अत्यधिक उचित विचारानुसार "बनावट को देखते हुए घरनीकोट के निर्माण मे पूरे ५० वर्ष व्यतीत हुए होगे।" अतः अशोक के समय के पश्चात अवशेषो के रामाग्राम मे स्थित रहने एवम् मजेरिका के नागाओ के पास सुरक्षित रहने का समय केवल ३० वर्ष रहा होगा। इन्ही कारणो से मैं स्याम देश के ग्रन्थों का अनुकरण करना चाहता हूँ और तदनुसार मैं घरनीकोट से श्री लङ्का मे अवशेषो के द्रोण भाग को ले जाये जाने की तिथि को ३१३ ई० निर्धारित करूँगा।

फिर भी इस बात का ध्यान रहे कि उत्तरी भारत की जनता इस बात से अनभिज्ञ थी कि रामाग्राम मे प्रतिष्ठित अवशेष नागाओ द्वारा मजेरिका ले आये गये थे क्योंकि फाहियान तथा ह्वेनसांग—जिन्होंने क्रमशः पाँचवी एवम् सातवी शताब्दी में इस स्थान की वस्तुतः यात्रा की थी—मे स्तूपो के स्थिर रहने का उल्लेख किया है। फिर भी तीर्थ यात्रियो के इस विवरण से आश्चर्य होता है कि उनके समय मे भी यह विश्वास किया जाता था कि स्तूप के समीप सरोवर के नागा अवशेषो की रक्षा करते थे। मूल बौद्ध कथा के अनुसार इन्ही नागाओ ने सम्राट अशोक द्वारा रामाग्राम से अवशेषो को हटाये जाने के प्रयत्न को निष्फल बताया था। समय के साथ जब रामाग्राम निर्जन हो गया—जैसा कि तीर्थ यात्रियो ने इसे देखा था—इस कथा ने भी आंशिक परिवर्तन स्वरूप धारण कर लिया कि सम्राट अशोक से सुरक्षित रखने के उद्देश्य से नागा स्वयं इन अवशेषो को उठा कर ले गये थे। दक्षिण भारत के नागाओ ने कथा के उपर्युक्त स्वरूप को स्वीकार कर लिया होगा और इस प्रकार अवशेषों को उनके देश मजेरिका मे ले जाये जाने की कथा को सरल जनता ने स्वीकार कर लिया होगा।

रामाग्राम से हटाये जाने वाले अवशेषो को श्री लङ्का के ग्रन्थों मे एक द्रोण कहा गया है जबकि स्याम देश की पुस्तकों में इन्हें दो द्रोण कहा गया है। अतः मेरा अनुमान है कि उन्हे सामान्य रूप से द्रोण धातु अथवा अवशेषो का द्रोण भाग कहा जाता था। पाली मे इसे दोना कहा जायेगा जो सम्भवतः ह्वेनसांग के तो ना की का मूल स्वरूप रहा होगा। इसका पूरा नाम दोनक धातु अथवा साधारण दोनक रहा

होगा जिसमें कोट शब्द जोड दिये जाने से दोनककोट बन जायेगा जो चीनी तो-ना-की-किया-त्सी और साथ ही साथ शिला लेखों के घनककट के अनुरूप है। अब, मैं कन्हारी के शिला लेख से यह सिद्ध कर चुका हूँ कि धनकुकट का नाम १०८ ई० पुराना है परन्तु चूँकि सभी शिला लेखो में इसे द के स्थान पर घ अक्षर से लिखा गया है अतः मेरा अनुमान है कि अवशेषो के द्रोण भाग की कथा उस तिथि की अपेक्षा नवीन है। हम जानते हैं कि बौद्ध धर्मावलम्बियों मे स्थानीय नामों को परिवर्तन करने की सामान्य प्रथा थी जिससे उनके अर्थ बुद्ध से सम्बन्धित कथाओ के अनुरूप हो सकें। इस प्रकार तक्षशिला को तक्ष सिर बना दिया तथा अदी छत्र को बुद्ध के सिर का अहि छत्र बना दिया गया। अतः रामाग्राम के स्थान पर अवशेषो के द्रोण भाग पर नागाओं की सतर्कता को देखते हुए मैं इसे अत्यधिक सम्भावित समझता हूँ कि बौद्ध धर्माव-लम्बियों ने रामाग्राम मे अवशेषो के द्रोण भाग की कथा से सम्बन्धित करने के उद्देश्य से धनक को परिवर्तन कर दोनक बना दिया होगा।

इस स्थान का वर्तमान नाम धरनीकोट है जिसे मैं ह्वेनसांग द्वारा सुरक्षित भावाविवेक से सम्बन्धित पश्चातवर्ती कथा से लिया गया समझता हूँ। इस पवित्र सन्यासी ने भावी बुद्ध अर्थात मैत्रेय की इच्छा करते हुए तीन वर्षों तक उपवास किया और धारनी नामक धार्मिक कविता का निरन्तर पाठ करता रहा। तपस्या के अन्त में अवलोकितेश्वर ने उसे दर्शन दिया तथा धनककट के निज देश में वापस जाने एवम् नगर के दक्षिण में एक कन्दरा के सन्मुख वज्रपानी की पूजा मे विश्वस्त भाव से धारनी का उच्चारण करने का आदेश दिया। तदोपरान्त उसकी इच्छा पूर्ण होगी। तीन वर्षोपरान्त वज्रपानी प्रगट हुए और उन्होने उसे असुरो के राजमहल की ओर जाने वाली कन्दरा को खोलने की शक्ति प्रदान की जहाँ भावी बुद्ध निवास करते थे। तीन वर्षों तक इन गुप्त धारनियो का उच्चारण करने पर कन्दरा का मार्ग खुल गया एवम् जन समूह जो उनका अनुसरण करने मे डरता था—से बिदाई लेते हुए भावाविवेक ने कन्दरा मे प्रवेश किया। तुरन्त ही कन्दरा का मार्ग बन्द हो गया और तदोपरान्त उन्हें कोई नही देख सका। चूँकि सातवी शताब्दी में धारनियों की यह विचित्र कथा धनककट का प्रचलित विश्वास था अतः स्वाभाविक है कि जन साधारण में यह स्थान धारनीकोट के नाम से प्रचलित रहा होगा।

ईसवी काल की प्रथम एवम् द्वितीय शताब्दियो के शिला लेखो में धनककट के उल्लेख से हमे यह आशा करनी चाहिये कि टालमी के भूगोल में इस नाम के किसी चिह्न को ढूँढा जा सकता है। परन्तु इसके स्थान पर हमे अरुअरनो अथवा अवरनी नामक जनता का उल्लेख मिलता है जो मैसोलस अथवा गोदावरी के निचले प्रदेश में बसे हुए थे। इनके राजा बस्सरोनाग के निवास स्थान एवम् राजधानी को मलंग कहा जाता था। चूँकि मलंग मैसोलस तथा टयना नदियों के मध्य अवस्थित है अतः इसे

एल्लूर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसके समीप वेंगी नामक प्राचीन राजधानी के अवशेष प्राप्त किये जा सकते हैं। इन खण्डहरों को पेड्डा तथा चिन्ना वेंगी अर्थात बड़ा एवम् छोटा वेंगी कहा जाता है। वर्तमान समय में मछलीपटम के पूर्व-उत्तर-पूर्व मे ५४ मील दूर एक छोटे तटीय नगर अथवा बन्दरगाह अर्थात बन्दर मलंग के नाम से इस बात की पुष्टि होती है कि मलग इसी क्षेत्र में अवस्थित था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि धनककट केवल एक विशाल धार्मिक संस्थान का स्थान था जबकि वेंगी देश को राजनीतिक राजधानी थी।

जहाँ तक राजा के नाम का सम्बन्ध है मेरा विचार है कि यूनानी बस्सारो नागा को महावंश के पाला मजेरि-का-नागा के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। म एवम् ब के मध्य निरन्तर अदला-बदली को एवम् ख के स्वेच्छिक परिशिष्ट को देखते हुए यूनानी बस्सरो को पाली मजेरी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है और इस प्रकार टालमी का मलगा मजेरिका के नागाओ की राजधानी बन जायेगा।

धरनीकोट को ह्वेनसांग के धनककट तथा नागाओं के मजेरिका स्तूप के अनुरूप स्वीकार किये जाने के पक्ष में समस्त साक्षियो के गुण दोष के सामान्य निरूपण से पता चलता है कि सभी में अवशेषों के स्तूप की अत्यधिक सुन्दरता का विशेष उल्लेख किया गया है। मैं मजेरिका के नाग स्तूप के ज्वलन्त प्रताप से सम्बन्धित महावंशों के विवरण को उदधृत कर चुका हूं। इसकी अन्तिम सीढ़ी समृद्धि में श्री लङ्का की समस्त समृद्धि से श्रेष्ठ थी। इसी प्रकार चीनी तीर्थ यात्री धनककट के धार्मिक भवनों के असमान्य सौन्दर्य को देख कर चकित रह गया था। ह्वेनसांग के अनुसार इन भवनों मे वैक्ट्रिया के राजमहलो का समस्त सौन्दर्य निहित था। इसके अतिरिक्त इसकी कला कृतियों की अत्यधिक सुन्दरता एवम् अपरिमित आभूषणों के सम्बन्ध में हमें अपनी आँखों पर भी विश्वास होना चाहिये क्योंकि इनमे अनेक कला कृतियाँ लन्दन के भारतीय आजयबघर मे देखी जा सकती हैं। अन्त में, हमें जन साधारण की प्रथाओं का समर्थन प्राप्त हैं जिनके अनुसार किसी समय धरनीकोट भारत के इस भाग की राजधानी थी।

स्तूप की आयु को केवल अनुमानतः निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि लन्दन मे प्राप्त कला कृतियों पर खुदे २० शिला लेखों मे तिथि का उल्लेख नही किया गया है न ही इनमें किसी ऐसे राजा अथवा व्यक्ति का उल्लेख है जिसका समय ज्ञात हो। परन्तु इन अक्षरों के वर्णमाला सम्बन्धी क्रम को देखने से पता चलता है कि यह शिला लेख उसी काल में खोदे गये थे जिस समय में कन्हारी, नासिक तथा कार्ले की प्रसिद्ध कन्दराओं के लेख खोदे गये थे जिनमें आन्ध्र परिवार के गोतमी पुत्र सतकर्णी, पुदुमयी,

तथा यव्यना की भेंट का उल्लेख किया गया है। यह लेख भिल्सा स्तूप (१) के द्वार पर खोदे गये सतकर्णी लेखों एवम् गिरनार की चट्टान पर रूद्र दाम के लेखों से मिलते हैं। मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि कन्हारी लेखों में एक लेख शकादित्य काल के ३० वें वर्ष में अर्थात १०८ ई० में लिखा गया था और अब मैं यह जोड देना चाहता हूँ कि रूद्र दाम का लेख ७२ वे वर्ष मे लिखा गया था जो विक्रम सम्वत के अनुसार १५ ई० तथा शक सम्वत के अनुसार १५० ई० के समान है। यह दोनों तिथियाँ ईसवी काल की प्रथम दो शताब्दियों से सम्बन्धित हैं जबकि मैंने अमरावती के शिला लेखो को इसी काल मे लिखा गया स्वीकार किया है। कर्नल मेकेन्जो ने धरनीकोट के उण्डहरों की खुदाई कराते समय गोतमी पुत्र एवम् आन्ध्र के सतकर्णी परिवार के अन्य राजाओं की मुद्रायें प्राप्त की थीं और यह एक मात्र खोज ही उसके शासन काल में इस स्थान पर महत्वपूर्ण भवनों की उपस्थिति का प्रमाण प्रस्तुत करती है। मैं इस बात का प्रस्ताव कर चुका हूँ कि गोतमी पुत्र सतकर्णी एवम् शक सम्वत का सस्थापक महान सालिवाहन अथवा सादवाहन सम्भवतः एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न नाम थे और मेरा विश्वास है कि इसी राजा ने ९० ई० मे अमरावती का शिला लेख खुदवाया था तथा इस स्तूप के निर्माण कार्य को उसके उत्तराधिकारी यादृया श्री सातकरणी ने पूरा कराया था जो १४२ ई० मे सिहांसनारूढ़ हुआ था। विधि स्तूप के निर्माण काल के सम्बन्ध में प्राप्त एक मात्र तथ्य से मिलती है कि इसका निर्माण ईसवी काल से पूर्व अथवा ३१३ ई० के पश्चात नहीं हुआ था। ३१३ ई० मे इन अवशेषों को यहाँ से श्री लङ्का स्थानान्तरित कर दिया गया था।

काफी समय पश्चात अर्थात ग्याहरवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अबु-रिहान ने दनक का उल्लेख किया है, जिसने इसे "कोकण के मैदान" कहा है। अब, कोकण कृष्णा नदी की घाटी है और दनक देश के उपर्युक्त वर्णन से ह्वेनसांग के धनककट को कृष्णा नदी पर अवस्थित धरनीकोट के ध्वस्त नगर के अनुरूप स्वीकार करने के मेरे प्रस्ताव के पक्ष में एक अन्य प्रमाण मिलता है। अबु-रिहान के अनुसार धनक कर्कदन अथवा मैण्डो का देश था। अब, व्यापारी सुलेमान ने दक्षिण भारत के रुहमी नामक एक देश के सम्बन्ध मे यही विवरण दिया है। यह देश महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध था जिसे एक अगूठी से निकाला जा सकता था। मसूदी तथा इदरिसी ने इसी देश को क्रमशः रहमा तथा रूमी कहा है। मसूदी ने इस बात का उल्लेख भी किया है कि यह समुद्र तट के साथ-साथ विस्तृत था। अब, मार्को पोलो ने मतफिली नगर को मछली-

---

(१) भिल्सा स्तूप पृ० २६४ श्री फर्ग्युसन ने इस स्तूप को अशोक की लाट पर लिखे गये लेखों के समान स्वीकार किया है परन्तु यह उनकी भूल है क्योंकि भिल्सा टोप के द्वार पर लिखे लेख पूर्णतयः भिन्न हैं जैसा कि मेरी खोज से पता चलता है।

पटम के प्रान्त में तथा मालाबार के उत्तर में रत्नों एवम् मकड़े के जाल के समान महीन एवम् कोमल मलमल के लिये प्रसिद्ध स्थान बताया है। मुतफिली को सामान्यतः मछलीपटम के अनुरूप स्वीकार किया गया है परन्तु धरनीकोट से ६५ मील दक्षिण में तथा मछलीपटम से ७० मील दक्षिण पश्चिम मे मुतपिली नाम का एक बड़ा कस्बा वर्तमान समय मे भी बसा हुआ है। किसी भी अवस्था में मार्कोपोलो के उल्लेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि गोदावरी के मुहाने का तटीय प्रदेश रत्नो एवम् महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध था। अतः इसमें धरनीकोट के उत्तर मे पर्याल का रत्न युक्त जिला एवम् महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध मछलीपटम जिला सम्मिलित रहा होगा। और तदनुसार इसे अरब भूगोल शास्त्रियो के रहमी अथवा दूमी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। अरबी भाषा के अक्षरो मे थोडे परिवर्तन से रहमी को धनक पढ़ा जा सकता है जो अबु-रिहान के दनक से मिलता है।

उड़ीसा के ऐतिहासिक ग्रन्थो के अनुसार अमरावती के वर्तमान नगर की स्थापना बारहवी शताब्दी मे उड़ीसा के राजा सूर्य देव ने द्वितीय राजधानी के रूप में करवाई थी। यह नाम अमरनाथ अथवा अमरेश्वर के रूप मे शिव की पूजा से सम्बन्धित है और इस देवता के १२ प्रसिद्ध लिङ्गों में एक लिंग-जिसे उज्जैन से सम्बन्धित बताया जाता है—वस्तुतः कृष्णा नदी पर अवस्थित पवित्र नगर से सम्बन्धित था क्योंकि हम जानते हैं कि उज्जैन मे महाकाल का प्रसिद्ध मन्दिर था जब कि शिव के अन्य सभी लिंग विभिन्न स्थानो से सम्बन्धित थे।

मैं एम० विवीन सेन्ट मार्टिन के सन्देह की चर्चा किये बिना इस विवरण को समाप्त नहीं कर सकता। उन्होंने सन्देह व्यक्त किया है कि दण्डक नाम धनककट से सम्बन्धित है। दण्डकारण्य अथवा 'दण्डक के वन' भारत के इतिहास मे प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वाराह मिहिर ने दक्षिण भारत के अन्य स्थानो के साथ दण्डक इस प्रकार उल्लेख किया है—केरल, करनाटा, कांचीपुर, कोकण चिन्ना पट्टन (मद्रास) इत्यादि। इस सूची मे दण्डक कोकण अथवा अप्पर किस्तना से भिन्न है अतः इसे कृष्णा नदी की निचली घाटी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसकी राजधानी धनककट थी। परन्तु चूँकि अन्तिम नाम पश्चिमी कन्दराओ के प्रारम्भिक लेखों मे मिलता है अतः यह सम्भव है कि उच्चारण मे दोनो नामों की समानता प्रायः आकस्मिक हो।

ह्वेनसाग ने धनककट प्रान्त को परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील बताया है। चीनी सम्पादक द्वारा लिखे गये ता आन तो लो अर्थात महाआन्ध्र के अन्य नाम से इन बड़े आंकडो की पुष्टि होती है क्योकि तेलगाना के अन्य जिले अर्थात कलिंग तथा आन्ध्र धनककट की उपेक्षा छोटे थे। किसी भी दिशा में सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु इस बात की अधिक सम्भावना है कि प्रान्त की सीमायें जहाँ तक

सम्भव है तेलगु भाषा की सीमाओं से मिलती थीं जो पश्चिम में कुलबर्गा तथा पेन्ना-कोण्डा, दक्षिण में त्रिपती तथा पुलीकट झील तक विस्तृत थीं। उत्तर में यह आन्ध्र तथा कलिंग से तथा पूर्व में समुद्र से घिरा हुआ था। इन सीमाओं की परिधि जहाँ तक सम्भव है १००० मील है अतः मैं इस बात पर विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि इस प्रकार उल्लिखित विशाल क्षेत्र ह्वेनसांग का प्रसिद्ध धनककट है।

चोलिया अथवा जोरिया

धनककट से ह्वेनसांग दक्षिण पश्चिम की ओर १००० ली अथवा १६७ मील की यात्रोपरान्त चू लि-यी अथवा झो-ली यी गया जिसे उसने २४०० ली अथवा ४०० मील की परिधि का एक छोटा जिला कहा है। इस अज्ञात स्थान की स्थिति को निर्धारित करने के लिये द्रविड़ की सर्व प्रसिद्ध राजधानी कांचीपुर अथवा कांजीवरम तक १५०० अथवा १६०० ली अथवा लगभग २६० मील तक दक्षिण दिशा मे तीर्थ यात्री के पश्चातवर्ती मार्ग का उल्लेख करना आवश्यक है। अब, कृष्णा नदी से कांचीपुर की दूरी २४० से २६० मील है अतः चालिया को धारनी कोट के १६७ मील दक्षिण पश्चिम में नदी के दक्षिणी तट पर देखा जाना चाहिये। यह स्थिति करनूल को स्थिति से ठीक-ठीक मिलती है जो सीधी रेखा पर कांचीपुर से उत्तर उत्तर पश्चिम मे २३० मील तथा धरनीकोट से पश्चिम-दक्षिण पश्चिम में १६० मील दूर है। एम० जुलीन ने चोलिया को चोल के अनुरूप बताया है जिससे चलमण्डल अथवा कोरोमण्डल का नाम पड़ा है। परन्तु चोल द्रविड़ के दक्षिण में था जबकि ह्वेनसांग का चोलिया उत्तर की ओर था। यदि हम तीर्थ यात्री द्वारा बताई गई दूरी एवम् दिकांश को प्रायः शुद्ध स्वीकार कर लें तो चोलिया को निश्चित ही कर्नूल के पड़ोस में देखा जाना चाहिये।

प्रोफेसर लासेन ने प्रस्ताव रखा है कि चोलिया तथा द्रविड़ नामों को तीर्थ यात्री की यात्राओं के चीनी सम्पादक ने परिवर्तन कर दिया होगा। कुछ वर्ष पूर्व यात्राओं के वर्णन को पढ़ते समय मुझे इसी बात का प्रस्ताव रखने की इच्छा हुई थी और यदि यह बात निश्चित होती कि चीनी शब्द चू-ली-यी चोल का प्रतिनिधित्व करता है तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का अधिक प्रलोभन हो सकता था। परन्तु मैं एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन के इस विचार से सहमत हूँ कि उपर्युक्त परिवर्तन की सम्भावना को स्वीकार करना कठिन है यद्यपि ह्वेनसांग की पुस्तक का अनुसरण करने से स्पष्ट हो जाता है कि उसने प्रसिद्ध चोल राज्य का उल्लेख न करने की भूल की है। एम० डी सेन्ट मार्टिन ने कोरोमण्डल नाम के वर्तमान प्रयोग का उल्लेख किया है। यह नाम उत्तर में गोदावरी नदी के मुहाने तक मद्रास के सम्पूर्ण तटीय प्रदेश को दिया गया है। उनके विचार है कि इस नाम से कृष्णा नदी के दक्षिण में चोल राज्य के सम्भावित

विस्तार का पता चलता है। परन्तु मेरा विश्वास है कि कोरोमण्डल नाम का यह विस्तार वस्तुतः योरोपीय व्यापारियो की देन है जिन्होने इसे अपनी सुविधा हेतु अपना लिया था। इसके अतिरिक्त यह नाम केवल तटीय प्रदेश से सम्बन्धित है जबकि चोलिया को ह्वेनसांग ने धारनीकोट के दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित एक छोटा जिला कहा है। अतः, यदि हम ह्वेनसांग के विवरण को इसी प्रकार स्वीकार कर ले तो इस बात की कम सम्भावना है कि चोलिया पूर्व दिशा मे समुद्र तट तक विस्तृत था।

यह स्वीकार किया गया है कि चोलिया की पहचान करना कठिन है परन्तु मेरा विचार है कि हमे या तो तीर्थ यात्री के विचार को स्वीकार कर लेना चाहिये अथवा प्रोफेसर लासेन द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन को स्वीकार कर लेना चाहिये। प्रथम दिशा में हमे चोलिया को कर्नूल के आस-पास देखना चाहिये जबकि अन्तिम विचारानुसार इसे तुरन्त ही चोल के प्रसिद्ध प्रान्त एवम् तञ्जौर की सर्व ज्ञात राजधानी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है।

भारत के चीन-जापानी मानचित्र में—जिसे तीर्थ यात्री की यात्राओं को समझाने के उद्देश्य से बनाया गया है चोलिया जिले को चू-इयू-नो कहा गया है और इसे द्रविड़ के उत्तर में तथा धनक के दक्षिण पश्चिम मे दिखाया गया है—जैसा कि ह्वेनसांग ने लिखा है। यह चीनी अक्षर सम्भवतः कन्दानूर का प्रतिबिम्ब कर सकते हैं जो बुचनान के अनुसार कर्नूल के नाम का शुद्ध स्वरूप है।

कर्नूल की दीवारो के ठीक नीचे जोरा अथवा जोरा अर्थात मानचित्रों के जोरामपुर का प्राचीन नगर अवस्थित है जो तीर्थ यात्री के चोलिया अथवा जोरिया से ठीक-ठीक मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक चीनी अक्षर बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है परन्तु कजूगिरा, जुटिंगा तथा ज्योतिष्क मे समान अक्षर का प्रयोग किया गया है और मैं एम० जुलीन द्वारा इस अक्षर को जू अथवा जो पढ़ने के प्रस्ताव से सहमत हूँ। मैं जोरा को टालमी के सोरा रेगिया अरकाटी के अनुरूप समझने का भी इच्छुक हूँ। परन्तु चाहे घोडा गाड़ी को घोडे के सम्मुख रखा जाये अथवा पीछे, घोडा गाडी, घोड़ा गाडी ही रहेगी अतः मैं सोरा को राजा अरकटोस की राजधानी समझता हूँ चाहे इसे राजा के नाम से पूर्व लिखा जाये अथवा बाद मे। अरकटी को सामान्यतः मद्रास के समीप अरकाट के अनुरूप स्वीकार किया जाता है परन्तु इस नगर का नाम प्रायः आधुनिक समझा जाता है और सोरा अरकाट के उत्तर में रहा होगा। अतः टालमी की सोराय नोमडेज सौरो की एक शाखा रहे होगे जो वर्तमान समय मे भी कृष्णा नदी के तट पर बसे हुए हैं। कर्नूल से एक सौ मील पश्चिम-उत्तर-पश्चिम में सोरापुर नाम का एक विशाल नगर है जिसका राजा अपने को तीस शताब्दियाँ पुरानी वंश-परम्परा का वाहर बताता है, और अब भी अपने पिता

के समान 'राजदेव' समझा जाता है। उसके रवामियक्त 'बेदार' अब भी उसके राज -दरबारी हैं।

चूंकि चोलिया की परिधि को केवल २४०० ली अथवा ४०० मील बताया गया है अतः इसके छोटे आकार से इसकी पहचान करने में सहायता नहीं मिलती। यदि इसे कर्नूल जिले मे दिखाया जाय तो यह धनककट के उत्तर-पश्चिमी कोण को काट देना और यद्यपि इसका क्षेत्र कम हो जायेगा फिर भी इसकी परिधि में अन्तर नही आयेगा और यदि चोलिया को चोल के अनुरूप स्वीकार करना है तो मैं इसमें उत्तर-पश्चिम मे सलेम के समीप सन्केरी द्रुग से लेकर उत्तर पूर्व में कावेरी अथवा कोलरून नदी के मुहाने तक तथा दक्षिण-पश्चिम मे डिन्दीगल से लेकर दक्षिण-पूर्व तक कालीमेर बिन्दु तक विस्तृत तञ्जोर के आधुनिक जिले को सम्मिलित करूंगा। यह क्षेत्र लगभग १२० मोल लम्बा तथा ८० मील चौड़ा है अथवा इसको परिधि प्रायः ४०० मील है।

द्राविड़

सातवीं शताब्दी मे ता-लो-पी-चा द्राविड प्रान्त की परिधि ६०० ली अथवा १००० मील थी और कन ची-पू-लो अथवा कांचीपुर नामक इसकी राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। कांचीपुर पलार नदी पर अवस्थित एक विशाल, छितरे एवम् प्राचीन नगर कंजीवरम का शुद्ध संस्कृत नाम है। चूंकि द्राविड उत्तर में कोकण तथा धनककट से एवम् दक्षिण मे मालकूट से घिरा हुआ था जबकि पश्चिम की ओर किसी भी जिले का उल्लेख नही किया गया है अतः यह निश्चित प्रतीत होता है कि यह समुद्र से समुद्र तक सम्पूर्ण पठार मे विस्तृत रहा होगा। अतः इसकी उत्तरी सीमा को अनुमानतः पश्चिमी घाट से कुण्डा पर से लेकर कडूर तथा त्रिपती होते हुए पुलीकट झील तक, तथा दक्षिणी सोमा को कालीकट से कावेरी के मुहाने तक विस्तृत बताया जा सकता है। चूंक इन सीमाओ की परिधि १००० मील के अधिक समीप है अतः प्रस्तावित सीमाओ को प्रायः शुद्ध स्वीकार किया जा सकता है।

कांचीपुर मे तीर्थ यात्री के निवास के समय श्री लङ्का से प्रायः ३०० बौद्ध भिक्षु राजा की मृत्यु के पश्चात देश मे राजनैतिक हलचल के कारण भाग कर वहाँ आ गये थे। मेरी गणना के अनुसार तीर्थ यात्री ३० जुलाई ६३९ ई० में कांचीपुर पहुँचा होगा और टर्नौर द्वारा बनाई गई श्री लङ्का के राजाओं की सूची मे ६३९ ई० मे राज बुना मुगलान की हत्या कर दी गई थी। इन भिक्षुओ द्वारा दी गई सूचनाओ के आधार पर तीर्थ यात्री ने सेन्ग किया-लो अथवा श्री लङ्का के सम्बन्ध मे अपना विवरण तैयार किया था क्योंकि देश की राजनीतिक दुर्व्यवस्था के कारण वह वहाँ नही जा सका था।

मालकूट अथवा मदुरा

कांचीपुर से ह्वेनसांग ३००० ली अथवा ५०० मील दक्षिण की ओर मो-लो क्यू चा तक गया जिसे एम० जुलीन ने मालकूट कहा है। देश के दक्षिणी भाग में समुद्र तट की ओर मो लो यी अथवा मलय नाम का एक पर्वत था जहाँ चन्दन की लकडी मिलती थी। इस प्रकार वर्णित देश पठार का दक्षिणी छोर है जिसके एक भाग को आज भी मलयालम अथवा मलयवाड़ अथवा मालाबार कहा जाता है। तदनुसार मैं चीनी अक्षरो को मलयकूट का सक्षिप्त स्वरूप समझूंगा। राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी जबकि यह दक्षिण मे समुद्र से तथा उत्तर में द्राविड राज्य की सीमाओ से घिरा हुआ था। चूंकि यह अनुमान कावेरी के दक्षिण में पठार के छोर के वास्तविक आंकडो से ठीक-ठीक मिलते हैं अतः मलयकूट प्रान्त मे पूर्व में तञ्जोर तथा मदुरा के आधुनिक जिले तथा पश्चिम मे कोयम्बत्तूर, कोचीन तथा ट्रावन्कोर के जिले सम्मिलित रहे होगे।

राजधानी की स्थिति को निश्चित करना कठिन है क्योंकि कांजीवरम से ५०० मील दक्षिण की दूरी हमे कन्या कुमारी से दूर समुद्र में ले जायेगी। यदि हम ३००० ली के स्थान पर इसे १३०० ली अथवा २१७ मील पढें तो दिकांश एवम् दूरी दोनों ही मदुरा के प्राचीन नगर की स्थिति से मिल जायेगी जो टालमी के समय में पठार के दक्षिणी छोर की राजधानी थी। सम्भव है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय राजधानी कौलम (किवलन) रही हो परन्तु न तो दूरी ही और न दिकांश ही ह्वेनसांग के कथन से मिलता है क्योकि यह स्थान कांजीवरम के दक्षिण पश्चिम मे ४०० मील से अधिक दूर नहीं है। राजधानी के उत्तर-पूर्व में चरित्रपुर नामक एक नगर था जो श्री लङ्का जाने के लिये एक बन्दरगाह थी। यदि राजधानी मदुरा थी तो बन्दरगाह नागापटम थी परन्तु राजधानी यदि कौलम थी तो बन्दरगाह रामनद (रामनाथपुर) रही होगी। इस बन्दरगाह से श्री लङ्का ३००० ली अथवा ५०० मील दक्षिण पूर्व में थी।

"ह्वेनसांग की जीवनी" के लेखक के अनुसार तीर्थ यात्री ने मलयकूट की यात्रा नही की थी वरन् सुनी हुई बातो के आधार पर अपना विवरण तैयार किया था और ३००० ली की दूरी वस्तुतः द्राविड की सीमाओं से ली गई थी। परन्तु इससे हमारी कठिनाई और बढ़ जायेगी क्योंकि इस दूरी को स्वीकार करने से मलयकूट की राजधानी अधिक दक्षिण की ओर चली जायेगी। इस पर टिप्पणी करते हुए एम० जुलीन ने सि-यू-की ३००० ली के स्थान पर ३०० ली निश्चित करते हुये उधृत किया है। यदि यह संख्या प्रकाशन की त्रुटि नहीं है तो विभिन्न पाठों से पता चलता है कि जहाँ तक दूरी एवं प्रस्थान बिन्दु का प्रश्न है सभी पाठों में किसी प्रकार की अनिश्चितता है। अतः मैं इस बात को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि तीर्थ यात्री की

जीवनी एवं इतिहास मे मूल दूरी ३०० ली अथवा ५० मील थी जिसे इतिहास के अनु-सार द्राविड़ की सीमाओ से किया गया था तथा जीवनी में द्राविड़ की राजधानी से १३०० ली अथवा २१७ मील की दूरी बताई गई थी। किसी भी हालत में मलयकूट की राजधानी मदुरा में निश्चित होगी जो सदैव दक्षिणी भारत का एक प्रमुख नगर रहा है।

अबुरिहान एवं उसके प्रतिलिपक रशीद उद्दीन के अनुसार मलय तथा कूटल (अथवा कुनक) दो विभिन्न प्रान्त थे। अन्तिम प्रान्त प्रथम प्रान्त के दक्षिण में था अर्थात भारत का दूरस्थ दक्षिणी जिला था। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि मलयकूट एक संयुक्त नाम था जो पडोसी जिलो के नामो को मिला कर रखा गया था। इस प्रकार मलय पाण्डेया जिले का प्रतिनिधित्व करेगा जिसकी राजधानी मदुरा थी तथा कूट अथवा कूटल ट्रावन्कोर का प्रतिनिधित्व करेगा जिसकी राजधानी कोचोन अथवा टालमी की कोटियार थी।

चोल राज्य के सम्बन्ध में ह्वेन सॉंग की भूल को इस तथ्य से समझाया जा सकता है कि उसकी यात्रा के समय चोल देश चेरा के विशाल राज्य का भाग था। ओरथुरा रेगिया सारे नदी सोरिंगाय अर्थात् सारे चोर अथवा चोल जाति के राजा सोरनाथ की राजधानी उरियूर थी। उरियूर त्रिचनापल्ली से दक्षिण-दक्षिण पूर्व में कुछ ही मीलों की दूरी पर है। सोरिंगाय सम्भवतः प्लिनी की सेयरेनी जाति है जिनके पास ३०० नगर थे क्योंकि व३ पाण्डाय तथा देरंगाय अथवा द्राविड़ के मध्य-वर्ती तट पर बसे हुए थे।

एम जुकीन के अनुसार मलयकूट को चीमो लो अथवा भी मूरा भी कहा जाता था क्योंकि प्रथम चीनी अक्षर ची थो तो अथवा जम्भोट्री के द्वितीय अक्षर से मिलता है। भिमूरा मम्भवतः स्ट्रेबो टालमी तथा एरियान के लिमूरि तथा पेन्टिन-जोरियन सूचियो के डमोरिके का परिवर्तत स्वरूप है। यह प्लिनी की चारमाय जाति का नाम भी प्रतीत होता है जो पाण्डाय से आर पश्चिमी तट पर बसे हुए थे।

भारत के चोन-जापानी मानचित्र मे मालकूट का अन्य नाम है य-आन-मेन है जिसने टालमी के एइयोई से इसके सम्बन्धों का पता चलता है।

कोंकण

मलयकूट से तीर्थ यात्री द्राविड (कंजीवरम) वापस आया और तत्पश्चात वह उत्तर-पश्चिम की ओर २००० ली अथवा ३३३ मील दूर कोम-कीन नो ५ लो अथवा कोंकणपुर गया। दिकांश एव दूरी दोनो ही तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर अन्नागुन्डी की ओर संकेत करतो हैं जो मुस्लिम आक्रमण से पूर्व देश की प्राचोन राजधानी थी। एम० विवीन डी० सेन्ट मीर्टन ने बनवासी के प्राचीन नाम का प्रस्ताव किया है

जो टालमी का बनौसेई है। परन्तु इसकी दूरी बहुत अधिक है तथा महाराष्ट्र की राजधानी तक इसका पश्चातवर्ती दिकांश उत्तर हो जायेगा जबकि ह्वेनसांग ने उत्तर पश्चिमी कहा है। अन्ना गुन्डी एक महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान है और नदी के दक्षिणी तट पर विजय नगर के आधुनिक नगर की स्थापना से पूर्व यादव परिवार के राजाओं की राजधानी थी।

हेमिल्टन के अनुसार कोकण प्रदेश में "पश्चिमी घाटों का अधिकांश पूर्वी भाग" सम्मिलित था। यह विस्तार अब्रुरिहान द्वारा "कोंकण के मैदान" के रूप में दनक के विवरण से मिलता है क्योंकि यह विवरण घाट के ऊपर उन्नत भूमि के लिये हो सकता है। ह्वेनसांग के समय मे भी यही दशा रही होगी क्योंकि उसने 'राज्य की परिधि को ५००० ली अथवा ८३३ मील कहा है जिसे यदि घाटों एवं समुद्र के मध्यवर्ती संकीर्ण क्षेत्र तक सीमित किया जाये तो बम्बई से मंगलूर तक सम्पूर्ण तटीय क्षेत्र इसमे सम्मिलित होगा। परन्तु सातवीं शताब्दी मे इस क्षेत्र का उत्तरी अर्द्ध भाग महाराष्ट्र के शक्तिशाली चालुक्य राज्य का भाग था तथा तदनुसार यदि इसके आकार के सम्बन्ध में तीर्थ यात्री का अनुमान शुद्ध है तो कोकण राज्य पश्चिमी घाटों से भीतर की ओर दूर दूर तक विस्तृत रहा होगा। इसकी वास्तविक सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु चूंकि यह राज्य दक्षिण के द्राविड़ से, पूर्व मे धनककट से, उत्तर में महाराष्ट्र से तथा पश्चिम मे समुद्र से घिरा हुआ था अतः इसे तट के साथ-साथ विर्गौला से बेडनूर के समीप कुण्डापुर तक तथा भीतर की ओर कुलबर्ग के समीप से लेकर मदगिरि के प्राचीन दुर्ग तक विस्तृत बताया जा सकता है जिससे इसकी परिधि ८०० मील होगी। यह कदम्बों का प्राचीन राज्य था जो कुछ समय तक महाराष्ट्र स्थानीय जनता देश को कोकण कहा करती है जिससे प्लिनी की कोकोण्डाय नामक जाति से इनकी अनुरूपता का पता चलता है जो दक्षिण भारत से सिन्धु नदी के मुहाने की ओर जाने वाले मार्ग के मध्य बसे हुए थे।

महाराष्ट्र

कोकण से तीर्थ यात्री उत्तर पश्चिम की ओर २४०० से २५०० ली अथवा ४०० मील से कुछ अधिक दूर मो हो ला चा अथवा महाराष्ट्र गया। इसकी राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी और पश्चिम की ओर यह एक विशाल नदी को छूती थी। केवल इसी विवरण से मैं गोदावरी नदी पर पैथान अथवा प्रतिष्ठान को सातवीं शताब्दी में महाराष्ट्र की राजधानी के रूप में स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। टालमी ने इसे बैथाना तथा पेरिप्लस के लेखक ने इसे प्लियान कहा है है जिसे निश्चित ही पैथान पढ़ा जाना चाहिये। परन्तु पश्चिम अथवा उत्तर पश्चिम

मे भड़ौच तक १००० ली अथवा १६७ मील की पश्चातवर्ती दूरी बहुत कम है (१) क्योंकि भडौच तथा पैथान के मध्य वास्तविक दूरी २५० मील से कम नही है। एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन का विचार है कि देवगिरि इंगित स्थान की स्थिति से अधिक मिलती है परन्तु देवगिरि किसी भी नदी पर अवस्थित नही है तथा भड़ौच से इसकी दूरी प्रायः २०० मील है। मेरे विचार मे इस बात की अधिक सम्भावना है कि इगित स्थान कल्यानी है क्योंकि हम जानते हैं कि यह चालुक्य परिवार की प्राचीन राजधानी थी। इसकी स्थिति भी ह्वेनसांग की दोनो दूरियो से भली प्रकार मिलती है क्योकि यह अन्नागुन्डी से लगभग ४०० मील उत्तर पश्चिम में तथा भड़ौच से १८० अथवा १६० मील दक्षिण मे है। नगर के पश्चिम मे कैलाश नदी प्रवाहित है जो इस स्थान पर एक बड़ी नदी का रूप धारण कर लेती है। छठी शताब्दी में कोस-मस इडिकोप्लूअसटीज ने कलियाना नाम के अन्तर्गत एवं क्रिश्चियन बिस्फोरस की राजधानी के रूप में कल्यान अथवा कल्यानी का उल्लेख किया था तथा पेरीप्लस के लेखक ने द्वितीय शताब्दी मे इसे कलियेनी कहा है जो सरगनोस के समय एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। कलियान का नाम कन्हारी की कन्दराओ के शिला लेखो मे भी मिलता है जो ईसा काल को प्रथम एव द्वितीय शताब्दी मे लिखे गये थे।

कहा जाता है कि प्रान्त की परिधि ६०० ली अथवा १००० मील थी जो उत्तर मे मालवा, पूर्व मे कोशल तथा आन्ध्र, दक्षिण मे कोकण तथा पश्चिम मे समुद्र के मध्य-वर्ती असम्बन्धित क्षेत्र की परिधि से मिलती है। इस क्षेत्र के सीमान्त बिन्दु, समुद्र तट पर दामन तथा विगला तथा भीतर की ओर ईदलाबाद तथा हैदराबाद है जिनसे इसकी परिधि १००० मील से अधिक बनती है।

राज्य को पूर्वी सीमाओ पर एक विशाल पर्वत था जिसकी श्रेणिया एक दूसरे से अपर खडी हुई थी। एव इसकी चाटिया प्रायः खण्डित थी। प्राचीनकाल मे अरहट अचार ने एक मठ का निर्माण कराया था जिसके कमरे चट्टानो को काट-काट कर बनाये गये थे तथा इसका वाह्य भाग एक "अधेरी" घाटी की ओर मुंह किये दो मजला ऊँचा था। इसमे सम्बन्धित विहार १०० फुट ऊँचा था तथा मठ के मध्य मे बुद्ध की ७० फुट ऊँची पत्थर की प्रतिमा थी जिसके ऊपर पत्थर को सात टोटियां वायु मे लटक रही थी। विहार की दीवारों को चारो ओर विभाजित किया गया था जिन मे बुद्ध के जीवन की सभी महान घटनाओं को कलापूर्ण ढङ्ग से दिखाया गया था। मठ के उत्तरी तथा दक्षिणी द्वारों के बाहर दाहिनी एव बाई दोनों ओर

(१) एम० जुलीन लिखित "ह्वेनसाग।" तीर्थ यात्री की जीवनी में दिशा को उत्तर पूर्व कहा गया है परन्तु चूकि इस दिशा को स्वीकार करने से महाराष्ट्र की हिन्द महासागर राधानी में चली जायेगी अतः इसे उत्तर-पश्चिम पढ़ना आवश्यक है।

पत्थर के बने हाथी थे। जनसाधारण का विश्वास था कि यह हाथी समय-समय पर इतने ओर से चिंघाड़ते थे कि पृथ्वी कांप जाती थी। पहाडी का वर्णन इतना स्पष्ट है कि इससे इसकी पहचान मे सहायता नही मिलती परन्तु यदि पूर्वी दिशा सही है तो अजयन्ती की पहाडी ही सम्भवतः इंगित स्थान है क्योकि इसकी खडी श्रेणिया एलोरा को ठलवां श्रेणियो की अपेक्षा ह्वेनसांग के विवरण मे अधिक मिलती प्रतीत होती हैं। परन्तु पत्थर के हाथियो को छोड यह विवरण इतना स्पष्ट है कि इन दोनो स्थानों को निश्चित रूप से समान नही कहा जा सकता। एलोरा के स्थान पर कैलाश कन्दराओ के बाहर पत्थर के दो हाथी है परन्तु यह ब्राह्मणो का मन्दिर है न कि बौद्ध विहार। इसी प्रकार इन्द्र सभा के समीप एक हाथी है परन्तु यह पशु आंगन के भीतर बना हुआ है जब कि तीर्थ यात्री के विवरण मे हाथियो को द्वार के बाहर दिखाया गया है। बौद्ध कला कृतियो मे बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्य सामान्य रूप से दिखाये गये है अतः इनसे मठ की पहचान करने में किसी प्रकार की विशेष सहायता नहीं मिलेगी। परन्तु यद्यपि तीर्थ यात्री का विवरण अस्पष्ट है फिर भी हाथियो की स्थिति एव कला कृतियो के सम्बन्ध मे इसे इतना विस्तार पूर्वक लिखा गया है कि मैं इस बात को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि तीर्थ यात्री ने स्वय स्थान को देखा होगा। इस दशा मे मैं राज्य की "पश्चिमी" सीमाये पढ़ूंगा और इस मठ को सलसेट्टी द्वीप की कन्हारी कन्दराओं के अनुरूप स्वीकार करूंगा। यदि मैं कल्यानी को सातवी शताब्दी मे महाराष्ट्र की राजधानी स्वीकार करने मे सही हूँ तो यह प्रायः निश्चित है कि तीर्थ यात्री कन्हारी के स्थान पर बने बौद्ध संस्थानो को देखने गया होगा जो कल्यानी से २५ मील मे अधिक दूर नही थे। कन्हारी के स्थान पर प्राप्त अनेक शिला लेखो मे पता चलता है कि यहाँ कि कुछ एक कन्दराय ईसा काल की प्रथम एव द्वितीय शताब्दियो मे बनाई गई थी। इनमे एक शिला लेख पर शकादित्य काल का ३० वा वर्ष खुदा हुआ है। जो १०८ ई के समतुल्य है। कन्हारो मे पत्थर के हाथियो के अवशेष प्राप्त नही हुए है परन्तु चूंकि विहार के बाहर निर्मित भाग गिर चुके हैं अतः पहाडी के अधोभाग के खण्डहरो मे भविष्य मे हाथी के खण्डहर प्राप्त हो सकते हैं। श्री इ वेस्ट ने इन खण्डहरो से पत्थर का एक स्तूप प्राप्त किया है और इस बात मे सन्देह नही कि भविष्य मे खोज से अनेक रूचि पूर्ण खण्डहर प्राप्त होगे।

लङ्का

श्री लका का प्रसिद्ध द्वीप भारतीय राज्यो मे नही गिना जाता है और राजनीतिक अव्यवस्था के कारण तीर्थ यात्री ने लंका की यात्रा नही की थी। परन्तु चूंकि उसने कांचीपुर मे मिले भिक्षुओ से प्राप्त विवरण के आधार पर इसका वर्णन किया है और चूँकि धार्मिक एवं राजनैतिक रूप से यह द्वीप भारत के अधिक समीप है अतः इस रोचक द्वीप का वर्णन किये बिना मेरा कार्य पूरा नही होगा।

हमारे समय की सातवी शताब्दी मे श्री लंका को सेन्ग-किया लो अथवा सिन्हाला कहा जाता था। कहा जाता है कि यह नाम शेर के वंशज सिन्हाला से लिया गया था जिसका पुत्र विजय ५४३ ई पू० मे बुद्ध की मृत्यु के दिन श्री लका पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रसिद्ध था। इसका मूल नाम पाओ-चू अथवा सस्कृत रत्न द्वीप था। योरप वासियों को इसका सर्व प्रथम ज्ञान सिकन्दर महान के अभियान मे तपरो बाने नाम के अन्तर्गत प्राप्त हुआ था। इसका प्रचलित पाली नाम ताम्बा था। यह नाम विजय के रोगी सहयोगियों को लाल हथेलियों के कारण रखा गया था। जिन्होंने नौकाओं से उतरने पर द्वीप को लाल मिट्टी को स्पर्श किया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत ताम्र पर्णी पर आधारित इसका वास्तविक नाम ताम्ब्रा पन्नी था। लासेन ने इसे ताम्ब्र अर्थात "लाल कमल के फूलो से ढका विशाल सरोवर का सम्भावित प्रतिनिधि कहा है। पश्चातवर्ती समय मे यह द्वीप पश्चिमी ससार के सिमुन्दु अथवा पलेय सिमुन्दु के नाम से प्रख्यात था। लासेन का विचार है कि यह नाम पाली सिमन्त अथवा "पवित्र कानून का मुखिया" से लिया गया था। चूँकि प्लिनी ने राजकीय निवास के नगर को अन्तिम नाम से सम्बोधित किया है अतः इसे टालमी के अनुरग्राम्मन अथवा अनरज पुर का द्वितीय नाम समझा गया है। अन्द्रासिमुन्दु नाम का विश्लेषण नही किया है। यह नाम टालमी ने अनरजपुर के विपरीत श्री लका के पश्चिमी तट की भू-नासिका को दिया गया है। इसकी स्थिति से प्रतीत होता है कि यह पलाय सिमुन्दु का दूसरा नाम हो सकता है।

टालमी ने द्विप को सालिके कहा है जो, लासेन के प्रस्तावानुसार सिन्हाक सिहालक अथवा संक्षिप्त सिलक का भ्रष्ट स्वरुप प्रतीत होता। अम्मियानस ने इसे सेदेन्डि-कहा है जो कोसमस का सील्डिबा के समान है। यह दोनो नाम सिहल द्वीप से लिये गये हैं जो सिन्हला द्वीप का पाली स्वरूप है। अबुरिहान ने इसे सिन्गल दीब अथवा सिरिन्दीब कहा है जो योंरपीय नाविको का सेरेन्दीब है। इसी प्रकार अरबी जिलान तथा सीलोन नाम प्राप्त हुए। हिन्दुओ में सर्वाधिक प्रचलित नाम लका द्वीप है जिसे महावसों मे लंका दीप के पाली स्वरूप में दिया गया है।

ह्वेनसांग के अनुसार द्वीप की परिधि ७००० ली अथवा ११६७ मील थी जो वास्तविक परिधि से दुगनी है। सर एमरसन टेनेन्ट के अनुसार इसका वास्तविक आकार उत्तर से दक्षिण लम्बाई में २७१½ मील तथा पूर्व से पश्चिम चौडाई मे १३७ मील है अथवा इसकी परिधि प्रायः ६५० मील है। यूनानी लेखकों ने इसके आंकड़ों को इतना बढ़ा चढ़ा कर लिखा है कि मुझे स्थानीय माप को वास्तविक दर के सम्बन्ध मे सन्देह होने लगा है। कोसमस ने इस द्वीप की वास्तविक यात्रा करने वाले सोपटर के आधार पर इसे ३०० गौडिया लम्बा एवं इतना ही चौड़ा बताया है। सर एमरसन टेनेन्ट ने इस नाम को स्थानीय माप गौ के अनुरूप स्वीकार किया है, जिसे उन्होंने ३

मील के समतुल्य एवं चौडाई माना है। इस प्रकार द्वीप की लम्बाई ६०० मील बताई है। परन्तु गौडिया भारत के गौ कोस के समतुल्य हो सकता है। गौ कोस वह दूरी थी जहाँ तक गौ के रम्भाने की ध्वनि को सुना जा सकता था। यह दूरी १००० धनु है जो ६००० फुट अथवा १.१३६ मील के समान है। इस प्रकार ३००० गौडिया ३४० मील के समान होगा जो द्वीप की वास्तविक दूरी से केवल ७० मील अधिक है। प्लिनी ने इसकी लम्बाई को १०००० स्टेडिया अथवा ११४६ मील बताया है। टालमी ने १५० अक्षांश अथवा १००० मील लम्बा कहा है जिसे मरसियानस ने घटा कर ६५०० स्टेडिया अथवा १०६१½ मील कहा है। अब, प्रारम्भिक चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने जिसने ४१२ ई० अथवा सोपेटर मे एक शताब्दी पूर्व श्री लका की यात्रा की थी, कहा है कि द्वीप की लम्बाई ५० योजन तथा चौडाई ३० योजन अथवा ३५०+२१० मील थी। यदि हम यह अनुमान लगाये कि दोनों यात्रियों ने अपने आंकडे देश की जनता से प्राप्त किये थे तो सोपेटर के ३०० गौडिया को ५० योजन के अनुरूप स्वीकार किया जायेगा और इस प्रकार ६ गौडिया बराबर एक योजन की दर से स्थानीय माप (गौ) अंग्रेजी मील से कुछ अधिक अथवा भारत के गौ कोस के समान होगा। (१)

श्री लंका पर अपनी रोचक एव महत्वपूर्ण पुस्तक मे सर एमर्सन टेनेन्ट ने प्रस्ताव किया है कि "गाले की बन्दरगाह बाईबल का तारशिष नगर होगी जो अरब की खाडी तथा ओफीर के मध्य अवस्थित था। उन्होने यह विचार व्यक्त किया है कि ओफीर मलक्का अथवा औरिया चेर सोनिसस था क्योकि मलय भाषा मे ओफीर सोने की खान का साधारण नाम है।" परन्तु मेरे विचार में इस मत को स्वीकार नही किया जा सकता है क्योकि सोलोमन के नाविको द्वारा लाये गये सभी पदार्थों के नाम शुद्ध सस्कृत नाम हैं। सर एमर्सन का कथन है कि यह नाम श्री लका मे प्रचलित तामिल नामो के अनुरूप हैं। यह नाम है मेन हबीम अथवा हाथी के दांत, होफीम अथवा लगूर तथा तुकूम अथवा तोता। परन्तु यह शब्द हैं सस्कृत के शुद्ध इभा, कपि एव सुक शब्द है जिनमे हेब्रू भाषा के अक्षर अन्त मे जोड दिये गये हैं। यह सत्य है कि संस्कृत के इन नामो को दक्षिण भारत की भाषाओ मे स्वाभाविक रूप से अपना लिया गया है परन्तु इन्होने तामिल के मूल नामो का स्थान ग्रहण किया है। यह नाम वर्तमान समय मे भी प्रयोग मे लाये जाते हैं। उदाहरणार्थ हाथी के लिये याने बन्दर के लिये कुरंगा, मोर के लिये मयिल तथा तोते के लिये किलिपिल्लै। अब, यदि सोलोमन के नाविको ने इन सस्कृत नामो को लका मे प्राप्त किया था तो हमे यह स्वीकार करना

(१) सर एमर्सन ने यूनानी माप को गौ के समरूप स्वीकार किया है। गौ वह दूरी है जिसे कोई व्यक्ति एक घण्टे मे पूरा कर सकता है। परन्तु 'घण्टा' शब्द मे योरपीय सभ्यता की झलक मिलती है। क्या ऐसा नही हो सकता कि गौ वह दूरी थी जिसे कोई व्यक्ति भारत मे समय विभाजन की सर्व प्रसिद्ध इकाई घडी अथवा २४ मिनट में तय कर सकता था। यदि ऐसा है तो प्रति घण्टा तीन मील की दर से गौ १२ मील के समान होगा जो ऊपर लिखे गौ कोस के समान है। विल्सन ने गौ को चार कोस के समान माना है।

होगा कि आर्य जाति की विजय पताका सोलोमन के समय से कुछ शताब्दियों पूर्व अर्थात १२०० से १५०० ई० पू० में ही सुदूर दक्षिण मे पहुँच गई थी। परन्तु आर्यों के इतिहास से हमें पता चलता है कि इस समय तक उन्होने नर्बदा नदी को पार नही किया था और न ही गंगा के मुहाने के प्रदेश मे प्रवेश कर सके थे। अतः यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि सोलोमन के समय मे श्री लंका अथवा दक्षिण भारत में आर्यों के नाम प्राप्त किये गये हों। उनके निजी विवरण के अनुसार भी लंका निवासी ५४३ ई० पू० में विजय के आगमन के पूर्व बर्बर अवस्था में थे और २४२ ई० पू० मे अशोक के पुत्र महेन्द्र के समय आर्य जाति एवं लंका वासियो मे किसी प्रकार के सम्बन्धो अथवा विचारो के आदान-प्रदान का सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त नही है।

स्मिथ लिखित "बाईबल के शब्द कोष" मे ओफीर सम्बन्धी लेख के लेखक ने अरब के पक्ष मे मत दिया है। उसने अनुमान लगाया है कि हाथी दाँत, बन्दर तथा मयूर आदि शब्द ओफीर से नहीं लिये गये थे वरन् इन्हे तरशिष से प्राप्त किया गया था तथा सोना एवम् अलगूम के वृक्ष ओफीर से लाये गये थे। इस अनुमान के आधार पर उसने हाथी, बन्दर एवम् तोते के भारतीय नामों से छुटकारा प्राप्त कर लिया है परन्तु अलगूम की लकडी शेष रह जाती है जिसे प्रोफेसर लासेन ने संस्कृत वल्गू अथवा चन्दन की लकडी बताया है। उसने स्वीकार किया है कि अरेबिया में वर्तमान समय में स्वर्ण नही पाया जाता है परन्तु उनका विचार है कि किसी समय यहाँ सोना पाया जाता था और यदि ऐसा नही भी था तो यहाँ बाहर से लाया गया सोना अधिक था क्योंकि सेबह् की रानी ने सोलोमन को अधिक सोना भेंट किया था।

पश्चिमी भारत के अन्तर्गत बडारी अथवा इडेर के अपने विवरण मे मैं इस विषय पर विचार कर चुका हूँ परन्तु मैं यहाँ अपना विचार पुनः व्यक्त करना चाहता हूँ कि बाईबल का ओफीर जिसे जोसेफस तथा सेप्टुआजिन्ट ने भिन्न-भिन्न यूनानी नाम दिये हैं सम्भवतः हिन्दू भूगोल अथवा दक्षिण पश्चिमी राजपूताना का सौवीर था जिसे पश्चिमी देशो के निवासियो ने होवीर पुकारा होगा ठीक उसी प्रकार जैसे सिन्धु को इण्डस तथा सप्त को हाफ्ट पुकारा जाता है। प्लिनी के अनुसार खाम्बेय की खाडी के उत्तरी प्रदेश में पूर्ववर्ती समय मे सोना एव चाँदी दोनो पाये जाते थे। वर्तमान समय में भी यहाँ यह दोनों धातुएं मिल जाती हैं। अरावली पर्वतो से प्राप्त सोने के नमूने भारतीय अजायबघर मे देखे जा सकते है और यही श्रेणी भारत का एक मात्र स्थान है जहाँ किसी मात्रा मे चाँदी पाई जाती है। आर्य जाति ईसवी काल से २००० वर्ष पूर्व पश्चिमी भाग मे बस गई थी और सोलोमन के समय से काफी पूर्व ही आर्य भाषा देश की सामान्य भाषा बन गई थी। अतः मैं इझील के ओफीर अथवा सोफीर को हिन्दुओं के सौवीर के अनुरूप स्वीकार करूंगा जहाँ सोलोमन के नाविकों ने शुद्ध सोना प्राप्त किया होगा तथा जहाँ उन्होने हाथी दाँत, बन्दर एवं मयूर तथा तोता प्राप्त किये होंगे जिन्हें उन्हीं नामों से पुकारा जाता था जिन्हें उन्होंने हमारे लिये बाईबल में सुरक्षित रखा है।

❋ समाप्त ❋

परिशिष्ट 'क'

दूरी के माप

योजन, ली, कोस

चीनी तीर्थ यात्रियों ने दूरियों के माप में भारतीय योजन तथा चीनी ली का उल्लेख किया है। वरिष्ठ यात्री फाहियान ने सामान्यतः प्रथम माप का प्रयोग किया है जबकि पश्चातवर्ती यात्री सुङ्गयुन तथा ह्वेनसांग ने द्वितीय माप का प्रयोग किया है। कोस जो वर्तमान समय मे सामान्य भारतीय माप है किसी भी यात्री द्वारा प्रयोग में नही लाया गया। ह्वेनसांग ने लिखा है कि प्रथानुसार प्रचलित माप केवल ३० चीनी ली के समान था। विभिन्न यात्रियो द्वारा सर्व ज्ञात स्थानों के मध्य की उल्लिखित दूरियो की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग ने योजन को प्रथानुसार माप के आधार पर ४० ली के समान स्वीकार किया है। मैं उदाहरण स्वरूप चार दूरियों का उल्लेख करता हूँ :—

	फाहियान		ह्वेनसांग
१. श्रावस्ती से कपिला तक	१३ योजन	अथवा	५०० ली
२. कपिला से कुशी नगर	१२ "	"	४८५ "
३. नालन्दा से गिरियेक	१ "	"	५८ "
४. वैशाली से गंगा	४ "	"	१३५ "
	कुल ३० योजन	=	११७८ ली
	अथवा १ "	=	३९¼ "

ह्वेनसांग ने एक योजन को ५०० धनु के आठ कोस के समान बताया है। इस प्रकार एक योजन २४००० फुट अथवा ४½ मील से कुछ अधिक होगा परन्तु हिन्दुओं के सभी ग्रन्थों में योजन को ४ कोस के समान बताया गया है जबकि प्रति कोस १००० अथवा २००० धनु के समान था। प्रथम दर ह्वेनसांग द्वारा वर्णित की लम्बाई से मिलती है जबकि द्वितीय दर के अनुसार एक योजन दुगना अथवा ९ मील के समान हो जावेगा। इस दर से हमे वर्तमान समय मे भारत के अनेक भागों मे प्रचलित कोस बराबर २¼ मील की सामान्य—दर प्राप्ति होती है।

६००० फुट का छोटा कोस निश्चित ही प्राचीन भारतीय माप है जैसा कि मेगस्थनीज के आधार पर स्ट्रैबो ने लिखा है कि पालीबोथरा जाने वाले राजकीय मार्ग पर दूरी दर्शाने के उद्देश्य से प्रत्येक १० स्टेडिया अथवा ६०६७½ फुट की दूरी पर स्तम्भ लगवाये गये थे। कोस की इस दूर को स्वीकार करने से एक योजन में २४००० फुट से कुछ अधिक अथवा ४½ मील के समान होगा जबकि वास्तविक चीनी ली १०

बराबर एक योजन की दर से केवल ८०० फुट तथा प्रयागत ली ४० बराबर एक योजन की दर से ६०० फुट से अधिक नही होगा। परिणाम स्वरूप ब्रिटिश मील में ६½ अथवा ८½ ली होंगे परन्तु सुनिश्चित स्थानो के मध्य वास्तविक मार्ग दूरियो एवं चीनी तीर्थ यात्रियो द्वारा वर्णित दूरियो की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय योजन को ३० ली के समान बताने मे ह्वेनसांग ने अवश्य ही कोई गलती की है।

फाहियान द्वारा वर्णित निम्न दूरियों से पता चलता है कि मार्ग दूरियो में एक योजन प्राय: ६¾ मील के समान था और चूंकि एक गांव से दूसरे गाँव के बैल गाड़ियों के प्राचीन मार्ग टेढ़े-मेढ़े हुआ करते थे अतः योजन की वास्तविक दूरी ७½ अथवा ८ मील के समान स्वीकार की जा सकती है।

	फाहियान			ब्रिटिश	मार्ग
१. भेडा से मथुरा	८०	योजन	अथवा	५३६	मील
२. मथुरा से संकिसा	१८	”	”	११५¾	”
३. संकिसा से कन्नौज	७	”	”	५०	”
४. बनारस से पटना	२२	”	”	१५२	”
५. पटना से चम्पा	१८	”	”	१३६½	”
६. चम्पा से तामलुक	५०	”	”	३१६	”
७. नालन्दा से गिरियेक	१	”	”	९	”
	१९६	योजन	अथवा	१३१५¼	मील

उपरोक्त दूरियों मे फाहियान का एक योजन ब्रिटिश मार्ग दूरियो के ६.७१ मील के समान होता है।

इसी प्रकार ह्वेनसांग के माप की तुलना से उसका ली का मूल्य मार्ग दूरियो के अनुसार एक मील के छठवें भाग के बराबर है। परन्तु यह सम्भव है कि वास्तविक दूरी में इसका मूल्य एक मील के पांचवें भा ग के समान था क्योंकि बैल गाड़ियों के टेढ़े-मेढ़े राम्ते ब्रिटिश मार्गों से काफी लम्बे थे।

	ह्वेनसांग			ब्रिटिश	मार्ग
१. भदावर से गोविस्न	४००	ली	अथवा	६६	मील
२. कोशाम्बी से कुसपुरा	७००	”	”	११४	”
३. श्रावस्ती मे कपिला	५००	”	”	८५	”
४. कुशि नगर से बनारस	७००	”	”	१२०	”
५. बनारस से गाजीपुर	३००	”	”	४८	”
६. गाजीपुर से वैशाली	५८०	”	”	१०३	”
	३१८०	ली	अथवा	५७६	मील

इन दूरियों के औसत के अनुसार तक माल मे ५.६२५ अथवा ६ ली हान हैं। मैंने इस पुस्तक में ह्वेनसांग को सख्याओं को घटाकर ब्रिटिश मील के समान करने के उद्देश्य से इसी मूल्य का अनुसरण किया है।

योजन तथा ली की उपरोक्त दरे एक दूसरे से मिलती है जैस कि ह्वेनसाग ने लिखा है कि एक योजन को पृथा के अनुसार ४० के बराबर माना जाता था। जब कि उसकी वर्णित दूरियो मे योजन की दर ४० ली को ५.६२५ से भाग देने पर ६.७५ मील होता है जो वस्तुतः ६.७१ मील के समान है जिसे सर्व ज्ञात स्थानो के बीच फाहियान द्वारा वर्णित दूरियो के आधार पर हम प्राप्त कर चुके हैं।

एम० त्रिवीन डी सेन्ट मार्टिन ने ला-पी-रे गाबिल का उद्धित करते हुए बताया है कि ह्वेनसांग के समय से कुछ समय उपरान्त चोनी ली ३२९ मीटर अथवा १०७६.१२ ब्रिटिश फुट के बराबर था। चूंकि यह दर ह्वेनसाग द्वारा वर्णित दूरियो के आधार पर प्राप्त दर अर्थात् ली बराबर १०५६ फुट अथवा एक मील के पाँचवे भाग के दर से प्रायः मिलती है अतः मेरा विचार है कि भारत मे अपनो यात्राओ की दूरी का वास्तविक अनुमान वस्तुत. इसी ली के आधार पर किया था। सातवी शताब्दी मे चीनी ली के वास्तविक मूल्य को इस प्रकार स्वीकार करने मे एक योजन की लम्बाई ४३१६४.८ फुट अथवा ८$\frac{1}{6}$ मील थी जो ८ से ६ मील के प्रचलित दर से प्रायः मिलती-जुलती है।

इस प्रकार सातवी शताब्दी मे चोनी ली का वास्तविक मूल्य १०७६-१२ फुट अथवा ब्रिटिश मील के पाँचवे भाग से कुछ अधिक था परन्तु ऊपर बताये गये कारणो एव प्राप्त प्रमाणो के आधार पर ब्रिटिश मार्ग दूरी मे एक ली का मूल्य ब्रिटिश मील छठवे भाग से अधिक नही था।

भारतीय कोस की लम्बाई मे भिन्नता ने चानो तीर्थ यात्रियो को दुविधा मे डाल दिया होगा। सम्भवतः यही कारण था कि फाहियान ने योजन के लम्बे माप का प्रयोग किया था जब कि ह्वेनसाग ने सभी दूरियाँ चोनी ली मे बतायी हैं। वर्तमान समय मे कोस की लम्बाई प्रायः प्रत्येक जिले मे भिन्न-भिन्न है परन्तु व्यवहारिक रूप से कोस के तीन विशिष्ट मूल्य है जो उत्तरी भारत मे इस समय प्रचलित है।

(१) छोटा कोस जिसे सामान्यतः बादशाही अथवा पजाबी कोस कहा जाता है। यह उत्तरी पश्चिमी भारत तथा पंजाब मे प्रचलित है और प्रायः १$\frac{1}{2}$ मील लम्बा है।

(२) गंगा नदी के प्रान्तो का कोस जो नदी का दोनो तट्टो के जिलो मे प्रचलित है २$\frac{1}{2}$ मील लम्बा था परन्तु सुविधा के कारण अब इसे सामान्यतः २ ब्रिटिश मील के समान स्वीकार किया जाता है।

(३) बुन्देल कोस जो बुन्देल खण्ड तथा यमुना नदी के दक्षिण मे अन्य हिन्दू

प्रांतों में प्रचलित है प्रायः ४ मील लम्बा है। यही कौस दक्षिण भारत में मैसूर राज्य में भी प्रचलित है।

मैं प्रथम कोस को मूल रूप में द्वितीय कौस का आधा समझता हूँ क्यों कि यह दोनो कौस एक ही प्रणाली के अंग थे। इस प्रकार विल्सन ने एक कोस अथवा कौस को ४००० अथवा ८००० हाथ के समान बताया है। छोटा कौस मेगस्थनीस के समय में मगध में प्रचलित रहा होगा क्योंकि उसने लिखा है कि राज्यकीय मार्ग पर दूरी बताने के उद्देश्य से प्रत्येक दस स्टेडिया की दूरी पर स्तम्भ लगवाये गये थे। अब, दस स्टेडिया ६६६६.७२ फुट अथवा प्रायः ४००० हस्त के समान हैं जो "ललित विस्तार" के अनुसार मगध के कोस का वास्तविक मूल्य था। ८००० हस्त के लम्बे कोस का उल्लेख भास्कर की "लीलावती" में तथा अन्य स्थानीय विद्वानों द्वारा किया गया है।

इन माप दण्डों के वास्तविक मूल्य को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि हमें उन सभी इकाईयों का ज्ञान हो जिन्हें मिलाकर इन्हें बनाया गया है। यह इकाई अंगुल है जो भारत में एक इञ्च के तीन चौथाई भाग से छोटी है। सिकंदर लोदी की बयालीस ताम्र मुद्राओं को मापने पर एक अंगुल एक इञ्च के ७२६७६ के बराबर है। हम जानते हैं कि इन मुद्राओं को अंगुल की चौड़ाई के आधार पर बनवाया गया था। श्री थामस ने उपरोक्त माप को कुछ कम अथवा ७२२२६ बताया है। हमारे माप का औसत ७२६३२ इन्च है जिसे भारतीय अंगुल के वास्तविक मूल्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि मैंने अनेक स्थानीय व्यक्तियों की उंगलियाँ वस्तुत एक इंच के तीन चौथाई भाग से कम थी। इस दर के अनुसार २४ अगुल का एक हाथ १७.४३१६८ इंच के बराबर होगा और ९६ अंगुल का एक धनु ५.८१ फुट के बराबर होगा। चूँकि १०० धनु से एक नलवा और १०० नलवा से एक क्रोस अथवा कोस बनता है। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि दशमलव क्रम को सुरक्षित रखने के लिए एक धनु १०० अंगुल का रहा होगा। इस विचारानुसार एक हस्त में २४ के स्थान पर २५ अंगुल रहा होगा और इसका वास्तविक मूल्य १८.१५८ इंच होगा परन्तु यह दर भी भारतीय बाजार में प्रचलित हस्त के दर से काफी कम है। हस्त के इस मूल्य को बड़े माप इस प्रकार रहे होंगे।

चार हाथ अथवा १०० अंगुल = ६.०५२ फुट=एक धनु ८०० हस्त अथवा १०० अंगुल=६०५.२ फुट=एक नलवा ८०० हस्त अथवा १०० नलवा = ६०५२ फुट = एक क्रोस।

चूँकि क्रोस अथवा का उपर्युक्त मूल्य मैगस्थनीज द्वारा विवरण से प्राप्त मूल्य से केवल १५ फुट कम है अब मेरा विचार है कि इसे मगध के प्राचीन क्रोस के वास्तविक मूल्य का सामीप्य मूल्य स्वीकार किया जा सकता है।

पश्चातवर्ती समय मे मुसलमान शासको ने कोस की अन्य दरें निश्चित की थीं जिन्हे विभिन्न प्रकार के गजो के आधार पर निश्चित किया गया था और इन शासको ने अपने नाम पर कोस का नामाकन किया था। इस विषय पर हमारी सूचना मुख्य रूप से अकबर के मंत्री अफुल फजल से ली गई थी। उसके अनुसार शेर खाँ ने ६० जरीबों के क्रोस अथवा कोस को निर्धारित किया था जबकि प्रत्येक जरीब में ६० सिकन्दरी गज अथवा ४१½ सिकन्दरी थे। यह कोस अफुलफजल के समय देहली मे प्रचलित थे। यह कोस ६०४२·६६ फुट अथवा प्रायः १⅛ मील के बराबर था। अकबर ने ५००० इलाही गज वाले एक अन्य कोस को प्रचलित किया था जबकि इस गज का मूल्य ४१ सिकन्दरी के समान बताया जाता है। निश्चय ही यह एक त्रुटि है क्योंकि वर्तमान इलाही गज का माप ३२ से ३३ इंच है और इस प्रकार यह ४४ अथवा ४५ सिकन्दरियो के बराबर है। सर हेनरी इलियट ने "आगरा से लाहौर तक अकबर महान" द्वारा निर्मित राजकीय मार्ग तक ही बने हुए वर्तमान कोस मिनारो के बीच की दूरी के माप से उपर्युक्त कोस का मूल्य निर्धारित करने का प्रयत्न किया है परन्तु लोगों का सामान्य विश्वास है कि वह मीनार शाहजहाँ द्वारा बनाये गये थे जिसने एक अन्य गज का प्रचलन करवाया था अतः अकबरी कोस के उपरोक्त मूल्य पर विश्वास नही किया जा सकता। सर हेनरी इलियट ने इस कोस को अनुचित महत्व प्रदान किया है। लगता है कि इस कोस ने अन्य सभी कोसो का स्थान ले लिया था। परन्तु निश्चित ही यह स्थित नही थी क्योंकि अकबर के निजी मंत्री अबुलफजल ने अपने स्वामी के साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तो का उल्लेख करते हुए छोटे कोस का प्रयोग किया है। अकबर के पुत्र जहांगीर ने भी अपनी आत्मकथा मे अकबरी कोस को त्याग दिया है। उसके अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि उसने लाहौर तथा आगरा के मध्य प्रत्येक ८ कोस पर एक सराय का निर्माण करने की आज्ञा दी थी। (१)

परिशिष्ट 'ख'

टालमी के पूर्वी देशान्तर में सुधार

टालमी द्वारा उद्धृत दूरियाँ वास्तविक दूरियो से स्पष्टतयः इतनी अधिक है कि विभिन्न भूगोल शास्त्रियो ने उनके सुधार हेतु अनेक उपायों का प्रस्ताव किया है। एम० गोस्लिन ने टालमी की दूरियो को उनके ⅚ भाग के रूप से स्वीकार करने का

---

(१) जहाँगीर की आत्मकथा पृष्ठ ६० इन सरायो के बीच की दूरी ६ से १३ मील है।

प्रस्ताव किया है परन्तु उनकी प्रणाली इस अनुमान पर आधारित थी कि टालमी ने एराटस्थनीज द्वारा वर्णित विषुवीय एवं Rhodian Diaphragms का गलत मूल्यांकन किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि टालमी ने टारियन भूगोल शास्त्री मेरीनस तथा मेसीडोनिया के व्यापारी टिटियानस पर निर्भर रहा है। सम्भवतः एम० गोसिलिन का तरीका अनेक प्रसिद्ध स्थानो के देशान्तर सम्बन्धी अधिकता पर आधारित टालमी की त्रुटियो के औसत पर निश्चित किया गया था। वस्तुतः यह टालमी की त्रुटियो का एक प्रयोगात्मिक सुधार है जबकि इस त्रुटियो के कारण पर उनका सिद्धान्त केवल एक अनुमान मात्र है। टालमी की देशान्तर सम्बन्धी त्रुटियों के वास्तविक कारणों को सर हेनरी रालिन्सन ने इतना स्पष्ट लिखा है कि मैं इन त्रुटियो का विचार करते समय केवल उनकी पक्तियों को ही उद्धृत करूंगा।

(१) यूफ्रेटीज पर स्थित हीरापोलीस मे लोहे के स्तम्भ तक की सडक की दूरी को उसने एक सीधी रेखा में बदला, और इसके लिए उसने नक्शे पर १ मे ८ के बजाय १ में ११½ का एकरूप माप स्वीकार किया। शायद इसमे भी सही कहना यह होगा कि उसने १ मे ७ का माप स्वीकार किया।

(२) उसने भूमध्यरेखीय स्टैडियम की गणना नये सिरे से कर उसे ६०० के बजाय ५०० अश पर निश्चित किया। इस प्रकार, सम्पूर्ण यात्रा-मार्ग (इटीनेरेरी) की रेखा को रोड्स् से समानान्तर मानते हुए, उसके एक अश को केवल ४०० स्टेडियम के बराबर माना। वैसे, सच पूछिये तो सही माप ४८० था।

(३) सम्पूर्ण यात्रा-मार्ग (इटीनेरेरी) की 'इकोइनी' को ओलिम्पिक-स्टेडियम में रूपान्तरित करते समय उसने उसे पौने चार मील के फारसी-फरसांग के बिल्कुल बराबर उतार दिया। दूसरी ओर, सर हेनरी का विश्वास है कि 'स्कोइनस' के मानी है कारवानो के स्वाभाविक माप का एक घटा। यह माप प्राचीन और आधुनिक, दोनों कालो मे कारवा वाले-मंजिल तय करते समय-हर दिन काम मे लाते थे आप इसे औसतन तीन ब्रिटिश-मील के बराबर समझ सकते है।

इन तीन भूलो के कारण टालमी के पूर्वी देशांतरो मे जहां-तहां अलग-अलग सशोधन आवश्यक है; और, सर हेनरी रालिन्सन के हिसाब से यह संशोधन १/१० वें हिस्से तक होगे। यह मात्रा एम० गोस्सैलीन द्वारा प्रयुक्त, प्रयोग-सिद्ध सशोधन के १/१७ वें भाग के अन्दर आ जाती है।

यहाँ जिन संशोधनों की बात उठाई गई है, उनकी परिशुद्धता की प्रामाणिकता के लिए मैं केवल तक्षशिला और पालीबोथरा की देशान्तर-रेखा के अन्तर की ओर सकेत करना चाहूँगा। यह अन्तर पुस्तक के आठवें पृष्ठ पर दिया हुआ है।

———